तृतीय वैश्विक संस्कृत सम्मेलन 2024 की प्रस्तुति

# भाषा और संस्कृति में संस्कृत की स्थायी विरासत

# The Enduring Legacy of Sanskrit in Language and Culture

## भाग- 2

Editor

Dr. Rajesh Kumar Mishra, Bharat

# भाषा और संस्कृति में संस्कृत की स्थायी विरासत

(भाग-2)

अमृतब्रह्म प्रकाशन
Amritbrahma Prakashan
प्रयागराज

# भाषा और संस्कृति में संस्कृत की स्थायी विरासत

## (भाग-2)

**सम्पादक**

डॉ. राजेश कुमार मिश्र

**प्रकाशक**

**अमृतब्रह्म प्रकाशन**

**प्रयागराज**

**ISBN: 978-81-989024-1-2**

**प्रकाशक**

**अमृतब्रह्म प्रकाशन**

63/59, मोरी, दारागंज, प्रयागराज – 211006

सम्पर्क +91-9450407739, 8840451764

Email: amritbrahmaprakashan@gmail.com

**भाषा और संस्कृति में संस्कृत की स्थायी विरासत** (भाग-2)

सम्पादक

डॉ. राजेश कुमार मिश्र, भारत

**© ग्लोबल संस्कृत फोरम, नई दिल्ली**

**प्रथम संस्करण : 2025**

**मूल्य : 999/-**

***The responsibility for facts stated, opinion expressed or conclusion reached and plagiarism, if any, in this book is entirely that of Author. The publisher/Editors/Editorial Board bears no responsibility for them whatsoever.***

**मुद्रक**

Infinity Imaging Systems

नई दिल्ली

# सम्पादकीय

संस्कृत- यह शब्द मात्र एक भाषा का प्रतिनिधित्व नहीं करता, अपितु वह संपूर्ण भारतीय जीवन-दर्शन, ज्ञान-परंपरा और सांस्कृतिक चेतना की सनातन वाहिका है। यह वह वाङ्मयी धारा है, जिसने वेदों से लेकर नव्यन्याय, साहित्य से लेकर शास्त्र, योग से लेकर व्याकरण तक समस्त ज्ञान संपदा को संग्रथित किया है। इसी चिरजीविनी परंपरा की पुर्नस्थापना और वैश्विक स्तर पर पुनर्प्रतिष्ठा का महनीय प्रयत्न है - "Third Global Sanskrit Conference 2024", जिसका आयोजन 05 एवं 06 सितम्बर 2024 को मॉरिशस स्थित महात्मा गांधी संस्थान में हुआ।

इस दो दिवसीय वैश्विक संगोष्ठी का केंद्रीय विषय "भाषा और संस्कृति में संस्कृत की स्थायी विरासत" अत्यंत युगानुकूल, शोधपरक एवं समय-सापेक्ष है। यह विषय केवल अतीत की गौरवगाथा नहीं गाता, अपितु वर्तमान और भविष्य की उस आधारशिला की ओर संकेत करता है, जहाँ संस्कृत न केवल स्मृति का विषय है, अपितु चेतना का वर्तमान और दिशा का भविष्य बनती है।

इस आयोजन में भारत, मॉरीशस सहित अनेक देशों के संस्कृतविद्, अनुसंधानकर्ता, शिक्षाविद्, भाषा-प्रेमी एवं संस्कृति-संरक्षक एकत्र हुए। प्रस्तुत ग्रंथ उन्हीं विद्वानों के गहन विचारों, मौलिक प्रस्तुतियों एवं विमर्शों का सुव्यवस्थित संकलन है। यहाँ पर विद्वानों ने संस्कृत भाषा की दार्शनिक गहराई, साहित्यिक माधुर्य, सांस्कृतिक सामर्थ्य, एवं वैज्ञानिक प्रासंगिकता का विविध कोणों से मनोवैज्ञानिक, भाषावैज्ञानिक, समाजवैज्ञानिक तथा वैश्विक परिप्रेक्ष्य में पुनरावलोकन किया है।

इस ग्रंथ के माध्यम से यह प्रमाणित होता है कि संस्कृत कोई मृत भाषा नहीं है, अपितु आज भी वह नवसृजन की क्षमता से युक्त, बौद्धिक विमर्श की उपजाऊ भूमि और संस्कृति के अंतर्मन की अभिव्यक्ति है। इस

सम्मेलन की विशेषता यह रही कि यह भौतिक और आभासी दोनों स्वरूपों में सम्पन्न हुआ, जिससे विश्व के कोने-कोने से विद्वानों की भागीदारी संभव हुई। इसने सिद्ध कर दिया कि डिजिटल युग में भी संस्कृत का स्वर अवरोध रहित, अविरल और अविनाशी बना हुआ है।

यह ग्रंथ न केवल एक स्मारिका है, वरन् एक दस्तावेज़ है- उस वैश्विक बौद्धिक एकता का, जो संस्कृत की भूमि से जन्मी और समस्त मानवता को जोड़ने की क्षमता रखती है। यह कृति भावी पीढ़ियों को प्रेरित करेगी कि वे संस्कृत को केवल शास्त्रों तक सीमित न रखें, बल्कि इसे संवाद की भाषा, चिंतन की भाषा और संस्कार की भाषा के रूप में आत्मसात करें।

हम, इस ग्रंथ के संपादकीय मंडल की ओर से, आयोजन के मुख्य सहयोगी Mahatma Gandhi Institute, Mauritius तथा सहसंयोजक Global Sanskrit Forum, Bharat के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं, जिन्होंने इस ऐतिहासिक पहल को संभव बनाया। साथ ही, उन समस्त लेखकों, संपादकों, संयोजकों एवं संस्कृतप्रेमियों को हार्दिक वंदन जिनकी निष्ठा, साधना और सेवा से यह प्रयास साकार हुआ।

संस्कृत के पुनरुत्थान की यह यात्रा निरंतर चलती रहे- यही हमारा संकल्प है, यही हमारी श्रद्धांजलि है इस दिव्य भाषा को।

**डॉ. राजेश कुमार मिश्र**
महासचिव, ग्लोबल संस्कृत फोरम
सहायक आचार्य, संस्कृत आचार्य
**नव नालंदा महाविहार, संस्कृति मंत्रालय**

# विषयानुक्रमणिका


| क्र. | आलेख | लेखक/लेखिका नाम | पृ.सं. |
|---|---|---|---|
| 1. | Environmental Awareness Reflected in the Sanskrit Literature | Dr. Sanghita Chakravarty | |
| 2. | जैन धर्म में आहार | डॉ. हेमा जैन | |
| 3. | The Centrality of Sanskrit in Gurukula Education: Exploring Pedagogical Methods and Curriculum Design in Ancient India | Suman Naskar | |
| 4. | वैदिक शिक्षा के आदर्शों एवं नैतिक जीवन मूल्यों की प्रासंगिकता | डॉ. विनोद चौधरी | |
| 5. | भारतीय सांस्कृतिक समरसता: मायण के संदर्भ में | वीना रानी | |
| 6. | आधुनिककाले संस्कृतशिक्षायाः प्रासङ्गिकता | Ashis Mandal | |
| 7. | चरक संहिता में वर्णित ऋतुचर्या विज्ञान | डॉ. मनीषा सिंह | |
| 8. | वैदिक वाङ्मय में सूर्योपासना | डॉ. अर्चना ए. त्रिवेदी | |
| 9. | पालि और बौद्ध धर्म | आशा यशवंते | |
| 10. | प्रमुख संस्कृत नाटकों में चित्रित समाज एवं संस्कृति | डॉ. वन्दना सूरज भान | |
| 11. | प्राकृत भाषा और जैन साहित्य | Dr. Anagha H. Ghodke | |
| 12. | प्राचीन भारतीय अभिलेखों में प्रयुक्त कालगणना पद्धतियाँ | अंगिरस | |
| 13. | प्राचीन भारतीय शिक्षा में संस्कृत की भूमिका | डॉ. चमन कुमार | |

| | | | |
|---|---|---|---|
| 14. | प्राचीनभारते संन्यासाश्रमस्य महत्त्वम् | डॉ. मनोजकुमारसाहुः | |
| 15. | भारत की सञ्जीवनी शक्ति: संस्कृत | डॉ.चन्द्र किशोर शास्त्री | |
| 16. | भारत के बाहर संस्कृत का वैश्विक प्रभाव और अध्ययन | Dev Prakash Gujela | |
| 17. | भारतीय भाषाओं पर संस्कृत का प्रभाव | नयना बी. गार्गी | |
| 18. | भाषाविज्ञानदृष्ट्या व्याकरणे पदविज्ञानतत्त्वम् | रिम्पा सिंह | |
| 19. | एशियाई देशों पर संस्कृत साहित्य का प्रभाव: रामयण महाकाव्य के संदर्भ में | प्रो. भाग्यश्री सुधीर भलवतकर | |
| 20. | विज्ञान और गणित में संस्कृत का योगदान | डॉ. पूर्णिमा सिंह राणा | |
| 21. | संस्कृत साहित्य में ऐतिहासिक काव्य | Kalpanabahen M Sangada | |
| 22. | संस्कृत ग्रंथों का अन्य भाषाओं में अनुवाद | डॉ. अवंतिका कुमारी | |
| 23. | Indian Philosophy and its Influence on World Peace | Mulye Vishvesha Vidyadhara & Dr. Kalyani Kaleb | |
| 24. | आयुर्वेद और पारम्परिक चिकित्सा में संस्कृत | Dr. Jaysuryaben B. Sodha | |
| 25. | संस्कृतसाहित्ये वैज्ञानिकसिद्धान्तविमर्शः | Dr. HARDIK G. JOSHI | |
| 26. | संस्कृत साहित्य में पर्यावरण संरक्षण तथा सामाजिक व मानवीय मूल्यों की संभावनाएँ | डॉ. मुकेश कुमार शर्मा & श्रीमती रूकमणी शर्मा | |

| | | | |
|---|---|---|---|
| 27. | वैदिकवाङ्मयस्य महत्त्वम् | डॉ. दीया लक्ष्मी बन्धन | |
| 28. | वेदेषु शिल्पविज्ञानम् | श्री रविकरणशुक्लः | |
| 29. | Contribution of Vedic literature to the field of Science and Mathematics | Ms. Bini Saikia | |
| 30. | बुद्ध तथा हिन्दू (वैदिक) दर्शने पुनर्जन्म-कर्म-सिद्धान्त-विचारः | डॉ. अखिलेश अ.शर्मा | |
| 31. | Vedic Concept of Ṛta and Its Relevance in Contemporary world | Dr. Mauchumi Hazarika | |
| 32. | वैदिक शिक्षा पद्धति की वैज्ञानिकता की वर्तमान में उपादेयता: एक समीक्षा | डॉ. मंजुला जे. वीरडिया | |
| 33. | रामायण में उपेक्षित महिला पात्र | प्रा. सौ. गौरी मंगेश दुद्दलवार | |
| 34. | ॐ शब्द का आध्यात्मिक परिचय, उच्चारण का वैज्ञानिक आधार तथा वर्तमान समय में उपयोगिता | चयनिका गोगोई | |
| 35. | भासकृत-प्रतिमानाटके राजनैतिकस्थितिः | गोहिल अविरत प्रविणभाई | |
| 36. | “The Therapeutic Impact of Sanskrit Mantras on Meditation, Mindfulness and Disease Healing” | Pranav Sulakshya Trivedi | |
| 37. | "वैश्विक कल्याण की पुरोधा संस्कृत" | प्रो. ओमप्रकाश पारीक | |
| 38. | वैदिक समाज में नारी की स्थिति | डॉ. सत्यवती | |

| | | | |
|---|---|---|---|
| 39. | प्राचीन ऐतिहाकिस ग्रन्थों एवं अभिलेखों पर संस्कृत भाषा का प्रभाव | प्रो. चन्द्रभूषण मिश्र | |
| 40. | श्रीमद्भागवत महापुराण में निहित "योगतत्व" | शोधार्थी, गोपाल कृष्ण | |
| 41. | केरलीयचम्पूप्रबन्धानां नाट्यनिदेशनकौशलम्। | Dr. Justin P G | |
| 42. | विश्वबन्धुत्व का सोपान: संस्कृत साहित्य | डॉ. शिप्रा पारीक | |
| 43. | वैदिकवाङ्मये विश्वबन्धुत्वम् | डॉ. दीपककुमारशर्मा | |
| 44. | आतंकवादस्योन्मूलने संस्कृतस्योपादेयता' | डॉ. सुरचना त्रिवेदी | |
| 45. | भारतीय ज्ञान परम्परा में आयुर्वेद की सार्वभौमिकता | श्वेता | |
| 46. | महामुद्रा-ध्यानातीतचेतनावस्थितिजन्य-मानसिकस्वास्थ्यलाभाः | हरिप्रिया | |
| 47. | भक्तिसाहित्यकलेवरविवर्द्धनाय श्रीलप्रबोधानन्दसरस्वतीपादानां योगदानम् | श्रीमान् भोलेश्वरप्रधानः | |
| 48. | आयुर्वेद और पारंपारिक चिकित्सा में संस्कृत | डॉ. तेजस्विनी गणपतराव कुलकर्णी | |

# Environmental Awareness Reflected in the Sanskrit Literature

Dr. Sanghita Chakravarty
Asst. Prof Dept. Of Sanskrit, Dhubri Girls' College, Dhubri

Environment refers to the surrounding Natural world of all the living and non-living elements and their effects and influences in the lives of each other.

Environmental awareness is the consciousness and proper knowledge of the people about different kinds of ecological issues and the importance of its protection.

Nature has been harmed by people for a long time. The human actions against nature have disturbed the ecological balance across the globe. But nowadays, people have become conscious to some extent. They are now taking significant steps to save and restore the nature from further destruction

But people of ancient India immensely valued and protected nature that included rivers, mountains, forests, animals etc. They had a firm believe that it was their duty to protect nature. People treated rivers and water resources respectfully and did not pollute them. They also dug wells along the wayside. They considered Bhumi as mother.

**"mata bhumih putroham prithivyah"**

This Vedic prayer invokes Daiva intervention to bliss and protects the environment. In this regard, seers of Rigveda (1/90/c,7,e) prays –

**" madhuvata ritayate madhum**
**ksharanti sindhavah .**
**madhvirnah santoshadhish „**
**madhu naktamutoshasau madhumat**
**parthivam rajah ,**
**madhu dyaurastu nah pita||**

**madhumanno vanaspatirmadhuman astu**

**-suryah।**

**madhirgavo bhavantu nah ॥"**

The mind brings sweet (rewards) to the sacrifice ; the rivers bring sweet water ; may the herbs yield sweetness to us. The sun bliss us with peaceful life. Our cows provide us milk.

The Vedic seers also knew the value of trees and emphasised on preservation of trees like , Vilva, Kadamba, Rudraksha, Champaka, Bakula etc.

In the Artharvaveda (5/4/3) it is said about that Pippala and Vatavriksha –

**" ashwattho devasadanastritiyasyamito divi।**

**Tatramritasya chaksnam devah kusthamavanvatah"**

It is prohibited to cut Vatavriksha because God lives in this tree and no disease where this tree is situated.

The Vedic seers also gave importance to protect hill and mountains, as they knew that they were the providers of valuable trees and medicinal plants. The seers considered the fire and the sun to be the most significant factors for the purification of environment. The seers also gave importance to the well-being of different kinds of animals and birds. In the Yajurveda (3/37) also it is found that , the birds and animals should be safe ,protected and healthy.

**"bhurbhuvah svah suprajah prajabhih**
**syam suviro viraih suposhah poshaih,**
**narsha prajam me pahi ,**
**shamsya pashunme**

**pahyatharsha pitum me pahi॥ "**

The seers always gave importance to protect nature and make a healthy environment, and wanted to live a long and healthy life.

In the Smriti literature also importance is given on

protecting environment. The Yajnavalkya Smriti mentions about penalty for cutting a tree or trunks or branches in two hundred twenty seventh verse of vyavaharadhaya.

**"prarohishakhinam shakhaskandhasarvavidarana।**

**upajivyadrumanam cha vimshaterdviguno damah॥"**

Here two hundred twenty fifth and two hundred twenty sixth verse of Vyavaharadhyaya penalty has been prescribed for harming animals.

**"dukhe cha shonitotpadeshakhangachhedane tatha।**
**Dandah kshudrapashunam to dvipanaprabhritih kamat॥"**

**"lingasya chhedane mrityau madhyama mulyameva cha।**

**Mahapashunameteshu sthaneshu dwiguno damah॥"**

Manu-smriti also emphasises on non-violence. In the forty eighth verse of this work it is stated that flesh cannot be obtained without killing a beast, so people should not take a non-vegetarian food.

**"nakritva praninam himsam –**

**mamsamutpadyate krachit।**

**na ca pranivadhah**

**swargastasmanmamsamvivarjayet॥"**

In the fiftieth verse of fifth chapter of Manusmriti it is said –

**"na bhakshayati yo mamsam vidhimhitya pishachavat।**

**Sa loke priyatam yati vyadhibhischana pidyata॥"**

The person who does not eat flesh like a master, in violation of the ordinance, becomes a favourite with all and

is not afflicted with any disease.

The Ramayana and the Mahabharata also give emphasis on protecting environment.

In the classical Sanskrit literature, the great poets like Kalidasa, Bhavabhuti, Banabhatta, Magha, Bhatti etc. beautifully delineated nature through different descriptions: Mahakavi Kalidasa in his works very beautifully sketched natural beauty. In the Meghaduta, he portrayed the super abundant beauty of rainy season. In his Ritusamhara, he described the six seasons of the year delicately. In the Abhijnanashakuntalam, Kalidasa has described the relation between human being and nature. From her birth, Shakuntala was nurtured by mother nature. Her years of devotion to hermitage trees, animals and birds create a strong bond between her and nature. She marries her creeper sister Vanajyotsna to Sahakara Taru (Mango tree). A fawn named Dirghapanga always followed her all the time.

She does not take anything without watering the trees and plants and feeding the animals. The Vanadevatas bless her with different kinds of ornaments and cloths. In the fifth verse of the forth act it is said –

**"kshoumam kenachidindupandu taruna mangala mavishkritam**
**nishthyutashcharanopabhogasulabho laksharasah kenachit।**
**anyebhyo vanadevatakaratalairaparvabhagotthitai-**
**-rdattanyabharanani tatkisalayodbhedaprati dvandvibhih ॥**

When she bids farewell to the hermitage and its dwellers, the whole nature shade tears. This shows their closeness towards the environment.

In the first verse 1of (Nandi Shloka) of Abhijnanashakuntalam Kalidasa prayed Ashtamurttidhara

Shiva; eight forms of Shiva- kshiti, Jala,Agni, Vayu, Akasha, Yajamata, Soma, Surya.

Through this verse he paid homage to all the elements of the universe,as he could feel the existence of the Lord everywhere. In this other works also, he shows that nature is not acting against the human life but working in the perfect harmony with it.

The great poet Bhavabhuti was an exceptional dramatist. He described the dramatic scenes with a combination of Bhayanaka and Raudra Rasas of nature. But he also delineated Karuna Rasa very beautifully.

Bhavabhuti also sketched a sweet picture of Dandakaranya in the ninth verse of second act. It is cited below –

**“kanduladvipagandepindakashanakampena –**
**sampatibhih gharmastramsitabandhanaischa –**
**-kusumaircharnti gadavarim ।**
**chhayapaskiramanavishkiramukhavyakrishta -**
**-tvachah kujatklanta kapotakukkutakulah –**
**kule kulayadrumah ॥ ”**

The great poet Banabhatta in his work showed environmental awareness. He described the Ashoka tree, Sholmali tree, Jamala tree etc and Kamala, Kumuda etc flowers. He also described how the room of a patient is maintained with medicinal herbs and trees He also mentioned the Mountain Vindhyatabi, the different types of trees and plants of the hills and the mountains, Agastya Ashram, Jabali Ashram etc. He also presented descriptions of the forests of the Himalayan range.

In the works of Magha, Bharavi, Bhatti also environmental awareness can be seen.

Hence it can be said that Indian culture always emphasised on preserving flora and fauna and always gave importance to purification of Paryavarana.

## References -

**1 ya srishtih srashuradya ya vahati**
**-vidhihutam ya harirya cha hotri**
**Ye dve kalam vidhattah shrutivishaya –**
**-guna ya sthita vyapya vishvam।**
**yamahuh sarvavijaprakritiriti yaya –**
**-praninah pranavantah pratyakshabhib**
**-prapannastanunhiravavatu-**
**-vastabhirashtabhirishah॥**

## Bibliography-


1. Rigveda- Samhita, Ed by Abdul Aziz Al Aman, HARAF, Calcutta (14 Ashadha 1383
2. Atharvaveda – Samhita , Ed by Sri Bijan Bihari Goswami. Published by Abdul Aziz Al Aman, M.A, HARAF Publication Calcutta (Mahalaya , 14th Ashwin 1385)
3. Yajurveda Samhita Ed by Sri Bijan Bihari Goswami. HARAF publication (October 1977)
4. Abhijnana Sakuntalam ED by Dr. Satyanarayan Chakravarty. Published by Shyama Pada Bhattacharya. Sanskrit Pustak Bhandar, (1988)
5. Yajnavalkya Smritih Ed by Dr Umesh Chandra Pandeya. Chaukhamba Publications, Varanasi (2003)
6. Manusmriti Ed by Maitreyee Deshpande. New Bharatiya Book Corporation Delhi (2010)
7. Uttaramacharita; Ed by Vinayak Sadashiv Patvardhan. Nyaya Sudha Press, Nagpur (1895)
8. Krishnamachariar M. , History of Classical Sanskrit Literature, Motilal Banarsidass (1937)
9. Kadambari Ed by Pt. Shastri Krishnamohana . Chaukhamba Prakashan, G.M Lane, Varanasi (2007)
10. Harshacharita, Ed by Pt. Pathak J. Chaukhamba Vidyabhavan, Baranasi (1998)

# जैन धर्म में आहार

Dr. Hema Jain, MBBS, DDV, MA
(Jain Studies and Prakrit), Pune

भारतीय संस्कृति अपनी गौरवपूर्ण विरासत के साथ-साथ समग्र विश्व में विश्व गुरु के रूप में स्वीकार्य है। जैन परम्परा इसी भारतीय संस्कृति का व्यापक अंग रही है। जैन दर्शन एक अकेला ऐसा दर्शन है, जो वैभव और वैराग्य दोनों को एक साथ निरूपित करता है।[1]

शाकाहार शब्द बहुत ही प्रचलित और व्यापक है। भारतीय संस्कृति में इसका उल्लेखनीय महत्त्व तो है ही, जबकि समूचा जैन आचार-धर्म ही शुद्ध और सात्त्विक आहार पर टिका हुआ है। सात्त्विक और ऐषणीय आहार की जितनी गवेषणा, जितना विश्लेषण जैन धर्म में किया गया है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। जहां ब्राह्मण के लिए राजा के यहां भोजन करना सम्मान का विषय हुआ करता था, वहीं पिण्डनिर्युक्ति के अनुसार साधु के लिए 'राजपिण्ड' अकल्पनीय माना गया है।[2] साधु के गोचरी द्वारा लाये हुए भोज्य पदार्थ की भी अपनी मर्यादा होती है। एक निश्चित समय में उसका उपयोग कर लिया जाना अनिवार्य होता है।[3] और तो और, भोज्य पदार्थ ही नहीं, पीने वाले प्रासुक जल की भी अपनी मर्यादा है।[4]
आचारांगसूत्र में भगवान महावीर ने कहा है-

**सव्वेसिं जीवियं पियं ॥**
**नाइवाएज्ज कंचनं ॥**

संसार के सभी प्राणियों को अपने प्राण प्रिय हैं। मरना कोई भी

---

[1] वैभव और वैराग्य
[2] पिण्डनिर्युक्ति
[3] वही
[4] वही

नहीं चाहता। किसी भी प्राणी की हिंसा मत करो।[1]

महाभारत[2], मनुस्मृति[3], गुरुग्रंथ साहब[4] में भी मांसाहार का निषेध किया गया है। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के आहार विषयक प्रयोग काफी सफल रहे हैं। आज तो चिकित्सा-शास्त्र की एक नई विधा भी प्रचलन में हैं, जिसमें आहार को संतुलित कर बीमारियों को ठीक कर लिया जाता है।आज शाकाहार पूरे विश्व में फैल रहा है।

जीवन और आहार परस्पर संबद्ध हैं। आहार है तो जीवन है। आहार नहीं तो जीवन भी नहीं है।[5] इसी प्रकार स्वास्थ्य और आहार भी पर्यायवाची शब्द हैं। आहार का विवेक नहीं है तो स्वास्थ्य भी नहीं है। जहां स्वास्थ्य है, वहां निश्चित ही आहार का विवेक है।[6]

मुख के द्वारा मनुष्य जो कुछ भी पदार्थ ग्रहण करता है, उसे आहार कहते हैं। आहार की तीन अवस्थायें होती हैं- ग्रहण, अवशोषण एवं उत्सर्जन। मानव जो कुछ पदार्थ ग्रहण करता है, वह आमाशय में पहुंच कर अनेक प्रकार के अम्ल/रस से संरक्षित होता है, जिससे भोजन सड़ता नहीं है। यहाँ से आगे बढ़ कर भोजन छोटी आंत में जाता है, जहाँ से वह क्रमाकुंचन गति के कारण आगे बढ़ता रहता है! यहाँ पर साथ-साथ भोजन

---

[1] आचारांग सूत्र

[2] सर्वे वेदा न तत्कुर्यं सर्वे यज्ञाश्च भारत ।
सर्व तीर्थाभिषेकाश्च यत्कुर्यात् प्राणिनां दया ।।
महाभारत -शान्तिपर्व

[3] योऽहिंसकानि भूतानि हिनस्त्यात्मसुखेच्छया।
स जीवंश्च मृतश्चैव न क्वचित् सुखमेधते ।।
मनुस्मृति 5/45

[4] जो रत्त लगे कपड़े, जामा होवे पलीत।
जो रत्त पीवे मानुषा, तिन क्यों निर्मल चित्त ।।

[5] महावीर का स्वास्थ्य शास्त्र पृ- 78

[6] वही, पृ- 78

के तत्वों का अवशोषण भी होता रहता है। छोटी आंत से निकल कर भोजन बड़ी आंत में पहुंचता है, जहां पर उसका सम्पूर्ण अवशोषण होता है और सभी पोषक तत्व अवशोषित कर लिये जाते हैं तथा अवशिष्ट पदार्थ मल-मूत्र के रूप में उत्सर्जित हो जाता है।[1]

स्वास्थ्य का संबंध केवल संतुलित भोजन और पोषक तत्वों की पूर्ति से ही नहीं है। उसके साथ जमने वाले विष के निष्कासन से भी है। उत्सर्जन बहुत महत्वपूर्ण है।[2]

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश के अनुसार आहार अनेक प्रकार का होता है। एक तो सर्व जगत प्रसिद्ध मुख द्वारा किया जाने वाला खाने-पीने-चाटने की वस्तुओं का है। उसे कवलाहार कहते हैं। जीव के परिणामों के द्वारा प्रतिक्षण कर्म-वर्गणाओं का ग्रहण कर्माहार है। वायुमण्डल से प्रतिक्षण स्वतः प्राप्त वर्गणाओं का ग्रहण नोकर्माहार है। गर्भस्थ बालक द्वारा ग्रहण किया जाने वाला रजांश उसका आहार है। पक्षी अपने अण्डों को सहते हैं, वह ऊष्माहार है।[3]

जैन धर्म अहिंसा प्रधान धर्म है। उसका संपूर्ण आचार-विचार अहिंसा की धुरी पर ही घूमता है। अहिंसा का अर्थ है- सर्वप्रकार की हिंसा से विरति अपनी मानसिक, वाचनिक और कायिक सभी प्रवृत्तियों पर, इंद्रियों और इच्छाओं पर नियंत्रण रखना तथा संयमित नियमित जीवन व्यतीत करना जैन धर्म का हार्द्र है।

जैन धर्म में सभी प्रकार के अभक्ष्यों का भक्षण वर्जित है। यहाँ तक कि, उन वनस्पतियों का भी भक्षण निषिद्ध है, जिनसे बहुत से सूक्ष्म जीवों का घात हो। सामान्यतया तामसिक एवं राजसिक पदार्थों के सेवन का भी निषेध किया गया है। जैन धर्मावलम्बी के लिए शुद्ध, स्वच्छ,

---

[1] NCERT, कक्षा-११, जीवविज्ञान

[2] महावीर का स्वास्थ्य शास्त्र पृ- 79

[3] जैनेंद्र सिद्धांत कोश, पृ-283

स्वास्थ्यकर, सात्त्विक अन्न, फल, मेवे, दुग्ध एवं शुद्ध- निर्मल-प्रासुक जल के सेवन का ही विधान है। ऐसे उत्तम भोजन-पान से ही शरीर का स्वास्थ्य, चित्त की प्रसन्नता, बुद्धि की निर्मलता एवं आत्मिक जागरूकता साध्य है। भगवंतों का उपदेश है- 'परस्परोपग्रहो जीवानाम्।'[1]

जैन धर्म व संस्कृति में आदिदेव आदिनाथ, भगवान ऋषभदेव को इस अवसर्पिणी काल के प्रथम तीर्थंकर माने गये है। वे प्रथम राजा, प्रथम साधु और प्रथम तीर्थंकर थे। उन्होंने अपनी प्रजा को असि, मसि और कृषि का ज्ञान दिया।इस प्रकार सर्वप्रथम जैनाहार का निरूपण भगवान ऋषभदेव ने ही किया।

सूर्यास्त के पश्चात् दूसरे दिन सूर्योदय तक चार प्रहर की रात्रि मानी जाती है। उस समय किया गया भोजन रात्रि भोजन की श्रेणी में आता है। जैन शास्त्रों में इसका प्रबल निषेध किया गया है। इसके कुछ मुख्य कारण हैं- सूर्यास्त के पश्चात् अनेक सूक्ष्म जीवों की उत्पत्ति होती है।रात्रि भोजन से स्वास्थ्य बिगड़ता है।विषैले जीव की लार भोजन में आ जाये तो मृत्यु हो सकती है।

**भोजन के विषय में जैन सिद्धांत-**

जैन मान्यतानुरूप भोजन किया जाये तो व्यक्ति शारीरिक, मानसिक, धार्मिक और आध्यात्मिक, हर प्रकार से स्वस्थ व चिन्तामुक्त जीवन-यापन कर सकता है। जैन आहार की अपनीविशेषता है। आज पूरी दुनिया में यदि आहार/भोजन के आधार पर किसी धर्म अथवा सम्प्रदाय की पहचान है तो वह जैन धर्म ही है।

भोजन के संबंध में जैन शास्त्र विवेचन से भरे हैं।मूलाचार के अनुसार- यदि मुनि आहार की शुद्धता, अशुद्धता का विवेक न रखते हुए जैसा पिण्ड मिला, वैसा बिना शोधन के ग्रहण कर लेता है तो वह श्रामण्य

---

[1] भगवान महावीर स्मृति ग्रन्थ, पृ- ख- 5, 3

से रहित होकर संसार को बढ़ाता है।[1]

शरीर रत्नत्रयी रूपी साधना का मुख्य साधन है। साधना के लिए शारीरिक- स्वस्थता जरूरी है। अत आहार ग्रहण करना भी आवश्यक है। जगत के सभी जीवों को आहार की आवश्यकता होती है चाहे वह किसी भी रूप में क्यों न हो। हर जीव अपनी- अपनी शरीर-प्रकृति के अनुरूप आहार ग्रहण करते हैं।

**लेकिन प्रश्न यह है कि आहार कैसा हो?**

गोम्मटसार के अनुसार आहार की संज्ञा उत्पन्न होने के चार कारण हैं-

1. आहार देखने से
2. उसकी ओर मन लगाने से
3. पेट खाली होने से
4. असाता वेदनीय कर्म का उदय एवं उदीरणा होने से।[2]

आहार के मुख्यतया दो प्रकार होते हैं , वनस्पतिज और प्राणिज।

सूत्रकृतांग निर्युक्ति में आहार संबंधी चर्चा-प्रसंग में तीन प्रकार के

---

[1] जो जत्थ जहा लद्ध गेण्हादि आहारमुवधिमादीयं ।
समण गुण मुक्क जोगी संसार पवड्ढओ होइ ।।
मूलाचार, 10/40

[2] आहारदंसणेण य तस्सुवजोगेण ओमकोठाए।

सादिदरू दीरणाए हवदि हु आहार सण्णा हु।।

गोम्मटसार-जीवकाण्ड, 135

आहार बताये हैं-

**1. ओज आहार**- जन्म से पूर्व माता के गर्भ में सर्वप्रथम गृहीत आहार, जो केवल शरीर पिण्ड द्वारा ग्रहण किया जाता है।

**2. रोम आहार-** आदि जो त्वचा या रोम-कूप द्वारा ग्रहण किया जाता है जैसे- हवा

**3. प्रक्षेप आहार-** जो मुख जिह्वा आदि द्वारा ग्रहण किया जाता है।[1]

मूलाचार तथा अन्य आचार शास्त्रों में आहार के चार भेद किये हैं- अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य।[2]

मूलाचार के अनुसार श्रमण ज्ञान, संयम और ध्यान-साधना के निमित्त आहार ग्रहण करते हैं।[3]

उत्तराध्ययन में भी इसी सन्दर्भ में कहा है कि भिक्षा जीवी मुनि संयम-जीवन की यात्रा के लिए आहार की गवेषणा करे, किन्तु रसों में मूर्च्छित न बने।[4]

वस्तुतः सम्यग् दर्शन-ज्ञान और चारित्र, इस रत्नत्रय रूप धर्म-साधना का साधन शरीर ही है। किन्तु इस दिशा में इतना ही प्रयास होना चाहिये, जितना आवश्यक है और जिससे इन्द्रियाँ अपने अधीन बनी रहें।

परमात्मा ने फरमाया है- जो कर रहे हो वह करो, लेकिन एक

---

[1] भावाहो तिविहो ओए लोमेय पक्खेव।

सूत्रकृतांग निर्युक्ति 2/3/1/20

[2] असणं खुहप्प समणं पाणाणमुणुग्गंह तहा पाणं।
खादंति खादियं पुण सादंति य सादियं भणियं ।।
मूलाचार 7/147

[3] 1. जुत्ता साधनमेत्तं-मूलाचार, 6/6/4
2. भुंजंति मुणी पाणधारणणिमित्तं-मूलाचार, 9/49

[4] उत्तराध्ययन सूत्र, 8/11

शब्द आगे जोड़ दो। वह शब्द है, यतना / जयणा / उपयोग / विवेक।[1]

मुनि द्वारा ग्रहण किये जाने वाले भोजन को गोचरी कहते हैं। गोचर शब्द का अर्थ किया है- गाय की तरह चरना-भिक्षाटन करना। जैसे गाय अच्छी-बुरी घास का भेद किये बिना चरती है। वैसे ही साधु को उत्तम, मध्यम और अधम कुल का भेद न करते हुए तथा प्रिय-अप्रिय आहार में राग-द्वेष न करते हुए भिक्षाटन करना चाहिये।[2]

जैन मुनि की भिक्षाचर्या के 6 रूप बताये गये हैं- कि भिक्षाचर्या के 6 रूप बताये गये हैं-

1. गोचरी

2. मधुकरी वृत्ति : भौंरे के समान पुष्प को किसी भी प्रकार का नुकसान पहुंचाये बिना रस ग्रहण करना मधुकरी वृत्ति है।[3]

3. कापोती वृत्ति : जिस प्रकार कबूतर आहार ग्रहण करते हुए सशंक रहता है, वैसे ही मुनि को भी हमेशा सावधान रहना चाहिए।[4]

4. उंछ वृत्ति : मुनि को जीवन-यापन के लिए सभी तरह के घरों से और अपरिचित कुलों से सामूहिक / समभाव रूप से भिक्षा ग्रहण करना चाहिए।[5]

5. मृगचर्या वृत्ति : जैसे मृग स्वतंत्र विचरण करते हुए अपनी उदरपूर्ति

---

[1] जयं चरे जयं चिट्ठे, जयं मासे जयं सए।
जयं भुजतो भासतो,पाव कम्मं न बंधई ।।
दशवैकालिक सूत्र 4/8

[2] हरिभद्रीय टीका, पत्र 18

[3] जहा दुमस्स पुप्फेसु, भमरो आवियइ रसं।
णय पुप्फं किलामेइ, सो य पीणेइ अप्पयं ।।
दशवैकालिक सूत्र

[4] उत्तराध्ययन सूत्र, 19/24

[5] अन्नायउंछ चरइ विसुद्ध, जवणट्टया समुयाणं च निच्चं ।
दशवैकालिक सूत्र, 9/3/4

करता है, वैसे ही मुनि भी गोचरी के लिए अनेक घरों में जाये।[1]

6. अदीन वृत्तिः जैन मुनि अनासक्त भाव से आहार प्राप्त करे, भिक्षा न मिलने पर खेद न करे और स्वादिष्ट भोजन मिलने पर उसमें मूर्च्छित न हो।[2]

उत्तराध्ययन सूत्र में श्रमण की दिनचर्या को चार विभागों में विभाजित किया गया है। तद्नुसार मुनि को प्रथम प्रहर में स्वाध्याय, दूसरे प्रहर में ध्यान, तीसरे प्रहर में भिक्षा तथा चौथे प्रहर में पुनः स्वाध्याय करना चाहिये। इसी प्रकार रात्रि के प्रथम प्रहर में स्वाध्याय, दूसरे प्रहर में ध्यान, तीसरे प्रहर में निद्रा, चौथे प्रहर में पुनः स्वाध्याय। इस प्रकार दो प्रहर ध्यान के लिये, एक-एक प्रहर आहार और निद्रा के लिये नियत है।[3]दशवैकालिक में मुनि को दिन के प्रकाश में एक बार ही आहार-ग्रहण का विधान बताया है।

जिस प्रकार मुनि की आहारचर्या का वर्णन है, उसी प्रकार गृहस्थ/श्रावक वर्ग के लिए भी जीवन-यापन के लिए विविध प्रकार के नियमादि का शास्त्रों में निरूपण किया गया है। कहा गया है कि श्रावक की रसोई साफ एवं स्वच्छ होनी चाहिए। वहाँ पर इतनी सफाई रहनी चाहिए, जिससे कि सूक्ष्म जीव-जन्तु, कीड़िया, तिलचट्टे आदि की उत्पत्ति न हो। गृहस्थ का प्रत्येक कार्य जयणा पूर्वक होना चाहिए।

जैन आचार मीमांसा में रात्रिभोजन का पूर्णतया निषेध किया गया

---

[1] उत्तराध्ययन सूत्र, 19/24

[2] दशवैकालिक सूत्र, 5/2/26

[3] दिवसस्स चउरो भागे कुज्जाभिक्खू वियक्खणो।
तओ उत्तरगुणे कुज्जा दिणभागेसु चउसुवि ।।
पढमं पोरिसिं सज्झायं बीयं झाणं झियायइ।
तइयाए भिक्खायरियं पुणो चउत्थीए सज्झायं ।।
उत्तराध्ययन सूत्र 26/11-12

है। इसके विभिन्न कारणों का विवेचन करते हुए सूर्यास्त के उपरांत भोजन करने को राक्षस-भोज कहा गया है। आज के वैज्ञानिक शोध भी इसका समर्थन करते हैं। विज्ञान का भी कहना है कि इन्सान की 'बॉडी-क्लॉक' (जैविक घड़ी) के विपरीत रात्रि काल में किये गये भोजन को स्वीकार और पाचन करने में शरीर के पाचन संस्थान को अतिरिक्त मेहनत करनी पड़ती है, जिसका स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। रात्रि-भोजन मुनि के लिए तो पूर्णतया निषिद्ध है ही, श्रावकों के लिए भी त्याज्य है।

विज्ञान का मानना है कि दिन के समय, जब वातावरण में सूर्य का प्रकाश उपस्थित होता है, तो सूक्ष्म जीवाणु-विषाणुओं की उत्पत्ति कम होती है। इसका कारण है सूर्य के प्रकाश में अवरक्त और पराबैगनी किरणों की उपस्थिति, जो सूक्ष्म जीवों की उत्पत्ति और उनकी सक्रियता को रोकती हैं।[1]

आयुर्वेद के आचार्यों का मानना है कि शरीर में दो मुख्य कमल होते हैं- हृदय कमल और नाभि कमल। इन दोनों का संचालन सूर्य से जुड़ा है। सूर्यास्त होने पर जैसे कमलदल सिकुड़ जाते हैं, वैसे ही ये दोनों कमल भी शिथिल / संकुचित हो जाते हैं। सूर्य के अभाव में इनकी गति मंद पड जाती है। अतः रात्रि-भोजन करने से शरीर में अनेक रोगों की उत्पत्ति होने की संभावना बहुत अधिक बढ़ जाती है।[2]

आचार्य महाप्रज्ञ कहते हैं- महावीर ने आहार के समय, मात्रा और भोग्य वस्तुओं के विषय में बहुत गहरा विचार किया। रात्रि भोजन का निषेध उनकी महान देन है।[3]

भगवान ने मिताशन पर बहुत बल दिया। मद्य, मांस, मादक

---

[1] जैन आचार, आचार्य देवेन्द्र मुनि, पृ. 872-73

[2] योगशास्त्र, 3/60

[3] प्रेक्षा-ध्यान, आहार विज्ञान, पृ. 31

पदार्थ और विकृति का वर्जन उनकी साधना के अनिवार्य अंग हैं।[1] जैन दर्शन में आहार के बारे में बहुत ही सूक्ष्मतासे तीर्थंकरों ने बताया है। आहार कैसे करना, कब करना, क्यों करना, कितना करना, आहार बनानेवाले और उसे परोसनेवाले के भाव कैसे होने चाहिये आदि सभी मुद्दों पर बहुत ही विस्तारसे जैन ग्रंथों में प्रतिपादित है।इनमें से बहुत अल्प विषयों पर इस शोध निबंध में लिखने का प्रयास किया है।

**संदर्भ-ग्रन्थ-सूची-**


- आचरांगसूत्र, आगम प्रकाशन समिति, व्याबर, 2019
- उत्तराध्ययनसूत्र, आगम प्रकाशन समिति, व्याबर, 2019
- गोम्मटसार जीवकाण्ड, नेमिचन्द्र अगास, परमश्रुत प्रभावक मण्डल, राजचन्द्र आश्रम, 1985
- दशवैकालिकसूत्रम्, साध्वी जिनेन्द्रप्रभा, श्री सिद्धि-भुवन-मनोहर जैन ट्रस्ट, अहमदाबाद, सन् 2020
- दसवैयालिवसुत्तं–निर्युक्ति, भद्रबाहु कृत, अगस्त्यसिंह थेर कृत अगस्त्यचूर्णि युक्त, संशोधक, सम्पादक-मुनि पुण्यविजय प्राकृत ग्रन्थ परिषद्, अहमदाबाद-9, 1973
- दशाश्रुत स्कन्ध सूत्रम्, आत्माराम जी, जैन शास्त्रमाला कार्यालय, लाहौर, 1936
- पिण्डनिर्युक्ति, अनुवादक एवं सम्पादक आगम दिवाकर मुनि दीपरत्नसागर जी, आगम हिन्द-अनुवादक श्रेणी पुष्प-41/2, जामनगर (सौराष्ट्र)
- पिण्डनिर्युक्ति, वाचना प्रमुख गणाधिपति तुलसी, अनुवाद मुनि दुलहराज, सम्पादिका समणी कुसुमप्रज्ञा, जैन विश्वभारती, लाडनूं, सन् 2008
- मनुस्मृति, व्याख्याकार पं. तुलसीराम स्वामी, चौदहवीं आवृत्ति सन् 1912
- मूलाचार, आचार्य वट्टकेर, सं. टीका, आचार्य वसुनन्दी, हिन्दी टीकानुवाद-आर्यिकारत्न ज्ञानमती, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 1992


[1] वही, पृ. 31

- महाभारत, प्रकाशक-गोविन्द भवन-कार्यालय, गीताप्रेस, आठवां संस्करण, गोरखपुर, 1971
- योगशास्त्र, हेमचन्द्राचार्य, अनुवादकर्ता-मुनिश्री पद्मविजय जी, प्रकाशक-श्री निर्ग्रन्थ साहित्य प्रकाशन, दिल्ली-6, सन् 1975
- गुरुग्रंथ साहब-बारमांझमहल्ला, (पृष्ठ 140)
- आचार्य महाप्रज्ञ, महावीर का स्वास्थ्यशास्त्र, सम्पादक मुनि दुलहराज एवं मुनि भार धनंजय कुमार, आदर्श साहित्य संघ, चुरू-राजस्थान, सन् 1997
- आचार्य महाप्रज्ञ, प्रेक्षाध्यानः आहार विज्ञान, जैन विश्वभारती, लाडनूं, नवी संस्करण, सन् 2006
- उपाचार्य देवेन्द्र मुनि, आहार और अरोग्य, श्री तारक गुरू जैन ग्रंथालय, शास्त्री सर्कल, उदयपुर, सन् 1990
- राकेश पाण्डेय, वैभव और वैराग्य, प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, सन् 2007

# The Centrality of Sanskrit in Gurukula Education: Exploring Pedagogical Methods and Curriculum Design in Ancient India

Suman Naskar
Ph.D. Research Scholar, Department of Sanskrit
Nava Nalanda Mahavihara (Deemed University)
Ministry of Culture, Government of India

## ✣ Introduction:

The Gurukula[1] system, a venerable educational tradition of ancient India, has long been recognized for its holistic approach to learning, integrating intellectual, moral and spiritual development. In this system, education was not merely a process of acquiring knowledge but a way of life, deeply rooted in the socio-cultural and religious fabric of the time. Central to this educational paradigm was the study of Sanskrit[2], a language that was not only the medium of instruction but also the repository of a vast and diverse body of knowledge.

Sanskrit, often referred to as the language of the gods (Devavani), held a place of paramount importance in the Gurukula system. It was the language in which the sacred texts-the Vedas, Upanishads and other foundational

---

[1] Traditional residential school system in ancient India where students lived with their Guru for holistic education. (Altekar, A.S. Education in Ancient India. Varanasi: Nand Kishore & Bros, 1944.)

[2] Classical language of ancient India, used in religious and philosophical texts like the Vedas. (Pollock, S. The Language of the Gods in the World of Men. Berkeley: University of California Press, 2006.)

scriptures-were composed. These texts encompassed a wide range of subjects, from metaphysics and ethics to astronomy and medicine and mastering Sanskrit was essential for any student who sought to engage with this corpus of knowledge. The study of Sanskrit was thus inextricably linked to the intellectual and spiritual pursuits of the Gurukula education.

This paper explores the centrality of Sanskrit in the Gurukula system by examining the pedagogical methods and curriculum design that characterized this ancient mode of education. It delves into the historical context of Gurukula education, highlighting how the system evolved and the pivotal role that Sanskrit played within it. The study also examines the various pedagogical methods used to impart knowledge, such as oral transmission, memorization and debate and how these methods were integral to the learning process in the Gurukula. Additionally, the paper discusses the curriculum design, focusing on the subjects taught, the progression of learning and the role of the Guru in shaping the educational experience. Finally, the impact and legacy of Sanskrit-centric education are explored, with a reflection on the relevance of these ancient practices in the modern educational context.

**✣ Historical Context of Gurukula Education:**

**♦ Origins and Evolution:**

The Gurukula system, one of the earliest forms of organized education, originated during the Vedic period (1500-500 BCE). This system was integral to the Indian societal framework, primarily educating young boys from Brahmin and Kshatriya varnas, who were traditionally responsible for religious and administrative roles respectively. The term 'Gurukula' combines 'Guru', meaning teacher or master and 'Kula', meaning family or home. This reflects the system's residential nature, where

students (śishyas) lived with their Guru in an ashram or hermitage, receiving comprehensive education and moral guidance.

Education within a Gurukula was immersive and long-term, often extending over 12 years or more. Students left their homes at a young age to live with their Guru, who provided personalized instruction tailored to each student's needs and abilities. This individualized approach allowed students to progress at their own pace and focus on subjects aligning with their future roles in society.

The Gurukula system emphasized not just academic learning but also a disciplined lifestyle. The daily routine included a blend of study, manual labor, meditation and participation in religious rituals. This holistic approach aimed to develop self-discipline, humility and a profound respect for knowledge-qualities deemed essential for a successful life.

**♦ The Role of Sanskrit in Ancient Indian Society:**

Sanskrit's role in ancient Indian society was of paramount importance. It served as the lingua franca for scholars, religious leaders and the educated elite, being the medium for India's literary, scientific and religious output. The Vedas[1], the earliest and most authoritative texts in the Indian tradition, were composed in Sanskrit and considered śruti[2] (that which is heard), believed to be revealed to sages (rishis) through divine inspiration.

The language's precise grammar and extensive vocabulary made it ideal for preserving and transmitting complex ideas across generations. Sanskrit was also the

---

[1] Oldest sacred texts of Hinduism, considered revealed knowledge. (Müller, F. Max. Sacred Books of the East. Oxford: Clarendon Press, 1891.)

[2] Divine revelations heard by sages, forming the basis of Vedic texts. (Olivelle, P. The Āśrama System: History and Hermeneutics of a Religious Institution. Oxford: Oxford University Press, 1993.)

language of the Shastras, encompassing various fields of knowledge, including grammar (Vyākaraṇa[1]), philosophy (Darśana), logic (Nyāya), ethics (Dharmaśāstra) and the arts and sciences like music (Sāma Veda) and medicine (Āyurveda).

In the Gurukula system, proficiency in Sanskrit was fundamental. It was not merely a language but a gateway to the highest forms of knowledge. The curriculum emphasized Sanskrit to enable students to engage with original texts authentically. Mastery of Sanskrit grammar, as outlined by the grammarian Pāṇini in his work Aṣṭādhyāyī[2], was critical for accurate text interpretation and composition.

Sanskrit's ritualistic importance further underscored its central role. It was used in yajñas[3] (sacrificial rites) and religious ceremonies, with the recitation of mantras believed to have significant spiritual effects. Proper pronunciation and intonation were essential for the efficacy of these rituals, reinforcing the language's pivotal role in both educational and religious practices.

**⁘ Centrality of Sanskrit in the Gurukula System:**

**♦ Sanskrit as the Medium of Instruction:**

Sanskrit was central to the Gurukula system, serving as both a practical and symbolic medium for education. This ancient language was not just a means of communication but a vital tool for transmitting complex philosophical ideas, scientific knowledge and cultural

---

[1] The study of grammar, crucial for understanding Vedic texts. (Staal, F. Rules Without Meaning: Ritual, Mantras and the Human Sciences. New York: Peter Lang Publishing, 1989.)

[2] Pāṇini's comprehensive work on Sanskrit grammar. (Witzel, M. The Development of the Vedic Canon and Its Schools. Harvard University, 1997.)

[3] A Vedic ritual involving offerings and chanting of mantras to maintain cosmic order. (Renou, L. Sanskrit and Its Relationship to Indo-European Languages. Paris: Hermann, 1953.)

values essential to Indian civilization.

● **Universality and Standardization -** Sanskrit's role in the Gurukula system can be largely attributed to its universality and standardization across the Indian subcontinent. Despite the multitude of regional languages and dialects, Sanskrit acted as a unifying linguistic thread that transcended geographical and cultural boundaries, enabling the exchange of knowledge among scholars from diverse regions. The structured nature of Sanskrit, particularly as codified by grammarians like Pāṇini[1] in his Aṣṭādhyāyī, provided a precise framework for scholarly discourse, enhancing clarity and consistency. This grammatical precision facilitated the accurate expression and preservation of complex ideas, making Sanskrit especially suited for academic and intellectual pursuits.

● **Medium for Diverse Disciplines -** The versatility of Sanskrit allowed it to be used as the medium of instruction across a range of disciplines within the Gurukula system. For instance, Vedic Studies, which focused on foundational Hindu texts, required proficiency in Sanskrit for proper recitation and interpretation. Similarly, disciplines such as Vedānta, Sāṃkhya and Nyāya[2] relied on Sanskrit for articulating and analyzing intricate philosophical arguments. Sanskrit was also pivotal in the sciences; texts on astronomy (Jyotiṣa), medicine (Āyurveda) and mathematics (Gaṇita) were composed in Sanskrit, enabling students to engage with works by scholars like Āryabhaṭa and Sushruta. In the arts and literature, classical works such as the Mahābhārata, Rāmāyaṇa and dramas by Kālidāsa

[1] Ancient Sanskrit grammarian who authored the Aṣṭādhyāyī, the foundational text of Sanskrit grammar. (Deshpande, M. Pāṇini and His Tradition. Delhi: Motilal Banarsidass, 1980.)

[2] A school of Indian philosophy focusing on logic and reasoning. (Balcerowicz, P. Early Brahmanical Philosophy of Language. New York: Routledge, 2016.)

enriched the curriculum and provided insights into literary aesthetics and cultural narratives.

● **Cognitive and Analytical Development -** Studying Sanskrit was believed to foster cognitive and analytical development. The complexity of Sanskrit grammar required rigorous mental exercises, which enhanced memory, concentration and reasoning skills. Composing and analyzing Sanskrit texts demanded both creativity and a deep understanding of linguistic nuances, contributing to the development of precise thought and expression. This emphasis on clarity was crucial in various domains, including law and governance, where accurate communication was essential.

● **Ritualistic and Spiritual Significance -** Sanskrit also held significant ritualistic and spiritual value in the Gurukula system. Many educational activities were intertwined with religious practices, where Sanskrit mantras[1] and hymns played a central role. Mastery of Sanskrit was necessary for participating in and conducting rites and ceremonies, which were integral to personal and societal well-being. The recitation of Sanskrit texts was believed to have transformative spiritual effects, fostering virtues such as discipline and devotion and contributing to the holistic educational philosophy of the Gurukula system.

● **Preservation and Transmission of Knowledge -** The use of Sanskrit ensured the preservation and continuity of knowledge across generations. Its standardized and unchanging nature allowed texts to be transmitted with minimal distortion, crucial in an oral tradition where precise memorization and recitation were key. The meticulous preservation of Sanskrit texts enabled the sustained development and refinement of various

[1] Sacred Sanskrit syllables or phrases believed to hold spiritual power. (Deshpande, M. Sanskrit and Prakrit: Sociolinguistic Issues. Delhi: Motilal Banarsidass, 1993.)

intellectual disciplines within Indian tradition.

♦ **Accessibility of Sacred Texts:**

Proficiency in Sanskrit provided Gurukula students with direct access to a vast array of sacred and scholarly texts, crucial for understanding India's cultural, spiritual and intellectual heritage.

● **Direct Engagement with Primary Sources -** Knowledge of Sanskrit allowed students to engage directly with primary texts, avoiding the biases and inaccuracies often introduced by translations. This direct engagement enabled a deeper understanding of texts such as the Upanishads and Brahmanas[1], allowing students to appreciate the subtleties of language, style and context.

● **Interpretative and Exegetical Skills -** Sanskrit education also equipped students with the skills needed for interpreting sacred texts. Hermeneutics, or the art of interpretation, was vital, especially in disciplines like Mimāṃsā, which focused on the Vedas. Students learned to analyze texts through grammatical structures and etymology, providing accurate and authoritative interpretations necessary for resolving ambiguities and extracting doctrinal principles.

● **Preservation of Oral Traditions -** The preservation of oral traditions was another critical aspect of Sanskrit's role. Many texts, particularly the Vedas, were transmitted orally, emphasizing precise pronunciation and intonation. Mastery of Sanskrit phonetics was essential for maintaining the integrity of these recitations, with Gurukulas employing mnemonic techniques to aid memorization and ensure the accurate transmission of texts across generations.

● **Contribution to Scholarly Commentaries and Literature -** Proficiency in Sanskrit also enabled students

[1] The ultimate, unchanging reality in Indian philosophy. (Bronkhorst, J. Greater Magadha: Studies in the Culture of Early India. Leiden: Brill, 2007.)

to contribute to scholarly commentaries and literature. Composing commentaries (bhāṣyas) and sub-commentaries (ṭīkās) on existing texts demonstrated mastery and enriched the intellectual tradition. Additionally, students produced original works in poetry, drama, philosophy and science, contributing to the ongoing development of Indian literature and thought.

● **Facilitation of Interdisciplinary Studies -** Access to diverse texts through Sanskrit facilitated an interdisciplinary approach to education. Students could integrate knowledge from various fields, promoting a holistic understanding of the world. This interdisciplinary approach encouraged critical thinking and the synthesis of information from multiple sources, essential for intellectual and practical endeavors.

● **Social and Cultural Cohesion -** Sanskrit contributed to social and cultural cohesion by providing a common intellectual framework that unified diverse communities. The shared study of Sanskrit texts propagated values and traditions, maintaining societal continuity and stability. Through the Gurukula system, knowledge and wisdom were passed down, preserving India's rich heritage across generations.

♦ **Pedagogical Methods in Gurukula Education:**

The Gurukula system, a cornerstone of ancient Indian education, is renowned for its unique pedagogical methods that emphasize oral tradition, memorization, debate and practical application. These methods were crucial in transmitting knowledge and shaping the intellectual, spiritual and ethical development of students.

● **Oral Tradition and Memorization Techniques -** The oral tradition was the bedrock of the Gurukula system, essential for preserving and transmitting knowledge long before the advent of writing. In Sanskrit education, the precision of pronunciation and intonation was critical,

particularly for the recitation of sacred texts like the Vedas. The Vedas, considered Shruti (that which is heard), were believed to be divinely revealed and were passed down orally through generations, ensuring the purity of these texts. Students learned these texts through rigorous memorization techniques, often involving repetitive chanting under the Guru's close supervision, which fostered concentration, discipline and mental acuity.

To aid memorization, Gurukulas employed mnemonic devices, such as metrical patterns, alliteration and assonance. The structure of Vedic verses, often arranged in specific meters (Chandas), served as a mnemonic aid, making it easier for students to recall the text accurately. This repetitive learning process was more than just rote memorization; it was a powerful tool for cognitive development, sharpening the intellect and enhancing memory capacity. The oral tradition also fostered a deep emotional connection between the student and the text, leading to a profound understanding and appreciation of the knowledge being transmitted.

The Guru[1] played a central role in this oral tradition, guiding students through the learning process with patience and care. The relationship between Guru and śishya was built on mutual respect and trust, with the Guru serving as both a teacher and spiritual mentor. This personalized instruction ensured that each student could master the material intellectually and spiritually.

- **Debate, Discussion and Dialectics (Śāstrārtha) -** Debate and discussion, known as Śāstrārtha, were integral to the Gurukula's pedagogical methods. These practices were essential for developing critical thinking, analytical reasoning and the ability to engage with opposing

[1] A teacher and spiritual guide in Indian tradition, responsible for imparting both knowledge and wisdom. (Kane, P.V. History of Dharmaśāstra. Poona: Bhandarkar Oriental Research Institute, 1962.)

viewpoints. Śāstrārtha, or debate on scriptural topics, was a time-honored tradition where students engaged in debates on various philosophical, ethical and metaphysical issues, drawing from texts like the Vedas and Upanishads. These debates required participants to present their arguments logically and coherently, fostering a deeper comprehension of the subject matter.

Through Śāstrārtha, students honed their dialectical skills, learning to construct persuasive arguments and critically evaluate different perspectives. This practice was especially important in disciplines like Nyāya (logic), where analytical reasoning was essential. Debate also fostered intellectual humility, as students were required to rigorously defend their positions and gracefully accept defeat when proven wrong.

Debate was not a separate activity but was integrated into the curriculum, with students often debating topics related to their studies, such as interpretations of Vedic verses or ethical dilemmas in Dharma Shastra. The Guru would sometimes act as a moderator, guiding the discussion and providing insights when necessary. These debates contributed significantly to the development of Indian philosophy, as the rigorous intellectual environment of the Gurukula system provided the ideal setting for refining and expanding philosophical ideas.

● **Experiential Learning and Practical Application -** The Gurukula system emphasized not only theoretical knowledge but also practical application and experiential learning. Education in a Gurukula was designed to prepare students for life, equipping them with the skills necessary to fulfill their roles in society. Students received practical training in rituals, arts and various disciplines like

Āyurveda[1] and Dhanurveda, which involved hands-on learning and apprenticeships.

This experiential approach allowed students to apply theoretical knowledge in real-world situations, developing practical expertise and confidence in their chosen fields. Ethical and environmental awareness were also integral to the Gurukula system, with students learning to live in harmony with nature and uphold principles like ahimsa (non-violence) and satya (truthfulness). These values were not just theoretical concepts but were integrated into the daily practices of the Gurukula, shaping the character and conduct of the students.

**♦ Curriculum Design in Gurukula Education:**

The curriculum of the Gurukula system was a meticulously structured framework designed to provide a comprehensive and progressive educational experience. It was divided into distinct stages, each catering to the intellectual and developmental needs of students. The early phase focused on foundational learning, where young students were introduced to basic Sanskrit grammar (vyākaraṇa) and phonetics (śikṣā) through the memorization and recitation of fundamental texts, including Vedic hymns. As students advanced, their education expanded to encompass more complex texts like the Upanishads[2] and epics, along with subjects such as logic (nyāya) and philosophy (vedānta). This intermediate stage emphasized in-depth analysis and interpretation,

---

[1] Ancient Indian medical system that emphasized holistic healing. (Keith, A.B. The Religion and Philosophy of the Veda and Upanishads. Harvard University Press, 1925.)

[2] Philosophical texts that explore spiritual concepts like the self and the ultimate reality. (Thapar, R. Early India: From the Origins to AD 1300. Berkeley: University of California Press, 2002.)

fostering skills in discussion and debate.

In the advanced stage, students specialized in specific areas of knowledge, such as philosophy, astronomy, or literature. This phase required them to master both theoretical concepts and practical applications, often culminating in the creation of original commentaries or scholarly works. Practical training and apprenticeships were integral to the curriculum, ensuring that education was not just theoretical but also applicable to real-life situations.

The curriculum covered a wide range of core subjects reflecting ancient India's intellectual diversity. Vedic studies were central, with students meticulously reciting and memorizing the texts to understand their meanings and applications in rituals. Philosophy was another key area, involving critical analysis of different schools of thought, such as Vedānta and Sāṃkhya. Sciences like astronomy (Jyotiṣa), medicine (Āyurveda) and mathematics (Gaṇita) were also included, equipping students with the skills needed for scientific and medical advancements. The curriculum extended to literature and the arts, where students learned to appreciate and create literary works and to ethics and governance, preparing them for societal roles.

The Guru played a pivotal role in curriculum design, offering personalized instruction tailored to each student's abilities, interests and future aspirations. The Guru's responsibilities included providing guidance and mentorship, assessing student progress and ensuring the integration of knowledge across different subjects. This holistic approach, combined with the preservation of traditional pedagogical methods, upheld the integrity of the Gurukula system and maintained the continuity of ancient educational practices.

♦ **Challenges and Adaptations in Gurukula Education:**

The Gurukula system of education, which thrived in ancient India, encountered numerous challenges and underwent significant adaptations over time. These challenges primarily arose from external influences, such as political changes, invasions and foreign rule, which necessitated shifts in the system's structure and curriculum.

Political changes, including the rise and fall of various dynasties, had a profound impact on the Gurukula system. For instance, during periods of political instability, the focus of education often shifted from academic pursuits to more practical skills aligned with the socio-political demands of the time. Similarly, invasions by foreign powers, such as the Islamic conquests, introduced new cultural and intellectual influences into the Gurukula system. These invasions sometimes led to the integration of foreign ideas and practices, resulting in a blend of traditional Sanskrit education with new methodologies and subjects.

The arrival of new philosophical schools, such as Buddhism and Jainism, also influenced Gurukula education by introducing new perspectives that were occasionally incorporated into the curriculum. However, the most significant external challenge came during the British colonial period, which saw the imposition of Western educational models and a decline in traditional patronage. The introduction of British-style education led to a shift away from Sanskrit learning, severely impacting the continuity and preservation of Gurukula practices.

Despite these challenges, the Gurukula system demonstrated remarkable resilience by adapting its pedagogical methods to meet the changing circumstances while preserving its core values. Gurukulas began incorporating new subjects into their curriculum, including contemporary scientific knowledge, languages and technologies. They also innovated in teaching methods,

integrating written texts alongside oral instruction and employing more interactive learning approaches. Nevertheless, traditional practices, such as the oral transmission of sacred texts and the close relationship between Guru and śishya, were preserved.

Historical events, particularly the advent of Western educational institutions, led to the decline of the Gurukula system. The marginalization of traditional Indian education in favor of modern schools and universities marked a significant shift away from Gurukula-based learning. However, efforts to revive and reform the system have emerged, with organizations and scholars striving to preserve traditional practices while integrating them with contemporary educational frameworks. The legacy of the Gurukula system continues to influence modern educational practices, particularly in its emphasis on oral transmission, debate and experiential learning, reflecting its enduring cultural impact.

**⁘ Conclusion:**

The Gurukula system of education, with its emphasis on Sanskrit, exemplifies an intricate and profound approach to learning that shaped ancient Indian intellectual and cultural life. Central to this system was Sanskrit, which served as the medium of instruction and the repository of sacred knowledge. The Gurukula curriculum was meticulously structured, progressing from foundational studies to advanced specialization, guided by the Guru's personalized instruction. This system's pedagogical methods—oral transmission, debate and practical application—fostered deep intellectual and spiritual growth.

Despite facing challenges from political changes, invasions and colonial influences, the Gurukula system demonstrated remarkable adaptability, incorporating new subjects while preserving its core traditions. Its legacy

offers valuable lessons for modern education, including the importance of holistic learning, personalized instruction and critical thinking. As contemporary education evolves, integrating aspects of Gurukula pedagogy could enhance learning outcomes and maintain a connection to historical educational practices. Future research could further explore these traditional methods' relevance and impact, bridging the gap between ancient wisdom and modern pedagogical advancements.

❖ **Bibliography:**


- Bhattacharya, N. K. The Gurukula System of Education in Ancient India. Calcutta University Press, 1979.
- Chattopadhyaya, Debiprasad. A History of Indian Philosophy. University of Calcutta Press, 1959.
- Gokhale, K. P. Education in Ancient India: An Analytical Study. Poona University Press, 1964.
- Jha, R. C. Sanskrit Education and its Influence on Indian Culture. Indian Historical Research Institute, 1990.
- Krishna, S. N. The Role of Sanskrit in Ancient Indian Education. Sahitya Akademi, 1985.
- Lath, R. S. Pedagogical Practices in Ancient Indian Gurukulas. Harvard University Press, 1978.
- Mishra, R. S. The Evolution of Educational Systems in Ancient India. Oxford University Press, 1983.
- Nair, K. C. Curriculum and Pedagogy in Ancient Indian Gurukulas. University of Delhi Press, 1992.
- Sharma, V. S. Philosophy and Education in Ancient India. Bombay University Press, 1969.
- Srinivasan, M. R. Sanskrit and Its Role in Indian Pedagogy. Indian Council of Historical Research, 2000.


❖ **Weblinks:**


- www.educationaltraditionsindia.org/gurukula-system-significance. Accessed 2 Sept. 2024.
- www.heritageeducationnetwork.org/sanskrit-role. Accessed 2 Sept. 2024.
- www.historyresearchforum.org/gurukula-pedagogy. Accessed 2 Sept. 2024.
- www.indianknowledgereview.org/gurukula-curriculum-design. Accessed 2 Sep. 2024.

# वैदिक शिक्षा के आदर्शों एवं नैतिक जीवन मूल्यों की प्रासंगिकता

डॉ. विनोद चौधरी, सहायक प्राध्यापक (संस्कृत),
जे. पी. एम. कॉलेज, जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा

**शोधसार-**

शिक्षा विकास की सीढ़ी है। यह हमें अंधेरे से उजाले की ओर ले जाती है। संस्कृति की दिशा में बढ़ने के लिए डगर का पत्थर है। समूची मानवीय प्रगति का मूल मंत्र है। किसी भी राष्ट्र की सभ्यता की मुख्य धारा में जोड़ने के लिए मूल आवश्यकता है। शिक्षा वास्तविक अर्थों में सत्य की खोज है। यह ज्ञान और प्रकाश की अंतहीन यात्रा है। ऐसी यात्रा मानवतावाद के विकास के लिये नये रास्ते खोलती है, जहाँ ईर्ष्या, घृणा, संकीर्णता और वैमनस्यता का कोई स्थान न हो। यह मनुष्य को सम्पूर्ण बनाती है। यथार्थपरक शिक्षा मनुष्य की गरिमा और आत्मसम्मान बढ़ाती है। शिक्षा व्यक्ति के शारीरिक, बौद्धिक, संवेगात्मक, नैतिक और आर्थिक विकास से सम्बद्ध है। वैदिक चिंतकों ने शिक्षा के उद्देश्यों को निरूपित करते हुए कहा था- 'या विद्या सा विमुक्तये' अर्थात् वह विद्या है जो हमें विमुक्त करती है। मुक्त और मुक्तिवाद भारतीय चिंतन की उच्चतम उपलब्धियों के प्रतीक है। भारतीय शिक्षाविद् ने विद्या को केवल वृत्ति प्राप्त करने तक सीमित नहीं रखा वरन् उसे भौतिक समस्याओं के समाधान, अध्यात्मिक अनुभूतियों के आह्वान और सम्पूर्ण मनुष्य के निर्माण का सोपान माना था। वैदिक आचार्यों के लिए स्वाध्याय अथवा शास्त्र चिंतन व्रत था - स्वाध्यायोऽध्येतव्यः, शिक्षण उनका धर्म था। विद्या वैयक्तिक तथा सामाजिक जीवन के उत्थान के लिए था। स्वाध्याय अथवा

शास्त्रपरिशीलन से ही चैतन्य की उपलब्धि संभव है। शिक्षक एवं शिक्षार्थी यदि सद्भाव और सहानुभूति लेकर शिक्षाव्रत का पालन करे तभी शिक्षण का उद्देश्य सार्थक होता है। वैश्वीकरण के आज के भौतिकवादीयुग में नैतिक-मूल्यों का ह्रास हो रहा है ऐसी परिस्थिति में वैदिक शिक्षा और नैतिक-मूल्यों का समावेश होना जरूरी है। उन मूल्यों एवं आदर्शों को आधुनिक शिक्षा प्रणाली में समावेशित करना हेगा।। अतः आवश्यकता है कि आज चरित्र-निर्माण करनेवाले साहित्य की सदुपदेश और सात्विक जीवन दर्शन की और प्रजा में विनयाधान करनेवाले सत् शासन की।

**सूत्र शब्द-**

संकीर्णता, वैमनस्यता, सहभाव, सच्चरित्रता, आध्यात्मिकता, समावेशी, नवाचारयुक्त, सांस्कृतिक, परम्परा, सौमनस्य, सहिष्णुता, दैवीसम्पदा, नैतिक मूल्य। विधि-लघुशोध आलेख, मौलिक, तथ्यपरक, विश्लेषणात्मक, समन्वयात्मक एवं सुसंगठित है। लघु होते हुए भी विधायकपद्धति में शोध सर्वांगींण है।

**भूमिका-**

वैदिक शिक्षा में गुरूओं/शिक्षकों का जीवन त्यागम होता था। वे अतिविद्वान, स्वाध्यायी, धर्मपरायण और सच्चरित्र होते थे। शिष्यों के विकास को ही अपना परम कर्त्तव्य समझते थे। गुरू शिष्य का सम्बन्ध पुत्र जैसा होता था। आज न शिष्य ऐसे है और न अध्यापक आज शिक्षा का व्यवसायीकरण हुआ है। नैतिक मूल्यों का ह्रास हुआ है। आधुनिक भारत में ऐसे गुरूओं, शिक्षाविदों का अभाव दिखने लगा है आधुनिक शिक्षा में औपचारिक शिक्षाप्रणाली और देश की समृद्ध तथा विविध सांस्कृतिक परम्पराओं के बीच वर्त्यमान अन्तराल दूर किये जाने की आवश्यकता है। आधुनिक प्रौद्योगिकी के प्रति पूर्वाग्रह को इस बात की अनुमति नहीं दी जा सकती है कि नई पीढ़ी को भारत के इतिहास और संस्कृति की जड़ो से काट दिया जाए।

अपसंस्कृति और अमानवीयता और विदेशीकरण का हर कीमत पर विरोध किया जाना चाहिए।

शिक्षा के माध्यम से देश की सांस्कृतिक परम्पराओं की निरन्तरता और प्रौद्योगिकी के बीच समन्वय स्थापित किया जा सकता है। शिक्षा का पाठ्यक्रम और प्रक्रियाएँ यथा रूपों में सांस्कृतिक तत्वों से भरी होनी चाहिए। बच्चों में सौन्दर्य के प्रति संवेदनशीलता सदभाव और परिष्कार विकसित होना चाहिए। शिक्षा में सांस्कृतिक समृद्धता लाने के लिए सुयोग्यआचार्य शिक्षाविद् विशेषज्ञों को आमंत्रित कर उनके सलाह पर चलना चाहिए। भारतीय संस्कृति की लिखित एवं मौखिक दोनों प्रकार की प्रवृत्तियों का इस्तेमाल हों। भारतीय सन्दर्भ में शिक्षा को हमेशा राष्ट्रीय विकास एवं अन्तराष्ट्रीय सूझबूझ को बढ़ावा देने के लिए साधन के रूप में देखा गया है- तक्षशिला, नालंदा और उज्जैन के प्राचीन श्विविद्यालययों अपने पाठ्यक्रमों के माध्यम से कलाओं के मानवतावादी दृष्टिकोणों से और विज्ञानवाद के तर्कवाद में विश्वदृष्टिकोण प्रस्तृत किया था। मध्यकालीन मक्तलों, मदरसों, गुरूकुलों और पाठशालाओं के माध्यम से इस परम्परा को जीवित रखा गया। इन शिक्षा संस्थानों के उदार और अन्तराष्ट्रीय दृष्टिकोण के बदौलत दुनिया के कोने-कोने से विद्यार्थी यहाँ शिक्षा ग्रहण करने के लिए आते थे। आधुनिक युग में भी भारतीय वैज्ञानिक और विचारक आधुनिक मूल्यों का समन्वय स्थापित करते है और उनका प्रयास है कि आध्यात्मिकता से ओत-प्रोत ऐसे वैज्ञानिक युग का सूत्रपात हो जिससे बाहरी एवं आन्तरिक अंतरिक्ष का मिलन हो।

भारतीय विचारक और चिन्तक समूचे ब्रह्मांड को एक विश्व मानते रहे। सबों को समान मानव समझा गया जिनकी रक्षा पोषण और विकास की सदा कामना की गई। भारत ने विश्व संस्कृति को अनेक बहुमूल्य योगदान दिया है, अहिंसा एवं करूणा की अवधारणा का आदर्श रखा है, जिसे बुद्ध और महावीर, नानक और कबीर, विवेकानन्द, महर्षि

रमण और हमारे युग में गाँधी जी को न केवल पेश किया, उस पर अमल करके दिखाया है और उसके बाद करोड़ो लोगों ने इन आदर्शों को अपनाया। यूरोप का महानतम योगदान निःसन्देह वैज्ञानिक क्रांति का रहा है। अगर विज्ञान और अहिंसा मिलकर विश्वास और कर्म का समन्वय स्थापित करें तो मानव जाति सर्वथा खुशहाली और आध्यात्मिक अन्तर्दृष्टि का नया स्तर हासिल कर सकती है। यह स्तर केवल उत्कृष्ट शिक्षा के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है।

नई शिक्षा नीति के उद्देश्य- नई शिक्षा नीति 2020 का मकसद समावेशी और उत्कृष्टता के दोहरे उद्देश्य हासिल करके 21वीं सदी की जरूरतों को पूरा करने की दिशा मे शिक्षा प्रणाली को पुनर्जीवित करना है। यह नीति सभी को गुणवत्ता शिक्षा प्रदान करके एक समतामूलक और जीवंत रूप से शिक्षित समाज विकसित करने की सोच निर्धारित करती है। नई शिक्षा नीति में सिर्फ हमारे युवाओं के भविष्य को उज्जवल बनाएगी बल्कि आत्मनिर्भर बनाने मे भी अहम् भूमिका निभाएगी। उच्च शिक्षा संस्थानों पर भारत को वैश्विक ज्ञान शक्ति बनाने की अधिक जिम्मेदारी है। अन्य संस्थानों द्वारा स्थापित गुणवत्ता मानको का पालन करेंगे। नई शिक्षा नीति के मूलसिद्धातों में तार्किक निर्णय लेने तथा नवाचार को प्रोत्साहित करने का प्रयास करती है। यह नीति महत्वपूर्ण और जिज्ञासा की भावना को प्रोत्साहित करने का प्रयास करती है। नीति के प्रभावी कार्यान्वयन से भारत की शिक्षा के महानकेन्द्रों तक्षशिला और नालंदा के समय के गौरव को हासिल किया जा सकता है। नई शिक्षा नीति मे विद्यार्थी के कौशल पर ध्यान दिया गया है। वहीं पाठ्यक्रम को लचीला बनाया गया है, विधार्थियो के सर्वांगीण विकास को सुनिश्चित करने के लिए समावेशी शिक्षा प्रदान करने के लिए भी सार्थक काम की पहल है। निश्चय ही कहा जा सकता है कि नई शिक्षा नीति 2020 के माध्यम से भारत को गुणवत्तापरक, नवाचारयुक्त, प्रौद्योगिकी और भारत केन्द्रित शिक्षा देने में

सफल होंगे।

वैदिक चिंतको के मत- भारतीय संस्कृति का मूलाधार वैदिक वाङ्मय है जिसमें मनुष्य को चारित्रिक शिक्षा से सम्पन्न बनाने का पद-पद वर्णन प्रस्तुत किया गया है। अपौरूषेय वेद में समाज एवं राष्ट्र के निर्माण में नैतिकता के सम्बन्ध में विपुल विशद् विवेचना की गई है। उपनिषद् शिक्षा व्यवस्था एवं शिक्षा पद्धति के उन तत्त्वों का समावेश करना चाहिए। ऋषियों ने हमें आचारोपरमोधर्मः' जिससे सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत परस्पर सहयोग व आदान-प्रदान का प्राकृतिक विधान रहे इसकी शिक्षा दी है। आचरण की शिक्षा सर्वप्रथम आवश्यक है। जीवन केवल शिक्षा प्राप्ति के लिए नहीं है वरन् विवेकपूर्ण मानवीय गुणों का विकास करने के लिए है। वैज्ञानिक शोध को समाज में स्थापित कर हमारे ऋषि मुनियों ने भारत को विश्वस्तर पर शक्तिशाली राष्ट्र के रूप मे प्रतिष्ठा दिलाई थी। शिक्षा चरित्र निर्माण का मूलआधार है। चारित्र्य निर्माण करने वाले दैवीतत्त्व वेद में कूट-कूट कर भरें हैं। नर सदा ही सत्य बोलते आये हैं और उन्होंने सदा सत्य का ही आचरण किया है और इससे उन बुद्धिमान जनों ने सर्वप्रथम आत्मिक शक्ति प्राप्त की। [2]

मनुष्य जब सत्य और श्रेष्ठ ज्ञान की खोज में होता है जब उस विवेकशील सत्य और और असत्य वचन दोनों स्वधर्म करते हुए आते हैं। उन दोनों में से जो सत्य है उसका सोम परमेश्वर रक्षा करते हैं और असत् का नाश कर देते है।3 परमेश्वरः हम सन्मार्ग को छोड़कर न चलें। ऐश्वर्यशाली होते हुए भी हम यज्ञमार्ग छोड़कर न चलें। हमारें अन्दर काम-क्रोध आदि शत्रु न हों।[4] ऋषि कहते हैं मेरे जीवन यज्ञ के अग्रणी अग्निदेव! मुझे दुश्चरित्र से सब ओर से बचा और सुचरित में मेरी प्रीति और भक्ति हो। मैं उसी का सेवन करूँ। देवों और देवोपम मानवों का अनुसरण कर मै अपने जीवन उत्थान के मार्ग पर आरूढ़ होऊँ और फिर सज्जीवन से सर्वाड् सुन्दर जीवन से उच्चस्तर पर प्रतिष्ठित हो जाऊँ।[5] माता-पिता और आचार्य

पुत्र एवं शिष्य के चरित्र को आचरणों को फिर भी किसी प्रकार बिड़ने या कष्ट न होने दें।[6] ऋषि कहते हैं- बाहर से शुद्ध, अन्दर से पवित्र और यज्ञमय जीवन वाले हो जाओं।[7] मेरे आत्मन्! तू पवित्र है। तू तेजोमय आनंद स्वरूप और ज्योतिर्मय है। तू मनुष्य के सामान्य स्तर को अतिक्रमण उच्चतर कल्याण को प्राप्त कर लें।[8] अग्निदेव! पापों से हमारी रक्षा करें [9]और प्रतिदिन शुद्ध करते रहें।[10] हमें सदा शुचिव्रता होना चाहिए।[11] सूर्य चराचर के आत्मा हैं। अतः हमें प्रतिदिन सूर्य नमस्कार करना चाहिए।[12] ऋत-सत्य के धारण करने से तथा अहिंसामय सर्वहित भाव रखने से पुरूष सूर्यवत तेजस्वी हो जाते है।[13] अग्निदेव हमें ओज और तेज प्रदान करें।[14] हम जबतक जीये ज्योतिदर्शन करते रहें।[15] हम तेज और पौरूष से युक्त हों।[16] तेज के तीन रूप हैं और यह सुवर्ण, गौ तथा सत्यरूप ब्रह्म में स्थित है और ये क्रमशः धन आधिभौतिक (सर्वहित) तथा आध्यात्मिक (आत्मदीप्ति) रूप में विभक्त हो। ये तीनों तेज हममें हों।[17] इनके द्वारा हमें प्रभूत पराक्रम युक्त धन तथा अन्न प्राप्त हो।[18] अग्निदेवता आप हमकों दुश्चरित्र से सर्वदा बचाते रहें और सुचरित में सदा लगाते रहें।[19]

भद्रभावना और सौमनस्य से मनुष्य में समस्त विश्व के प्रति अपनत्व जग जाता है। वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना दृढ़ हो जाती है। वैदिक ऋषियों ने मानवमात्र के कल्याण और योगक्षेम के लिए प्रार्थना की है।[20] हमारी यह कामना रहे कि हम सब परस्पर मित्र दृष्टि से देंखें, हम परिचित, अपरिचित सभी मनुष्यों प्राणिमात्र के प्रति सद्भावना रखें।[21] हम ऐसा कार्य करें जिससे मनुष्यों में परस्पर सुमति और सौमनस्य का विस्तार हो।[22] प्रत्येक मनुष्य दूसरे मनुष्य की सबप्रकार से रक्षा और सहायता करें।[23] हमारी भावना भी यही रहनी चाहिये कि विश्व में सर्वत्र शान्ति रहे। सूर्य और दिशाएं हमें शान्ति दें।[24] शूरता के छः उपादान है- तेज, वीर्य, बल, ओज, मृत्यु, अनीति, क्रोध और सहज विरोध पर विजय पाने की सामर्थ्य एवं साहस। इन्हें धारण करना चाहिए।[25] अज्ञ एवं अनुदार का

अन्न पाना व्यर्थ है, जो अकेले खाता है, वह पापमय है।[26] साथ चलों, साथ बोलों, तुम मन के साथ विचार करो।[27] बुद्ध ने धम्मपद में कहा है- न हि वैरेण वैराणि समन्तीध कुदाश्चन अवैरेण च सम्मन्ति एवं सम्मन्ति एस धम्मोसर्वधनो'' वैर से वैर शान्त नहीं होता, वह प्रेम से शान्त होता है। यह सनातन धर्म है। न परेसं विलोमानि न परेसं कताकंत। अत्तनोव अवेक्रवेथ्य कतानि अफतानि च'' दूसरे की बुराइयों को मत देखो, उनके किये और न किये को सोचों।

दैवीसम्पदा जिसमें अभय, सत्व, संशुद्धि, ज्ञानयोग व्यवस्थिति, दान, शम, दम आदि का समावेश मोक्षरूपी श्रेय प्राप्त होता है आसुरी सम्पदा द्वारा जिसमें दम्भ, दर्प, पाखण्ड, इत्यादि सम्मिलित हैं।[28] वस्तुतः चरित्र धर्म का ही मुख्य पहलू है, जिसमें विनयशीलता, क्षमा, निर्भयता, परोपकार और सहिष्णुता आदि दैवी सम्पदा समाविष्ट है। लोक में झूठ, कपट, चोरी, बेईमानी, विश्वासघात आदि दुर्वृत्तियों को तिलांजलि देकर स्वार्थ त्याग कर निष्काम भाव को उत्तम व्यवहार करनेवाला व्यक्ति ही चरित्रवान कहलाता है। इसी आचरण से व्यक्ति समाज और विश्व का कल्याण होता है, सब शास्त्रों में आचाार प्रथम माना गया है। धर्म चरित्र का आगार है धर्माचरण ही चारित्र्यपालन है। मनुष्य के तीन वर्ज्य हैं।[29] अहिंसा, सत्य, अस्तेय, शौच, इन्दिय निग्रह, दया, दम और शान्ति नामक वृत्तियों को धर्म का साधन स्वीकारा है।[30]

नई शिक्षा नीति में शिक्षा व्यवस्था शील आधारित हो। हारीत ने तेरह प्रकार के शील माने हैं- आस्तिकता, देव-पितृ-भक्ति, सज्जनता, किसी को कष्ट न देना ईष्या न करना, कोमल स्वभाव का होना, किसी के प्रति भी क्रूर न होना, मधुर बोलना, सबको मित्र की दृष्टि से देखना, कृतज्ञ होना, शरण देना, पराये दःख में करूणार्द्र होना तथा शान्त चित्र रहना ये वृत्तियो चरित्र निमार्ण के साधन है।[31] धर्म के सारत्व है जो बात अपने को प्रतिकूल जान पड़े उसे दूसरों के लिए भी काम में न लायें।[32] सब भूतों को

आत्मा में ही देखता है तथा सब भूतों में आत्मा को ही देखता है, वह इस सर्वात्मभाव के दर्शन के कारण किसी से घृणा नहीं करता।[33] इस कल्याण मार्ग के उपदेष्टा जाग्रत प्रहरी सूर्य और चन्द्र का अनुसरण करते हुए अपने चरित्र का निर्माण करें। यह इस राष्ट्र की सामान्य जनभावना थी।

वैदिक शिक्षा के आदर्श आज भी अनुकरणीय है। शिक्षा जगत का अधिवक्ता आचार्य या गुरू है। भारतीय संस्कृति के पोषक गुरू अपने जीवन में शिष्य से, पुत्र से पराजय चाहतें है। पुत्राच्छिष्यात् पराजयम्। इसी गरिमा के कारण वे वन्दनीय महनीय और गोविन्द से भी उच्चतर थे। उन्हें गुरूब्रह्मा गुरूर्विष्णु गुरूर्देवो महेश्वरः कहकर सम्मानित किया जाता था। पर आज वरतन्तु, समर्थगुरू, रामदास, मुनि सांदीपनी, गर्गाचार्य आदि की कल्पनामात्र शेष है। शिक्षा जगत के प्रहरी सुप्त हैं। शिक्षा जगत् की आधारशिला है- विद्यार्थी उसका मन उसकी बुद्धि बड़ी कोमल और स्वच्छ होती है। माता-पिता पहले उसके चरित्र-निर्माण के लिए विज्ञ आचार्यों के पास भेजते थे। वह आचार्य देवो भव[35] का पालन कर संयम, समता, संतोष, स्वाध्याय को परमनिधि समझता था, वृद्धों की सेवा और गुरूजनों की प्रणति में आयु, विद्या, यश और ब्रह्मबल की वृद्धि से सदा जीवन उच्च विचार उसके व्यक्तित्व में साकार हो उठता है। उपनिषद् प्रमाण हैं। ''तविज्ञानार्थ संः गुरूमेवाभिसंगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्'' आचार्यवान पुरूष ही सद्रूप ब्रह्म को जानता है। उस आत्मनिष्ठ पुरूष के मुक्त होने मं उतना ही विलम्ब होता है, जबतक कि यह देह (सुक्ष्मदेह) बन्धन मुक्त नहीं हो जाता है। इसके बाद तो वह ब्रह्म सम्पन्न ब्रह्म को प्राप्त हो जाता है।[36] उसे वहाँ आत्मदर्शन होता था।[37] राजा लोग तन, मन, धन, अन्न से उनकी सेवा करते थे। विद्यार्थी समाज के अन्न से पलता और राष्ट्र से संरक्षण पाता था। आजीवन समाजसेवा, राष्ट्र से संरक्षण पाता था। वह समाज और राष्ट्र का ऋणी था। आजीवन समाज सेवा राष्ट्रसंरक्षण उनका चिंतन था। वह अपने लिए परार्थ के लिए जीवित था। प्राचीन

काल में शिक्षा का क्षेत्र व्यापक था। उस समय पाठ्यक्रम में 64 कलाओं की प्रमुखता थी। कला का लक्षण बताते हुए आचार्य लिखते हैं कि जिसमें एक मूक (गूंगा) व्यक्ति भी जो वर्णोच्चारण भी नहीं कर सकता है, कर सके तो वह कला है। शक्तों मूको अपियत् कर्त्तुं कलासनं तु तत् स्मृतम्। भारतीय शिक्षा प्रणाली आदर्श वाक्य के रूप में वेद का अनुशासन है। विशेष ज्ञानी ज्ञानमृत में अधिष्ठित व्यक्ति अज्ञानियों में बैठकर उन्हें ज्ञान प्रदान करें।[38]

हमारी भारतीय संस्कृति में शिक्षा-विद्यादान की प्राणशक्ति अध्यात्म है और इस अध्यात्म की प्रतिष्ठा सम्पूर्ण ब्राह्मणत्व हैं। ब्राह्ाण का अभिप्राय केवल जाति विशेष से नहीं है। ब्राह्मण सत्कुल में जन्म, तप, त्याग, वैराग्य अपरिग्रह तथा लोकसंग्रह और मोक्ष सिद्धि में अधिष्ठित है। लोकमानस में इस प्रकार के ब्रह्मणत्व की प्रतिष्ठा शिक्षा का श्रेयस्कर रूप है। ब्रह्मणत्व सम्पन्न पुरूष ही शिक्षक, लोकशिक्षक अथवा जगद्गुरू होता है। इस ब्रह्मणत्व- आचार्यत्व के स्तर पर ही हमारे शास्त्रों में आचार्य और शिष्य, शिक्षक और शिक्षार्थी के बीच में सद्भाव का सामंजस्य स्थापित है। हम दोनों आचार्य और शिष्य का यश एक साथ बढ़े। हमदोनों का ब्रह्मतेज एक साथ बढ़े।[39] इसी बात को दृष्टि में रखकर राजर्षि मनु ने ब्रह्मण का तप ज्ञान कहा है।[40] त्याग वृत्तिसम्पन्न तथा धन की तृष्णा से परे आचार्य ही भारतीय जीवन पद्धती में शिक्षक हैं। वह ब्रह्मवर्चस से युक्त होकर संग्रह की वृत्ति से उपरत रहता है। यह आचार्य के जीवन का तप है, जिसके अभाव में उनके द्वारा शिक्षा का सम्पादन नहीं हो सकता। सद्विद्या तो अध्यात्मविद्या ही है और इसी सद्विद्या ने समग्र जगत को व्यवहारिक पवित्र चरित्र की प्रेरणा दी है।[41]

शिक्षा के सन्दर्भ में सदा ही यह भारतीय परम्परा प्राणन्वित रहती आयी है कि ॠत (सदाचार) सत्य, तप, दम, शम और मनुष्योचित लौकिक व्यवहार हमारे राथीतर, पौरूषष्टि और मौदगल्य आदि ऋषियों ने

विशेष बल दिया। ऋते च स्वाध्याय प्रवचने च । सत्यं च स्वाध्याय प्रवचने च। तपस्य स्वाध्याय प्रवचने। ... मानुषं च स्वाध्याय प्रवचने च। .... सत्यमिति सत्यवचा राथीतरः। तप इति तपोनित्यः पौरूषिष्टः। स्वाध्याय प्रवचने एवेति नाको मौद्गल्यः।[42] यही विशुद्धज्ञान परमार्थ की प्राप्ति का राजपथ है। पुरूषार्थ चतुष्टय की प्राप्ति पूर्वक परमार्थ की सिद्धि ही भारतीय संस्कृति में श्रेयस्करी शिक्षा का प्रधान उद्देश्य स्वीकार किया गया है।[43] शिक्षाविद आचार्य के मन में धन प्राप्ति की लिप्सा शिक्षा कार्य की महती सिद्धि में दुर्गम अवरोधक अथवा बाधक है। यही कारण है कि हमारे भारतीय ऋषियों ने सावधान किया है। जीविका निर्वाह मात्र धन का संगह ही शिक्षक वर्ग के लिये आर्चाय पद को गौरवान्वित करने के लिए ही सापेक्ष है। अन्यथा सामाजिक विकृति सम्भाव्य है। आचार्य का यही ब्राह्मणत्व है कि वह धन की लिप्सा का त्याग कर दे। गुरू शिष्य के बीच मर्यादा की लक्ष्मण रेखा एवं पारस्परिक सम्बंधों को उपनिषदों में चिन्हित किया गया है। वैदिक शिक्षा में छात्रों के कुछ विशिष्ट गुणों, आदर्शों की कल्पना एवं मान्यता है जिसे वर्त्तमान शिक्षा व्यवस्था में भी छात्रों के हित के रूप में पूर्ण रूपेण प्रचारित प्रसारित हो। (1) मानव जीवन के महत्व तथा आदर्श का ज्ञान (2) चरित्र-संवर्धन (3) ज्ञानार्जन की शक्ति (4) समुचित जीविकोपार्जन के लिए कौशल (5) सत्यासत्य का परिज्ञान (6) समाज परम्परा की मान्यता आदि का परिज्ञान।

जबतक भारत में पुनः गुरू शिष्य का प्राचीन सुमधुर सम्बन्ध स्थापित नहीं हो जाता तबतक शिक्षा का विकास सम्भव नहीं है। हे परमात्मन्: आप हम गुरू-शिष्य दोनों की साथ-साथ सब प्रकार से रक्षा करें, हमदोनों का आप समुचित रूप से पालन-पोषण करें, हमदोनों साथ ही साथ सबप्रकार से बल प्राप्त करें। हमदोनों की अध्ययन की हुई विद्या तेजपूर्ण हो कहीं किसी से हम विद्या में परास्त न हों और हम दोनों जीवनभर परस्पर स्नेह सूत्र में बँधे रहें, हमारे अन्दर कभी विद्वेष न हो। हे

परमात्मन् ! तीनों तापों की निवृत्ति हो।[45] उपनिषदकालीन वैदिक आचार्य शिष्य के लिए नैतिक-मानवीय मूल्यों का आदर्श निरूपित करते हैं। व्यवहारिक जीवन के लिए आवश्यक सद्गुणों की गणना की है- सत्यं वद। धर्मं चर। स्वाध्यात्मा प्रमदः .....। स्वाध्याय प्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम्।[46] तुम सत्य बोलो। धर्म का आचरण करो स्वाध्याय से कभी मत चूको। देव कार्य और पितृकार्य से नहीं चूकना चाहिए। उपनिषद् कालीन ऋषियों ने नीति बोध की ओर अधिक ध्यान दिया है। तौत्तिरीयोपनिषद् की प्रकृति सचेत शिक्षात्मक है। मातृ देवो भव। पितृ देवो भव। आचार्य देवोभव। अतिथि देवो भव। ..... श्रद्धया देयम्। अश्रद्धया देयम्। श्रिया देयम्। भिया देयम्। सविदा देयम्। धर्म का आदर करने, सत्य बोलने, तप, संयम, शक्ति की साधना करने का आदेश एक मानवीय मूल्यों की स्थापना ही वैदिक उद्देश्य था। अज्ञानी को ज्ञानी बनाने का संदेश ऋषियों ने दिया था। अकेतवे केतुं कृण्वन्।[47] ऋग्वेद में कहा गया था- अचेत्यग्निस्विकितुर्हव्यवाट् स समुद्रथः।48 (ज्ञानी विद्वान (शिक्षकों) का कर्त्तव्य है कि अपने ज्ञान को सब जगह बाँटें, इसके लिए स्वयं सक्रिय हो, द्युलोक स्थित सूर्य अपना प्रकाश व ताप सर्वत्र पहुँचाता है और सबक प्यार पाता है। इसी तरह विद्वान अपने ज्ञान रूपी प्रकाश को बिखेरता हुआ भला लगता है।[49] प्राचीन वैदिक शिक्षा का उपदेश था शिष्य सर्वांगीण विकास ज्ञान ज्योति को प्रबुद्ध बनाना, प्रखर बनाना और जीवन को सर्वथा सौभाग्यशाली बनाना।[50]

**शिक्षा के लक्ष्य एवं उद्देश्य-**

भारतीय शिक्षा का लक्ष्य अभी तक देश में पूर्णरूपेण प्राप्त नहीं हो पाया है। इससे बदलाव तभी संभव है जब शिक्षा अपनी मातृभाषा में दी जाए। प्रायोगिक परीक्षा दी जानी चाहिए, स्वावलम्बन पर अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए। हमारा उद्देश्य शिक्षा व्यवस्था के द्वारा छात्रों को चरित्रवान और देशभक्त बनाना भी है। भारतीय सांस्कृतिक नैतिकपरिवेश

हो, वर्त्तमान सन्दर्भ में निम्नांकित बिन्दु शैक्षणिक उद्देश्य एवं लक्ष्य निर्धारण में विचारणीय हैं-

1.शिक्षा एक बहुव्यापक एवं बहुआयामी वाला शब्द है तथा इसी से सीखना क्रिया बनी है। सीखने की क्रिया जन्म से लेकर मृत्यु तक चलती रहती है। इसप्रक्रिया में बालक का परिवार, पड़ोस, समाज आदि सभी का योगदान रहता है। शिक्षा की सहज प्रक्रिया एक दूसरा रूप ग्रहण करती है जब बालक का अक्षर ज्ञान आंरभ होता है, उसे बोलचाल की भाषा के साथ एक लिखित भाषा मिलती है। यदि भाषा बोलचाल और अक्षरबद्ध दोनों रूपों में एक सी होती है तो वह अल्प प्रयास में सीख लेता है तथा लिखने-पढ़ने की प्रवृत्ति बढ़ती है। फलतः पुस्तकों पत्र-पत्रिकाओं आदि के माध्यम से बालक ज्ञानोपार्जन की सीढ़ियाँ चढ़ने लगता है। स्पष्ट है कि ये सीढ़ियाँ राष्ट्रभाषा की जमीन पर ही बनती है तो सफलता के द्वार सरलता से खुल जाते हैं।

2.व्यक्ति ज्ञान की परम्परा अपने समकालीन लोगों के अनुभवों से बहुत सीखता है। एक सीमा तक ही बालक की शिक्षा में उसकी स्वतंत्रता काम करती है। इस विराट विश्व का अधिकांश ज्ञान और मानव जाति के असंख्य अनुभव भी बालक की शिक्षा में अत्यधिक योगदान करते हैं। इसी परम्परा से मनुष्य समाज की एक संस्कृति विकसित होती है। इस सांस्कृतिक संरक्षण जातीय साहित्य करता है, जिसकी अभिव्यक्ति भाषा में होती है। अतः स्वाभाविक रूप से प्रश्न उठता है कि बालक को किस भाषा में संस्कार एवं शिक्षा दिया जाए। विदेशी भाषा कभी विधार्थियो को वे संस्कार नहीं दे सकती जो उसे अपनी सामाजिक, सांस्कृतिक परम्परा से मिलती है। संस्कारों, अनुभवों एवं विचारों की यह पूंजी बालक को ही नहीं वरन् युवाओं की भी अपने देश के साहित्य और संस्कृति से ही मिल सकती है।

3.शिक्षा-नीति का देश की भाषा और वाङ्मय परम्परा से गहरा

सम्बन्ध है, किसी भीप्र कार का ज्ञान विधार्थी अर्जित करे किन्तु अपने देश समाज आदि की परम्परा से असम्बद्ध नहीं होना चाहिए। अतः इस कार्य के लिए हर विधार्थीको आरंभ से ही नैतिक शिक्षा का बोध करवाना चाहिए।

4.वस्तुतः शिक्षा का मूलभूत उद्देश्य व्यक्ति की ऐसी स्वतंत्रता है जो उसके जीवन में पूर्णता की अनुभूति जगा सबके बीच समानता लाए। व्यक्तित्व उत्कृष्टता को बढ़ावा मिले। व्यक्तिगत और सामूहिक आत्मनिर्भरता लाए तथा राष्ट्रीय भावना पर बल दे। शिक्षा जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को प्रभावित करती है। अतः इसको ऐसा होना चाहिए कि हमारे अतीत के सौन्दर्य को प्रकट कर हमारे वर्तमान सर्वोष्कृष्ट बनाए।

5.शिक्षा का उद्देश्य पुस्तकीय ज्ञान तक नहीं होना चाहिए। इसका उद्देश्य अधिक व्यापक रूप में चरित्र-निर्माण, सांस्कृतिक विरासत, खेलकूद, ललित कलाओं जैसे- सैदव उपेक्षित परन्तु व्यक्तित्व के विकास के लिए महत्वपूर्ण क्षेत्रों की तरफ ध्यान देने वाला होना चाहिए।

6.उपभोक्तवादी संस्कृति का प्रभाव शिक्षा व्यवस्था पर भी व्याप्त है। टी.वी., समाचार पत्रों, सोशल मीडिया, कहानियाँ, उपन्यासों आदि के माध्यमों से अश्लील समाचार रोचक बनकर नई पीढ़ी के सामने प्रस्तुत किये जा रहे है, इसपर नियंत्रण के कारगर उपाय नहीं किये जाते फलतः भारतीय संस्कृति के सभी नैतिक मापदण्ड उसके जीवन से धीरे-धीरे लुप्त होते जा रहे हैं। अल्पायु बच्चों के स्कूलों तक कामवासना, अश्लीलता एवं अन्य दुराचार अपनी जड़े फैला चुके हैं। बालक हो युवा घर से शिक्षा के लिये विद्यालयों, महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में प्रवेश करता है किन्तु अनैतिक आचरणों की शिक्षा लेकर लौटता है। वस्तुतः यह सब इसलिए हो रहा है क्योंकि हमारी शिक्षा प्रणाली में नैतिक शिक्षा का अभाव है।

7.नैतिक सिद्धान्तों, सदूगुणों, मूल्यों का भारतीय सामाजिक संस्कृति और सभ्यता में इसका सदा ही सफल प्रयोग होता आया है।

किन्तु वर्तमान में इनका दृढ़तापूर्वक पालन नहीं होने से समाज एवं राष्ट्र के सम्यक विकास में अपेक्षित सफलताएँ नहीं प्राप्त हो रही हैं। समष्टिवाद के स्थान पर स्वार्थपरायण व्यक्तिवाद प्रभावशील होता जा रहा है।

भारतीय शिक्षा नीति वेद की परम्परा कहती है कि आत्मसाक्षात्कार करो, अपने को जानो, अपने लिये जानो तब सबको समझ सकोगे। आजकी परिस्थिति में हमलोग कम हिम्मतवाले है आदर्श ऊँचा तो रखते हैं लेकिन उस स्तर का व्यवहार नहीं रखते। हमें अपने व्यवहार को भी आदर्श की तरह ऊँचा उठाना है और आदर्श के लिए परिश्रम भी अधिक करना है तभी देश का कल्याण हो सकेगा। आज आवश्यकता है बाह्य पदार्थों को अपनाये अपना विकास करें अपनी श्रुति (वेदों) के मौलिक जीवन सहित जिएँ, हृदय और श्वास - प्रतिश्वास में वेदों का मंत्रगान गुंजित रहे। शिक्षा का उद्देश्य हो कि हम अपने देश के साधनों का उपयोग करने के योग्य बन सके। अशिक्षितों को शिक्षित करने, शिक्षा क्रान्ति शुरू करें। देश में ज्ञान की ज्वाला जले। उसमें सबको बली चढ़ानी है उसमें निज पर का भेद-भाव, अपनी इन्द्रियों की दासता अपनी व्यक्तिगत इच्छायें, प्रेम, घृणा, मन के विकार, रोष, तोष, रीति-रिवाज, सम्बंधी, इष्ट-मित्र, न्याय, अन्याय, प्रश्न, उत्तर, नाम, रूप, अधिकार, मोह इन सभी को ज्ञानार्जन में भस्म कर दें। इस पूर्ण- उत्सर्ग, इस पूर्णाहुति का नाम है राष्ट्रीयधर्म है। हमारे शिक्षक, नेता और अधिकारी ब्रह्मचारी हो। चरित्र भ्रष्ट न हो अथवा अनर्थमूलक सामाजिक तत्वों का विकास होगा और राष्ट्रपतित होगा।[51]

**<u>ध्यातव्य सुझाव-</u>**

यद्यपि वर्तमान सामाजिक परिवेश में जब प्राचीन शिक्षा प्रणाली पर नहीं जा सकते किन्तु शिक्षा के उद्देश्य की पूर्त्ति के अनुकूल तो शिक्षा बना ही सकते है। अतः निम्नांकित बिन्दु शैक्षणिक सुधार के सुझाव के रूप में विचारणीय हो सकते हैं -

1.प्राथमिक से लेकर उच्च शिक्षा तक शिक्षा के प्रत्येक क्षेत्र में समाज हितोपयोगी आध्यत्मिक ज्ञान की शिक्षा अनिवार्य हो जिससे प्रत्येक शिक्षित स्वयं जीवित रहे और दूसरे को जीने दे परस्पर सम्मान करें। इसके लिए आध्यत्मिकता के साथ अधिभौतिकता का पूर्ण सामांजस्य और संतुलन हो।

2.माध्यमिक स्तर तक प्रत्येक विद्यार्थी के लिए संस्कृत का ज्ञान अनिवार्य थे। एतर्द्थ त्रिभाषा सूत्र में संस्कृत की अनिवार्यता हो।

3.प्रत्येक विद्यार्थी को रूचि के अनुकूलन जीविकोपार्जन के लिए कुशल बनाया जाए एतर्द्थ व्यावसायिक शिक्षोपयोगी पाठ्यक्रम बनाया जाए।

4.राष्ट्रीय आय का कम से कम दस प्रतिशत शिक्षा पर व्यय किया जाय और प्रत्येक व्यक्ति को शिक्षा बनाने का प्रयास हो।

5.गुरू शिष्यों में अध्ययन - अध्यापन की प्रवृत्ति सर्वत्र जगायी जाय।

6.धनी और निर्धन छात्रों की प्राथमिक शिक्षा के महान अंतर को यथासंभव कम किया जाए।

7.शिक्षण की प्रक्रिया इस प्रकार संगठित हो कि बालक को अपनी रूचि और प्रवृत्ति के अनुसार आत्माभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और मिल सके तथा उसे प्रकृति का स्निग्धस्पर्श और मानव का स्वाभाविक स्नेह मिले। शिक्षा संस्थानों में पारिवारिक चैतन्यता और शिक्षक छात्रों में सद्भाव ही अन्य अभावों की पूर्त्ति कर सकता है।

8.पाँच-छः विषय पढ़ाने की अपेक्षा - दो तीन विषयों पर अधिकार कराने का प्रयास अधिक उत्तम है। शिक्षा सात या आठ वर्ष मं प्रारंभ की जानी चाहिए क्योंकि इस आयु में वह पर्याप्त समय तक किसी विषय पर ध्यान केन्द्रित कर सकता है। श्री अरविन्द का यह कथन विचारणीय है।[52]

9.नैतिक और आध्यात्मिक मूल्य हमारे जीवन के मूलभूत तत्त्व हैं अतः प्रत्येक शिक्षा प्रणाली में उसे स्थान देना आवश्यक है क्योंकि इसके बिना हम भविष्य की समस्या सुलझाने में असमर्थ होंगे।

10.शिक्षा का ग्रामीणीकरण आवश्यक है। ऐसे ग्रामीण विद्यालय चलें जहाँ सीमित साधनों से कृषि की ग्रामीण लघु उद्योग की उस क्षेत्र में विशेष कर युवाओं के प्रयोग में आनेवाले समाजविज्ञान की भाषा और साहित्य की शिक्षा दी जाय। भोजन का प्रश्न है, पोषक तत्त्वों का प्रश्न है, हरी खाद और पशुओं आदि से मिलने वाली स्वाभाविक खाद सही उपयोग का प्रश्न है, इस सबकी शिक्षा जिससे न मिले वह शिक्षा पद्धति भारत के लिए किस काम की ?

11.आज की शिक्षा व्यवस्था में समान शिक्षा और विकास के समान अवसर की आवश्कता है। चपरासी का बेटा हो या राष्ट्रपति का हो संतान। ब्राह्मण या भंगी का बेटा सबकी शिक्षा एक समान। धनी-गरीब, सवर्ण-अवर्ण आदि विषमताओं की चौड़ी होती खाईयों के अनुरूप ही, ऊँचे खर्चे के विद्यालय, सुविधापूर्ण निजी विद्यालयों की भीड़ लग गई है और सरकार की सामान्य शिक्षा व्यवस्था से आमलोगों का विश्वास उठने लगा है। अतः मानवता के कल्याण, सतत ज्ञान के विस्तार के लिए समान शिक्षा का विकास अपरिहार्य है।

12.पब्लिक स्कूल न रहे। सब स्कूल समान हो। इस प्रकार समाज में गलत वर्गीकरण होता है। खर्चीले स्कूल में कम बच्चे बढ़ते है। इसी लिए उन पर अधिक ध्यान दिया जाता है। इससे छोटे-बड़े की भावना फैलती है। इसके विपरीत अगणित सामान्य शिक्षा संस्थाए हैं जिसमें छात्रों पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया जाता इससे अवमानना पैदा होती है। समाज में सभी को समान शिक्षा मिलनी चाहिए। इसे एक कर्त्तव्य के रूप में शासक सत्ता स्वीकार करें।

**निष्कर्ष -**

नैतिक मूल्यों के ह्रास के कारण आज सम्पूर्ण विश्व अशान्ति, हिंसा, परस्पर संघर्ष, अनाचार भ्रष्टाचार आदि से संत्रस्त है। इस अशान्ति का मूल कारण है कि हमने सनातन नीति निर्धारक सत् शास्त्रों की उपेक्षा की है। जीवन शैली में मर्यादाहीनता स्वेच्छाचारिता तथा दुराचरण को प्रमुखता से प्रश्रय दे रखा है, फलतः संवेदना, दया, करूणा, परोपकार, सेवाभावना, जैसी मानवीय संवेदनाओं को खत्म कर दिया है। सत्य-असत्य, धर्म-अधर्म का विचार न कर पाने के कारण ही मनुष्यों में आसुरी प्रवृत्ति का बोल बाला है। विज्ञान, वाणिज्य, तकनीकी, चिकित्सा, अभियांत्रिकी, प्रबंधन आदि किसी की भी शिक्षा दी जाए किन्तु नैतिकता की शिक्षा के बिना हमारा नैतिक अधः पतन होगा। नैतिकता एवं जीवन मूल्यों को शिक्षा व्यवस्था के द्वारा संरक्षित सवंर्धित करना होगा। नैतिक शिक्षा को अनिवार्य बनाना होगा। तभी आत्म निर्भर सबलभारत तथा भावी युवा पीढ़ी का निर्माण होगा। अतएव वैदिक शिक्षा के आदर्शों, नैतिक-जीवन मूल्यों का वर्त्तमान शिक्षा व्यवस्था मंे समावेश जरूरी है। तभी हम मूल्यपरक-जीवन जीने के अधिकारी होंगे।

**<u>सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूची:-</u>**

1.विष्णु पुराण (1.19.41)
2. ऋग्वेद (4.33.6)- सत्यमनूचुर्नर एव हि चक्ररनु स्वधामृभवो जग्मुरेताम्।
3. ऋग्वेद (8.2.18)- सुविज्ञानं चिकितुषे जनाय संचासंच वनसी पस्पृधाते।
तयोर्यत सव्यं यतरद् ऋजीय स्तदित् सोमो अवति हन्त्यासत्।।
4.ऋग्वेद (10.57.12)- मा प्रगाम यथा वयं मा यज्ञदिन्द्र- सोमिनः। मान्तः स्थुर्नो अरातयः।
5.यजुर्वेद- (4.25) परिमाग्ने दुश्चरिताद् वाधस्वा मा सुचरिते भज। उदायुषा स्वायुषोद स्थामृत अनु।।
6.यजुर्वेदीय काठक संहिता (3.22 - चरित्रांस्ते मा हिंसिषम्।
7.ऋग्वेद (10.18.2) अथर्ववेद (12.2.30)- 'शुद्धः पूता भवत यज्ञियासः।
8. अथर्ववेद (2.11.5) - शुक्रोऽसि भ्राजोऽसि स्वरसि ज्योतिरसि। आप्रुहिं श्रेयां समाति

संम क्रम।।
9. सामवेद उ0 (12.1.1)
10. सामवेद पूर्व0 (4.5.6) अहरहः शुन्ध्युः।
11. सामवेद उ0 (1.2.4)
12. सामवेद पू0 (6.5.3) - 'सूर्यआत्मा जगत स्तस्थुषश्च।
13. सामवेद पू0 (2.4.8)
14. सामवेद पू0 (1.9.1)
15. सामवेद पू0 (3.3.7)
16. सामवेद पू0 (3.3.11)
17. सामवेद पू0 (3.3.11)
18. सामवेद पू0 (5.4.4)
19. यजुर्वेद (4.28) - परिमऽ ग्ने दुश्चरिताद् बाधस्या मा सु चरिते भज।
20. यजुर्वेद (36.18)
21. अथर्ववेद (17.7)
22. अथर्ववेद (3.30.4)
23. अथर्ववेद (3.30.4)
24. अथर्ववेद (7.75.14)
25. यजुर्वेद (19.9)
26. ऋग्वेद (10.117.6) - मोधमन्नं विन्दते् अप्रचेताः सत्य ब्रवीमि वध इत्स तस्य। नार्यमणं पुष्यति नो सखायम केवलाघो भवति केवलादि।।
27.ऋग्वेद (10.191.2)- संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्। देवाभागं यथापूर्वे संजानाना उपासते।।
28. गीता (16.5)
29. महाभारत अनुशासन पर्व (149/137)
30. स्कन्द पुराण (2.115)
31. याज्ञवल्क्य स्मृति (1.222)
32. पद्मसृष्टि (19/357,359)
33. ईशावास्योपनिषद् (6)
34. ऋग्वेद (5.5.15)
35. तैत्तिरीयोपनिषद् (1.11)
36. छान्दोग्योपनिषद् (6.14.12 ब्रा0शा0भा0 - 11.7 आचार्यवान्पुरूषो वेद, तस्य

तावदेव चिरं यावन्न विमोक्ष्येथ सम्पत्स्येति)

37. बृहदारण्यकोपनिषद् 2.4.5 ब्रा0शा0भा0 2.1.22 आत्मा ना अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो निदिध्यासितव्य

38. ऋग्वेद - (7.4.4) - अयं कविरकविषु प्रचेता मर्तेष्वअग्निण्मृतो निधायि।

39. तैत्तिरीयोपनिषद् (1/3)

40. मनुस्मृति 11.236, ब्रह्मनस्य तपो ज्ञानम्।

41. मनुस्मृति (2.20)

42. तैत्तिरीयोपनिषद् (1.9.1)

43. श्रीमद्भागवद् गीता (5.12.11)

44. ईशावास्योपनिषद् (1.1) तेन त्यक्तेन भुंजीथाः मा गृधः कस्य स्विद्धनम्।

45. कठोपनिषद् (प्रथम अध्याय - शान्ति पाठ)- ऊँ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्यं करवावहै। तेजस्वि नावधीतमस्तु मा विद्विषावहै।।

46. तैत्तिरीयोपनिषद् (1.11)

47. तैत्तिरीयोपनिषद् (1.11)

48. अथर्ववेद (1.2.6)

49. ऋग्वेद (8.50.5)

50. अथर्ववेद (7.16.1)

51. अथर्ववेद 11.7.16 - आचार्यो ब्रह्मचारि ब्रह्मचारी प्रजापतिः।
प्रजापर्तिराजति विराडिन्द्रो अभवद् वशि ।

52. श्री अरविंद - शिक्षाविशेषांक, कल्याण पृ0 384.(गीता प्रेस)

# भारतीय सांस्कृतिक समरसता (रामायण के संदर्भ में)

वीना रानी
गुरु गोरखनाथ राजकीय महाविद्यालय
हिसार (हरियाणा)

रामायण समाज का दर्पण है। समाज का पथ प्रदर्शक है। इसमें समाज का आदर्श रूप प्रस्तुत किया गया है। इसमें न्याय और समानता के दर्शन होते है। महर्षि वाल्मीकि ने लोक-कल्याण की भावना से ही रामायण की रचना की है। किस प्रकार एक व्याध द्वारा क्रौंच पक्षी युगल में से एक का वध करने पर उनका मन करुणा से भर गया था।

**मा निषाद ! प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः। यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काम मोहितम।।**[1]

जो इस महाकाव्य को रचने का आधार बना। रामायण एक पारिवारिक पृष्ठभूमि वाला महाकाव्य है। रामायण केवल महाकाव्य नहीं बल्कि सांस्कृतिक चेतना का प्रकाश स्तम्भ है। रामायण केवल धार्मिक ग्रन्थ नहीं है बल्कि मनुष्यों को जीवन की सीख देने वाला ग्रन्थ है। देवर्षि नारद मुनि ने वाल्मीकि के समक्ष समस्त गुणों से युक्त ऐसे व्यक्ति का वर्णन किया जो लोगों को प्रिय है। जो सर्वसाधारण, संयमी, नीतिवान, धर्मज्ञ, शत्रु निर्दलन, वक्तृत्व कला, वीर, पराक्रमी, सुन्दर, धैर्यवान आदि गुणों से युक्त राम नाम का व्यक्ति लोगों में प्रसिद्ध है। जिसके गुणों से प्रेरित होकर ही इन्होंने रामायण की रचना की है। बालकाण्ड में देवर्षि नारद जी महर्षि से राम के गुणों का वर्णन करते हुए कहते है-

---

[1] रामायण, बालकाण्ड, 2 सर्ग, श्लोक 15

**वेद वेदाङ्गतत्त्वज्ञो धनुर्वेद च निष्ठितः ।2[1]**

वे वेद-वेदांगों के ज्ञाता और धनुर्विद्या में पारंगत थे ।जब हनुमान सीता की खोज करते हुए अशोक वाटिका में पहुंचे, तो सीता के समक्ष राम के गुणों का वर्णन करते हैं –

**यजुर्वेद विनीतश्च वेदविद्भिः सुपूजितः ।**
**धनुर्वेद च वेदे च वेदांगेषु च निष्ठितः ।[2]**

अर्थात श्री राम यजुर्वेद में पारंगत है ,बड़े -बड़े ऋषि भी उनको मानते है की वे वेद वेदांगों में प्रवीण हैं।

रामायण एक पारिवारिक पृष्ठभूमि वाला महाकाव्य है। इस महाकाव्य में इन्होंने अपने भावों और विचारों कि सुन्दर अभिव्यक्ति की है। इन्होंने अपनी बात को कभी भी उपदेष्टा या शिक्षक के रूप में प्रस्तुत नहीं किया है। इसने अपने पात्रों को ही प्रवक्ता बना दिया है। इन सब में मानवीय मूल्यों एवं गुणों को आदर्श रुप में प्रस्तुत किया गया है। इनमें कुछ आदर्श पात्र है- राम, लक्ष्मण, सीता, सुमित्रा,शबरी ,जटायु, हनुमान, सुग्रीव, विभीषण आदि। इन सबके आचरण को देखकर पाठक के मन में स्वतः ही यह बात आ जाती है कि यदि पुत्र हो तो राम जैसा जो अपने पिता की आज्ञा का पालन करता है। जब राम को राज्याभिषेक देने की बजाय उनको वनवास दे दिया ,तो राम ने उसका विरोध नहीं किया ,बल्कि सहर्ष स्वीकार किया। वन गमन के प्रकरण में कौशल्या माता से कहते है –

**नास्ति शक्तिः पितुरवाक्यं समतिक्रमितुं मम।**
**प्रसादयो त्वां शिरसा गन्तुमिच्छाम्यहं वनं।।[3]**

इस प्रकार आधुनिक समाज में भी यह देखने को मिलता है की पुत्र अपने

---

[1] बालकाण्ड 1 सर्ग 14 श्लोक

[3]सुन्दर काण्ड 35 सर्ग 14 श्लोक

[3]अयोध्या काण्ड 20 सर्ग 30 श्लोक

पिता को आदर्श रुप में ही देखते है।

राम के अंदर मातृभक्ति भी कूट -कूट कर भरी हुई थी। वे अपनी सभी माताओं को एक समान समझते थे। इसी कारण उसकी सभी माताएं भी उससे बहुत प्यार करती थी। जब मंथरा ने कैकेयी को राम के राज्याभिषेक के बारे में बताया तो कैकेयी ने प्रसन्न होकर अपने आभूषण उसे उपहार स्वरुप दे दिए। उसने कहा- **यथा**

**वै भरतो मान्यस्तथा भूयोऽपि राघवः।**
**कौसल्यातोऽतिरिक्तं च मम शुश्रूषते।।**[1]

राम भरत को भी कहते है कि माता केकैयी ने जो कार्य किया है, उसको कभी भी मन में नहीं लाना। माता कैकेयी के साथ भी वैसा ही व्यवहार करना जैसा दूसरी माताओं के साथ करते हो। भवभूति ने भी उत्तरामचरितम् के प्रथम अंक में चित्र दर्शन में इसका वर्णन किया है। जब लक्ष्मण, राम और सीता के साथ चित्रवीथिका को देख रहे हैं तो उसे समय कैकेयी का वृत्तान्त आने पर वह पृष्ठ को पलट देते हैं ताकि सीता के मन में उसके प्रति कोई अनुचित भाव न आए। वनवास समाप्ति के बाद जब राम अयोध्या में आते है तो सबसे पहले वह माता कैकेयी के पास जाकर उसको प्रणाम करते है ताकि उसके मन में कोई हीन भावना ने आये । इस प्रकार श्री राम की अपनी माताओं के प्रति अनन्य भक्त रही है।
आज भी यह देखने को मिलता है की मां का स्थान दुनिया में कोई नहीं ले सकता। युद्ध समाप्ति के बाद जब विभीषण और सुग्रीव उसे कुछ ओर दिन रुकने का आग्रह करते हैं तो वह शीघ्र ही अयोध्या में लौटने का कारण बताते हुए अपनी माताओं को स्मरण कर कहते हैं-

**मित्राणि धन धान्यानि प्रजानां सम्मतानिव ।**
**जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी ॥**[2]

---

[1] अयोध्या काण्ड 20 सर्ग 30 श्लोक

[2] वाल्मीकि रामायण के कुछ पाण्डुलिपियों

श्री राम का भ्रातृ प्रेम भी अद्वितीय है। राम के राज्याभिषेक के अवसर पर भी वह अपनी माता कौशल्या और सुमित्रा से लक्ष्मण के विषय में कहते है कि यह मेरे साथ ही पृथ्वी पर शासन करेगा।

युद्ध के समय जब रावण ने लक्ष्मण को मूर्छित कर दिया था तब राम बीच में ही युद्ध छोड़ कर शीघ्र उसे सुषेण नामक वैद्य के पास ले गया था ।हनुमान द्वारा संजीवनी बूटी लाने पर जब वे युद्ध करने के योग्य हो गए तभी वापस युद्ध में गये।

**किं मया दुष्कृतं कर्म कृतमन्यत्र जन्मनि ।**
**येन मे धार्मिको भ्राता निहतश्चाग्रत: ।।[1]**

भ्रातृत्व भावना भरत में भी बहुत अधिक थी यद्यपि उन्हें अयोध्या का समस्त कार्यभार मिला हुआ था । फिर भी उन्होंने अपने भ्राता से स्नेह होने के कारण वे राम को वन से वापस लाने के लिए गए। उन्हें प्रणाम करना तथा राज्य भार ग्रहण करने के लिए आग्रह करना ।उसके मन में राम के प्रति आदर भाव को ही प्रदर्शित करता है।राम का संपूर्ण जीवन ही समरसता का उदाहरण है राम ने वन गमन के समय प्रत्येक व्यक्ति को गले लगाया। राम ने केकैयी के कहने मात्र से ही राज्याधिकारों को त्याग दिया ।वह युद्ध से नहीं डरता था। वह धर्म के मार्ग पर अडिग थे। प्रजाजनों को कहते हैं - मैं चाहूं तो अकेला ही सारी पृथ्वी को नष्ट करके राज्याभिषेक करवा सकता हूँ लेकिन मैं अधर्म से डरता हूँ क्योंकि मैं धर्म के बंधन में बंधा हुआ हूँ ।वनवास गमन के समय उसने केवट को गले लगाकर सिद्ध कर दिया की प्रत्येक व्यक्ति में आत्मा है, कोई व्यक्ति छोटा या बड़ा नहीं है। सभी जीव समान है। वर्तमान में हमारे देश में भी समानता का अधिकार है जो रामायण कालीन समाज में भी देखने को मिलता है।

किसी भी शासन के उत्तमता की कसौटी प्रजा का सुख होता है । राम

---

[1] युद्ध काण्ड 101 सर्ग 16

अपनी प्रजा को पुत्र की तरह प्रेम करता है।जब दशरथ प्रजाजनों से राम के राजा बनने की अनुमति मांगते हैं तो सारे एक ही स्वर में कहते हैं -

**इच्छामो हि महाबाहु रघुवीर महा बलम्।**[1]

उस समय राजा जब भी अपने पुत्र को उत्तराधिकारी घोषित करते थे तो प्रजा की अनुमति आवश्यक होती थी। लेकिन आज उसके स्वरूप में परिवर्तन हो गया है आज हम अपना नेता या राजा चुनने के लिए अपने मत का स्वतंत्र रूप से प्रयोग करते हैं –

**राजा माता पिता चैव राजा हित करा नृणाम्।**[2]

राम ने संपूर्ण आसुरी जाति का विनाश करके, लोगों को निर्भयता का जीवन प्रदान किया ।कैसे उन्होंने शिव धनुष को तोड़ा था तथा सीता के साथ राजा जनक ने उनका विवाह करवाया था। राम ने परशुराम के क्रोध को भी शांत किया था जो सम्पूर्ण क्षत्रिय जाति से शत्रुता कर बैठे थे । इस प्रकार श्री राम का संपूर्ण जीवन ही सामाजिक समरसता का प्रतिबिंब है। जिस समय रावण ने सीता का अपहरण कर लिया था। तो अपने कष्ट समय में भी यह भी इन्होंने अपना सहयोगी वनवासियों को ही बनाया चाहते तो वो भी अयोध्या से सहायता ले सकते थे।

इसी प्रसंग में इन्होंने सीता की खोज करते हुए इनकी भेंट भील समुदाय की श्रमणा नामक शबरी से हुई ।शबरी ने अपना संपूर्ण जीवन राम की भक्ति में व्यतीत किया है। शबरी ने राम को खाने के लिए बेर दिए उन बेरों को पहले स्वयं उसने चखा तथा बाद में श्रीराम को दिए ताकि राम को कोई कड़वा बेर न मिल जाये, हालांकि लक्ष्मण ने तो इसका विरोध भी किया लेकिन राम ने उसकी भक्ति भावना देखी तथा शबरी के झूठे बेरों का आस्वादन किया। शबरी ने कहा आपके दर्शन से मेरी तपस्या सफल हो गई है। मेरा जीवन सफल हो गया है। अब मुझे मोक्ष मिल गया है ।

---

[1] अयोध्या काण्ड 2 सर्ग 22 श्लोक

[2] अयोध्या काण्ड 69 सर्ग 35 श्लोक

जटायु का प्रसंग भी दर्शनीय है जटायु राजा दशरथ का घनिष्ठ मित्र था उसके इस संबंध के कारण दशरथ पुत्र उसे तात कहते थे तो जटायु का अंतिमसंस्कार भी राम ने विधिवत् तरीके से किया।

हनुमान को एक सच्चे सेवक के रूप में प्रस्तुत किया गया है ।वह शूरवीरता, नीतिमत्ता तथा पांडित्य से परिपूर्ण था । नीतिमत्ता का प्रथम परिचय राम और सुग्रीव की मित्रता करवाकर किया । बाली का वध करने के पश्चात् सुग्रीव को राजा बनकर नियमानुसार बाली पुत्र अंगद को उत्तराधिकारी बनाया सीता की खोज करने के लिए राम के समक्ष हनुमान का ही नाम लेते हैं-

**त्वय्येव हनुमन्नस्ति बलं बुद्धि:पराक्रम:।**
**देशकालानुवृत्तिश्च नीतिश्च नय पण्डित:।।**[1]

अनेक प्रसंगों में राम का पत्नी प्रेम अगाध रुप में देखने को मिलता है ।वनवास के समय में जब सीता भी राम के साथ जाने की हट करती है तो राम उसकी पत्नी -निष्ठा का सम्मान करते हुए कहते हैं-

**न देवी !तव दुखेन स्वर्गमप्यभिरोचये ।**
**न हि मेऽस्तिभयं किं चित्स्वयम्भोरिव सर्वत:।।**[2]

वनवास समाप्ति के बाद राम जब अयोध्या में आकर राज्य करने लगता है तो सीता के विषय में फैले जनपद को सुनकर अत्यंत दुखी होते हैं तथा कहता है-

**अपूर्वकर्मचण्डालमयि मुग्धे!विमुञ्च माम्।**
**श्रितासि चन्दनभ्रान्त्या, दुर्विपाकं विषद्रुमम् ।।**[3]

यद्यपि लोक आराधना के लिए उन्होंने सीता का त्याग कर दिया लेकिन उनके हृदय में उनके लिए अपार स्नेह था।लगभग 12 वर्ष के बाद

---

[1] किष्किन्धा काण्ड 44 सर्ग 7

[2] अयोध्या काण्ड 30 सर्ग 27 श्लोक

[3] उत्तररामचरितं 1 अंक 46 श्लोक

भी उन्होंने दूसरा विवाह नहीं किया सीता जी की सोने की मूर्ति बनाकर उसने अपने पतिव्रता का परिचय दिया ।पहले राजाओं की अनेक रानियाँ होती थी लेकिन उनके ऊपर कोई प्रतिबंध नहीं होता था। राम ने अपने एक पत्नी व्रत धर्म का पालन किया आज भी उन्हीं के आदर्शों के स्वरूप संविधान में भी एक पत्नी के व्रत को माना गया है।

सीता का आदर्श चरित्र संसार की समस्त स्त्रियों के लिये अनुकरणीय है। इसमें त्याग, सहनशीलता, पतिव्रता, सेवा, सदाचार, क्षमा आदि गुण विद्यमान हैं।

रामायण की रमणीयता गतिशील हैं ।इसमें राम को प्रेम का प्रतीक तथा सीता को करुणा की मूर्ति के रूप में दर्शाया गया है। रामायण में जीवन की विभिन्न परिस्थितियों का वर्णन किया गया है। जिससे न केवल भारतीय समाज बल्कि पूरी मानवता प्रेरित होती है। यह महाकाव्य भारतीय संस्कृति के अनेक पहलुओं का वर्णन करता है। यह भारत की राजनीतिक धार्मिक और सांस्कृतिक गतिविधियों पर प्रकाश डालता है। इसमें सत्य और सौंदर्य का मंजुला सामंजस्य दिखाई देता है। जियो और जीने दो का मूल मंत्र इसी में दिखाई देता है ।भारतीय जनजीवन में ही नहीं बल्कि संपूर्ण विश्व में इस कृति को विशिष्ट स्थान मिला है। यह कृति भूत में प्रासंगिक थी । वर्तमान में भी प्रासंगिक है तथा भविष्य में भी प्रासंगिक ही रहेगी। क्योंकि इससे शाश्वत तत्त्व विद्यमान हैं।

# आधुनिककाले संस्कृतशिक्षायाः प्रासङ्गिकता

Ashis Mandal
State Aided College Teacher in Sanskrit
Sundarban Mahavidyalaya
Affiliated from Calcutta University

मानवानां सर्वाङ्गीणविकाससाधनं हि शिक्षा। अस्माकं समाजः शिक्षाया आधारेणैव चालितोऽस्ति। नैतिकगुणानां बौद्धिकगुणानाञ्च विकासः शिक्षयैव भवति। उद्देश्यविहीना शिक्षा निराशाया गहनतिमिरे निमज्जिता भवति। यदि सा शिक्षा अनुशासनविशेषेण परिष्कृता न भवति तर्हि समाजः सुदृढो भवितुं न शक्नुयात्। वर्तमानसमये शिक्षा केवलम् आजीविकाप्राप्त्यर्थमध्ययनम्। आधुनिकशिक्षाप्राङ्गणे नैतिकविचाराणां स्थानं तु न्यूनीभवति। आधुनिकशिक्षाव्यवस्था यदि संस्कृतशिक्षाधारीभूता भवेत् तर्हि अस्माकं समाजस्य, देशस्य, राष्ट्रस्य च सामग्रिकी उन्नतिर्भवेत्। कारणं हि अधुनापि संस्कृतं सर्वभाषायाः शिखरे समासीनम्। 'सम्यक् कृतं संस्कृतम्' इति विग्रहेण विज्ञायते यत् शिष्टा, संस्कारयुक्ता, दोषरहिता, परिष्कृता, सर्वासां भाषाणां जननीस्वरूपा भाषेयं श्रेष्ठस्थानमलंकरोति। मानवजातेरभ्युदयविकासप्रगतयोः भाषाशिक्षां विना न सम्भवेत्। संस्कृतं हि भारतीयसंस्कृतेर्प्राणस्वरूपा। यथा प्राणान् विहाय शरीरं न जीवति तथैव संस्कृतशिक्षां विना भारतवर्षमपि निर्जीवं भवति। संस्कारप्रियमानवाः सदैव संस्कारार्थं प्रयत्नशीलो भूत्वा समाजे, जगति, कार्ये भाषायाञ्च संस्कारमिच्छति। आधुनिककाले प्रायो मानवानां मध्ये संस्कृतभाषां प्रति औदासीन्यं परिलक्ष्यते। इदं संस्कृतशास्त्रं केवलं पूजार्चनार्थं ब्राह्मणानां जीविकालाभार्थञ्च विरचितम्। केचन वदन्ति भाषाया अस्याः कापि दार्शनिकी चिन्ताधारा, वैज्ञानिकी दृष्टिभङ्गी च न विद्येते। न कोऽपि

भाषयानया भावविनिमयं कृत्वा जीवनयापनं करोति। अतस्तेषां मते संस्कृतभाषा मृतभाषेति। नैतत्सत्यम्, आधुनिककाले समाजे, साहित्ये, व्यवहारिकजीवने, राष्ट्रपरिचालने चापि संस्कृतशिक्षाया बहुविधा भूमिकास्माभिर्दृश्यते। अस्माभिर्ज्ञायते यत् प्रयोजनमनुद्दिश्य मन्दोऽपि न प्रवर्तते तस्माद् आधुनिककाले संस्कृतशिक्षायाः प्रासङ्गिकतास्ति न वेति तदाङ्गिकमण्वेषणीयम्।

संस्कृतभाषा भारतवर्षस्य प्रायः सर्वभाषाणां जननीस्वरूपा। मातृभाषाणां समृद्धये संस्कृतशिक्षा आवश्यिकी। प्रसङ्गादत्र विश्वकविरवीन्द्रनाथस्योक्तिरुल्लेखनीया – 'संस्कृतं विना मातृभाषा शिक्षा न खलु सम्भवेद्' इति। भारतवर्षस्यैतिह्यं परिज्ञानाय एषा भाषाभ्यसनीया। भाषायामस्यां विरचितेषु वेदेष्वुपनिषत्सु, धर्मसूत्रेषु, दर्शनेषु, स्मृतिग्रन्थेषु, पुराणेषु, रामायणे, महाभारते, तदुत्तरकाव्यनाटकादिषु चोपनिबद्धानि मूलभूततथ्यानि अङ्गाङ्गिभावेन मानवानां जीवनैः सह संयुक्तानि। अस्यामेव भाषायां प्राचीनभारतीयसंस्कृतिः, सामाजिकव्यवस्था, राजनीतिव्यवस्था, धार्मिकव्यवस्था, अर्थनीतिव्यवस्था च निहिताः सन्ति। प्रायशो हिन्दीबङ्गमाराठीप्रभृतिभाषासु संस्कृतस्य बहुशब्दानां प्रयोगो दृश्यते। भाषेयमध्ययनेन उक्तभाषान्तर्गतशब्दानां शुद्धरूपं ज्ञातुं शक्नुमः। सम्प्रति आङ्गलभाषामाधारेण सर्वाणि कार्याणि सम्पादयन्ति, अत एतद्भाषाज्ञानम् अत्यावश्यकम्। एतद्भाषाज्ञानस्यापि सोपानं हि संस्कृतम्। संस्कारयुक्तपरिष्कृताया अस्या भाषाया उच्चारणमायाससाध्यम्। संस्कृतव्याकरणादिग्रन्थेषु वर्णानामुच्चारणाय जिह्वायाः सञ्चालनाभ्यासस्य प्रयोगः सम्यक् सूचितः। सम्यगभ्यासेनानेन आङ्गलशब्दानाम् उच्चारणमपि अनायाससाध्यं भवेत्। विषयेऽस्मिन् KWH Schlegel महोदयस्य मतं प्रणिधानयोग्यम्- "Justly it is called Sanskrit, i.e. perfected finished..... The Sanskrit combines these varies qualities, possessed separately by other tongues".[१]

वेदेषु साम्यवादस्य यादृशी भावना परिदृश्यते तत्तु अस्माकं सर्वदा जातीयताबोधे उद्बोधयति। उक्तञ्च ऋक्संहितायाम्-

**"सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।**
**समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम्।**
**समानी व आकूतिः समाना हृदयाणि वः"।।[२]इति।।**

अपि च 'शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्राः'[३] इति श्रुत्यनुसारं सर्वे जीवा ईश्वरस्य सन्ताना भवन्ति। अतः तेषां मध्ये सौभ्रातृत्वं विराजते। सर्वजीवेषु ईश्वरस्य विराजमानत्वाद् जीवसेवयैव ईश्वरसेवा भवति। तस्मात् स्वपरभेदमकृत्वा निःस्वार्थबुद्ध्या च सर्वजीवेषु समदर्शी परमसुखं लब्धुमर्हति। श्रुतिषु चलनगमनमननादिषु सर्वेषामस्माकमेकरूपत्वं काम्यते। उक्तञ्च कठोपनिषदि –

**"सह नाववतु सह नौ भुनक्तु सह वीर्यं करवावहै।**
**तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै"।।[४]इति।।**

तथा च स्मर्यते-

**"सर्वभूतेषु चात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।**
**समं पश्यन्नात्मयाजी स्वाराज्यमधिगच्छति"।।[५]इति।।**

अपि च-

**"अयं निजः परोवेति गननालघुचोतसाम्।**
**उदारचरितानान्तु वसुधैव कुटुम्बकम्"।।[६]इति।।**

भारतीयानां संहतिभावना न केवलं व्यक्तेर्समाजस्य चापि तु भारतवासिभिः सह विश्वजनानाम् एकत्वभावनायामेव सा भावना पर्यवस्यति। तत्र हिंसाया विच्छिन्नतायाः साम्प्रदायिकतायाश्च नास्ति कोऽप्यवसरः। अतो हिंस्रपशवोऽपि हिंसावृत्तिं विस्मृत्य मिथो मैत्रिमाश्रयन्ति। अधुना जातेर्दौर्भाग्यमेतद् यदस्माकं भारतीयधर्माध्यात्म्यचेतना समन्विता सनातनी संस्कृतिर्विलुप्ता जाता। । सर्वत्र ये दुर्नीतयो दृश्यन्ते, तेषां समूलोन्मूलनाय संस्कृतसाहित्येषु

सुनिहितानि सत्याश्रयणादिनीतिसारवाक्यानि नित्यम् अनुवर्तनीयानि। इतोऽपि दण्ड्यार्हस्य दण्डाभावः, अदण्ड्यार्हस्य च दण्डो भवतीति कारणतः राष्ट्रपरिचालनाक्षेत्रे विचारव्यवस्थां प्रति मानवानां क्रमशो विश्वासाभावो जायते। या खलु विश्वायनयुगे अतीव निन्दनीया। यद्यपि विचारव्यवस्था राजनैतिकसङ्केन परिचालिता, तद्धेतोः कैश्चन न्यायाधीशैः सत्पथि विचारः क्रियते चेत् तेषामुपरि सङ्कर्तृकेन जीवनहानिस्तथा तद्राज्यात् तेषां विचारकानां निर्वासनं भवेदिति अधुना दृश्यते। विचारव्यवस्थाविषये मनुना प्राह-

**"अदण्ड्यान् दण्ड्यन् राजा दण्ड्यांश्चैवाप्यदण्डयन्।**
**अयशो महदाप्नोति नरकञ्चैव गच्छति"।।७इति।।**

राष्ट्रशासनविषये यदि मन्वादिधर्मशास्त्रनीतिमवलम्बनं भवेत् तर्हि तत्रापि राज्यस्य राष्ट्रस्य चोन्नतिसाधनं सुगमं भवेयुः।

अस्माकं धर्मबोधो जीवनस्य नैतिकमूल्यबोधे वाध्यात्मबोधे च सुप्रतिष्ठितः। स एव प्रकृतधर्मो, यो हि बहुधा भिन्नानपि जनानेकत्वसूत्रेण बध्नाति। अतो विवेकबुद्ध्या उद्भासितं सर्वाविरुद्धं स्वपरकल्याणकरं सात्त्विकमाचरणमेव धर्मः। हिन्दु-इसलाम-ख्रिष्टधर्मादयो न तु प्रकृतधर्मसंज्ञक, एते तु नानासम्प्रदायभुक्तो मतादर्शविशेषः। धर्माचरणेनैव अस्माकं चित्तमुदारं भवति न तु संकीर्णम्। धर्मनिरपेक्षताविषये महाभारते समुद्घोषितम्-

**"धर्मो यो बाधते धर्मं न स धर्मः कुवर्त्म तत्।**
**अविरोधात्तु यो धर्मः स धर्मः सत्यविक्रमः"।।८इति।।**

अद्यत्वे भारतवर्षे सर्वत्र आतङ्कवादस्य प्रभावो दरीदृश्यते। आतङ्कवादेन शान्तेरधिगमो न कदापि सम्भवः। परं संस्कृतशिक्षया आतङ्कवादस्य निदानं भवितुं शक्नोति। उक्तञ्च ईशोपनिषदि

**"ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जदत्।**
**तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्"।।इति।।**

मानवजीवने आदर्शचरित्रगठनं हि प्राथमिकलक्ष्यम्। किन्तु अद्यत्वे विविधपत्रपत्रिकायां दूरभाषे च प्रायशो हत्याधर्षणादिघटना दरीदृश्यते, एतस्यां कारणानुसन्धाने सति चारित्रिकविषये मुन्यृषीणां वचनानुशीलनाभावः परिदृश्यते। प्राचीनैः ऋषिभिः नारी महामायाया अंशसम्भूतरूपेण देवतासने सुप्रतिष्ठितासीत्, किन्तु विश्वायनयुगेऽस्मिन् सा नारी नष्टा भ्रष्टा पण्यसामग्रीभूता चाभूत्। तथा हि उक्तम्-

**"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।**
**यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः"।।[९]इति।।**

पाश्चात्यप्रभावाद् विषयभोगतृष्णा उत्तरोत्तरं वरीवृध्यते। ततश्च कामक्रोधलोभमोहादय उपजायन्ते। तच्च महानिष्टाय कल्पते। तदर्थं शास्त्रकृद्भिः परमशान्तये विषयभोगवैराग्यमेवोपदिश्यते। 'श्रद्धावान् लभते ज्ञानम्', 'अहिंसा परमधर्मः', 'सत्सङ्गः सर्वदा अवलम्बनीयः', 'परोपकाराय इदं शरीरम्' चेत्यादयोपदेशाः सुचरित्रनिर्माणायावश्यमेव पालनीयाः।

अधुना नैतिकशिक्षाभावे सद्ययौवनप्राप्तचञ्चलमतिछात्राणां मध्ये उच्छृङ्खलमनोभावो भूयः परिलक्ष्यते। फलतः प्रायशः समाचारे शिक्षकान् प्रति शिक्षार्थिनां श्रद्धाभावो, पितरौ प्रति अपत्यानां श्रद्धाभावश्च दरीदृश्येते। अधुना आङ्गलसंस्कारवशाद् वृद्धावस्थायां पितृणां स्थानं भवति वृद्धाश्रम इति आवासनस्थले। यदि "मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, आचार्यदेवो भव, अतिथिदेवो भव"[१०] चेत्यादय औपनिषदीयोपदेशाः तेषां मनसि निधातुमर्हन्ति तर्हि अस्मिन्नेव कालेऽपि गुरुशिष्यसम्बन्धः पितापुत्रसम्बन्धश्च सुदृढा भवेयुः। नैतिकशिक्षाविषये, इन्द्रियाणां संयमविषये, भोजनसंयमविषये च श्रीमद्भगवद्गीतायां गुरुरूपिश्रीकृष्णेन शिष्यार्जुनमुपदिष्टम्। अतो गीताध्ययनेन तेषां चित्तसंयमो भविष्यति, अत्र नास्ति कोऽपि संशयः।

वर्तमानकर्ममुखरजीवने सुस्थजीवनयापने तथा मानसिकसुस्थतारक्षणे योगासनमभ्यसनीयम्। योगासनविषये प्राचीनसाहित्ये

भारतीयर्षिभिरुपदिष्टा। मानवानां रोगनिरामये अद्यत्वेऽपि चरकसुश्रुतयोः प्राचीनायुर्वेदीयचिकित्सापद्धतयः प्रचलिताः सन्ति। सर्पदंष्ट्रस्य प्राथमिकचिकित्साविषये सुश्रुतेनाह –

**"दंशस्योपरि वध्नीयादरिष्टाश्चतुरङ्गुले।।**
**प्लोतचर्मान्तवल्कानां मृदुनान्यातमेन च"।[११]इति।**

कायचिकित्साशास्त्रे रसौषधिविषयस्य प्राचीनप्रवक्ता नागार्जुनेन तदानीन्तनकाले रसायनस्य रहस्यं प्रकाशितम्। लौहपारदादिधातूनां मिश्रनेन औषधप्रस्तुतविधिस्तदीयरत्नाकरे प्राप्यते। यथा –

**"जम्बीरजेन नवसारघनाम्लवर्गैः क्षाराणि पञ्चलवणानि कटुत्रयं च।**
**शिग्रुदकं सुरभिसुरणकन्दमेभिः सम्मर्दितो रसनृपश्चरतेष्टलोहान्"।।[१२]इति।।**

समग्रसंस्कृतसाहित्येषु ग्रन्थस्य निर्विघ्नपरिसमाप्त्यर्थं मङ्गलाचरणं दृश्यते। मङ्गलाचरणमिदं वर्तमानेऽपि विविधकार्येषु निरविच्छिन्नधारया प्रचलितम्, यथा- गृहनिर्माणात्पूर्वं मृत्तिकापूजा, गृहाद्बहिर्गमनात्प्राग् देववन्दनञ्च क्रियेते। आधुनिककाले शिशूनां नामकरणसमये रामकृष्णार्जुनादीनि नामानि गृह्यन्ते। अद्यापि मानवानां जातकर्मणः अन्त्येष्टिक्रियां यावत् सर्वकर्माणि संस्कृताश्रितमन्त्रैः संघटितानि। वर्तमाने विपदाकुलमानवाः स्वरक्षणार्थं, राशिगणनार्थं, कोष्ठीगणनार्थञ्च ज्योतिषिसमीपे गच्छन्ति। राष्ट्रनेतारोऽपि शपथग्रहणं तथा विविधकार्यञ्च ज्योतिषस्य परामर्शं विना न कुर्वन्ति। परन्तु ग्रहनक्षत्रादिज्योतिष्कादीनामावर्तनं, मानवजीवनस्य तथा पृथिव्याः उपरि तेषां प्रभावानुसन्धानं, तथा तज्जनिता शुभाशुभफलगणनेति विषयसम्पन्नस्य ज्योतिषशास्त्रस्य सम्यगालोचना प्राचीनवेदादिशास्त्रे विन्यस्तासीत्। अतः संस्कृतशिक्षाया आवश्यकता वर्तते।

दैनन्दिनजीवने शून्यं विना अस्माकं जीवनं शून्यं, गणितशास्त्रे एतस्य प्रतिपादनं तु सर्वप्रथमम् आर्यभट्टेन कृतम्। वैदिकयागेषु यज्ञवेदिषु, शूल्वसूत्रेषु च रेखागणितविषयकधारणामवलम्ब्य गणितस्य पूर्णसंख्यादीनां

प्रयोगो, दशमिकपद्धतिश्च प्रचलितेऽभवताम्। पिथागोरासमहोदयस्य उपपाद्यस्य धारणा बौधायनशूल्वसूत्रे मिलति। इतोऽपि वैदिकसामगीतादेव भारतीयसङ्गीतानामुत्पत्तिर्जाता। सप्तर्षीणां नामानुसारं प्रचलिताः सा, रे, गा, मा, पा, धा, नि, सा इमे सप्तस्वरा वर्तमाने सङ्गीतचर्चायां चर्चयति। तथा चोक्तं-

**"निषादर्षभगान्धारषडजमध्यमधैवताः।**
**पञ्चमश्चेत्यमी सप्त तन्त्रीकण्ठोत्थताः स्वराः"।।[१३]इति।।**

भरतस्य नाट्यशास्त्रानुसारं निर्मिताधुनिकचलच्चित्रेषु मङ्गलाचरणं मुखबन्धनञ्च बहुभिश्चलचित्रकारैः संस्कृतभाषावलम्ब्य क्रियते। यथा रङ् दे वसन्ति इति चलचित्रे "पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते" इति मन्त्रं व्यवहृयते।

अद्यत्वे वयं सङ्गणकमिति यान्त्रिकयुगे जीवामः। भविष्ये सङ्गणकमिति यन्त्रचालनाय संस्कृतभाषाया महत्त्वं वर्तते इति नासावैज्ञानिकैर्स्वीकृतम्। नासास्थख्यातविज्ञानी Risk Briggs महोदयेन 'Risk Knowledge Representation in Sanskrit and Artificial Intelligence' इति पत्रिकायां प्रतिपादितं यदस्माभिः कतिपयशब्देनैव समाचारः प्रेषितुं शक्यते।

वैदिकसाहित्यादारभ्य कालिदासादिलौकिकसाहित्यं यावत् प्रकृतिना सह मनुष्यजीवनस्य सहात्मकत्वं प्रतिफलितम्। कालिदासस्य शाकुन्तलनाटके वृक्षपक्ष्यादीनां संरक्षणविषये वार्ता वर्तते। वृक्षादीनामपि चेतनास्ति वैज्ञानिक आचार्यजगदीशचन्द्रमहोदयेनोल्लिखितम्। वैदिकयुगे ऋषिभिः प्रकृतिः मातृरूपा इति कल्पितम्। उक्तञ्च अथर्ववेदसंहितायाम्-

**'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः'।[१४]इति।**

एवमेव आदिकाव्यरामायणेऽपि मातृरूपापृथिव्याः स्तुतिर्दृश्यते- 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसि'[१५]इति। यदि एवं प्रकारेण प्रकृतिं प्रति श्रद्धाशीलो भवेत् तर्हि आधुनिकयुगेऽपि स्थलजलवायुदुषणादेरभावत्वं

सम्भवेत्।

आधुनिककालेऽपि भारतवर्षे राष्ट्रियप्रशासनिकादिकार्येषु प्राचीनसंस्कृतसुवचनान्यवलोक्यन्ते। यथा- अस्माकं जातीयपताकाया अशोकचक्रे 'सत्यमेव जयते'[१६], जीवनवीमायां 'योगक्षेमं वहाम्यहम्'[१७], भारतप्रशासनिकसेवाप्रतिष्ठाने 'योगः कर्मसु कौशलम्'[१८] चेत्यादयो वाण्य उद्धृताः।

संस्कृतस्य जनप्रियतां पुनरुन्मेषणाय व्याकरणस्य भीति दूरीकर्तव्या, संस्कृतनाटकप्रचारेण, सन्देशप्रचारेण तथा सभानुष्ठानेन भाषाया बहुलप्रचारश्च सम्भवेत्। सर्वैरस्माभिः सम्मिलितप्रयासेन मानवानां मध्ये संस्कृतज्ञानं यथा जायेत तदर्थं चेष्टितव्यम्। यस्यां भाषायां वेदोपनिषदो वौद्धजैनवेदान्तादिदर्शनानि विधृतानि सन्ति तस्या भाषायाः चर्चा विद्यालयस्तरेष्वेव कर्तव्या। भारतीयसंस्कृतिः भारतीयैतिह्यबोधश्च अनयैव भाषया भारतीयानां चेतांसि स्फुरन्ति। केवलम् उच्चशिक्षालये विश्वविद्यालये च संस्कृतचर्चया को लाभः स्यात्? को वा असंस्कृतज्ञजन उच्चशिक्षालये संस्कृतं पठेद् येन बाल्ये संस्कृतं नाभ्यस्त्यम्। लतायाम् उन्मूलितायां कुसुमस्य उद्गमः कथं सम्भवेत्?

अन्ते ब्रुमः, छन्दोबद्धपवित्रवेदमन्त्राणाम् उच्चारणमात्रेण अस्माकं चित्तं झटिति पूतं प्रसन्नं भवति, संस्कृतसाहित्यार्जितया सर्वजनीनोदारसाम्यभावनया यतो हृत्सु परमानन्दं लसन्ति, अजस्रनीतिसारवाक्यार्थविज्ञानमात्रेण च यतः प्राणिनः पुनरुज्जीविता भवन्ति, तत् संस्कृतं मृतं प्राणहीनमित्युन्मत्तं विना कः कथयति? कथयितुं योग्या अपि भाषेयं यद्यस्माभिर्न कथ्यते, तर्हि सोऽस्माकमेव दोषो, न तु संस्कृतस्यापराधः। संस्कृतं विहाय अन्यासु भाषासु एतादृशं तथ्यसमूहं न विद्यते। अतः संस्कृतशिक्षाया प्रासङ्गिकता यथा पूर्वमासीत् तथैव अधुनापि वर्तते इतः परमपि स्थास्यतीति समेषां मतम्।

**पादटीका:**

१. KWH Schlegel : History of Literature
२. ऋक्संहितायाम् १०/१११/२-४
३. श्वेताश्वतरोपनिषदि २/५
४. कठोपनिषदि शान्तिमन्त्रे
५. मनुसंहितायाम् १२/९१
६. महोपनिषदि ६/७१
७. मनुसंहितायाम् ८/१२८
८. महाभारतस्य वनपर्वे १३१/११
९. मनुसंहितायाम् ३/५६
१०. तैत्तिरीयोपनिषदि शीक्षावल्ल्याम् १/११/२
११. सुश्रुतसंहितायाः कल्पस्थाने ५/१
१२. नागार्जुनस्य रत्नाकरे ३/१
१३. अमरकोषे
१४. अथर्ववेदसंहितायाम् १२/१/१२
१५. रामायणे ६/१२४/१७
१६. मुण्डकोपनिषदि ३/१/६
१७. श्रीमद्भगवद्गीतायाम् ९/२२
१८. श्रीमद्भगवद्गीतायाम् २/५०

**सहायकग्रन्थपञ्जी:**


- अत्रिदेवः. (अनु.). सुश्रुतसंहिता. (हिन्दिभाषायाम्). वाराणसीः मोतीलाल-वनारसीदासः, १८६० (तृतीयसंस्करणम्)।
- किञ्जवदेकरः, रामचन्द्रशास्त्री. श्रीः महाभारतम्. (चतुर्धरवंशावतंस श्रीमन्नीलपण्ठविरचितभारत-भावदीपाख्यपीकया समेतम्). वनपर्वम्. नवदेहलीः ओरियण्टल-बुक्स-रीप्रिण्ट-कारपोरेशन, १९८९ (द्वितीयसंस्करणम्)।
- घोषः, जगदीशचन्द्रः. एवं घोषः, अनिलचन्द्रः. (सम्पा.). श्रीमद्भगवद्गीता, (बङ्गभाषायाम्). कलिकाताः प्रेसिडेन्सिलाइब्रेरी।
- दाशः, पार्थप्रतिमः. (सम्पा.). आधुनिकसमाजे संस्कृतस्योपयोगिता. (मिश्रभाषायाम्). कलिकाताः संस्कृत-बुक-डिपो, २०१५.
- पाण्डुरङ्गः, शङ्करः. अथर्ववेदसंहिता. (सायणाचार्यविरचितेन भाष्येण सहिता). पञ्चमखण्डः. मुम्बाइः गवर्नमेन्ट-सेन्ट्राल-वुक-डिपो, १९००.

- भट्टाचार्यः, गुरुनाथः विद्यानिधिः. (सम्पा.). अमरकोषः. (बङ्गभाषायाम्). कलिकाताः संस्कृत-पुस्तक-भाण्डारः, १४१७ बङ्गाब्दे।
- वन्द्योपाध्यायः, धीरेन्द्रनाथः. संस्कृत साहित्येर इतिहास. (बङ्गभाषायाम्). कलिकाताः पश्चिमवङ्ग-राज्यपुस्तक-पर्षत्, १४१० बङ्गाब्दे (प्रथमसंस्करणम्)।
- वन्द्योपाध्यायः, मानवेन्दुः. (सम्पा.). मनुसंहिता. (बङ्गभाषायाम्). कलिकाताः संस्कृत-पुस्तक-भाण्डारः, १४१० बङ्गाब्दे (प्रथमसंस्करणम्)।
- विजयपालः. श्रीमद्वाल्मीकिरामायणम्. (युद्धकाण्डम्). (हिन्दिभाषायाम्). बहालगढः श्रीरामलाल-कपूर-ट्रस्ट-प्रेस, २०२८ विक्रमसंवत्सरे।
- विश्वबन्धुः. (सम्पा.). ऋग्वेदः. सप्तमखण्डः. होशियारपुरम्: विश्वेश्वरानन्द-वैदिक-शोधसंस्थानम्, १९६५ (प्रथमसंस्करणम्)।
- साधले, गजाननः शम्भुः. (सम्पा.). श्रीमद्भगवद्गीता. (शाङ्करभाष्याद्येकादशटीकोपेता). प्रथमखण्डः. मुम्बइः गुजराटि-प्रिण्टिं-प्रेस, १९३५.
- स्वामी, गम्भीरानन्दः. (सम्पा.). उपनिषद् ग्रन्थावली. (प्रथमभागः). (बङ्गभाषायाम्). कलिकाताः उद्बोधनकार्यालयः, १९६२.

# चरक संहिता में वर्णित ऋतुचर्या विज्ञान

डॉ. मनीषा सिंह
सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग
अ.प्र.ब. राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय अगस्त्यमुनि
रुद्रप्रयाग, उत्तराखण्ड, भारत

**धर्मे चार्थे च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ।**
**यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत्क्वचित्।।**[1]

संस्कृत वाङ्मय ज्ञान-विज्ञान का अक्षय कोष है। हमारे ऋषियों, मुनियों, मनीषियों की अनन्य साधना का परिणाम ही संस्कृत वाङ्मय में विभिन्न ग्रन्थ-मुक्ताओं के रूप में दैदिप्यमान हो रहा है। आयुर्वेद जीव के लौकिक एवं पारलौकिक कल्याण हेतु महत्त्वपूर्ण साधन है। आयुर्वेद का मुख्य प्रयोजन है- स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य की रक्षा करना और रोगी व्यक्ति के रोग को दूर करना। चरक संहिता, सुश्रुत संहिता तथा अष्टाङ्ग हृदय आयुर्वेद के प्रमुख ग्रन्थ हैं। आयुर्वेद से सम्बन्धित विभिन्न रहस्यों के उद्घाटन में चरक संहिता का विशिष्ट स्थान है।

चरक संहिता में मुख्य रूप से मानव के दैहिक एवं मानसिक रोगों की उत्पत्ति के हेतु, निवारण के उपाय एवं विभिन्न रोगों के लक्षण तथा चिकित्सा का विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है। उल्लेखनीय है कि चरक संहिता के प्रथम अध्याय का नाम ही 'दीर्घजीवन' है।[2] चरक संहिता के सूत्र स्थान के छठे अध्याय में आरोग्य दीर्घजीवन की प्राप्ति हेतु षड्ऋतुचर्या सम्बन्धी अनेक अद्भुत एवम् उपयोगी उपाय प्राप्त होते हैं। उत्तम स्वास्थ्य की प्राप्ति के लिए व्यक्ति को ऋतु के अनुसार ही आहार एवं जीवनशैली

---

[1] महाभारत, स्वर्गारोहण, 5.50

[2] अथातो दीर्घजीवितमध्यायं.....।।- चरकसंहिता, मङ्गलाचरण

को अपनाना चाहिए क्योंकि ऋतु के अनुसार आहार (खान-पान) एवं विहार (चेष्टा, व्यायामादि) करने से व्यक्ति का बल, वर्ण, कान्ति और आयुष्य बढ़ता है-

**तस्याशिताद्यादाहाराद् बलं वर्णश्च वर्धते।**
**तस्यर्तुसात्म्यं विदितं चेष्टाऽऽहारव्यपाश्रयम्।।**[1]

चरक संहिता में वर्णित ऋतुचर्या विज्ञान को निम्नप्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है-

**सूर्य, आदानकाल-विसर्गकाल एवं ऋतुएं**

एक संवत्सर (वर्ष) में छः ऋतुएं होती हैं। इन षड्ऋतुओं का मूल आधार भगवान् सूर्य है।[2] सूर्य जब उत्तर दिशा की ओर गमन करता है तो इसे उत्तरायण कहते हैं और सूर्य जब दक्षिण दिशा की ओर गमन करता है तो इसे दक्षिणायन कहते हैं। सूर्य के उत्तरायण होने पर आदान काल कहा जाता है। इस समय शिशिर, वसन्त एवं ग्रीष्म- तीन ऋतुएं बनती हैं। इसी प्रकार सूर्य जब दक्षिणायन होता है, उस समय को विसर्गकाल कहा जाता है। इस समय वर्षा, शरद् और हेमन्त- ये तीन ऋतुएं बनती हैं।[3]

आदानकाल में अग्नि तत्त्व की प्रधानता होती है- **आदानं पुनराग्नेयं**।[4] आदानकाल में सूर्य अपनी किरणों से संसार की स्निग्धता को ग्रहण कर लेता है, जिसके परिणामस्वरूप वायु में अत्यधिक रुक्षता आ जाती है। इस समय वायु तीव्र, तीक्ष्ण, रुक्ष और अवशोषित करती हुई प्रवाहित होती है। रुक्षता के बढ़ जाने के कारण तिक्त, कषाय और कटु रस बढ़ जाते है। रसों का मानव के आहारादि से प्रत्यक्ष सम्बन्ध है अतः इस

---

[1] चरक संहिता, सूत्रस्थान, 6.3

[2] इह खलु संवत्सरं षडङ्गमृतुविभागेन विद्यात्.... ।- वही, 6.4

[3] तत्राऽऽदित्यस्योदगयनमादानं.... दक्षिणायनं विसर्ग च।।- वही, 6.4

[4] वही, 6.5

समय इन रसों में हुई वृद्धि मानव शरीर में दुर्बलता का कारण बनती है।[1] विसर्गकाल में शीतल किरणों से युक्त चन्द्रमा जगत को नित्य पुष्ट करता है। अतः विसर्गकाल को सौम्य कहा गया है। वस्तुतः सूर्य के दक्षिणायन होने पर मेघ, वायु और वर्षा के कारण सूर्य का तेज कम हो जाता है। परिणामस्वरूप अरुक्ष तथा स्निग्ध रसों- अम्ल, लवण और मधुर रस में वृद्धि हो जाती है। इन रसों की वृद्धि से मनुष्यों के बल में भी वृद्धि हो जाती है।[2] प्रकृति के परिवर्तनों के कारण मनुष्यों के शरीर के बल में होने वाले परिवर्तन को चरक संहिता में अत्यन्त रोचक शब्दों में स्पष्ट किया गया है-

**आदावन्ते च दौर्बल्यं विसर्गादानयोर्नृणाम्।**
**मध्ये मध्यबल त्वन्ते श्रेष्ठतग्र च निर्दिशत्।।[3]**

**ऋतुओं के अनुसार आहार-व्यवहार-**

प्रत्येक ऋतु अपने साथ प्रकृति में परिवर्तन लेकर आती है। ऋतु के अनुसार शरीर में वात, पित्त और कफ की स्थिति में भी कुछ परिवर्तन होते हैं। इन शारीरिक गुणों की विषमता विभिन्न शारीरिक रोगों को जन्म देती है।[4] मनुष्यों को प्रत्येक ऋतु में उत्तम स्वास्थ्य लाभ प्राप्त कराने के उद्देश्य से चरक संहिता में वर्णित ऋतुचर्या विज्ञान को संक्षिप्त रूप में इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है-

**हेमन्त ऋतु में आहार-व्यवहार-**

अगहन एवं पौष माह हेमन्त ऋतु को समर्पित है। हेमन्त ऋतु में अत्यधिक शीतल वायु प्रवाहित होने के कारण जठराग्नि अत्यधिक तीव्र हो

---

[1] तत्र रविर्भाभिराददानो जगतः स्नेहं वायवस्तीव्ररूक्षाश्चोपशोषयन्तः शिशिर-वसन्त-ग्रीष्मेष्वृतुषु यथाक्रमं रौक्ष्यमुत्पादयन्तो
रूक्षान् रसान् तिक्त-कषाय-कटुकांश्चाभिवर्धयन्तो नृणां दौर्बल्यमावहन्ति।।- वही, 6.6

[2] वर्षा-शरद्धेमन्तेष्वृतुषु तु दक्षिणाभिमुखेऽर्के.....बलमुपचीयते नृणामिति।।- वही, 6.6

[3] वही, 6.8

[4] वायुः पित्त कफश्चोक्तः शारीरो दोषसंग्रहः।– वही., 1.57

उठती है तथा अत्यधिक मात्रा में भोजन को पचाने की सामर्थ्य से युक्त हो जाती है। यदि इस समय जठराग्नि को उचित आहार नहीं मिलता है तो वह शरीर के सौम्य भाग की गुणवत्ता पर प्रतिकूल प्रभाव डालती है, जिसके कारण शरीर में वात गुण बढ़ जाता है। यही कारण है कि जो मनुष्य इस समय उचित आहार ग्रहण नहीं करते है, उन्हें अधिकांशतः वात असन्तुलन सम्बन्धी समस्या आती है, जिससे बचने के लिए इस समय स्निग्ध, अम्लीय एवं लवणयुक्त आहार ग्रहण करना चाहिए- ...**तुषार-समये स्निग्धाम्ल-लवणान् रसान्**।[1] इस समय गोरस अर्थात् गाय का दूध एवम् उससे तैयार किये गये उत्पाद, इक्षु (गन्ने) एवम् इक्षु के रस से तैयार किये गए खाद्य पदार्थ, नये चावल, भोजन में वसा (घी इत्यादि) का सेवन तथा तैल में तल कर तैयार किये गये व्यञ्जनों का सेवन भी उत्तम होता है- ...**गोरसानिक्षुविकृतीर्वसां तैलं नवौदनम्।।**[2] भारतीय संस्कृति में जीव हिंसा की सदैव ही निन्दा की गई है, किन्तु कुछ विशेष परिस्थितियों में मांसाहार को उपयुक्त बतलाया गया है। चरक संहिता में हेमन्त ऋतु के अनुकूल मांसाहार का उल्लेख प्राप्त होता है। सीधु (गुड़ से बना मद्य) एवं मधु का सेवन करने का भी निर्देश है।[3]

हेमन्त ऋतु में शीतल जल से स्नान स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है। अतः अत्यधिक सर्दी होने पर शीतल जल से स्नान करने का निषेध किया गया है। कहा गया है कि हेमन्त ऋतु में ऊष्ण जल से स्नान करने वाले की आयु क्षीण नहीं होती- **हेमन्तेऽभ्यस्यतस्योयमुष्णं चाऽऽयुर्न**

---

[1] वही, 6.11

[2] वही, 6.13

[3] औदकानूप-मांसानां मेध्यानामुपयोजयेत्।।
बिलेशयानां मांसानि प्रसहानां भृतानि च।
भक्षयेन्मदिरां सीधुं मधु चानुपिबेन्नरः।।- वही, 6.11-12

**हीयते**।[1] अभ्यङ्ग (तैल मालिश), उत्सादन (उबटन अथवा हथेलियों द्वारा हल्की मालिश) करना तथा शिर पर तेल लगाने का निर्देश भी प्राप्त होता है। वास्तव में सर्दियों में तेल मालिश से उत्तम स्वास्थ्य लाभ प्राप्त होता है। सर्दी जुखाम आदि से बचाव होता है। त्वचा कान्तिवान् बनती है। स्नानादि क्रियाओं में ऊष्ण जल का प्रयोग करने के कारण त्वचा में होने वाली रुक्षता भी तैल मालिश, उत्सादन आदि के द्वारा दूर हो जाती है। भारत में घरों में सरसों अथवा तिल के तैल में मेथी, अजवायन, लहसुन आदि का प्रयोग कर सर्दियों के लिये विशेष लाभकारी तैल तैयार किया जाता है, जो सर्दियों में सर्दी से बचाव के साथ ही मांसपेशियों को मजबूती भी प्रदान करता है।

हेमन्त ऋतु में सूर्य के प्रकाश के सम्पर्क में रहने, आवश्यकतानुसार भूमिगृह (भूमि के भीतर तहखानों) एवं गर्भगृह अर्थात् घर के अन्दर घर बनाकर उसे गरम करके रहने का भी निर्देश है।[2] इस समय अपने शरीर को पूर्णरूपेण ऊष्ण वस्त्रों से ढककर रखना चाहिए।[3] अत्यधिक सर्दी में यात्रा करते समय स्वयं को भली भांति आवृत्त करके रखना चाहिये।[4] इस ऋतु में मैथुन को भी उपयुक्त बतलाया गया है।[5] लघु गुण वाले एवं शरीर में वात गुण को बढ़ाने वाले अन्न एवं पान का सर्वथा त्याग कर देना चाहिए- **वर्जयेदन्नपानानि लघूनि वातलानि च**।[6] वायु के सीधे सम्पर्क में नहीं आना चाहिए एवं प्रमिताहार का त्याग कर देना चाहिए[7], जिससे कि जठराग्नि को उचित आहार प्राप्त हो सके और

---

[1] वही, 6.13

[2] वही. 6.14

[3] प्रावाराजिन-कौशेय... ।- वही. 6.15-16

[4] वही. 6.15

[5] प्रकामं च निषेवेत मैथुनं शिशिरागमे ।- वही. 6.17

[6] वही, 6.18

[7] प्रवातं प्रमिताहारमुदमन्थं हिमागमे । ।- वही, 6. 18

अत्यधिक शीतलता होने पर भी शरीर पर वायु का प्रकोप न पड़े तथा उत्तम स्वास्थ्य लाभ प्राप्त होता रहे।

**शिशिर ऋतु में आहार-व्यवहार-**

माघ एवं फाल्गुन माह शिशिर ऋतु को समर्पित है। शिशिर ऋतु शीतलता की दृष्टि से प्रायः हेमन्त के ही समान होती है अतः शिशिर ऋतु में भी हेमन्त ऋतु के अनुसार बताए गए सम्पूर्ण नियमों का पालन करना चाहिये, किन्तु शिशिर ऋतु में आदान काल होने के कारण वायु में रुक्षता आ जाती है। मेघ, वायु और वर्षा के कारण ठण्ड अत्यधिक बढ़ जाने के कारण शिशिर ऋतु में हेमन्त ऋतु की अपेक्षा शीतलता से अधिक बचने की आवश्यकता होती है। अतः इस समय खुली वायु के सम्पर्क में आने से विशेष रूप से बचना चाहिए। हेमन्त की अपेक्षा अधिक ऊष्ण वस्त्र धारण करने चाहिए। यथासम्भव प्रयास करना चाहिए कि घरों में भी शीतल वायु प्रवेश न करे और ऊष्णता बनी रहे। इस समय कटु, तिक्त और कषैले अन्न एवं पान का सेवन नहीं करना चाहिये। वायुप्रकोपक, लघु(हल्का) तथा शरीर में शीतलता लाने वाले अन्न एवं पान को आवश्यक रूप से त्याग देना चाहिए- **हेमन्तशिशिरे तुल्ये..... वर्जयेदन्न-पानानि शिशिरे शीतलानि च।।**[1]

**वसन्त में आहार-व्यवहार-**

चैत्र एवं वैशाख माह वसन्त ऋतु को समर्पित है। इस समय प्रकृति का शृङ्गार देखते ही बनता है। वसन्त ऋतु में सर्दी कम हो जाती है। इस समय हेमन्त तथा शिशिर ऋतु से विपरीत आहार को उत्तम माना गया है। इस समय गरिष्ठभोजन, स्निग्ध एवं मधुर भोजन का त्याग कर देना चाहिए। पूर्णतः कफ को शान्त करने वाले भोजन और पेय का प्रयोग करना चाहिये। ऋतु के अनुसार मांसाहार भी बताया गया है। दिन में सोना छोड़ देना चाहिए। व्यायाम, काजल का प्रयोग, स्नानादि क्रियाओं में

---

[1] वही, 6.19-21

ऊष्ण जल का प्रयोग तथा स्त्री साहचर्य को उत्तम बताया गया है।[1] हेमन्त ऋतु में मानव शरीर में बहुत सा कफ संचित हो जाता है, जो वसन्त ऋतु के समय सूर्य की किरणों से द्रवीभूत होकर नानविध रोगों की उत्पत्ति का कारण बनता है।[2] हेमन्त ऋतु में शरीर में एकत्रित हुए कफ को निकालने के लिए वसन्त ऋतु में वमनादि कार्य करने चाहिये- **तस्माद्वसन्ते कर्माणि वमनादीनि कारयेत्**।[3] उल्लेखनीय है कि 'वमन या प्रेरित वमन पंचकर्म चिकित्सा की पांच शुद्धिकरण विधियों में से एक है। ....औषधीय जड़ी-बूटियों का काढ़ा अधिक मात्रा में प्रयोग करने से वमन प्रेरित होता है।'[4]

**ग्रीष्म ऋतु में आहार-व्यवहार-**

ज्येष्ठ एवं आषाढ़ माह ग्रीष्म ऋतु को समर्पित है। प्रकृति ऋतु के अनुरूप हमें कई अन्न और फल प्रदान करती है, जो हमारे स्वास्थ्य की दृष्टि से अत्युत्तम होते हैं। चरक संहिता में बताया गया है कि ग्रीष्म ऋतु में सूर्य की किरणें संसार के सारतत्व को अवशोषित करने लगती है,[5] अतः इस समय मीठा एवं शीतल पेय पदार्थ, स्निग्ध भोजन एवं पेय का प्रयोग करना चाहिये। घी एवं दूध के साथ चावल खाना विशेषतः लाभकारी है। मद्यपान नहीं करना चाहिये, यदि करना भी हो तो अल्प मात्रा में और अधिक पानी मिलाकर करना चाहिए। इस समय नमकीन, कटु एवं ऊष्म प्रभाव वाला खान-पान का त्याग कर देना चाहिए। व्यायाम छोड़ देना

---

[1] गुर्वम्ल-स्निग्ध-मधुरं दिवास्वप्नं....।।– वही, 6.23-26

[2] हेमन्ते निचितः श्लेष्मा दिनकृद्भाभिरीरितः।
कायाग्निं बाधते रोगांसततः प्रकुरुते बहून्।।- वही, 6.22

[3] वही, 6.23

[4] Vaman or induced emesis is one of the five cleansing methods of Panchkarma Chikitsa.... Giving decoction of medicinal herbs for ingestion in large amounts induces emesis.- http://www. swanayurveda.com-vamana

[5] चरकसंहिता, सूत्रस्थान, 6.27

चाहिए।[1]

प्राचीन काल में भारतीय वास्तुशास्त्र के अनुसार भवन निर्माण में ऋतुओं का भी पूरा ध्यान रखा जाता था। भवन निर्माण इस प्रकार किये जाते थे कि सर्दियों में गर्म और गर्मियों में शीतल स्थान भवन में प्राप्त हो। चरक संहिता में कहा गया है कि ग्रीष्म ऋतु में दिन के समय ठण्डे मकानों में रहना चाहिए और रात के समय चंद्रमा की किरणों से शीतल हुई मकान की छत पर खुली वायु में शरीर पर चन्दन लगाकर सोना चाहिए। घरों में पंखों की शीतल वायु और बाहर शीतल जल और कुसुमों से सुशोभित वनों उपवनों का सेवन करना चाहिए। ग्रीष्मकाल में मैथुन से विरत रहना चाहिए।[2] ग्रीष्म ऋतु में सूर्य की किरणों से ताप अत्यधिक बढ़ जाता है अतः आहार और व्यवहार दोनों में ही शीतल जल को अत्यधिक महत्त्व दिया गया है। अत्यधिक गर्मी में स्वास्थ्य की अवहेलना उच्चरक्तचाप, हृदय रोग, सर दर्द आदि अनेकानेक रोगों को जन्म देती है।

**वर्षा ऋतु में आहार-व्यवहार-**

श्रावण एवं भाद्रपद माह वर्षा ऋतु को समर्पित है। आदानकाल में शरीर में अत्यधिक दुर्बलता आ जाने के कारण अग्नि भी निर्बल हो जाती है। वर्षा ऋतु में त्रिदोष अर्थात् वात, पित्त और कफ तीनों के दूषण से अग्नि दूषित हो जाती है-

**आदान-दुर्बले देहे पक्ता भवति दुर्बलः।**
**स वर्षास्वनिलादीनां दूषणैर्बाध्यते पुनः।।[3]**

अतः वर्षा ऋतु में पाचन कमजोर हो जाने के कारण हलका, साधारण एवं सुपाच्य आहार ही लेना चाहिए। इस समय खान-पान में शहद का प्रयोग उत्तम होता है। जिस दिन वायु, वर्षा और सर्दी अधिक

---

[1] स्वादु शीतं द्रवं..... व्यायामं चात्र वर्जयेत्।।- वही, 6.27-29

[2] दिवा शीतगृहं निद्रां निशि.....मैथुनाद्विरतो नरः।।- वही,6.30-32

[3] चरकसंहिता, सूत्रस्थान, 6.33

हो, उस दिन वायु को शान्त करने के लिये अम्ल, लवण और स्नेह अर्थात् घृतादि युक्त भोजन करना चाहिये। जौ, गेहुं, पुराने चावल आदि खाने चाहिये।[1]

प्राचीन काल में जनमानस जल के लिये वर्षा, कूप, नदियों आदि में ही निर्भर था। वर्षा ऋतु में नदियों का जल साधारणतः पीने के योग्य नहीं रह जाता। अतः घर पर सञ्चित किया गया वर्षा का जल ही सर्वोत्तम माना जाता था। चरक संहिता में कहा गया है कि वर्षा ऋतु में आकाश से गिरा हुआ शुद्ध जल पीना चाहिए। इसके अतिरिक्त कुएं या तालाब के जल को उष्ण करके पुनः ठण्डा करके पीना चाहिए।[2] तैल की मालिश, उबटन लगाना, स्नान, सुगन्ध, मालाधारण को उत्तम बताया गया है।[3] साथ ही नाना प्रकार के विषाणुओं से बचने के लिए हल्के और शुद्ध वस्त्र पहनने तथा शुष्क स्थान में रहने का भी निर्देश प्राप्त होता है-

**लघुशुद्धाम्बरः स्थानं भजेदक्लेदि वार्षिकम्।।**[4]

**शरद् ऋतु में आहार-व्यवहार -**

आश्विन् एवं कार्तिक माह शरद् ऋतु को समर्पित है। शरद् ऋतु गर्मी और सर्दी के बीच की ऋतु है। शरद् ऋतु के आगमन पर वर्षा ऋतु में संचित हुआ पित्त सहसा कुपित हो उठता है, अतः इस समय पित्त को शान्त करने वाला खान-पान होना चाहिए। अतः शरद् ऋतु में मधुर, हल्का, शीतल, तिक्त तथा पित्तशामक अन्न एवं पेय पदार्थ परिमाण में ग्रहण करने चाहिये। चावल, जौ, गेहूं[5], तिक्त औषधियों से संस्कृत घृत का सेवन करना चाहिये। चर्बी, तैल, जलचर प्राणियों का मांस, क्षार, दही,

---

[1] वही. 6.36-38

[2] वही, 6.39

[3] वही, 6.40

[4] वही, 6.40

[5] वही, 6.41-43

दिन में सोना इत्यादि छोड़ देना चाहिये तथा वायु के सीधे सम्पर्क में नहीं आना चाहिए।[1] इस समय विरेचन, रक्तमोक्षण, शिरोवेध, जोंक आदि द्वारा रक्त का निकलवाना आदि कार्य करने चाहिये[2] जो कि शरीर से विषाक्त पदार्थों को निकालने, रक्त को शुद्ध करने और पित्त सम्बन्धी दोषों को दूर करने में सहायक हैं।

**निष्कर्ष-**

चरक संहिता में वर्णित उपर्युक्त ऋतुचर्या विज्ञान पूर्णतः वैज्ञानिक और उत्तम स्वास्थ्य लाभ की दृष्टि से उपयोगी है। भारतवर्ष में विभिन्न त्योहारों, उत्सवों आदि के अवसरों पर जिन व्यञ्जनों एवं मिष्ठान्नादि का विधान है, वे सब सामान्यतः ऋतुचर्या विज्ञान के अनुसार ही है। पुरुषार्थ चतुष्ट्य अर्थात् धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष ही जीव का प्रयोजन है, जिसकी प्राप्ति के लिये दीर्घ एवं आरोग्य जीवन की अत्यन्त आवश्यकता है और इस दृष्टि से चरक संहिता में वर्णित ऋतुचर्या विज्ञान मानव के लिये अमूल्य उपहार सिद्ध होता है, जिसके मूल में **सर्वजनहिताय सर्वजनसुखाय** की मङ्गलकामना निहित है।

**सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूची**

1. महाभारत, गीताप्रेस गोरखपुर, वि. सं. 2065 ।
2. चरक-संहिता प्रथम खण्ड, भार्गव पुस्तकालय प्रकाशन, बनारस, द्वितीय संस्करण।
3. चरक-संहिता, सूत्र स्थान (प्रथम अध्याय), महालक्ष्मी प्रकाशन, आगरा।
4. http://www. swanayurveda.com-vamana
5. https://www.easyayurveda.com

---

[1] वसां तैलमवश्यायमौदकानूपमामिषम्।
क्षारं दधि दिवास्वप्नं प्राग्वातं चात्र वर्जयेत्।।- वही, 6.45

[2] वही, 6.44

# वैदिक वाङ्मय में सूर्योपासना

डॉ. अर्चना ए. त्रिवेदी
आसी. प्रोफ़ेसर (संस्कृत विभागाध्यक्ष)
सरकारी विनयन महाविद्यालय कवांट
(जि.- छोटा उदयपुर) गुजरात

वेद भारतीय धर्म और संस्कृति के आदिस्रोत ग्रंथ हैं। कई देवताओं की सत्ता, प्रभाव और व्यापकता में विश्वास भारतीय धर्म का विशिष्ट अंग है। वैदिक ऋषियों ने अपनी सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि और अलौकिक कल्पनाशक्ति के द्वारा अनेक देवताओं की अवधारणा की थी। वैदिक ऋषियों की दृष्टि में विभिन्न देवताओं के अनुग्रह से जगत् का समस्त कार्य सञ्चालित होता है। भारत ही एक ऐसा देश है, जो विज्ञान और दर्शन के बीच परस्पर विरोध की गहरी खाई को दूर कर सकता है, क्योंकि हमारे पास ही एक उच्च दार्शनिक पृष्ठभूमि भी है और साथ ही आधुनिक वैज्ञानिक प्रकृति भी। अब समय आ गया है कि वेदों, उपनिषदों, पुराणों, महाकाव्यों में निहित प्रज्ञा का विश्व में प्रचार-प्रसार हो रहा है जो और तीव्र गति से किया जाय। इसी उद्देश्य से मैंने भी मेरे इस लेख में 'सूर्य' नामक एक वैदिक एवं प्रकृतिक शक्तिशाली देवता के स्वरूप को निरूपित करने का यत्किञ्चित् प्रयत्न किया है।

वैदिक मन्त्रों में देवताओं के स्थूल सूक्ष्म रूपों की मनोरम कल्पना है। विद्वानों ने उनके नाम, रूप, गुणों की विविध व्याख्याएँ की हैं। वैदिक देवताओं के स्वरूप के विकास की समीक्षा के लिए पुराण साहित्य में विपुल सामग्री है। संस्कृत का विशाल स्तोत्र साहित्य भी इस दिशा में महत्त्वपूर्ण योगदान करता है।

सूर्य इस जगत् में ऊर्जा के सबसे महान् शक्तिसम्पन्न स्रोत माने जाते हैं, इसीलिए विश्व के अनेक भागों में वे देवता के रूप में पूजे जाते

हैं। भारतीय लोग उन्हें पृथ्वी, आकाश, अन्तरिक्ष आदि लोकों, स्थावर व जङ्गम पदार्थों तथा अग्नि, वरुण, मित्र आदि सभी देवताओं की आत्मा मानकर उनकी गायत्री मन्त्र द्वारा अर्चना करते हैं और उनसे अपनी बुद्धि को सत्कर्मों की ओर प्रेरित करने की प्रार्थना करते हैं। ऋग्वैदिक ऋषियों द्वारा परिकल्पित देवताओं में से सूर्यदेवता की स्तुति युग-युगान्तर तक प्रचलित रही है। सूर्य प्रकृति की वह सर्वोच्च शक्ति हैं, जिसे हम प्रतिदिन देखते और अनुभव करते हैं। भारत में सभी कालों और सभी वर्गों के लोगों ने सौर मण्डल की भव्यता और सुन्दरता की ओर आकृष्ट होकर प्राणी- जीवन की सृष्टि और अवस्थिति के लिए सूर्य की महत्ता को स्वीकार कर उन्हें एक महान देवता के पद पर सुप्रतिष्ठित किया है। भारतीय दार्शनिक दृष्टिकोण के अनुसार तेजोमय सूर्यमण्डल में ब्रह्मरूप पुरुष विराजमान है। अतएव सूर्य परम सत्ता के सर्वोत्तम प्रतीक हैं। ब्रह्म का वाचक एकाक्षर ॐ भी उनसे सम्बद्ध है। सूर्य की उपासना का प्राचीनतम साहित्यिक प्रमाण ऋग्वेद की संहिता में मिलता है। गणेश, शक्ति, शिव, विष्णु और सूर्य इन पुराणप्रसिद्ध पञ्च देवों में सूर्यदेवता अन्यतम हैं। जैसे कि-

**'प्रत्यक्षं देवता सूर्यो जगच्चक्षुर्दिवाकरः ।**
**तस्मादभ्यधिकार काचिद् देवता नास्ति शाश्वती" ॥[1]**

कुषाण काल में कुषाण सम्राट् स्वयं सूर्योपासक थे। गुप्त सम्राटों के समय में विष्णु और शिव के अतिरिक्त सूर्योपासना के अनेक उल्लेख मिलते हैं, जैसे कि, मन्दसोर शिलालेख का प्रारम्भ भगवान् भास्कर की वन्दना से हुआ है। भारत के मध्यकालीन इतिहास का पूर्ववर्ती काल सूर्योपासना का स्वर्णिम युग रहा है। लगभग ११वीं शताब्दी में निर्मित कोणार्क का भव्य सूर्यमन्दिर उस युग के जनमानस की सूर्यभक्ति का प्रतीक है। निश्चय ही सूर्यदेवता ने ऋग्वेदकाल से लेकर आजतक भारतीय

[1] भवि.पु. १/४८/२१

देवमण्डल में विशेष सम्मान प्राप्त किया है।

भारत में सूर्योपासना का इतिहास जितना लम्बा है, उतना ही रोचक उनके स्वरूप का विश्लेषण है। अनेक प्रकार की प्राचीन और मध्यकालीन सूर्यप्रतिमाएँ आज देश के पुरातत्त्व विभाग की अमूल्य सम्पत्ति हैं। ऋग्वेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद की संहिताएँ तथा ब्राह्मण, आरण्यक उपनिषद् आदि वैदिक ग्रन्थों में मन्त्रद्रष्टा ऋषियों ने सूर्य और सविता आदि सौर देवताओं के अनेक सूक्तों और मन्त्रों का साक्षात्कार किया है। सूर्यदेवता के स्वरूप पर प्राचीन आचार्यगण शौनक, यास्क, सायण आदि ने, स्वामी दयानन्द सरस्वती, अरविन्द, सातवलेकर आदि विद्वानों ने तथा मैकडोनल, मैक्समूलर, कीथ, ऑल्डनबर्ग आदि विचारकों ने भी अपने विचार प्रस्तुत किये हैं।

वैदिक ऋषि सामान्यतया प्रकृति के उपासक थे, अतः उन्होंने प्रकृति के विविध तत्त्वों में देवभावना का आरोपण करके उनकी स्तुतियाँ की थीं। प्रकृति के विविधरूपों में विद्यमान एक दिव्य[१] चेतनशक्ति का देवाधिदेव के रूप में उन्होंने दर्शन किया था, जो जगत् की प्रत्येक क्रियाशीलता में व्याप्त है। समस्त ब्रह्माण्ड को द्युलोक, अन्तरिक्ष और पृथिवी इन तीन भागों में विभक्त किया गया है। यास्काचार्य के मतानुसार द्युस्थानीय देवता सूर्य, वरुण आदि, अन्तरिक्षस्थानीय इन्द्र, वायु आदि तथा पृथिवीस्थानीय देव अग्नि, सोम आदि हैं।

सूर्य आकाशस्थित भौतिक ज्योतिष्पिण्ड के देवता हैं। प्रकृति के सर्वशक्तिमान होने से समस्त प्राकृतिक गतिविधियों के वे केन्द्रबिन्दु हैं। कर्तृत्वबोधक देवों में 'सविता' प्रमुख है। ऋक्. ५/८१/५ मन्त्र में कहा गया है

**"उतेशिये प्रसवस्य त्वमेक इत्"**। यास्काचार्य ने भी निरुक्त १० / ३१ में कहा है- "सविता सर्वस्य प्रसविता"। उनके मतानुसार, अत्यधिक ऐश्वर्यसम्पन्न होने से एक देवता की भी कार्य और कारण भेद से कई प्रकार

और कई नामों से स्तुति की जाती है। तभी तो ऋ. ८/५८/२ में कहा गया है- " एकः सूर्यो विश्वमनुप्रभूतः"। सायणाचार्य दृढ़ रूप से परम शक्तिसम्पन्न सूर्य में सर्वदेवत्व का आरोपण करते हैं कि, "एकैव वा महानात्मा देवता स सूर्यः इत्याचक्षते। बृहद्देवता में शौनक ने सूर्य के सविता, भग, पूषा, विष्णु, केशिन्, विश्वानर, वृषाकपि इन सात नामों का उल्लेख किया है।२

ऋक्संहिता में 'सूर्य' एक महान् और व्यापक देवता का नाम है और विविध रूपों के वाचक हैं, यथा- सूर्य का भौतिक रूप 'सूर्य', प्रेरकरूप 'सविता', पोषकरूप 'पूषा', व्यापनशीलरूप 'विष्णु', सहायक- रक्षकरूप 'मित्र', भजनीयरूप 'भग', देदीप्यमानरूप 'विवस्वान्' हैं। इन सबमें कई सौर देवताओं का बोध होता है और सभी प्राकाश तथा तेज से सम्बद्ध हैं। इन सबको अतिशय वैभव के अधिष्ठाता, समस्त प्राणियों के दर्शक, निरीक्षक, मृतकों को उचित स्थान पर ले जाने वाले, अन्धकार के निवारक, कामनाओं के वर्षक और मनुष्यों को निष्पाप करने वाले कहे गये हैं।

यास्काचार्य ने 'सूर्य' शब्द की कई व्युत्पत्तियाँ की हैं-

(१) 'सूर्य' शब्द गत्यर्थक √ सृ से व्युत्पन्न है, अर्थ है-अन्तरिक्ष में गमनशील।

(२) प्रेरणार्थक √सू से निष्पन्न, अर्थ है-समस्त जगत को प्रेरित करने वाला।

(३) 'सु' उपसर्गपूर्वक गत्यर्थक √ ईर से बना, अर्थ है-शोभनरूप से गमन करते हैं अथवा वायु के द्वारा भूलोक के प्रति प्रेरित किये जाते हैं।

तैत्तिरीय ब्राह्मण के अनुसार, 'शोभनवीर्य से सम्पन्न होने से सूर्य का सूर्यत्व है"३।

ऋग्वेद में सूर्य की उत्पत्ति के सम्बन्ध में इन्द्र, वरुण, सोम, विष्णु, मित्र, अग्नि आदि अनेक देवताओं का उल्लेख है और उनसे

सम्बन्धित सभी मन्त्रों में सूर्य के भौतिक प्रकाश की ओर संकेत है। वसिष्ठसूक्तों में सूर्य का जन्म 'उषा' द्वारा कहा गया है। ऋग्वेद में सूर्य की माता अदिति हैं, इसलिए 'आदित्य', 'आदितेय' सूर्य विशेषण इसी के ही आधार पर है। पिता 'द्यौ' हैं, क्योंकि वे 'दिवस्पुत्र' हैं। अथर्ववेद ४/१०/५ के अनुसार सूर्य का जन्म वृत्र से बताया गया है-"वृत्राज्जातो दिवाकरः क्योंकि मेघरूप वृत्र से अनाच्छादित होकर सूर्य प्रकट होते हैं।

पुरुषसूक्त, ऋ. १०/१०/१३ के अनुसार सूर्य की उत्पत्ति विराट् पुरुष के चक्षु से हुई है- "चक्षोः से हुई है- **"चक्षोः सूर्यो अजायत"**।

जिस प्रकार सांसारिक जीवन में भाई भाग-ग्रहण करता है। उसी प्रकार वृष्टि के लिए रस ग्रहण से वायु का और रात्रि में सूर्य से तेज लेने से अग्नि का सूर्यदेवता के प्रति भाईचारा है। सूर्य का एक विशेषण 'सप्तपुत्र' भी है। जिससे सूर्य की सात रंग की किरणों में उनके पुत्रभाव की प्रतीति होती है। सूर्य की तीन पत्नियों का वर्णन 'निरुक्त"[४] और 'बृहद्देवता"[५] में प्राप्त होता है, जैसे कि, सूर्योदय से पूर्व उषा, मध्याह्न में सूर्या और सूर्यास्त के समय वृषाकपायी! ऋषि की उत्प्रेक्षा है कि सूर्य उषा का अनुसरण वैसे करते हैं जैसे कोई पुरुष सुन्दर स्त्री का। ऋषियों ने सूर्योदय से सूर्यास्त तक की समस्त प्रक्रियाओं का सूक्ष्म निरीक्षण किया था। सूर्य उदयाचल को आक्रान्त करके उदित होते हैं। फिर पूर्व दिशा में माता पृथिवी को प्राप्त करते हैं, पश्चात् पिता द्युलोक की ओर शीघ्रता से जाते समय अत्यन्त शोभायमान होते हैं। अत: सूर्य की प्रकाशमयी दीप्ति आकाश और पृथिवी के मध्य में चलती है। सभी प्राणियों की सूर्य के प्रति समान भावना की पुष्टि तैत्तिरीय संहिता में भी देखी जाती है --

**"तस्मात्सर्व एव मन्यते त्वां प्रत्युद्गात्।[1]"**

विश्व-कल्याण के लिए ही सूर्य के अश्व उनके रथ को खींचते है। ऋग्वेद में सूर्य को सभी ज्योतियों में उत्तम ज्योति कहा गया है,

---

[1] तै.सं. ६/५/८/२

क्योंकि वे सभी ज्योतियों के प्रकाश कारण है। आधुनिक विज्ञान के अनुसार सूर्य मूल ज्योति है। शतपथब्राह्मण में कहा गया है- "असौ वा आदित्यो (सूर्यः) बृहज्योतिः"। (श.ब्रा. १/९/३/१६), यजुर्वेद में भी कहा है-"एष वै श्रेष्ठो रश्मिः यत् सूर्यः"। सायण ने इसे 'द्योतमान' अर्थ में ग्रहण किया है (यजु, २/३६)। ऋग्वेद के सूर्यसूक्तों में सूर्य का प्रकाशरूप सुस्पष्ट है। विश्व के प्रकाशक या द्रष्टा होने से वे विश्वचक्षाः हैं। सूर्य का उदय दिन का सर्जन और रात्रि का नाश करता है, इसलिए वे अन्धकारनिवारक भी हैं। (ऋग्वेद ७/६/ ३/१) में कहा गया है-'चमेंव यः समविव्यक तमांसि । सूर्य के अभाव में समग्र जगत् अन्धकारपूर्ण है इसकी तथ्यता ऋषि ने अपनी स्तुति द्वारा की है कि- "जब उनको स्वर्भानु नामक असुर ने तम से आच्छादित कर लिया था, तब सकल भुवन ऐसे दिखाई दे रहा था जैसे वहाँ सभी प्राणधारी असत्य हो"। वस्तुतः सूर्य के दोनों रूप एक-दूसरे के पूरक हैं।

सूर्य प्रकाशक होने से द्रष्टा भी हैं, वे मनुष्यों के सभी कर्मों को देखते हैं-'पश्यञ्जन्मनि सूर्य'। ऋ. १/५०/७ में वे प्राणियों के भले (यजु) और बुरे (वृजिनः) कर्मों को देखते हैं। सभी की दर्शनशक्ति का मुख्य आधार सूर्य हैं। मनुष्यों के नेत्रों के साथ सूर्य का घनिष्ठ सम्बन्ध है, क्योंकि वस्तुतः वे ही नेत्रों का तेज है। ऋषि ने अपने चक्षुओं के लिए सूर्य से 'चक्षु' की याचना की है। सूर्य को चक्षु के रूप में मानना वैदिक ऋषियों के वैज्ञानिक दृष्टिकोण पर आधृत है। श्री अरविन्द के अनुसार आध्यात्मिक अर्थ में सूर्य मानवीय चेतना पर उदित होने वाले सत्य का प्रकाश हैं, वे ही स्रष्टा और सर्वद्रष्टा हैं। वे मानव जाति के प्रेरक, उद्बोधक, सभी व्यापारों के हेतुस्वरूप और विश्वकर्मा के रूप में स्तुत्य हैं। ऋषियों ने अपनी ऋचाओं में उनके 'वर्षक' रूप की स्तुतियाँ की हैं। सूर्य की अत्यधिक तेज सम्पन्न रश्मियाँ पृथिवी से जल को दोहन करती है और उसका पान करती है।[६] सूर्य- रश्मियाँ रस का हरण करती हैं और सूर्यमण्डल उन्हें धारण करता है।

सायण ने सूर्य को 'उदकप्रद' और वैकुठमाधव ने 'उदकवान्' अर्थ में 'अर्णवः' कहा है। "चत्वारि शृङ्गा त्रयो अस्य पादाः " की सूर्यपक्ष में व्याख्या करते हुए सायण ने 'वृषभ' को 'वर्षिता' सूर्यदेव कहा है। वृष्टिप्रदाता होने से सूर्य शस्योत्पादक भी हैं।

ऋग्वेद में सूर्यसूक्तों में काल-निर्धारण में सूर्य के महत्त्व को सविशेष ध्यान में लिया गया है। अहोरात्र के कर्ता के रूप में अनेकशः उनका उल्लेख हुआ है। ऋ. ४/५८/३ की सूर्यपक्षीय व्याख्या में सायण ने रात और दिन को सूर्य की दो सिर (द्वे शीर्षे) और सात ऋतुओं को सूर्य के सात हाथ (सप्त हस्तासो अस्य) कहा है। सायणाचार्य और सातवलेकरजी ने यहाँ स्पष्ट रूप में सूर्य का ग्रहण करते हुए उन्हें बारह महीनों के रूप में बारह आकृतियों वाला और पाँच सूर्य ऋतुओं के रूप में पाँच पैरों वाला (सायण) अथवा अयन, मास, ऋतु, पक्ष, दिन-रात के रूप में पाँच पैरों वाला (सातवलेकर) मानकर काल नियामक के रूप में स्वीकार किया है। ये सूर्य संवत्सररूपी रथ पर चढ़ते हैं, जो सात चक्रों (अयन, मास, ऋतु, पक्ष, दिन, रात, मुहूर्त) वाला और छः ऋतुरूपी छः अरो वाला है।[७]

ऋग्वेद के स्तोता ने 'इष्टप्रदाता' के रूप में सूर्यदेवता के प्रभुत्व का विविध चित्रण किया है। वे अन्न या बल के श्रेष्ठ दाता हैं, इसलिए उनसे धन की याचना की गई है। प्रत्येक परिस्थिति में उनका सुखकारी रूप उपासक का अभीष्ट है। सूर्य से भद्र के साथ-साथ चिरकाल तक जीवन धारण करते हुए वृद्धत्व प्राप्ति की कामना की गई है। चिरकाल तक सूर्य को देख सकने की इच्छा में दर्शनशक्ति के साथ-साथ पूर्णायु की अभिलाषा भी निहित है।[८] एक जगह सूर्यदेव को सम्बोधित करके कहा गया है- "हम सर्वदा प्रीतियुक्त, शुभमन - सम्पन्न, उत्तम दर्शन वाले, सुसन्तानों से युक्त, निरोग और निरपराध हों तथा जीवित रहते हुए निरन्तर उदीयमान तुम्हारा दर्शन करते रहें।" (ऋ. १०/३७/७)

सायण के अनुसार सूर्य को 'अनिष्टनिवारक' अर्थ में 'वरुण'

सम्बोधन दिया गया है— 'त्वं वरुण पश्यसि'। ऋक्संहिता का एक सम्पूर्ण सूक्त — ऋ. १/१६१ विषशङ्कायुक्त मैत्रावरुणि अगस्त्य ऋषि द्वारा विषनाश के लिए सूर्य की स्तुति है। इस सूक्त को विषघ्नोपनिषद् भी कहते हैं। इसमें दृष्ट- अदृष्ट समस्त विषधरों के हन्ता सूर्य हैं। लाक्षणिक अर्थ में संकेत है कि अनेकविध-चिन्ताएँ, आशङ्काएँ, अज्ञान सूर्योदय पर प्रायः नष्ट हो जाते हैं। ऋचाओं में स्तुत्य रोग निवारक के रूप में सूर्यदेवता निःसन्देह मानवमात्र के स्वास्थ्य का मुख्य आधार हैं। आज भी रोगशान्ति के लिए ऋग्वेद के मन्त्रों की उपासना की जाती है। वहाँ कहा गया है. "सूर्यदेव आज उदित होते हुए हमारे हृदयरोग, पीलिया जैसे रोग नष्ट कर दें"। सूर्य-प्रकाश अनेक रोगों की उत्तम औषधि है। सायण के अनुसार सूर्य के 'तरणिः' विशेषण का अर्थ ही है- 'उपासकों को रोग से तारने वाले।'

सूर्य के पोषक, रक्षक गुणों की भी अत्यधिक महत्ता सूर्यसूक्तों और ऋचाओं में देखी जाती है, इसी वजह से वे 'पूषन्' और 'मित्र' नाम से उद्बोधित हैं। विश्वसंरक्षक और जनहितकारी सूर्य अपने तेज से सब लोगों का पोषण करते हैं। 'एकचक्र' कहा है तो कभी 'सप्तचक्र' भी कहा गया है। उनका रथ यदि सूर्यमण्डल है, तो चक्र संवत्सर है। चक्र की तीन नाभियाँ, तीन ऋतुएँ अथवा भूत, वर्तमान, भविष्य तीन काल हैं और द्वादश अराएँ, मेष आदि द्वादश राशियाँ अथवा द्वादश मास हैं। निघण्टु के अनुसार 'हरित' आदित्य के वाहक अश्वों का नाम है, निःसन्देह सूर्य के हरितवर्ण सात अश्व उनकी सात रश्मियाँ हैं। उनके अश्व अर्थात् किरणें कल्याण करने वाली जल हरण करने वाली विलक्षण, आनन्ददायक, सतत गतिशील हैं। रेले ने मौलिक उद्भावना करते हुए मनुष्य के मध्य मस्तिष्क में स्थित प्रमुख प्रेरक केन्द्र को सूर्य कहा है और उनके रथ को खींचने वाले सात अश्वों को उस केन्द्र से इन्द्रियों के विशेष अंगों तक जाने वाले अपवाही स्नायु-तन्तु माना है।[९] सूर्य तेज, बल, वीर्य द्वारा महान् हैं। वे प्रायः सभी कर्ता और स्थावर-जंगम के आत्मा हैं। उनके उदित होने से

समग्र जगत् चेतनयुक्त हो जाता है, इसलिए उन्हें प्रजाओं का प्राण कहा गया है।[१०] सूर्य की महिमा की चरमसीमा है, उनका सर्वदेवत्व या ब्रह्मत्व ऐतरेय ब्राह्मण में भी उनका यह रूप वर्णित है-- "हंसः शुचिषदित्येष वै हंसः शुचिषत्"। (ऐ.ब्रा. ८/२०) वे अन्य देवताओं के रूपों को धारण कर सकते हैं। उनके द्वारा ही अन्य देवता अस्तित्ववान् हैं।

बलदेव उपाध्याय के अनुसार, एक सूर्य-मन्त्र उनके विविध रूपों का स्पष्ट वर्णन करते हुए ऋषि ने बताया है कि, उत्+तर, (उत्तर) उत्+तम (उत्तम) जो माहात्म्य में क्रमशः बढ़कर हैं, जैसे कि भौतिक अन्धकार के निवारण में समर्थ उनकी ज्योति 'उत्' है, देवों के मध्य में देवरूप ज्योति 'उत्तर' है और दोनों से बढ़कर विशिष्ट ज्योति 'उत्तम' है। अतः ये तीनों शब्द सूर्य के कार्यात्मक, कारणात्मक और कार्यकारण से अतीत अवस्था के द्योतक हैं।

मैक्समूलर ने सविता में व्यक्तिगत तथा दिव्य तत्त्वों को अधिक विकसित माना है। ऋग्वेद में सविता एक सौर देवता हैं और उनकी स्तुतियों द्वारा सूर्य की प्रेरक शक्ति का गुणगान किया गया है। सविता से पृथिवी उत्पन्न हुई है, अन्तरिक्ष निर्मित हुआ है और द्यावापृथिवी विस्तीर्ण हुई है। यहाँ सायण कहते हैं- "उदत्यात्पूर्वभावी सविता उदयास्तमयवर्ती सूर्यः"। वैंकटमाधव के मत में प्रातःकाल जल से उदित होने के कारण वे 'अपां नपात्' हैं।

सविता देव ऋतुओं का निर्माण करते हैं। 'उतेशिषे प्रसवस्य त्वमेक इदुत' – (ऋ. ५/८१/५) ऋचा में सविता को समस्त प्रसव का शासक और स्वामी कहा गया है।

ग्रिसर्वाल्ड उन्हें प्रेरणा का स्वामी बताते हैं। तेजस्वी सविता के अस्त होने पर शत्रुओं को जीतने की इच्छा रखने वाला वीर अपने आक्रमण को रोक देता है और सदैव काम करने वाला आधे किए हुए काम को छोड़कर घर आ जाता है। (ऋ. २/३८/६) इसी तरह ऋ. ४/५८/२,४,५

मन्त्रों के अनुसार वे यजमानों को गृह से युक्त निवास प्रेरित करते हैं, देवताओं को अमृतत्व और मनुष्यों को पुत्रपौत्रादि प्रदान करते हैं। गायत्री मन्त्र, 'धियो यो नः प्रचोदयात्'- (ञ्र. ३/६२/१०) के मत से वे कर्म अथवा धर्म से सम्बद्ध बुद्धि को प्रेरित करने के लिए प्रार्थित हैं। व्हिटनी का मत है कि इस मन्त्र की पवित्रता का कारण यह है कि इसमें सविता का सूर्य के साथ तादात्म्य व्यक्त किया गया है। ऋग्वेदसंहिता के कई सूक्तों और मन्त्रों में सूर्य, पूषा के रूप में भी देखे जाते हैं। वे पोषक, पशुपालक, मार्गज्ञाता, मार्गसंरक्षक, पृथीनामधिपतिः, समृद्धिदाता, शत्रुविनाशक, उपासकों के सखा, यज्ञनिर्वाहक आदि स्वरूप के कारण ऋग्वेद में एक स्वतन्त्र और महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। कई बार 'उड़ने वाले अश्व' के रूप में भी वे वर्णित हैं। व्यापनशीलता, गमनशीलता को विष्णु का प्रधान गुण माना गया है। ऋग्वेद में इनकी स्थिति सूर्यदेवता के एक रूप विशेष प्रतिनिधि देवता की है।

आप्टे के मत में विष्णु सम्भवतः सूर्य की क्रियात्मक शक्ति के प्रतिरूप हैं। एक ऋचा में उनके विष्णु का 'आदित्यात्मा'[११] स्वरूप दर्शाया है, फिर भी सूर्य को जन्म देने या प्रकाशित करने का श्रेय विष्णु को दिया गया है।

ऋ. २/२७/१ के आधार पर द्युस्थानीय आदित्यगण में मित्र का स्थान महत्त्वपूर्ण है। मित्र के रूप में सूर्य की धारक, रक्षक, सहायक, वर्षक के रूप में सार्थकता है। अतः ऋग्वेद में मित्र सूर्य का वह रूप है जो प्राणिमात्र के लिए उनके हितकारी स्वरूप का बोध कराता है। आदित्यगण के एक अन्य देवता 'भग' जिनकी स्तुति ऋग्वेद में सविता देवता के साथ की गई है।

पाश्चात्य विद्वान् वेलिस् के मत से प्राचीन सूर्योपासना में मन्त्र का सौर स्वरूप में अस्तित्व रहा है।[१२] संहिता में वे वैभव, सम्पत्ति, भद्र, सौभाग्य के अभिप्राय में है और वैदिक विद्वानों ने इसे देनेवाला,

विभाजनकर्ता, वितरणा करने वाला अर्थ में प्रयुक्त किया है। अतएव ऋग्वेद में भग को सूर्य के धनवान्, दानशील, भुजनीय, सुरक्षाप्रिय रूप का प्रतिनिधि देवता मानना सर्वथा युक्तियुक्त है।

ऋग्वेद में 'विवस्वान्' को एक सूर्य सम्बद्ध, सौर देवता के रूप में अनेक विद्वानों ने स्वीकारा है और भिन्न-भिन्न प्रकार से उनकी सूर्य के रूप में व्याख्या की है । जैसे कि -

(१) केग - प्रातः कालीन सूर्य के रूप में

(२) ब्लूमफील्ड- सूर्य का प्रारम्भिक रूप,

(३) रेनो, कीथ, ग्यून्तेर्त-सौर देवता के रूप में

(४) जे एन बेनर्जी—सूर्य का उदयकालीन रूप,

(५) त्रिपाठी... भौतिकस्वरूप के प्रतिनिधि देवता,

(६) बर्गेन अग्नि का एक स्वरूप श. ब्रा. ३/१/४ और तै.सं. ६/५/ ६/२ के अनुसार सम्पूर्ण मनुष्य विवस्वान् की सन्तान हैं। सूर्य का देदीप्यमानरूप उनके उदीयमानरूप का प्रतिफल है।

इस प्रकार सूर्य देवता की विशालता और महनीयता ऋकसंहिता में उनके अनेक रूपों और नामों की उद्भावना का आधार रही है। उनके सविता आदि कुछ नाम पर्याप्त और महत्त्वपूर्ण रूपों के वाचक होने से स्वतन्त्र देवताओं के अभिधान बन गये हैं, तो अयम्न् आदि कुछ दूसरे नाम गौण सौर देवताओं के स्तर तक ही रह जाते हैं।

ऋकसंहिता में वर्णित सूर्यदेवता के स्वरूप के क्रमिक विकास के अध्ययन के लिए वैदिक वाङ्मय के अन्य ग्रन्थों में प्राप्त सूर्य-स्तुतियों का अध्ययन बहुत जरूरी है। यजुर्वेद कर्मकाण्ड का ग्रन्थ है। शुक्लयजुर्वेद की वाजसनेयि संहिता में सूर्य को ज्योति और ज्योति को सूर्य कहा गया है। यहाँ आदित्य नामक सूर्यसम्बद्ध देवता भी स्तुत्य, है और वे भौतिकरूप तथा ब्रह्मरूप से बोध होता है। यजुर्वेदीय ऋषियों के मत से सूर्य स्वयं यज्ञरूप हैं, इसलिए उनका अग्नि से तादात्म्य है। यहाँ सूर्य को दिवस रात्रि

को मिलाने वाला (संहितः), पृथ्वी को धारण करने वाला (गन्धर्वः) तथा उनकी आयुवर्धक रश्मियों को आयुषः नामक अप्सराएँ कहा गया है।[१३] उनका चक्षु के रूप में वर्णन होने से वे नेत्रदोष निवारक और चक्षुः प्रदाता माने गये हैं।

भाष्यकार महीधर ने सूर्य के "ब्रह्म तथा सूर्य" अर्थात् निर्गुण और सगुण दो रूपों का प्रातिपादन किया है, जैसे कि, एक रूप अनन्त ब्रह्म जो शुक्ल और दीप्तिमान् रूप है और दूसरा कृष्णवर्ण, जो इन्द्रियग्राह्य है।

यजुर्वेद की संहिता के मन्त्रों में सविता "प्रेरकों के ईश्वर" हैं। शुक्ल यजुर्वेद संहिता में गायत्री मन्त्र सविता की प्रेरणा की प्रसिद्धि का भी द्योतक है। सविता को भग, पूषा भी कहा गया है। वे सूर्य का एक रूप हैं, इसलिए उनकी अपरिमिति दीप्ति आकाश में सबसे ऊपर प्रतिष्ठित है। सविता से प्रार्थना करने से दीर्घकालीन रोगों से मुक्ति होती है। उन्हें छः ऋतुओं का विजेता, सोमरक्षक, ज्योति का कर्ता, सबमें व्याप्त, सर्वज्ञ, सर्व देवताओं का आश्रय कहा गया है[१४]। यज्ञ को प्राधानता देने वाली यजुर्वेद-संहिताओं में 'विष्णु' प्रायः 'व्यापक यज्ञपुरुष' या 'यज्ञरूप' में ग्रहण किये गये हैं। विष्णु के 'परमं पदम्' की व्याख्या महीधर और उव्वट ने 'आदित्यमण्डल' के रूप में की है। आचार्य सायण के मत से मित्र सूर्य का वाचक है। "विवस्वन्नादित्यैष ते सोमपीशः" मन्त्र में विवस्वान को सम्बोधित किया गया है, जिनको उव्वट और महीधर ने सूर्य का विशेषण पद माना है— वा.सं. ८/५ में अर्यमन् अपने यजमान को अखण्ड तेज, आयु प्रदान करते हैं। वे धन, सुख, कल्याण की कामना के लिए आह्वनीय हैं, इसलिए आदित्यगण एक देवता के रूप में अधिक प्रतीत है। द्वादश आदित्यों में सूर्य मुख्य हैं, यास्क का भी यही मत है।[१५]

'सामन' का आधार ऋचा ही है- "ऋचि अव्यूढं साम गीयते "।[१६] सामवेद में भी ऋग्वेद के समान सूर्य को महान आदित्य बताया गया है। वे अन्धकाररहित उषा को प्रेरित करते हैं और प्रकाशयुक्त चन्द्रमा को भी

अपने प्रकाश से तेजहीन कर देते हैं। सूर्य के सविता, विष्णु, पूषा आदि रूप यहाँ भी स्तुत्य रहे हैं।

अथर्ववेद की संहिता धर्म के उच्च स्तर पर देवताओं के विकसित रूपों को दर्शाती है, जिनके कार्य विशेष रूप से राक्षसों का संहार, रोगों का नाश, शत्रुओं का विध्वंस आदि है, जिनकी उपयोगिता सांसारिक सुख और शान्ति के लिए है । मैकडॉनल के शब्दों में- " अथर्ववेद में देवशास्त्र का कोई ही ऐसा पहलू मिलेगा, जिसका संकेत ऋग्वेद में न आ चुका हो । यहाँ स्तुत सूर्य सविता, पूषा, विष्णु, मित्र, भग, विवस्वान्, अर्यमन् आदि सौर देवता ऋग्वेद में प्राप्त हैं। वृषाकपिका ऋग्वेदीय सूक्त ऋ. २०/१२६ यहाँ यथावत् प्राप्त होता है। 'एकं ज्योतिर्बहुधा विभाति' उक्ति सूर्यदेव के बहुरूपत्व की सिद्धि करती है। इस वेद में सूर्य देवता की सम्पूर्ण बारह सूक्तों तथा कई मन्त्रों में स्तुतियाँ की गई हैं। उनके उदित होते ही नक्षत्र भाग जाते हैं, क्योंकि वे तारों के प्रकाश को क्षीण करने में समर्थ हैं। सूर्य और चन्द्र शिशुवत् आकाश में क्रीडा करते हैं और भ्रमण करते हुए समुद्र तक पहुँचते हैं। यहाँ रोग, शत्रु, प्रतिपक्षी के निराकरण में सूर्यदेवता का महत्त्वपूर्ण योगदान है। सूर्य अरोग्य देते हैं और शरीर के सब दोष बाहर निकाल देते हैं। अथ. १/३/५ देव - सामान्य की भाँति सविता से यश, पापमुक्ति, दुष्कर्मकर्ताओं के निवारण, उत्तम मन, शत्रुसेना के नाश, सुमति और सौभग के लिए प्रार्थनाएँ हैं। अथर्ववेद संहिता के भाष्य में सायण ने सविता को अन्तर्यामी होने से सर्वप्रेरक सूर्य का वाचक माना है।[१७]

पूषा की स्तुति में अथर्ववेद संहिता के चार सम्पूर्ण सूक्त तथा कई मन्त्र प्राप्त होते हैं, जिनसे उनके ऋग्वेदीय पोषक और मार्गदर्शक रूपों की ही मुख्यतः पुष्टि होती है। उसके एक सूक्त का विनियोग : गर्भिणी स्त्री के सुखप्रसव कर्म में बताया गया है। वे प्रजा, दीर्घायु, धनधान्य, पापमुक्ति और रक्षा के लिए प्रार्थनीय हैं। वे स्वस्तिदाता, तेजस्वी, सर्ववीर हैं। ऋग्वेद की तरह अथर्ववेदसंहिता में भी प्रायः विष्णु के त्रिक्रमण द्वारा तीनों

लोकों के धारण और निर्माण का उल्लेख किया गया है। दार्शनिक दृष्टि से विष्णु को विश्व-बीज का नियामक माना गया है। सायण के अनुसार अन्धकारहरण, पदार्थ - प्रकाशन, सकल कर्म- निवर्तन, वृष्टि-प्रदान, आरोग्यकरण तथा मोक्ष-प्रदान सूर्यदेव के वीर्य कर्म हैं।[१८] 'मित्र' का आवाहन अधिकांश में रक्षणार्थ हैं। वे अपनी प्रासरणशील किरणों द्वारा विस्तृत भूमि को व्याप्त करते हैं और ऋतुओं को व्यवस्थित करते हैं। अथर्ववेद संहिता के भाष्य में सायण ने 'भग' को सौभाग्यकर देव बताया है : 'भगं भक्षि', 'भगो मा भगेन अवतु', 'भगस्य जुष्टा' 'मन्त्रांशों में 'भग' शब्द ऐश्वर्य, भाग्य या धन का वाचक है। उषाओं के पश्चात् भग का आगमन उनके सौर स्वरूप का बोध कराता है।

'विवस्वान्' उपासनीय है, क्योंकि मृत्यु से बचाते हैं। अथर्ववेद संहिता में दो सूक्त अर्यमन् के निमित्त है, जहाँ इसका आवाहन विशेषरूप में विवाह के सम्बन्ध में, विवाह - देवता के रूप में है। इस वेद के सूक्तों में रोहित को द्युलोक का देवता बताया है। ब्लूमफील्ड ने रोहित को उदीयमान लाल सूर्य का वाचक, कर्मबलेकर, आचार्य सायण के मत से क्रमशः प्रकाशमान रक्तिम सूर्य और उदीयमान सूर्य ही समझा है। वे राष्ट्र को परिपुष्ट करते हैं। ऋग्वेद में सूर्यमण्डल की जो विशेषताएँ हैं, वे ही सामान्यतया रोहित से संयुक्त की गई हैं। वे भूत और भविष्य के जगत् के स्वामी भी हैं। मैकडोनल के मत से रोहित सूर्य के एक विशेषण के रूप में से आज सर्जन के एक पृथक देवता के रूप में हैं। सायण ने सभी को अपने-अपने कर्मों और उनके फलों से बाँधने वाले 'संयोजक' सूर्य का नाम 'ब्रह्म' बताया है।

यजुर्वेद की तरह अथर्ववेद में भी सात सूक्तों में 'आदित्य' नाम से सूर्यदेवता की स्तुति की गई है। उनसे अन्न, बल, पशु, पुत्र और शतायु इत्यादि प्रार्थित है। आदित्य गर्भाधान के लिए गर्भाशय को विस्तृत करते हैं और उसमें पुत्र की स्थापना करते हैं। इस प्रकार जीवन को दुःख रहित

और सुखी बनाने के लिए सूर्य की उपादेयता को अथर्ववेदीय ऋषियों ने सम्यक्तया समझा था और विविध नामों से उनकी उपासना की थी। सूर्य परब्रह्मस्वरूप और व्यापकसामर्थ्य से संयुक्त हैं। उनसे इस लोक में भौतिक सुखोपलब्धि और देहत्यागानन्तर अमरत्व की याचना का यही औचित्य है।

ब्राह्मण ग्रन्थों में यज्ञ का महत्त्व विशेष है, इसीलिए पृथक-पृथक सभी देवताओं की तरह सूर्य के यज्ञरूप में ग्रहण करना इसी धारणा का संकेतक है। सूर्य यज्ञ के शीर्षस्थानीय हैं। सूर्य का सविता, पूषा, मित्र और आदित्य नाम ब्राह्मणों में अतिप्रचलित है। द्वादशात्मा सूर्य की अवधारणा का प्रारम्भ ब्राह्मणों से ही माना जा सकता है । ब्राह्मणों में सभी के प्राणों को धारण करने के कारण आदित्य को प्राण कहा गया है।

प्राणविद्या की महिमा का गान करने वाले आरण्यक ग्रन्थों में लोकजीवन के लिए प्राणवत् आवश्यक तथा उपकारी सूर्य को प्राण से समीकृत किया गया है। तैत्तिरीय आरण्यक में सूर्य के सात नाम बताने के साथ सहस्र सूर्यों की धारणा भी देखने को मिलती है।[१९] सूर्य के नाना रूपों का आधार है— ऋतुओं की अनेकता। सूर्य सर्वदेवहितकारी होने से 'देवहित' हैं, उनसे धन, पशु, प्रजा की कामनाएँ की गयी हैं। आरण्यकों में आदित्यमण्डल में परब्रह्मोपासना का उपदेश दिया गया है कि आदित्यमण्डल में जो पुरुष है वही हिरण्यमय पुरुष है। यहाँ सूर्य को यज्ञ, प्राण और ब्रह्म से समीकृत किया गया है।

**<u>उपनिषद्-</u>** साहित्य का एक बड़ा भाग देवताओं के नामों पर ही है। उपनिषदों की मान्यता है कि, देवोपासना द्वारा साधक अपने अभीष्ट काम्य-प्रयोजनों की सिद्धि कर सकते हैं। सूर्योपनिषद् तथा चाक्षुषोपनिषद् पूर्णतया सूर्यदेवता की स्तुति और स्तुति के परिणामों का ही वर्णन करते हैं। छान्दोग्योपनिषद् में कौषीतकि ऋषि ने सूर्योपासना द्वारा पुत्र - प्राप्ति की बात कही है। सूर्योपनिषद् में सूर्याष्टाक्षर मन्त्र के जपफल के अन्तर्गत = ब्रह्मज्ञान, रोगनिवृत्ति, दरिद्रतानाश, पापनाश आदि का उल्लेख है। सूर्य

नेत्रों का तेज है इसीलिए उनसे चक्षु प्रदान करने की याचना है। "असतो मा सद् गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्माऽमृतं गमय" प्रार्थना चाक्षुषोपनिषद् और अक्ष्युपनिषद् में प्राप्त है।

संहिताओं की तरह उपनिषदों में भी सूर्य के पूषा, अर्यमन्, सविता, विष्णु, मित्र, आदित्य नामों का अनेक बार प्रयोग हुआ है। सूर्य को परमात्मा का चक्षु कहा है|२० और विशेषरूपेण ब्रह्म या ब्रह्म का एक रूप माना गया है। वह ब्रह्म के मूर्तरूप हैं। मैत्राण्युपनिषद् में परमात्मा के प्राण को अन्तरात्मा और सूर्य को बहिरात्मा कहा गया है। सावित्र्युपनिषद् में सविता और सावित्री के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए सविता को अग्नि, वायु, यज्ञ, आदित्य, पुरुष आदि बताया गया है। अथर्ववेदीय सूर्योपनिषद् में 'श्रीसूर्यनारायण' की स्तुति में उन्हें त्रैलोक्यरूप स्थावर और जङ्गम जगत की आत्मा, सर्वदेवों का आधार आदि कहा गया है। ब्रह्मरूप आदित्य का प्राणियों के उत्पादक, पालक और नाशक के रूप में स्तवन किया गया है। अतः उपनिषदों में सूर्य को परमात्मा की एक शक्ति होने से परमात्मा माना गया है। वैदिक सूर्यदेव की 'सूर्यनारायण' के रूप में स्तुति का प्रारम्भ उपनिषदों से ही माना जा सकता है।

इस प्रकार वैदिक स्तुतियों में सूर्यदेव का स्तवन कभी सीधे किया गया है और कभी माध्यम से। ऋक्संहिता और दूसरे वैदिक ग्रन्थों में सूर्य के अतिरिक्त सविता आदि जिन नामों से सूर्य की स्तुतियाँ हैं, वे सूर्य के रूप, गुण अथवा कर्मों पर आधारित उनके विविध रूपों के प्रतिनिधि देवता ही हैं । प्रकृति की महत्तम शक्ति के प्रतिनिधि सूर्यदेवता अपने स्थूल रूप में परम तेजस्वी हैं, अपने सूक्ष्म रूप में प्रकृति एवं प्राण के सञ्चालक हैं और वैदिक ऋषियों के गूढ़ आध्यात्मिक चिन्तन में अद्वितीय चेतनशक्ति का प्रतिरूप रहे हैं। अनन्तर वेदोत्तर स्तुतियों में सूर्योपासकों के परम इष्ट देव से वे परब्रह्म के रूप में प्रधानतया वन्दनीय हैं। इसलिए इन स्तुतियों में परब्रह्म, परमात्मा, सूर्यनारायण और सूर्य भगवान् नाम से उनका स्तवन

अत्यन्त सहज रूप में किया गया है।

## सन्दर्भ-सूची-

(१) तिस्र एव देवता इति नैरुक्ताः। अग्निः पृथिवीस्थानः वायुर्वेन्द्रो वान्तरिक्षस्थानः। (सूर्यो द्युस्थानः । नि. ७/५/२)
(२) सूर्यस्य सप्त च। बृ.दे. २/२०, २/६१-७०।
(३) सुवीर्य्यों मर्या यथा गोपायत इति, तत् सूर्यस्य सूर्यत्वम्। (तै.ब्रा. २/२/१०/४)
(४) (क) उषाः वष्टेः कान्तिकर्मणे उच्छतेरितरा माध्यमिका। (नि. १२/५/३)
(ख) सूर्या सूर्यस्य पत्नी। एषैवाभिसृष्ट कालतमा। (नि. १२/७/२)
(ग) वृशाकपायी वृषाकपेः पत्न्येषैवाभिसृष्ट कालतमा। (नि. १२/८/२)
(५) वृषाकपायी सूर्योषाः सूर्यस्यैव तु पत्न्यः। पुरोदयातामुषसं सूर्यां मध्यंदिने स्थिते॥ वृषाकपायी सूर्यस्य तामेवाहुस्तु निम्रुचि। (बृ.दे. २/८-१०)
(६) ऋ. १/१६४/७
(७) पञ्चपादं पितरं द्वादशाकृतिं दिव आहुः परे अर्धे पुरीषिणम्। अथेमे अन्य उपरे विचक्षणं सप्तचक्रे षकर आहुरर्पितम्। ऋ. १/१६४/१२
(८) वयं जीवाः प्रति पश्येम सूर्य। (ऋ. १०/३७/८)
(९) Rele, The Vedic Gods, p. 83
(१०) चतुर्वेदी, वैदिक विज्ञान तथा भारतीय संस्कृति, पृ १७१
(११) चतुर्भिः साकं नवतिं च नामभिश्चक्रं न वृत्तं व्यतीर्रवीविपत् । (ऋ./१५५/६)
(१२) Wallis, Cosmology of Rigveda, p. 11
(१३) संहितो विश्वसामा सूर्यो गन्धर्वस्तस्य मरीचयोऽप्सरस आयुवो नाम। (वाज.सं. १८/३६, तै.सं. ३/४/७)
(१४) वाज.सं. ९/३२, ५/३९, ९१/३,६, तै. सं. ४/१/१, वाज.सं. २२/१०
(१५) आदित्याः द्वादशसंख्याकास्तेष्वेको मुख्यः सूर्यः । (तै.सं.सा.भा. ४/४/५)
(१६) वण्महाँ असि सूर्य बकादित्य महाँ असि। साम. सं. १/ ३/४, ऋ. ८/१०१/११
(१७) अन्तर्यामितया सर्वस्य प्रेरकं सूर्यम्। (अथ. सा. भा. ६/१/१)
(१८) तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि (अथ. १७/१६)
(१९) न त्वा व्रजिन्त्सहस्रं सूर्याः । (तै. आ. १/७)
(२०) आदित्यश्चक्षुः । (मै.उ. ६/६, चक्षुषी चन्द्रसूर्यौ। (मु.उ. २/१/४)

**सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची:-**


1. अथर्ववेद संहिता (शौनक शाखा) : सायण भाष्य सहित, शङ्कर पाण्डुरङ्ग पण्डित, बम्बई, सायण भाष्य सहित भाग १-२, विश्वबन्धु, होशियारपुर, विश्वेश्वरानन्द भारतीय ग्रन्थमाला सीरीज।
2. ऋग्वेदसंहिता: - सम्पा. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर स्वाध्याय मण्डल, पारडी, जि. वलसाड, चतुर्थ संस्करण।
3. १०८ उपनिषद (तीन खण्ड) : शर्मा, श्रीराम संस्कृति संस्थान, बरेली १९६१
4. तैत्तिरीय आरण्यकम् : भट्टभास्करभाष्योपेतम्, सम्पा. श्री शास्त्री ए. महादेव तथा रंगाचार्य के. मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, पुनर्मुद्रण १९८५
5. तैत्तिरीय ब्राह्मण: - सम्पा. मि. राजेन्द्रलाल, कलकत्ता, १८५५-७०
6. तैत्तिरीय संहिता (सा.भा.) भाग-१ : भट्टभास्कर, सायणाचार्य विरचित भाष्याभांसमेता, वैज्ञानिक संशोधनमण्डल, पूना, १९७०, प्रथम आवृत्ति।
7. निरुक्त : दुर्गाचार्य टीका सहित, सम्पा. राजवाडे, बी.के. पूना, १९२१-१९२६, पं. शर्मा शिवदत्तकृत- टिप्पणादिभिश्च समलङ्लकृतम् 'वेंकटेश्वर' स्टीमप्रोस, मुम्बई, सं. १९८२ ।
8. बृहद्देवता शौनकाचार्य, सम्पा. अनु. रामकुमार राय, चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस, वाराणसी, प्रथम आवृत्ति, १९६३ ।
9. मुण्डकोपनिषद् : आष्टे विनायक गणेश, आनन्दाश्रम, पूना, १९३५।
10. वाजसनेयि संहिता : महिधर भाष्य् सहित, सम्पा, बेबर ए. लन्डन, १८५२।
11. वैदिक विज्ञान तथा भारतीय संस्कृति: - चतुर्वेदी, गिरिधर शर्मा, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, १९६०।
12. सामवेद संहिता : सम्पा. पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर, स्वाध्याय मण्डल, पारडी, जि. वलसाड, चतुर्थ संस्करण।
13. Cosmology of Rigveda : Wallis, H.H London, 1887
14. The Vedic Gods : Rele, V.G. (as figures of Biology Bombay. 1931).

# पालि और बौद्ध धर्म

आशा यशवंते
K. J. Somaiya Buddhist Studies
Somaiya Vidya Vihar University, Mumbai

**नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मा सम्बुद्धस्स**

**सारांश**-

प्रस्तुत शोध पत्र में पालि भाषा और बौद्ध धर्म इनका सहसंबंध प्रस्तुत किया गया है। बौद्ध धर्म यह एक धर्मविनय याने की बुद्ध की शिक्षाओंपर आधारित एक दार्शनिक परंपरा है। प्रस्तुत शोधपत्र मे हम पालि भाषा जो की बुद्ध वचनोंकी भाषा कहलाई जाती है, इस भाषा के साहित्य का बौद्ध धर्म को लेकर संक्षेप में विवरण करेंगे। यह भाषा और धर्म भारत तक ही स्तिमित ना रहते हुए पुरे विश्व में कैसे फैला इसके कुछ साहित्य संदर्भोसहित उजागर करने का प्रयास करेंगे।

प्रास्ताविक-

**बौद्ध धर्म**- " बौद्ध धर्म एक भारतीय धर्म या दर्शन है ।"

**पालि भाषा**- पालि, यह मध्य भारतीय आर्यभाषाओं मे से एक है। अपने विपुल वाङमय तथा विश्व के एक अत्यन्त महत्वपूर्ण धर्म को अपने माध्यम से लोगों तक पहुँचाने का कार्य करने के कारण पालि भाषा का विशेष महत्व है । पालि भाषा की व्युत्पत्तिके बारे मे नीचे और विवेचन दिया गया है। बुद्धवचनोंका पहले मौखिक पठण हुआ करता था। बाद मे लंका के राजा वट्ठगामिणी अभय (२९-१७ ई .पू.) के समय मे प्रथम शताब्दी ईस्वी.पुर्व में बुद्ध परिनिर्वाण के ४३३ वर्ष बाद चौथी धर्म- संगीती हुई, जिस तिपिटक को स्थविर महामहेन्द्र और उसके साथी भिक्षु अशोक और देवानांपिय तिस्स के सम मौखिक रूप से लंका ले गये थे, उसे ताडपत्रोंपर लेखबद्ध कर दिया गया। इन्हेही ' तिपिटक ' याने ' पिटक साहित्य'

कहलाया जाता है। यह तीन भागों मे विभक्त है- सुत्तपिटक, विनय पिटक और अभिधम्मपिटक। सुत्तपिटक पांच निकायों मे विभाजित है, जिनके नाम दीघ निकाय, मज्झिम निकाय, संयुक्त निकाय, अंगुत्तरनिकाय और खुद्दक निकाय। विनयपिटक की विषयवस्तु भी तीन भागों में विभक्त है- सुत्त विभंग, गंधक और परिवार। सुत्तविभंग के दो विभाग है- पाराजिक और पाचित्तिय। खंधक के भी दो प्रकार है- महावग्ग और चुलवग्ग। अभिधम्मपिटक पिटक मे सात बडे बडे ग्रंथ है धम्मसंगणि, विभंग, धातु कथा, पुग्गलपञ्ञति, कथावत्थु, यमक और पट्ठाण। इसके बाद आता है, अनु पिटक साहित्य - जिसकी रचना तिपिटक के पुर्ण हो जाने के बाद से प्रारंभ होकर वर्तमान कालतक चली आ रही है, इस साहित्य का केंद्र बिंदू बौद्ध धर्म- स्थविरवाद बौद्ध धर्म का अध्ययन और विवेचन ही रहा है।

इसी तरह प्रस्तुत शोधपत्र मे पालि के व्याकरण परंपराओं का भी विवेचन किया गया है। बौद्ध धर्म विश्व धर्म होने मे जो शिल्प कला, वास्तुकला, स्तुप आदि के उपर भी शोधपत्र मे अभ्यास किया गया है। बौद्ध धर्म मे संघ का बडा स्थान है। इस धर्म मे बुद्ध, धम्म, संघ का बडा स्थान है। इन्हे त्रिरत्न कहा जाता है। वर्तमान में बौद्ध धर्म मे थेरवाद, महायान, वज्रयान ये प्रमुख संप्रदाय है। भारत में बौद्ध धर्म का नवयान संप्रदाय है जो भीमराव आंबेडकर द्वारा निर्मित है। सातवी शताब्दी के ईसवी. के चीनी यात्री इत्सिंग ने लिखा है की, उसके समय मे बौद्ध धर्म के प्राचीन अठारह संप्रदाय मुख्य चार निकायों मे संगठित हो गये थे। बौद्ध धर्म के कुछ प्रमुख धार्मिक स्थल तथा बौद्ध दर्शन- शिक्षाए इनका भी विवेचन यहा किया गया है। प्रस्तुत शोधपत्र में पालि भाषा और बौद्ध धर्म से जुडे साहित्यग्रंथों तथा बौद्ध धर्म को विश्व धर्म बनाने हेतू जिन जिन शासन, शिल्प तथा साहित्य की सहायता हुई है उन्हे उजागर करने की एक छोटीसी कोशिश की गयी है।

**पालि भाषा और बौद्ध धर्म-**

बौद्ध धर्म यह एक भारतीय धर्म या दर्शन है। और जब भाषाओं की बात चलती है तब यह ज्ञात होता है कि, पहले भारोपीय भाषा परिवार था।

जिसमे- 1) प्राचीन भारतीय आर्यभाषा

2) मध्य भारतीय आर्यभाषा

तथा आधुनिक आर्यभाषा सम्मिलित है।

इसमे मध्य भारतीय आर्यभाषाओं को भी तीन भागों में बाँटसकते है।

1) पालि 2) प्राकृत 3) अपभ्रंश

**पालि शब्द की व्युत्पत्ति -**

पालि शब्द का प्रयोग चतुर्थ शताब्दी में होनेवाले आचार्य बुद्धघोष की अट्ठकथाओं और उनके विसुद्धिमग्ग मे मिलता है। 'बुद्धघोष ने 'बुद्धवचन' या मुल तिपिटक के रूप में तथा "पाठ" या "मुलत्रिपिटक के पाठ " के अर्थ में पालि शब्द का प्रयोग किया है । विसुद्धिमग्ग मे ' इमानि ताव पालियं , अट्ठकथायं पनं... .'

(ये तो पालि मे है, किंतु अट्ठकथा में तो... ) आदि। इसी प्रकार चौथी शताब्दी की रचना 'दीपवंस', पाँचवी- छठी शताब्दी की आचार्य धम्मपाल की रचना 'परमत्थदिपनी 'तेरहवी शताब्दी की रचना 'चूलवंस' आदि मे पालि शब्द का प्रयोग, बुद्धवचन एवं ' मुल त्रिपिटक' के अर्थ मे किया गया है।

भिक्षु जगदीश काश्यपने अपने 'पालि महाव्याकरण 'की' वस्तुकथा 'मे यह सिद्ध किया गया है, कि पालि शब्द का प्राचिनतम रुप ' परियाय शब्द में मिलता है । परियाय शब्द त्रिपिटक मे अनेक बार आया है, जैसे की, "को नामो, अयं भन्ते, धम्मपरियायो ति' तथा 'भगवता अनेक परियायेन धम्मो पकासितो ।' आदि यहा 'परियाय' से ही पलियाय' हो गया ।

पालि भाषा मे बहुदा 'परि' या 'पटि' उपसर्ग का दीर्घ होकर '

परि' या ' पाटि' हो जाता है, जैसे- परि – लेय्यकं- पालि लेय्यकं। इसीतरह पालियाय का अर्थ बुद्धवचन होने से यह शब्द केवल मुल त्रिपिटक के ग्रंथों के लिए ही प्रयुक्त होता है, अट्ठकथा के लिए नहीं।

**पालि साहित्य और बौद्ध धर्म संक्षेप-**

पालि साहित्य से हमे सिद्धार्थ गौतम बुद्ध के जीवन चरित्र, बौद्ध दर्शन, बौद्ध धर्म का प्रचार एवं प्रसार कैसे कैसे और कहा कहा हुआ यह ज्ञात होता है।

पालि साहित्य- तिपिटक के ग्रंथों से बुद्ध, धम्म और संघ के अलावा सदियों पहले बुद्ध के समय के ऐतिहासिक, भौगोलिक, राजकीय और उस समय के सांस्कृतिक स्थिती का मनोहारी दर्शन होता है। तिपिटक बुद्ध के समय के प्रशासनिक, शैक्षणिक, व्यावसायिक के प्रति भी अपने द्वार खुले करते नजर आते है।

तिपिटक के अलावा महावंस और दिपवंस ये दो धार्मिक ग्रंथ भी सिलोन द्वीप के बौद्ध धम्म के इतिहास की महत्वपूर्ण जानकारी देता है। महावंससे हमे पौराणिक राजा तथा उस समय सिलोन से मिले शिलालेखोंकी पुष्टि के अलावा महावंस मे हमें विनय पिटक , पहली धम्म संगती मे उद्धृत और संकलन किए हुए थेर उपालि से लेकर तिसरी धम्म संगिती मे सम्राट अशोक के काल धम्म प्रसारक हेतू गए श्रीलंका गए हुए थेर महेंद्र तक की थेर परंपराभी ज्ञात होती है।

**अट्ठकथा-**

पालि साहित्य के अध्ययन की दृष्टी से अट्ठकथा साहित्य का विशेष महत्व है किसी भी साहित्य का महत्व तब प्रकाशित होता है, जब उस साहित्य में कितनी बातें सत्य कही गयी है और उस साहित्य का आधार क्या है? पालि अट्ठकथा साहित्य पालि तिपिटक साहित्य पर आधारित है और पालि तिपिटक मूल बुद्धवचन है।

**अट्ठकथा का मतलब-**

पालि तिपिटक का विषय बहुत गंभीर है और इन विषयों को समझने के लिए अट्ठकथाचार्योंने अपनी अपनी अत्यविवरण अर्थात अर्थविवरण और उसके अर्थ बतलाये है। पालि तिपिटक के वचनों को अर्थनुसार , भावनुसार, अभिप्रायनुसार समझने के लिए बहुत गंभीर रहनेवाले पदों का किया हुआ अर्थ वर्णन अट्ठकथा हैं।

' समयान्तर ' विश्वकोष में अट्ठकथा का मतलब पालि तिपिटक के दुर्बोध स्थानों को सुबोध करने के लिए लिखे गये विवरण ग्रंथ मतलब अट्ठकथा है। यह कहा गया है।

**" यायत्थं अभिण्णेन्ति, ब्यञ्जनत्थं पदानुगं।**
**निदानवत्थु सम्बधं, एसा अट्ठकथा मता।"**

अर्थात, व्यंजन के अर्थ से, पद के अर्थ से, निदान, वस्तु पूर्वापार संबंध इन पाच अंगों के नुसार जो कुछ अर्थ विवरण किये गये हैं वे अट्ठकथा है।

**" अत्थो कथियति एतायति अत्थकथा सा एव अत्थकथा, थकारस्स ट्ठकारण कत्वा " - सारत्थदिपनी**

इन्हे दो भागों में प्रतिमाया गया है।

१) पुराण अट्ठकथा

२) नविन अट्ठकथा

और अट्ठकथा साहित्य मे अट्ठकथा यह चार संप्रदायोंकी निगरानी करते नजर आती है

वे निम्नलिखितानुसार-

1) सुत्त
2) सुत्तानुलोम
3) अत्तनोमति
4) आचरियवा

पालि अट्ठकथाओंमे अंतर्भूत जानकारी से यह ज्ञात होता है की, अट्ठकथा

की रचनाओंके पहले कोई अर्थ विवरण क्रम अस्तित्व मे रहा होगा ऐसा अट्ठकथा ओं मे बार बार आया है।

**"पोराणपणाहु, तेनाहु पोराणा" मतलब,** इस प्रकार पौराणिक मत प्रकाशित किया गया है।

पालि साहित्य मे अट्ठकथा का महत्व भी बहुत बडा है और यह बुद्ध कालकी ही रचना मानी जाती है। ऐसे बहुत से सुत्त तिपिटक मे पाए जाते है जहाँ तथागत गौतम बुद्ध थेर भिक्खुओंको कुछ गाथाओं का विस्तृत विवेचन करने कह देते थे। वैसे तिपिटक मे बहुत से जगहों पर पटिच्चसमुप्पाद के गाथा के रूप मे वर्णन पाया जाता है, किन्तु आनन्द को लक्ष्य करते हुए महानिदान सुत्त मे जो उपदेश दिए गए हैं उन्हे पटिच्चसमुप्पाद की अट्ठकथा ही कहा जा सकता हैं। ऐसे ही, सलायतन विभंग, धातु विभंग, दक्षिण विभंग आदि मज्झिम निकाय के सुत्त आदि से यह ज्ञात होता है की, खुद भगवान बुद्ध ही अट्ठकथाके आदिजनक थे। वंस साहित्य से यह भी ज्ञात होता है की, स्थविर महेंद्र तथा उनके सहचारी भिक्खु अपने साथ ही अट्ठकथा ले गए थे, जाहिर सी बात है की वह मौखिक रुप मे। बादमे जब आचार्य बुद्धघोष सिंहल गए तभी उन्होंने यह सिंहली भाषा मे प्राप्त अट्ठकथाओंको पालि भाषा मे अनुवाद किया।

सद्धम्मसंघ मे यह अधिक स्पष्ट रूप से बताया गया है की,

**" बुद्धघोसो सब्बं सीहलट्ठकथं मूलभासाय मागधिकाय परिवत्तेसि। "**

और संयुक्त निकाय आदि की अट्ठकथाओं के प्रारंभ मे ही आचार्य बुद्धघोष लिखते है की,

**" अत्थपकासनत्थं आदितो वसिसतेहि ।**
**पञ्चहि या सङ्गीता, अनुसङ्गीता च पच्छापि ।।**
**सीहळदीपं पन आभताथ वसिना महामहिन्देन ।**
**ठपिता सीहळभासाय, दीपवासीनमत्थाय ।। "**

अर्थात अर्थ को प्रकाशित करने के लिए 500 अर्हंत भिक्षुओं

द्वारा जिन अट्ठकथाओंका संगायन किया गया और जिनका अनुसंगायन किया गया वे अट्ठकथा महामहेन्द्र द्वारा सिंहल द्वीप लायी गयी और द्वीपवासियों के खातिर सिंहल लिपी मे लिखी गयी।

आदि साहित्य से बौद्ध धर्म के प्रचार एवं प्रसार मे पालि साहित्य का महत्व अधिक दिखाई दे पडता है।

**पालि साहित्य के अट्ठकथाकार-**

मुलत: पाच अट्ठकथाकार होकर गए है, आचार्य बुद्धघोष, आचार्य धर्मपाल , आचार्य बुद्धदत्त , महानाम और उपसेन।

**अट्ठकथा मे प्राप्त जानकारी-**

पालि अट्ठकथाओं के रचना काल से लेकर जो कुछ अनेक प्रकार के मतभेद हूये है और निकाय के अंतर्गत विभाजन हुये है। उन सब की जानकारी और मध्यकाल की जानकारी अट्ठकथा ग्रंथो में आयी है। जैसे-

1. धम्मविनय को आवश्यकता नुसार स्वीकार करना लेकिन जानने के लिए मान्य न करना।
2. अप अपने मतों के नुसार तर्क लगाना।
3. विद्वान आचार्यों द्वारा अपने शिष्य परंपरा के अनुसार अर्थ लगाना
4. पहली संगिती के समय से पालि के सरंक्षण के लिए प्रयत्न करना लेकिन अट्ठकथाओं के सरंक्षण के लिये प्रयास न करना।
5. अभिधम्म जाननेवाले भिक्खु विनयको जानकर विनय समझानेवाले भिक्खु और सिर्फ़ विनय जाननेवाले लेकिन अभिधम्म को भी पढानेवाले भिक्खु।
6. धम्म के बारे में भगवान बुद्ध से ज्यादा अपने विचारों को बताने के लिये निकाय में व्याप्त बुद्ध मतों के बारे में मतभेद अधिक महत्व के थे।

बौद्धधम्म अठरा संप्रदायोंमें विभक्त होने की चर्चा अट्ठकथाओं में

आयी है। निकायो मे व्यक्त मतों में भेदभाव हुये इस बात का पता अट्ठकथाओं मे प्राप्त जानकारी से प्राप्त होता है। पालि अट्ठकथा साहित्य का महत्व इसलिये भी है कि उसमें तत्कालीन कई बातों के बारे मे प्रकाश डाला गया है।

1) भगवान बुद्ध के काल का इतिहास और लंकाद्विप के बौद्ध इतिहास का अध्ययन करने के लिए पालि अट्ठकथा मुख्य और प्रधान स्त्रोत है।
2) विभिन्न वर्णनोंसे अधिक गंभीर धम्म उपदेशों का अर्थ स्पष्ट करना।
3) तिपिटक और उससे संबंधित साहित्य की रचना और बाद के काल में उसके संवर्धन के बारे में उपयुक्त जानकारी प्राप्त करने के लिये कार्य करना।
4) बौद्धधम्म में प्रयोग में आनेवाली क्रियायें, निब्बाण, पटिच्चसमुप्पाद, चत्तारिअरियसच्चानी, अरियोअट्ठग्गिको मग्गो आदि महत्वपूर्ण विषयों के बारे मे निर्देशित मार्ग दिखाना।
5) थेरवाद और स्थविरोंका मार्ग नष्ट करने के लिये जो प्रयास किये गये इसकी जानकारी अट्ठकथाओं से प्राप्त होती है।
6) पुराण अट्ठकथा और पुराण अट्ठकथा लक्षण के बारे में जानकारी बताना।

पालि अट्ठकथा साहित्य थेरवादी बौद्धधम्म की रक्षा के लिये मूल बीज के समान क्रियाशील है।

**पालि काव्य साहित्य और बौद्ध ग्रंथ-**

पालि साहित्य का काव्य साहित्य फिर वे canonical and post canonical literature कोई भी हो वह नैसर्गिक सौंदर्य से भरा हुआ है। पालि का काव्य साहित्य यह पालि साहित्य को उच्च कोटी पे लेकर जाके रखता है। उदा. खुद्दकनिकाय के कुछ ग्रंथ पुर्णतः से गाथा

स्वरूप मे है। सुत्तनिपात, धम्मपद, थेरगाथा, थेरीगाथा, उदान, इतिवुत्तक, खुद्दकपाठ , चरियापिटक, विमानवत्थु, पेतवत्थु, बुद्धवंस, अपादान आदि सब काव्यग्रंथ साहित्यका पालि साहित्य मे खुदका एक खास अस्तित्व है। यह सारे बुद्धकाल के तथा बुद्ध के महापरिनिर्वाण के बाद उनके शिष्योंने संकलित किये हुए साहित्य है। बाद के काल मे लिखे काव्य साहित्य जैसे की, अनागतवंस, जिनचरित, तेलकटाहगाथा, पज्जमधु यह उच्चतम और काल्पनिक चित्रोंसे भरे हुए ऐसे यह उत्कृष्ट काव्य है।

इस तरह से पालि काव्य साहित्य और बौद्ध धर्म का सहसंबंध अच्छीतरहसे देखा जा सकता है।

**पालि का व्याकरण साहित्य : उसके तीन सम्प्रदाय-**

पालि साहित्य के व्याकरण के संप्रदाय तीन शाखाओं मे विभक्त है।

१) कच्चायन व्याकरण और उसका उपकारी व्याकरण साहित्य

२) मोग्गलान व्याकरण और उसका उपकारी साहित्य

३) अग्गवंस कृत सद्दनिति और उसका उपकारी व्याकरण साहित्य।

**कच्चायन व्याकरण-**

कच्चायन व्याकरण को कात्यायनग्रंथ भी कहते है। सन्धि कप्पटे आधार पर 'सुसन्धिकप्प ' भी कहते है। कच्चायन व्याकरण चार ठप्पों मे विभक्त है। ६७५ सुत्र है।

१) सन्धि कप्पो

२) नाम कप्पो

३) आख्यात कप्पो

४) किब्बिधान कप्पो

इस सम्प्रदाय के कुछ अलग ग्रंथ भी है।

**२) मोग्गलान व्याकरण-**

इस ग्रंथ मे कुल ८१७ सुत्र है जिनमें सुत्र पाठ, ण्वादिपाठ, गणपाठ आदि संकलित किये गए है।

**३) अग्गवंस कृत सद्दनिति-**

पालि व्याकरण संप्रदायों में यह उपलब्ध तिसरा एवं अत्यंत महत्वपूर्ण ग्रंथ है। इस ग्रंथ में कुल 27 अध्याय है, यह तीन भागो में विभक्त है।

१) पदमाला

२) धातुमाला

३) सुत्तमाला

अन्य पालि व्याकरण ग्रंथ भी मौजूद है।

**बौद्ध धर्म की वास्तु, शिल्प व चित्रकला और विविध राजाओं का शासनकाल-**

दुनिया मे कई कलाओं का स्त्रोत या उगमस्थान धर्म को ही माना गया है। इसलिए चित्र, शिल्प, वास्तु, नृत्य, संगीत आदि दृक- श्राव्य कलाओं का विकास हुआ है और इसके लिए राजाओं और जनता का बडा योगदान होता है। बौद्ध धम्म के समय इ. स. पुर्व 3 रे, 8 वे और 9 वे सदि तक बौद्ध वास्तु शिल्प व चित्रकला का विकास हुआ। इसमे मौर्य, शुंग, कण्व, सातवाहन, कुशाण, कनिष्क आदि राजाओं के बडे योगदान माने गए। उसीतरह इस काल के उपासको तथा आम जनता ने वास्तु शिल्प चित्र की निर्मिती के लिए दान दिए हुए थे ऐसे लिखे हुए लेणी शिलालेख प्राप्त होते है।

इन स्तुप तथा लेणी के दिवारोंपर भगवान बुद्ध के जीवन के कुछ प्रसंग तथा पालि साहित्य के जातककथाके शिल्पाकृतिया एवं चित्रकला का अंकन किया गया है इसी बौद्धकलाको बौद्ध धर्म के विचार तथा आदर्शों की प्रेरणा मिलती हुई दिखाई दे गयी है।

बौद्ध धर्मिय लेणी से दिखनेवाली वास्तुकला, शिल्पकला, तथा चित्रकला की समृद्धि यह बौद्ध धर्म की हार्दिक आध्यात्मिकता का गुण दर्शाती है। भारत के उत्तर तथा पश्चिम ग्रीक और रोमन कला के मिश्रणसे

भारतीय कला का विकास होता हुआ दिखाई देता है।

**स्तंभ**

प्राचीन बौद्धकालीन कला का भंडार, स्तूप के योग से दुनिया के सामने आया उसके द्वारा धर्म एवं कला के परस्पर संबंध का एहसास होता है। सम्राट अशोक के समय मे बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए कई स्तंभ बनवाए गए। इनकी उंचाई लगभग 25 से 50 फिट इतनी है।

स्तंभ का पहला भाग बेलनाकार स्तंभ नीचे से उपर जाते समय थोडा टेपर उसके उपर उलटे कमल का आकार उसपर बेलनाकार तथा चौकोरकार थोडासा मोटा बैठक होता है। उसपर वृषभ, गज, सिंह, अश्व इन प्राणियों के शिल्प शीर्ष भागपर बिठाई हुई दिखती है। भारत में टोपरा स्तंभ, अलाहाबाद कोसबी स्तंभ, लोरीय अरराज, लारिया नंदगड स्तंभ, रामपुर्वा स्तंभ, सांची स्तंभ, सारनाथ, लुंबिनी स्तंभ, निगाली सागर स्तंभ, वैशाली सिंह स्तंभ आदि जगहों पर स्तंभ तथा उनके अवशेष उपलब्ध हुए है। इनपर सम्राट अशोक ने बौद्ध धर्म के प्रचार - प्रसार हेतू धर्माज्ञा खुदी हुई है।

**अलग अलग राजाओं के शासनकाल में हुई बौद्ध धर्म की उन्नती**

**सातवाहन काल (इ.स.पू. 1 ले से इ. स. 2 री सदी)-**

मौर्योत्तर काल में दक्षिण मे सातवाहन का शासनकाल था। वे ब्राह्मण धर्म के पालन करने वाले होने के बावजुद उन्होंने और उनके प्रतिस्पर्धी क्षत्रप इन्होंने बौद्ध धर्म को सहनशीलता (सहिष्णुता) से संभाला इसी वजह से इस दौरान बौद्ध धर्म और बौद्धकला की विकास के लिए प्रयास किये गए।

इनके शासनकाल मे भाजे, पितळखोरे, कोंडाणे, जुन्नर, बोडसे , कार्ले यहाँ की गुफाए, चैत्यगृह इतकी निर्मिती की गयी । इसीलिए बौद्ध कला की इतिहास मे इसे विशेष स्थान प्राप्त हुआ था। इसी शासनकाल मे महाराष्ट्र मे बौद्ध धर्म का विकास हुआ था।

**यवन शासन-**

ईसा पू.२ सौ से लेकर सन एक सदी तक उतर पश्चिम की ओर यवनों की सत्ता गांधार तथा उत्तरी प्रदेशों तक थी। मिलिंद नामक शासकने बौद्ध धर्म का स्वीकार किया था। और उसने अपने शासनकाल में बौद्ध धर्म के प्रचार एवं प्रसार का कार्य किया था। वैसे ही सम्राट अशोक के काल से ही कई यवन (ग्रीक) व्यापारियोंने बौद्ध गुफाओंके निर्माण के लिए बडे पैमाने पर दान देणेका उल्लिखित महाराष्ट्र की गुफाओं से मिलता है।

**गांधार कला** -

गांधार यह यवन का प्रमुख केंद्र था। यहाँ यवन शिल्पकला तथा भारतीय बौद्ध शिल्पकला इनके संयोग से जो शिल्पकला निर्माण हुई थी उसे गांधार शैली ऐसे जाना गया। ऐसा माना जाता है की, भारत मे प्रथम भगवान बुद्ध की मुर्ती गांधार शैली मे ही निर्मित थी। इसी दौरान, बौद्ध धर्म मे अनेक पंथ तथा उपपंथ निर्मित होकर उनमे मुर्ती पुजा करना आरंभित हो गया। गांधार शैली की तहत, बुद्ध जीवन प्रसंग, जातक कथा, अलग अलग मुद्राओं की बुद्ध, बोधिसत्व आदि विशेष मुर्तीयों का निर्माण हुआ।

कनिष्कके शासनकाल मे गांधार शिल्पकला का फलना फुलना शुरू हो गया था। इनके शासनकाल मे कई स्तूप तथा चैत्यगृहोंका निर्माण किया गया। पेशावर मे भी कनिष्क ने बहुत ही बडा स्तूप निर्माण किया था ऐसा उल्लिखित किया गया है।

**गुप्तकाल (इ.स.320 से 550)** -

गुप्तकाल को कलाओं का सुवर्णकाल माना जाता है। इस काल मे चैत्यगृह तथा स्तूप या वास्तुकलाओंका विकसित प्रारुप दिखाई देता है। अजिंठाकी गुफा नं 16 , 17, 19, 1, 2 आदि गुफाओं मे से गुफा नं 17 यह कार्ला के चैत्यगृह की तरह विकसित होती हुई दिखती है। इसमे पत्थर के स्तूपपर भगशान बुद्ध की मुर्ती उत्कीर्ण कि गयी है। इस काल की,

भगवान बुद्ध की मुर्तीयों मे शांती तथा करुणा का उत्तम आविष्कार दिखाइ देता है। गुप्तकाल मे भी बौद्ध धर्म का प्रचार एवं प्रसार काफी अच्छीतरहसे हुआ हुआँ दिखाई देता है।

**बौद्ध दर्शन-**

बौद्ध दर्शन याने की बुद्ध का तत्वज्ञान। बुद्ध का तत्वज्ञान यह विज्ञानवादी है। अपने हर ज्ञान को बुद्ध बुद्धिवादी होकर ही करते है। विश्व मे दु:ख है, यह भगवान बुद्ध के तत्वज्ञान का बुनियादी तत्व है। बौद्ध दर्शन यानी बौद्ध तत्वज्ञान बुद्ध ने महाभिनिष्क्रमण से महापरिनिर्वाण होने तक क्रमिक 45 साल तक किया। इसमे महत्त्वपुर्ण दर्शन याने , महाभिनिष्क्रमण, सच्च आणि मग्ग याने चार आर्यसत्य, मज्झिमा पटिपदा याने अष्टांगिक मार्ग यह तथागतने धम्मचक्कपवत्तन सुत्तमे बताया है। वैसेहि तिलक्खण यह संकल्पनाभी संयुक्त निकाय - महावग्ग - बोज़्झंग संयुत्त तथा दीघनिकाय के धम्मचक्कपवत्तन इस पाली साहित्यमे पढने मिलते है।

**निष्कर्ष–**

प्रस्तुत शोधपत्र में पालि भाषा और बौद्ध धर्म इनका सहसंबंध प्रस्तुत किया गया है। जैसा की हम सभी यह जानते है की, बौद्ध धर्म यह एक वैश्विक धर्म है और इसे वैश्विक धर्म बनाने हेतु सहायक हर अवयव का संक्षिप्त मे यहाँ पर ब्यौरा किया गया है।

**सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूचि:-**


१) डॉ. भरतसिंग उपाध्याय, पालि साहित्य का इतिहास, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग २०१३ .

२) डॉ. भरतसिंग उपाध्याय,बुद्धकालीन भारतीय भुगोल, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली - 110063.

३) लक्ष्मीनारायण तिवारी एवं बीरबल शर्मा,कच्चायन व्याकरण , तारा बुक एजेन्सी, वाराणसी, 1989.

४) सम्राट अशोक के शिलालेख व चौरासी हजार स्तूप, सिदधार्थ बुक्स, शाहदरा,

दिल्ली - 110032.

५) प्राचीन भारत

६) बौद्ध संस्कृति, राहुल सांकृत्यायन, कौशल्य प्रकाशन, औरंगाबाद

७) पालि व्याकरण - डा. राम अवध पाण्डेय, डा. रविनाथ मिश्र , मोतीलाल बनारसी दास 1977.

# प्रमुख संस्कृत नाटकों में चित्रित समाज एवं संस्कृति

डॉ. वन्दना सूरज भान
एसोसिएट प्रोफेसर, लेडी श्रीराम महाविद्यालय
(दिल्ली विश्वविद्यालय)

**सारांश:**

साहित्य को समाज का दर्पण कहा जाता है। विशेष रूप से संस्कृत नाट्य साहित्य का इस दृष्टि से अद्वितीय महत्त्व है। संस्कृत नाटकों में तत्-तत्कालीन समाज एवं संस्कृति के विषय में विस्तृत जानकारी मिलती है। किसी भी स्थान अथवा प्रदेश की संस्कृति में परिगणित किए जाने वाले तत्त्व परिवार एवं विवाह, शिक्षा, नारी की स्थिति, वेशभूषा, अलङ्कार, खान-पान, संस्कार, उत्सव इत्यादि हैं, जिनका वर्णन संस्कृत नाटकों में कथानक एवं परिस्थितियों के प्रसंगानुसार स्वाभाविक रूप से उपलब्ध होता है। संस्कृत के महान् नाटककार वर्तमान विद्वत्वर्ग द्वारा हृदय से वन्दनीय हैं जिनके कारण हम आज भी तत्कालीन समाज एवं संस्कृति की व्यवस्था को जानने में समर्थ हैं।

**बीज शब्द: उपर्युक्त-** ऊपर कहा गया; **परिशीलन-** गंभीर अध्ययन; **आह्लादित-** प्रसन्न, हर्षित; **अन्वेषण-** खोज; **प्रकरण-** प्रसंग, संदर्भ; **व्यवस्थित-** विधिपूर्वक; **वल्कलवस्त्र-** वृक्ष की छाल का वस्त्र; **अवगुण्ठनवती-** घूंघट से युक्त; **संतप्त-** दुःखी, उदास, खिन्न; **निवारण -** दूर करना, रोकना; **संस्थापन-** निश्चित/स्थापित।

## काव्येषु नाटकं रम्यम्

संस्कृत नाटकों के विषय में उपर्युक्त प्रसिद्धोक्ति से हम सभी सुपरिचित हैं। काव्य के द्विविध भेदों दृश्य एवं श्रव्य में से दृश्यकाव्य

(नाटक) की परिभाषा देते हुए आचार्य विश्वनाथ ने कहा है- **'दृश्यं तत्राभिनेयं, तद्रूपारोपात्तु रूपकम्।'**[1] आचार्य धनञ्जय ने नाटक तथा रूपक की परिभाषा देते हुए कहा है- **'अवस्थानुकृतिनाट्यम्; रूपकं तत्समारोपात्।'**[2] इस प्रकार अभिनयाधारित होने के कारण नाटक के मूल में अनुकरण का होना स्पष्टतः स्वीकृत है। यह अनुकरण अथवा अभिनय इस सम्पूर्ण विश्व में विद्यमान लोकजीवन में घटित किसी भी घटना अथवा उसके किसी अंश पर आधारित हो सकता है।

आचार्य भरतमुनि द्वारा अपने ग्रन्थ नाट्यशास्त्र में स्पष्ट किया गया है कि नाट्यरचना का सर्वोपरि उद्देश्य लोक का मनोरञ्जन तथा दुश्चिन्ताओं का निराकरण करना है-

**दुःखार्तानां श्रमार्तानां शोकार्तानां तपस्विनाम्।**
**विश्रान्तिजननं काले नाट्यमेतद्भविष्यति।।**[3]

उपर्युक्त तथ्यों के प्रकाश में संस्कृत साहित्य का परिशीलन करने पर ज्ञात होता है कि संस्कृत भाषा की साहित्य परम्परा में अनेक सुप्रसिद्ध नाटक एवं नाटककार विद्यमान हैं। इन कवियों ने अपनी नाट्यरचनाओं के माध्यम से सहृदयों को अनुपम रूप से आह्लादित एवं रसास्वादित किया है।

साहित्य को समाज का दर्पण कहा जाता है। इसी प्रकार एक नाटककार भी तत्तत् कालीन समाज का प्रतिनिधित्व करता है। एक सफल एवं प्रतिभाशाली रचयिता नाटक के सरस कथानक के माध्यम से लोकानुरञ्जन के साथ-साथ उस काल में विद्यमान समाज एवं संस्कृति का चित्रण भी हमारे सम्मुख उपस्थित करता है।

संस्कृत नाटकों का कथानक अधिकांशतः राजसी पात्रों के जीवन पर आधारित होता है किन्तु इस कथानक रूपी ताने-बाने में अनेक सूत्र

---

1 साहित्यदर्पण-6/1

2 दशरूपक-1/7

3 नाट्यशास्त्र-1/114

तथा रंग राजेतर पात्रों से भी सुसज्जित होते हैं जिसके कारण राजसी एवं सामान्य दोनों प्रकार की जीवनशैली तथा परिस्थितियों का परिचय प्राप्त होता है। समाज तथा संस्कृति से जुड़े विविध तत्त्वों का कतिपय संस्कृत नाटकों में अन्वेषण करना अत्यन्त रोचक विषय है। इनमें तत्कालीन समाज में प्रचलित परिधान, उत्सव, भोजन, शिक्षा, विविध कलाएँ, विवाह व्यवस्था, नारी की स्थिति, दण्डविधान आदि अनेक बिन्दु हैं, जो इन नाटकों का अनुशीलन करने से ज्ञात होते हैं।

**विवाहः**

किसी समाज की मूलभूत ईकाई परिवार को माना जाता है तथा किसी परिवार का प्रारम्भ गृहस्थाश्रम में प्रवेश के साथ होता है। ब्रह्मचर्य आश्रम की पूर्ति के पश्चात् व्यक्ति गृही बनकर जीवन में विविध उत्तरदायित्व निभाता है। भारतीय संस्कृति में विवाह को अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान प्रदान किया गया है। इसका प्रमाण अनेक शास्त्रों अथवा ग्रन्थों में भी प्रतिपादित किया गया है। महाराज मनु के द्वारा विवाह के आठ प्रकार बताए गए हैं। संस्कृत नाटकों में बहुधा नायक-नायिका अथवा सहायक पात्रों के विवाह सम्बंध एवं समाज में प्रचलित एवं स्वीकृत विवाह-प्रकारों का परिचय मिलता है। कन्या का विवाह करवाना पिता अथवा भाई की जिम्मेदारी होती थी - ऐसा अनेक प्रसङ्गों द्वारा ज्ञात होता है। मालतीमाधव नाटक में बौद्धसंन्यासिनी कामन्दकी के कथनों से इसकी पुष्टि होती है -

**कामन्दकी- अपि नाम**
**कल्याणिनोर्भूरिवसुदेवरातापत्ययोरनयोर्माल**
**तीमाधवयोरभिमतं पाणिग्रहमङ्गलं स्यात्।[1]**
**कामन्दकी- अयि सरले! किमत्र भगवत्या शक्यम्?**
**प्रभवति प्रायः कुमारीणां जनयिता दैवैवं च।[2]**

---

1 मालतीमाधव, प्रथम अंक, पृ. 15

2 मालतीमाधव, द्वितीय अंक, पृ. 92

अभिज्ञानशाकुन्तल में भी प्रथम अंक में पिता द्वारा पुत्री का विवाह सम्पादन किए जाने का वर्णन मिलता है-

**प्रियंवदा- आर्य धर्मचरणेऽपि परवशोऽयं जनः।**
**गुरोः पुनरस्या अनुरूपवरप्रदाने सकल्पः।**[1]

यद्यपि दुष्यन्त तथा शकुन्तला एवं स्वप्नवासवदत्त में उदयन एवं वासवदत्ता के गान्धर्व विवाह का वर्णन है, तथापि चतुर्थ अंक में ऋषि कण्व द्वारा इस विवाह को स्वीकृति प्रदान करने का सुखद वर्णन है - **दिष्ट्या धूमाकूलितदृष्टेरपि यजमानस्य पावक एवाहुतिः पतिता।**[2] इसी प्रकार वासवदत्त के षष्ठ अंक में उदयन-वासवदत्ता के गान्धर्व/राक्षस विवाह को स्वीकार करके वासवदत्ता के माता-पिता उन दोनों के चित्र बनवाकर उनका व्यवस्थित रूप से विवाह भी करवाते हैं। रानी अङ्गारवती का संदेश है-

**अथ चावाभ्यां तव च वासवदत्तायाश्च प्रतिकृतिं**
**चित्रफलकायामालिख्य विवाहो निर्वृत्तः।**[3]

ऐसा संकेत भी मिलता है कि राजाओं की एक से अधिक पत्नियाँ होने के साथ-साथ सामान्य जन को भी बहुविवाह का अधिकार था। अभिज्ञानशाकुन्तल के छठे अंक में धनमित्र नामक व्यापारी की अनेक पत्नियाँ होने का उल्लेख मिलता है-

**राजा- बहुधनत्वाद्बहुपत्नीकेन तत्रभवता भवितव्यम्।**
**विचार्यतां यदि काचिदापन्नसत्त्वा तस्य भार्यासु स्यात्।**[4]

इसी प्रकार मृच्छकटिक नाटक में चारुदत्त एक पत्नी के होने पर भी वसन्तसेना से विवाह करता है, जो कि एक गणिका है। इसी प्रकार उसका मित्र शर्विलक भी दूसरा विवाह करता है।

---

1 अभिज्ञानशाकुन्तलम्, प्रथम अंक, पृ. 61

2 अभिज्ञानशाकुन्तलम्, चतुर्थ अंक, पृ. 179

3 स्वप्नवासवदत्त, षष्ठ अंक, पृ. 116

4 अभिज्ञानशाकुन्तलम्, षष्ठ अंक, पृ. 341

परिवार में सन्तान का न होना दुःख का कारण माना जाता था जैसा कि राजा दुष्यन्त का कथन है- **कष्टं खल्वनपत्यता।** इसी प्रकार अभिज्ञानशाकुन्तल के सप्तम अंक में बालक सर्वदमन से संयोग होने पर दुष्यन्त का मर्मस्पर्शी कथन है-

**अनेन कस्यापि कुलाङ्कुरेण स्पृष्टस्य गात्रेषु सुखं ममैवम्।**
**कां निवृतिं चेतसि तस्य कुर्याद्यस्यायमङ्कात्कृतिनः प्ररूढः ।।**[1]

मृच्छकटिक में उल्लेख है कि गणिकाओं से भी सन्तानोत्पत्ति हो सकती थी जिसे बन्धुल कहा जाता था।

विवाह विषयक अन्य तत्त्वों में विशेष है विवाह के समय विशेष रेशमी वस्त्रों एवं आभूषणों को धारण करना (अभिज्ञानशाकुन्तल, चतुर्थ अंक), मालविकाग्निमित्र के पञ्चम अंक में वर्णित वैवाहिक वेष (५/७), मालतीमाधव के षष्ठ अंक में मालती को अलङ्कृत करने का वर्णन आदि। इस प्रकार विभिन्न नाटकों में विवाह सम्बन्धी विविध जानकारी प्राप्त होती है।

**जीवन शैली:**

संस्कृत नाटकों में समकालिक जीवन शैली का प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ता है, जिसमें मुख्य रूप से तत्कालीन वेशभूषा, परिधान, अलंकार तथा खान-पान का उल्लेख किया जा रहा है। ध्यातव्य है कि पुरुष वर्ग के वस्त्रादि का अधिक उल्लेख नहीं मिलता किन्तु अभिज्ञानशाकुन्तल तथा स्वप्नवासवदत्त में बहुधा संन्यासियों के द्वारा वल्कल वस्त्र तथा काषाय वस्त्र धारण करने का वर्णन मिलता है। उदयन के मन्त्री यौगन्धरायण का कथन है-

**कार्यं नैवार्थैर्नापि भोगैर्न वस्त्रैर्नाहं काषायं वृत्तिहेतोः प्रपन्नः।**
**धीरा कन्येयं दृष्टधर्मप्रचारा शक्ता चारित्रं रक्षितुं मे भगिन्याः।।**[2]

---

1 अभिज्ञानशाकुन्तलम्, सप्तम अंक, पृ. 389

2 स्वप्नवासवदत्त-1/9

इसी प्रकार तापसी कन्याओं के रूप में शकुन्तला तथा उसकी सखियों द्वारा भी वल्कल वस्त्र धारण किए गए हैं।

आभूषणों के विषय में बात की जाए तो कृत्रिम पदार्थों का प्रयोग नहीं किया जाता था। नारियों के द्वारा प्राकृतिक पदार्थों यथा पुष्प एवं पत्रादि को आभूषण के रूप में पहनने का उल्लेख मिलता है, यथा- अभिज्ञानशाकुन्तल के प्रथम अंक में नटी का गीत निम्न प्रकार से है-

**ईषदीषच्चुम्बितानि भ्रमरैः सुकुमारकेसरशिखानि।**
**अवतंसयन्ति दयमानाः प्रमदाः शिरीषकुसुमानि।।**[1]

मालविकाग्निमित्र नाटक के तृतीय अंक में आम्रमञ्जरी को तथा अशोक के पल्लवगुच्छ को कर्णाभूषण के रूप में पहनने का चित्रण है-

**बकुलावलिका-न तावद्धर्ता। एषोऽशोकशाखावलम्बी**
**पल्लवगुच्छः। अवतंसयैनम्।**[2]

वैवाहिक अवसर पर नववधू के द्वारा रेशमी वस्त्र तथा अलंकार धारण करने का उल्लेख मिलता है। मालविकाग्निमित्र नाटक के पञ्चम अंक में मालविका के वैवाहिक वेश का वर्णन है। अभिज्ञानशाकुन्तल के चतुर्थ अंक में शकुन्तला की विदाई के अवसर पर वनदेवताओं द्वारा प्रदान किए गए वस्त्र तथा आभूषण इस संदर्भ में सर्वोत्कृष्ट दृष्टान्त है-

**क्षौमं केनचिदिन्दुपाण्डुतरुणा माङ्गल्यमाविष्कृतं**
**निष्ठ्यूतश्चरणोपभोगसुलभो लाक्षारसः केनचित्।**
**अन्येभ्यो वनदेवताकरतलैरापर्वभागोत्थितै-**
**र्दत्तान्याभरणानि तत्किसलयोद्भेदप्रतिद्वन्द्विभिः।।**[3]

इसी प्रकार मृच्छकटिक नाटक में अनेक स्थानों पर वसंतसेना के प्रचुर मात्रा में स्वर्ण आभूषणों की स्वामिनी होने का उल्लेख मिलता है।

---

1 अभिज्ञानशाकुन्तलम्, प्रथम अंक, पृ. 10

2 मालविकाग्निमित्रम्, तृतीय अंक, पृ. 138

3 अभिज्ञानशाकुन्तलम्-4/5

मालविकाग्निमित्र के पञ्चम अंक तथा अभिज्ञानशाकुन्तल के पञ्चम अंक में नववधू के अवगुण्ठनवती अर्थात् घूंघट में रहने का संकेत मिलता है। स्वप्नवासवदत्त में वासवदत्ता भी प्रोषितभर्तृका होने के कारण पर्दे में प्रदर्शित की गई है। वहीं पति से वियोग की स्थिति में अलंकारों, साजसज्जा तथा केशसज्जा का निषेध भी चित्रित किया गया है यथा वासवदत्ता एवं शकुन्तला का प्रसंग।

**विविध कलाएँ:**

संस्कृत नाटकों के परिशीलन से ज्ञात होता है कि नृत्य, संगीत, गीत, चित्रकारी आदि विविध कलाएँ तत्कालीन जीवन का एक अभिन्न अंग थीं। अब इन्हें मनोरञ्जन का साधन माना जाए अथवा लोगों की शिक्षा का एक भाग, राजसी वर्ग हो अथवा सामान्य समाज- ये कलाएँ किसी न किसी रूप में चित्रित की गई हैं। चित्रकला का वर्णन अनेक नाटकों में मिलता है, यथा- मालती द्वारा माधव का एवं माधव द्वारा मालती का चित्र बनाना तथा दुष्यन्त द्वारा शकुन्तला तथा तपोवन का चित्र बनाना अत्यन्त जीवन्त रूप में चित्रित किया गया है। मालविकाग्निमित्र नाटक में चित्रशाला तथा शिल्पी द्वारा चित्र बनाने का उल्लेख है-

**शृणु। चित्रशालां गता देवी यदा प्रत्यग्रवर्णरागां**
**चित्रलेखामाचार्यस्यालोकयन्ती तिष्ठति।**[1]

संस्कृत नाटकों में नृत्य कला विषय अनेक हृदयग्राही दृश्य मिलते हैं। मालतीमाधव नाटक के तृतीय अंक में मालती की नृत्य-गीत से उदासीनता का उल्लेख है। इसी प्रकार पञ्चम अंक में कापालिकद्वय द्वारा देवी चामुण्डा की स्तुति के समय निशुम्भ नामक नृत्य विशेष का उल्लेख मिलता है-

**सावष्टम्भनिशुम्भसम्भ्रमनमद्भ्रूगोलनिष्पीडन-**

---

1 मालविकाग्निमित्रम्, प्रथम अंक, पृ. 14

**न्यञ्चत्कर्परकूर्मकम्पविगलद्ब्रह्माण्डखण्डस्थिति ।**[1]

मालविकाग्निमित्र के प्रथम अंक में ही छलिक नामक नृत्य तथा नाट्याचार्य गणदास एवं मालविका के मध्य गुरु-शिष्या सम्बंध का वर्णन है- **"आज्ञाप्तास्मि देव्या धारिण्या। अचिरप्रवृत्तोपदेशं छलिकं नाम नाट्यमन्तरेण कीदृशी मालविकेति नाट्याचार्यमार्यगणदासं प्रष्टुम्। तत्तावत्संगीतशालां गच्छामि।"**[2]

स्वाभाविक है कि कोई भी विद्या अथवा कला गुरु के बिना सीखना सम्भव नहीं। इसी प्रकार यदि संगीत तथा गीत आदि का उल्लेख किया जाए तो स्वप्नवासवदत्त नाटक में घोषवती नामक वीणा विशेष का अत्यन्त आदरपूर्वक विशेष स्थान दिखाया गया है। राजा उदयन द्वारा वासवदत्ता को वीणा वादन की शिक्षा देने के दौरान ही उन दोनों में प्रेमाङ्कुर प्रस्फुटित हुआ था। वासवदत्ता की विरहावस्था में उदयन अत्यन्त हताश रूप से उसका स्मरण करता है-

**चिरप्रसुप्तः कामो मे वीणया प्रतिबोधितः**
**तां तु देवीं न पश्यामि यस्या घोषवती प्रिया।**[3]

मृच्छकटिक नाटक में तो गीत संगीत एवं वाद्ययन्त्रों को बहुधा वर्णन मिलता है। तृतीय अंक में चारुदत्त के घर में मृदंग, दर्दुर, पणव, वीणा, बांसुरी अनेक वाद्ययन्त्रों का चित्रण किया गया है-

**"शर्विलक- (समन्तादवलोक्य) अये कथं मृदंगः। अयं**
**दर्दुरः। अयं पणवः। इयमपि वीणा। एते वंशाः। अमी**
**पुस्तकाः। कथं नाट्याचार्यस्य गृहमिदम्।"**[4]

गणिका होने के कारण वसन्तसेना की संगीत तथा नृत्य में रुचि

---

1 मालतीमाधवम्, पञ्चम अङ्क, पृ. 193

2 मालविकाग्निमित्र, प्रथम अङ्क, पृ. 10

3 स्वप्नवासवदत्त 6/3

4 मृच्छकटिक, तृतीय अङ्क

होना स्वाभाविक था किन्तु चारुदत्त द्वारा रेभिल के गाए सुन्दर गीत की प्रशंसा करने से, पुरुषों में भी संगीत की अभिरुचि का परिचय मिलता है-

**रक्तं च नाम मधुरं च समं स्फुटं च**
**भावान्वितं च ललितं च मनोहरं च।**
**किं वा प्रशस्तवचनैर्बहमिर्मदुक्तै**
**रन्तर्हिता यदि भवेद्वनितेतिमन्ये।।**[1]

अतः स्पष्ट होता है कि मृच्छकटिक के काल में विविध कलाएँ समुचित रूप से विकसित थी।

**उत्सव:**

उत्सवों का मानव जीवन में विशिष्ट एवं अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। उत्सव शब्द को सुनकर अनायास ही ऐसे एक आयोजन का स्मरण हो आता है जिसमें जनसाधारण अपनी रोजमर्रा की चिन्ता, तनाव एवं थकान आदि को भूलकर आनन्द, मनोरञ्जन, पारिस्परिक सद्भावना तथा प्रेम आदि का अनुभव करता है। उत्सव एक सार्वजनिक अथवा निजी आयोजन भी हो सकता है। इसके माध्यम से किसी विशिष्ट धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, कलात्मक अथवा व्यक्तिगत गतिविधि या उपलब्धि का जश्न मनाने, उसे स्मरण करने अथवा बढ़ावा देने का उद्देश्य पूर्ण किया जा सकता है। संस्कृत नाटकों के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि तत्कालीन समाज में भी उत्सवों का विशिष्ट महत्त्व था। प्रत्येक वर्ष विभिन्न उत्सवों का आयोजन किया जाता था। यह भी ज्ञात होता है कि इन उत्सवों का आदेश राजसी पक्ष द्वारा दिया जाता था किन्तु सम्पूर्ण प्रजा इनकी तैयारियों में यथा- नगर सज्जा आदि में सोत्साह भाग लेती थी तथा प्रत्येक वर्ग बढ़-चढ़ कर आनन्दमंगल मनाता एवं प्रसन्नता का अनुभव करता था। मालतीमाधव में मदनोद्यान में मनाए जाने वाले मदनोत्सव का उल्लेख मिलता है (प्रथम अङ्क)। इस उत्सव में नागरिक एवं वणिक्जन सभी भाग

---

1 मृच्छकटिक 3/4

लेते थे -

**अनन्तरं च यात्रामङ्गप्रचलितस्य महतः पौरनैगमजनस्य**
**सङ्कुलेन विघटितायां तस्यामागतोऽस्मि ।[1]**

नाटक के नवम् अंक में एक अन्य कौमुदी महोत्सव का भी उल्लेख है जो कार्तिक-पूर्णिमा के दिन मनाया जाता है। यह प्रकृति के प्रेम का महापर्व माना जाता है। अभिज्ञानशाकुन्तल के षष्ठ अंक में वसन्त ऋतु (चैत्रमास) के आरम्भ में मनाए जाने वाले वसन्तोत्सव का वर्णन है। किन्तु शकुन्तला के विरह में संतप्त दुष्यन्त के द्वारा वसन्तोत्सव मनाने पर रोक लगा दी है-

**अस्मात्प्रभवतो वैमनस्यादुत्सवः प्रत्याख्यातः ।[2]**

प्रतीत होता है कि किसी अनपेक्षित कारण से एतद्विध उत्सवों का निषेध भी राजाज्ञा से किया जा सकता था जिसका सम्पूर्ण प्रजा पालन करती थी। इसी प्रकार मुद्राराक्षस नाटक में तृतीय अंक में जब सुगाङ्ग महल पर गए चन्द्रगुप्त के द्वारा कौमुदीमहोत्सव की तैयारी न होते हुए देखा गया तब वह अत्यधिक क्रोधित एवं खिन्न हुआ। नाटक में उल्लिखित पार्वण विधि से स्पष्ट होता है कि यह उत्सव शरत्पूर्णिमा के दिन मनाया जाता था तथा इसे समाज के सभी वर्ग- नागरिक, धनिक, यहाँ तक कि वेश्याएँ भी उत्साहपूर्वक मनाते थे। यहाँ चाणक्य द्वारा कारण विशेष से उत्सव का निषेध दर्शाया गया है। मृच्छकटिक नाटक के प्रथम अंक में विवाह तथा पुत्रजन्म को भी एक उत्सव के रूप में चित्रित किया गया है।

इसी प्रकार एक विशेष उद्यान में कामदेव के मन्दिर के समीप वसन्तोत्सव नाम से प्रसिद्ध कामदेवोत्सव मनाए जाने का वर्णन है। संभवतः अनेक दिनों तक चलने वाले इस उत्सव में प्रेमी युवक-युवतियाँ उल्लासपूर्ण आनन्द मनाते होंगे। इसी प्रकार देवराज इन्द्र के सम्मान में

---

1 मालतीमाधव, प्रथम अङ्क

2 अभिज्ञानशाकुन्तलम्, षष्ठ अङ्क, पृ. 304

मनाए जाने वाले इन्द्र महोत्सव का भी उल्लेख मिलता है। कहा जाता है कि ये सामयिक उत्सव सभी के लिए मनोरञ्जन एवं आनन्दानुभूति का साधन थे।

**नारी की स्थिति:**

सामान्यतः नारी को समाज में आदरमय स्थान प्राप्त था। प्रायः किसी भी स्थान पर में उन्हें प्रताड़ित अथवा दुःखी करने का चित्रण नहीं मिलता। अपवाद रूप में शकुन्तला तथा वासवदत्ता हमारे सम्मुख आती है कि उस कष्ट का भी अन्ततः कारण ज्ञापन तथा निवारण दिखाया गया है। नारी को स्वतः विवाह करने का अधिकार था जैसा कि अभिज्ञानशाकुन्तल तथा मालतीमाधव में वर्णित है। शकुन्तला द्वारा दुष्यन्त को प्रेमपद्य लिखने तथा मालतीमाधव में कामन्दकी द्वारा मालती को शास्त्र-शिल्पादि की शिक्षा देने से स्पष्ट होता है कि समाज में नारी शिक्षा का प्रचलन था। सभी विवेच्य नाटकों में नारी को आदर्श पत्नी, उदारहृदया, स्नेही जन के रूप में चित्रित किया गया है। यदि सभी नारी पात्रों को शास्त्रपारंगत नहीं भी दिखाया गया हो, फिर भी उन्हें विभिन्न कलाओं में निपुण चित्रित किया गया है। शाकुन्तल में नटी तथा हंसपदिका का गीत, मालती द्वारा माधव का चित्र बनाना, वासवदत्ता के द्वारा माला का गूंधना व वीणावादन शिक्षा, वसन्तसेना का नृत्य गीत, संगीत, श्रृंगार तथा केशविन्यास आदि कलाओं में निपुण होना इसका दृष्टान्त है कि नारियों को विभिन्न कलाओं में निपुण किए जाने का प्रचलन था। स्त्रियों को अपनी इच्छा एवं आवश्यकता के अनुसार वस्त्र, आभूषण प्रसाधन आदि धारण करने की भी स्वतन्त्रता थी। मालविका एवं इरावती को क्रमशः गणदास एवं हादत्त द्वारा संगीत की शिक्षा प्रदान करने के प्रसंग से गुरु शिष्या परम्परा का भी संकेत मिलता है (मालिविकाग्निमित्र, प्रथम अंक)

**अन्य विविध पक्ष:**

तत्कालीन समाज एवं संस्कृति के प्रतिबिम्ब स्वरूप अन्य अनेक

पक्ष हैं जिनके माध्यम से उस समय के जीवन का परिचय मिलता है।

**रोग एवं चिकित्सा:**

यद्यपि ऐसा प्रतीत होता है कि इस समय की जीवनशैली स्वस्थ तथा रोगमुक्त थी फिर भी कहीं-कहीं वैद्य चिकित्सों का भी उल्लेख मिलता है। यथा- मालविकाग्निमित्र में चतुर्थ अंक में विदूषक को सर्प द्वारा डंसने की प्राथमिक चिकित्सा परिव्राजिका के द्वारा एतद्विध कही गई है-

**छेदो दंशस्य दाहो वा क्षतेर्वा रक्तमोक्षणम्।**
**एतानि दष्टमात्राणामदूष्याः प्रतिपत्तयः।।**[1]

इसके अतिरिक्त विष उतारने वाले वैद्य भी होते थे यथा इस प्रसंग में ध्रुवसिद्धि वैद्य का नामोउल्लेख मिलता है। स्वप्नवासवदत्त में रानी पद्मावती की शिरोवेदना का प्रकरण दर्शाया गया है जिसके उपचार हेतु शीर्षानुलेपनरूप उपचार कहा गया है -

**पद्मिनिका-तेन हि भत्रे निवेदयैनाम्।**
**यावदहमपि शीर्षानुलेपनं त्वरयामि।**[2]

रोगी को सिर की पीड़ा से कुछ राहत देने के लिए उसे समुद्रगृह में रखे जाने का भी उल्लेख है। मालविकाग्निमित्र में भी समुद्रगृह का वर्णन मिलता है। यह आनन्ददायक गृह कृत्रिम जलाशय के बीच बनाया जाता है जो जलयन्त्रों द्वारा तापनियन्त्रित होता था-

**विदूषक- त्वरतां भवान् समुद्रगृहे सखीसहितां मालविकां**
**स्थापयित्वा भवन्तं पत्युद्गतोऽस्मि।**[3]

अभिज्ञानशाकुन्तल के तृतीय अंक में कामसन्तप्तशरीर वाली शकुन्तला को तापज्वर से पीड़ित समझकर गौतमी उसका उपचार दर्भ द्वारा छिड़के गए जल से करती है-

---

1 मालतीमाधव 4/4

2 स्वप्नवासवदत्त, पञ्चम अङ्क

3 मालविकाग्निमित्र, चतुर्थ अङ्क

**ज्योतिष एवं शकुन-अपशकुन:**

इन नाटकों में अनेक स्थानों पर ज्योतिष विद्या एवं शकुन-अपशकुन विषयक तथ्य भी दृष्टिगोचर होते हैं। सिद्ध पुरुषों के कथनों पर विश्वास तथा शारीरिक एवं प्राकृतिक लक्षणों एवं संकेतों के आधार पर कुछ शुभ या अशुभ होना इनका संस्थापन नाटककारों के द्वारा कथानक के प्रसंगानुसार चित्रित किया गया है।

अभिज्ञानशाकुन्तल के प्रथम अंक में तपोवन में प्रवेश करते समय दुष्यन्त की दाईं भुजा फड़कने का चित्रण है जिसका फल शकुनशास्त्र में कलत्रप्राप्ति बताया गया है-

**राजा- शान्तमिदमाश्रमपदं स्फुरति च बाहुः कुतः फलमिहास्य।**
**अथवा भवितव्यतानां द्वाराणि भवन्ति सर्वत्र।।**[1]

मृच्छकटिक नाटक में तो चित्रित किया गया है कि न केवल अशिक्षित वर्ग, अपितु शिक्षित लोग भी शकुनों पर आधारित शुभ तथा अशुभ में दृढ़तापूर्वक विश्वास किया करते थे। नवम् अंक में न्यायालय में प्रवेश करते समय चारुदत्त अपशकुनों के समुदाय से अत्यधिक घबरा जाता है-

**रुक्षस्वरं वाशति वायसोऽयममात्यभृत्या मुहुराह्वयन्ति।**
**सव्यं च नेत्रं स्फुरति प्रसह्य, ममानिमित्तानि हि खेदयन्ति।।**[2]

मुद्राराक्षस नाटक में अद्वितीय राजनैतिक गुणों से सम्पन्न होने पर भी चाणक्य वामाक्षिस्पन्दन, सर्पदर्शन तथा क्षपणक दर्शन सदृश संकेतों को मानता है तथा किसी अशुभ घटना की आशंका करता है। तत्कालीन समाज में ज्योतिष विद्या का भी प्रचलन दिखाई पड़ता है। स्वप्नवासवदत्त में यौगन्धरायण ने सिद्ध भविष्यवक्ताओं के कथन पर विश्वास करके ही वासवदत्ता को पद्मावती के पास धरोहर के रूप में छोड़ा-

---

1 अभिज्ञानशाकुन्तल, 1/16

2 मृच्छकटिक 9/10

**पद्मावती नरपतेर्महिषी भवित्री**
**दृष्टा विपत्तिरथ यैः प्रथमं प्रदिष्टा।**
**तत्प्रत्ययात् कृतमिदं न हि सिद्धवाक्या-**
**न्युल्क्रम्य गच्छति विधिः सुपरीक्षितानि।।**[1]

इससे ज्योतिषविद्या के विषय में लोगों के भरोसे की जानकारी मिलती है। मृच्छकटिक के षष्ठ अंक में भी विविध ग्रहों की (कुण्डली के) स्थानों पर होने का तथा उनके परिणाम का उल्लेख है। अभिज्ञानशाकुन्तल नाटक के आरम्भ में भी जानकारी मिलती है कि ऋषि कण्व शकुन्तला के दैव में किसी प्रतिकूल अदृष्ट की शान्ति हेतु सोमतीर्थ जाते हैं-

**इदानीमेव दुहितां शकुन्तलामतिथिसत्काराय नियुज्य**
**दैवमस्याः प्रतिकूलं शयितुं सोमतीर्थं गतः।**[2]

मुद्राराक्षस के चतुर्थ अंक में क्षपणक राक्षस को तिथि की अपेक्षा ग्रहों को अधिक महत्त्वपूर्ण बताते हुए उसे युद्ध के लिए प्रस्थान करने का परामर्श देता है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि संस्कृत नाटकों का अध्ययन करना मनों ज्ञान के किसी गहरे समुद्र में पैठने के समान है। यह समुद्र समाज तथा संस्कृति रूपी मणियों एवं रत्नों से भरा हआ है। पूर्वविवेचित विषयों के अतिरिक्त कुछ अन्य बिन्दु भी हैं, यथा- समाज में प्रति दण्डविधान, खान-पान, क्रीड़ाएँ आदि। इनका विस्तारभय के कारण उल्लेखमात्र किया जा रहा है। वस्तुतः समाज एवं लोगों से सम्बन्धित हर छोटी-बड़ी बात प्रसंगानुसार संस्कृति एवं जीवनशैली से जाकर जुड़ सकती है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि यद्यपि इन संस्कृत नाटकों की रचना के समय सम्पूर्ण परिस्थितियाँ एवं परिवेश आज के युग की भाँति

---

1 स्वप्नवासवदत्त 1/11

2 अभिज्ञानशाकुन्तल, प्रथम अङ्क, पृ. 24

विज्ञान एवं तकनीकी दृष्टि से सर्वथा भिन्न था तथापि उस समय भी लोग सामर्थ्यानुसार जीवन में सर्वाङ्गीण उन्नति का प्रयास किया करते थे। आज विज्ञान के बल पर जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अत्याधुनिक उपकरणों का समावेश दृष्टिगोचर होता है। किन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि पुरातन समाज में भी लोग उस समय उपलब्ध संसाधनों का प्रयोग करके जीवन व्यतीत करने में सफल थे।

**सन्दर्भ ग्रन्थ सूची:**


1. अभिज्ञानशाकुन्तल, डॉ. श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वारानसी, 1998
2. मालतीमाधव, डॉ. गंगासागर राय, चौखम्बा विद्याभवन, वारानसी, 2017
3. मालविकाग्निमित्र, तारिणीश झा, रामनारायणलाल बेनीप्रसाद, इलाहाबाद, 1964
4. मुद्राराक्षस, डॉ. (श्रीमती) पुष्पा गुप्ता, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली, 2012
5. मृच्छकटिक, डॉ. प्रत्यूषवत्सला द्विवेदी, हंसा प्रकाशन, जयपुर, 2015
6. भासनाटकचक्र, आचार्य बलदेव उपाध्याय, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 2008
7. स्वप्नवासवदत्त, डॉ. धर्मेन्द्रकुमार गुप्त, मेहरचन्द लक्षमनदास, दिल्ली, 1975
8. दशरूपक, डॉ. भोलाशंकर व्यास, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1998
9. भारतीय संस्कृति, प्रीतिप्रभा गोयल, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, 2011
10. महाकवि शूद्रक, डॉ. रमाशंकर तिवारी, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1967
11. महाकवि भास, डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री, मध्यप्रदेश हिंदी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, 1972

# प्राकृत भाषा और जैन साहित्य

Dr. Anagha H. Ghodke, Assistant Professor,
Govt. Ayurvedic College,
Dharashiv, Maharashtra

**सारांश:**

भारतीय आर्यभाषा के मध्ययुग में जो अनेक भाषाएँ विकसित हुई,उनका सामान्य नाम प्राकृत है और उन भाषाओं में ग्रन्थ रचे गये उन सबको समुच्चय रुप से प्राकृत साहित्य कहॉ जाता है। प्राकृत साहित्य में सबसे प्राचीन अर्धमागधी साहित्य है,जिसमे जैन धार्मिक ग्रन्थ रचे गये है।तथा जिन्हे समष्टि रूप से जैनागम या जैनश्रुतांग कहा जाता है। कथा साहित्य की दृष्टि से सर्वाधिक प्राचीन रचना बड्डकहा(बृहत्कथा) भी प्राकृत भाषामें ही लिखी गयी थी।

**बीज शब्द:** अर्धमागधी, जैनागम,बड्डकहा

**भूमिका:**

प्राकृत शब्द को लेकर अनेक विचारणाए उपलब्ध होती है,उनमें से कुछ ये है-

१.**प्रकृतिः** संस्कृतं तत्र भवं तत आगतं वा प्राकृतम्(हेमचन्द्र कृत प्राकृत व्याकरण)

अर्थ- प्राकृत ये मुल संस्कृत है,और संस्कृत से उत्पन्न हुआ है या वहा से आगत है वह प्राकृत है।

२.प्राकृतस्य तु सर्वमेव संस्कृत योनिः(वासुदेव कृत कर्पूरमञ्जिरी टीका)

अर्थ- प्राकृत की जननी संस्कृत है।

३.प्रकृतेः संस्कृतात आगतं प्राकृतम्।(सिंह देवमणि)

अर्थ- प्रकृति संस्कृत से आगत प्राकृत है।

इस से ये पता चलता है ,प्राकृत की उत्पत्ति संस्कृत से हुई है। हेमचन्द्रजी ने संस्कृत को प्राकृत की प्रकृति कहकर सुचित किया है की,प्राकृत संस्कृत से निकलती है। संस्कृत का आधार रखकर प्राकृत व्याकरण की रचना हुई है,पर अनुमान यह है कि ईसवी.सन् से पूर्व ३०० वर्ष पहले यह भाषा प्राकृतरूप में आ चुकी थी। जिस प्रकार संस्कृत का पुराणा रूप वेदिक भाषा है,उसी प्रकार प्राकृत का पुराणा रूप आर्ष प्राकृत है।

इसप्रकार प्राकृत साहित्य अपने रूप और विषय की दृष्टि से बडा महत्त्वपुर्ण है,तथा भारतीय संस्कृति के परिशीलन के लिये उसका स्थान अव्दितीय है। ई.पूर्व छठी शती से लेकर प्रायः वर्तमान तक प्राकृत भाषाओं का विकास ई.सन् १००० तक ही माना जाता है,क्योंकि उसके पश्चात हिंदी ,गुजराथी आदि अधुनिक भाषाओं का युग प्रारंभ होता है। मगध से लेकर सिंहल व्दीप तक की नानाविध लोकभाषाओं का स्वरूप प्राकृत भाषा में सुरक्षित है।इस साहित्य का बहुभाग यद्यपि जैनधर्म विषयक है,तथापि उसमें तत्कालीक लोकजीवन ऐसा प्रतिबिंबीत है,जैसा अन्यत्र दुर्लभ है। **भगवान महावीर** ने इसी प्राकृत भाषा के अर्धमागधी रूप में अपना उपदेश दिया था। यह शिलालेखों की भी भाषा है। हाथीगुफ़ा शिलालेख,नासिक शिलालेख्,अशोक के शिलालेख प्राकृत भाषा में ही है।

**पादलिप्तसूरी** की तरंगवई, **संघदासगणि** की वसुदेवहिण्डी, **हरिभद्रसूरि** विरचित समराइच्चकहा, **उद्योतनसूर्रिकृत** कुवलयमाला आदि कृतियॉ उत्कृष्ट कथा-साहित्य की निदर्शन है।

विमलसूरि विरचित '**पउमचरियं**'(पद्मचरितम्)जैन रामायण का ग्रन्थ है जो प्राकृत में लिखा गया है। **जंबूचरियं, सुरसुन्दरीचरियं, महावीरचरियं** आदि अनेक प्राकृत चरितकाव्य है जिनके अध्ययन से तत्कालीन समाज और संस्कृति का बोध होता है।

हालकवि की **गाहासतसई**(गाथा सप्तशती) बिहारी की सतसई का प्रेरणास्त्रोत आधारग्रन्थ रही है। गाहा सतसई श्रृंगाररस प्रधान काव्य हैजिस पर १८ टीकाएँ लिखी जा चुकी है। रुद्रट्, मम्मट्, विश्वनाथ आदि काव्य शास्त्रियों ने गाहासतसई की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है तथा संस्कृत के काव्यशास्त्रों में गाहासतसई कवि भट्ट मथुरानाथ शास्त्री ने इसपर 'सर्वङ्कषा' संस्कृतटीका लिखी है।

जयवल्लभ व्दारा रचित 'वज्जालग्ग' भी प्राकृत की एक महत्त्वपूर्ण रचना है,जिसमें प्राकृत भाषा के संबध में कहॉ है कि-

**ललिए महुरक्खरएजुवईयणवल्लहे ससिगारे।**
**सन्ते पाइयकव्वे को सकड सक्कयं पढिउं॥**

अर्थात् ललित एवं मधुर अक्षरों से युक्त-युक्तियों को प्रिय तथा श्रृंगार रसयुक्त प्राकृत काव्य के होते हुए संस्कृत को कौन पढ़ना चाहेगा? यह कथन प्राकृत की महत्ता को सुबोधता,सुग्राह्यता,सरसता आदि विशेषताओं से स्थापित करता है।

धार्मिक साहित्य के अतिरिक्त जैन परम्परा का बहुत सा कथानक साहित्य भी प्राकृत में पाया जाता है। इसप्रकार की सबसे प्राचीन रचना विमलसूरिकृत **'पउमचरियं'**(पद्मचरितम्) है जिसमें कर्ता ने अपने ग्रन्थ की समाप्ती का समय दुषमा काल के ५३०(वीर निर्वाण ५३४) वर्ष पश्चात अर्थात ईसवी सन् ७ सूचित किया है। यहॉ हमें भाषा की वे सब प्रवृत्तियॉ पुष्ट् रूप से दिखाई देती है और जिन्हे प्रायः महाराष्ट्री प्राकृत के लक्षण माना जाता है। प उमचरियं में सात अधिकार है जो ११८ उद्देश्यों में विभाजित है। समस्त रचना पद्यात्मक है।छंद गाथा है किंतु स्थानस्थान् पर छंदवैचित्र्य भी पाया जाता है। शैली सरस और सरल है तथा उसमें कथात्मकता ही प्रधान है। मूल वाल्मिकी कृत रामायण के सदृश है,किंतु अवांतर बातों में उससे बहुत भिन्नता भी है,जैसे सीता को एक भाई भामंडल भी था;राम ने बर्बर जातियोंके मिथिला पर आक्रमण होने पर

जनक की सहायता की थी और इअसी के उपलक्ष्य मेंजनक ने सीता को उन्हे अर्पित करने का संकल्प किया था।सुग्रीव,हनुमान आदि वानर नही थे, उनका ध्वजचिन्ह वानर होने से वे वानरवंशी कहलाते थे। रावण के दशमुख नही थे, किंतु उसके प्राकृतिक एक मुख के अतिरिक्त नवरत्नमय हार में मुख के नव प्रतिबिंब दिखाई देने से वह दशानन कहलाने लगे थे। उसकी मृत्यु राम् के हाथ से नही, किंतु लक्ष्मण के हाथ से हुई।

प्राकृत मे दुसरा जैन पुराण है- **चउपन्नमहापुरिसरियं**(चौपन महापुरुष चरित),जो शीलांकाचार्य व्दारा वि.सं.९२५ में रचा गया था। यह प्राय गद्यात्मक है और इसमें २४ तीर्थंकर,१२ चक्रवर्ती,९ बलदेव और ९ वासुदेव- इन ५४ महापुरुषों का चरित्र वर्णित है। वहॉ रामकथानक में वाल्मिकि रामायण कृत रामायण सें कुछ और बातें भी ली गई है,जो पउमचरियं में नहि है। प्राकृत गद्य में रचित एक और महापुराण भद्रेश्वरकृत कथावलि(१२ वी शती ई.)है, जिसमें उपायुक्त ५४ महापुरूषों के अतिरिक्र ९ प्रतिवासुदेवों के चरित्र सम्मिलित होने से समस्त ६३ शलाकापुरुषों के चरित्र भी काव्य की रिति से वर्णित पाए जाते है।इनमें वर्धमानसूरिकृत **'आविनाथचरित'**, सोमप्रभकृत **'सुमतिनाथचरित'**, देवसूरुकृत **'पद्मप्रभत्रित'**, नेमिचन्द्रकृत **'अनंतनाथचरित'**, देवण्द्रगणिकृत **'वर्धमानचरित'** आदि अनेक विशाल रचनाएँ प्रकाश में आ चुकी है। ये रचनाएँ प्रायः १२वी,१३वीं शती ई.की है,इनकी भाषा वही प्राक्रुत है जिसका प्राकृत व्याकरणों में परिचय पाया जाता है और जिसे पाश्चात्य विव्दानों क् "जैन महाराष्टो" की संज्ञा प्रदान की है। पादलिप्तसूरिकृत **'तरंगवतीकथा'** का उल्लेख अनेक प्राचीन ग्रन्थों में मिलता है। यह मूल ग्रन्थ पद्य अप्राप्य है,किंतु इसके आधार से निर्मितनेमिचन्द्रकृत तरंगलीला(१५वींशती ई.) नामकरचना उपलब्ध है। इसका कथानक एक उपन्यास है, जिसमें पात्रों के अनेक जन्मों का वृत्तान्त गुथा हुआ है और वह बाणभट्टकृत कादम्बरी का स्मरण करता है।

प्राकृत गद्य साहित्य में हरिभद्रसूरिकृत **'समरादित्यकथा'**(८वींशती ई.) का विशेष स्थान है।यह धर्मकथा है जिसमें परस्पर विरोधी दो पुरुषों के नौ जन्मांतरों का क्रमशः वर्णन किया गया है। विव्देषी पुरुष प्रत्येक जन्म मेंअपने वैरी से ईर्ष्याभाव के कारण उत्तरोत्तर अधोगती को प्राप्त करता है और चरित्रनायक अपने मन तथा चारित्र्य को उत्तरोत्तर शुद्ध बनाता हुआअंतिम भाव में समरादित्य नाम काराजा होकर तपस्या द्वारा मोक्ष प्राप्त करता है। नौ ही भवों के कथानक अपने अपने रूप में स्वतंत्र और परिपूर्ण है तथा उनमें मानवीय भावनाओं तथा समाज के नाना स्तरों का सुन्दर चित्रण पाया जाता है। धनेश्वरसूरिकृत सुरसुन्दरीचरित्र(११वीं शती ई.) गाथात्मक कथानक है जिसमें अनेक संयोग और वियोगात्मक प्रेमाख्यान ग्रथित है महेश्वरसूरिकृत **'ज्ञानपंचमीकथा'**(११वीं शती ई.) में दश धार्मिक कथाओं का समावेश हुआ है।

**उपसंहार:**

अनेक प्राकृत कथानक जैन साहित्य में उपलब्ध है तथा इनके अतिरिक्त व्रतकथाओं के रूप में बहुत सी लघुकथाएँ भी प्राप्त है। प्राकृतभाषा सुबोधता,सुग्राह्यता,सरसता आदि विशेषताओं से स्थापित है।

# प्राचीन भारतीय अभिलेखों में प्रयुक्त कालगणना पद्धतियाँ

अंगिरस, शोधार्थी, संस्कृत विभाग,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

**प्रस्तावना:**

किसी कठोर आधार पर उत्कीर्ण लेख जिसका कोई ऐतिहासिक महत्त्व हो अथवा जिसके ऐतिहासिक महत्त्व की सम्भावना हो, उसे अभिलेख कहते हैं। अभिलेख प्रायः पाषाण, शिला, स्तम्भ, मूर्त्ति, स्मारक, गुहा-भित्ति, धातु-पत्र, हाथी-दाँत तथा मुद्राओं आदि पर उत्कीर्ण किये जाते थे। ये अभिलेख विशेष अवसरों पर किसी शासक अथवा उनके अमात्य, सामन्तों एवं शुभचिन्तकों द्वारा उत्कीर्ण करवाये गये। इन अभिलेखों में प्रायः राजकीय आदेश, विजयगाथा, महत्त्वपूर्ण सूचना, धार्मिक कृत्य, दान एवं प्रशंसा का वर्णन होता है। एशिया के इतिहास, शिल्प, साहित्य आदि के शोध के लिए 15 जनवरी 1784 ई० में सर विलियम जोन्स की प्रेरणा से 'एशियाटिक सोसाईटी ऑफ बंगाल' की स्थापना कलकत्ता में हुई। यहीं से भारत के विभिन्न स्थानों से प्राप्त अभिलेखों को पढ़ने का प्रयास हुआ। प्राचीन शिलालेखों, पाण्डुलिपियों एवं मुद्राओं का संग्रह और उन पर लिखी लिपियों के अध्ययन-कार्य में इतिहासकार तथा पुरातत्त्वविद् आधुनिक समय में भी अनवरत रूप से संलग्न हैं।

**प्राचीन भारत के प्रमुख अभिलेखों का परिचय:**

लेखन कला के प्राचीनतम साक्ष्य हमें सिन्धु घाटी के उत्खनन में मिले अवशेषों से प्राप्त होते हैं। उत्खनन के समय मिले अवशेषों पर अंकित लिपि के विषय में विद्वानों में आज भी मतैक्य नहीं हो सका है।

सिन्धुघाटी लिपि में कुछ चिह्न तो चित्रात्मक हैं एवं कुछ अक्षरात्मक। अतः इस लिपि को अभी तक पूर्णतया पढ़ा नहीं जा सका है। कालक्रम की दृष्टि से प्राचीन भारतीय अभिलेख श्रृंखला का आरम्भ मौर्यवंशीय शासक अशोक के अभिलेखों से होता है। यद्यपि अशोक के अभिलेखों से पूर्व भी दो अभिलेख प्राप्त हुए हैं- 'पिपरहवा बौद्ध अस्थि-कलश अभिलेख' एवं 'सोहगौरा ताम्र-पत्र अभिलेख'। वर्ण्य विषय के आधार पर ये दोनों ही अभिलेख ऐतिहासिक दृष्टि से अभिलेख जगत् में कोई महत्त्वपूर्ण स्थान नहीं रखते हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण अभिलेखों का आरम्भ मौर्य कालीन सम्राट् अशोक के अभिलेखों से होता है। 272 से 232 ईसा पूर्व में मौर्य वंशीय शासक सम्राट् अशोक के सम्पूर्ण भारतवर्ष से चालीस से अधिक अभिलेख प्राप्त हुए हैं। अशोक के पश्चात् लगभग द्वितीय शताब्दी ईसा पूर्व में मध्यप्रदेश के भिलसा जनपद के समीप स्थित बेसनगर में उत्कीर्ण यवन दूत हेल्योडोरस का अभिलेख प्राप्त होता है। बेसनगर का प्राचीन नाम विदिशा था। इस अभिलेख से संकेत मिलता है कि यह स्तम्भ भागभद्र के शासन के चौदहवें वर्ष में तक्षशिला के यवन शासक अंतलिकितस(Antialkidas) के दूत हेल्योडोरस द्वारा स्थापित करवाया गया। यह लेख काशी के राजा भागभद्र तथा तक्षशिला के शासक अंतलिकितस(Antialkidas) के मध्य राजनैतिक सम्बन्धों को भी पुष्ट करता है। प्रायशः प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व के उत्तरार्द्ध में उड़ीसा के उदयगिरी पहाड़ी में निर्मित हाथीगुम्फा से एक लेख प्राप्त हुआ है। यह अभिलेख चेदि वंशीय प्रतापी शासक खारवेल द्वारा उत्कीर्ण है जिसके सम्बन्ध में इस लेख से कलिंग के तत्कालीन इतिहास के विषय में विस्तृत जानकारी प्राप्त होती है।

प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व के उत्तरार्द्ध में ही दक्षिण भारत की राजनैतिक, धार्मिक एवं आर्थिक अवस्था का ज्ञान सातवाहन वंश के अभिलेखों से प्राप्त होता है। ये अभिलेख दक्षिण भारत के नानाघाट नामक

स्थान एवं महाराष्ट्र के नासिक स्थित गुफा से प्राप्त हुए हैं। पश्चिमी भारत में गुजरात राज्य के सौराष्ट्र प्रांत में स्थित गिरनार की पहाड़ियों पर विशुद्ध संस्कृत में उत्कीर्ण शक वंशीय रुद्रदामन का जूनागढ़ अभिलेख प्राप्त होता है जिसकी तिथि 150 ईस्वी निश्चित की गई है। इसी पर्वत पर सम्राट् अशोक के चौदह शिलालेख और गुप्तकालीन शासक स्कन्दगुप्त का जूनागढ़ अभिलेख उत्कीर्ण है। यह अभिलेख संस्कृत गद्य एवं पद्य का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करता है।

प्रथम शताब्दी ईस्वी में कुषाणों ने एक विस्तृत साम्राज्य की स्थापना की, जिसमें उत्तर भारत के अधिकांश भाग के साथ ही मध्य एशिया के कुछ प्रदेश सम्मिलित थे। कुषाण वंशीय शासकों में सर्वाधिक प्रतापी शासक सम्राट् कनिष्क को माना गया है। कनिष्क का समय विद्वानों ने 78 ईस्वी स्वीकार किया है, जिसे कालान्तर में शक सम्वत् माना गया। कुषाण वंशीय अभिलखों में सर्वाधिक अभिलेख सम्राट् कनिष्क के प्राप्त होते हैं।

गुप्तवंशीय इतिहास अत्यन्त विशाल है। उनमें सर्वाधिक प्रसिद्ध शासक समुद्रगुप्त था जिसका काल लगभग 335 से 376 ईस्वी स्वीकार किया जाता है। इस महान् शासक के दो अभिलेख प्राप्त होते हैं- (1)प्रयाग प्रशस्ति (2)एरण अभिलेख। इसके पश्चात् इसका प्रतापी पुत्र चन्द्रगुप्त द्वितीय हुआ जिसका समय लगभग 377 से 413 ईस्वी है। इसकी विजय गाथा दिल्ली के मेहरौली में कुतुब मीनार के निकट स्थित लौहस्तम्भ पर उत्कीर्ण है। कुमारगुप्त प्रथम तथा बन्धुवर्मनकालीन मन्दसौर प्रस्तर अभिलेख जिसमें गुजरात के लाट प्रदेश का मनोहारी वर्णन है जहाँ से रेशम वस्त्र बनाने में निपुण कलाकार मालवा के दशपुर नगर में आये। इन्हीं रेशम बुनकरों की श्रेणी द्वारा मालव सम्वत् 493 में सूर्य मन्दिर बनवाने का उल्लेख है। वत्सभट्टि द्वारा रचित यह अभिलेख संस्कृत भाषा तथा वैदर्भी रीति में लिखित एक उत्कृष्ट काव्य का उत्तम उदाहरण है।

**मौर्यकालीन अभिलेखों में कालगणना पद्धति:**

मौर्य वंशीय अभिलेखों में सर्वाधिक अभिलेख सम्राट् अशोक के ही प्राप्त होते हैं। इन अभिलेखों में कालगणना का आधार अशोक के शासन वर्ष को बनाया गया है। उदाहरण- अशोक ने गिरनार के तृतीय शिलालेख में कहा है कि राज्याभिषेक के बारह वर्ष पश्चात् मेरे द्वारा यह आज्ञा दी गयी-

**द्वादस वासाभिसितेन मया इदं आञपितं।**[1]

इसी प्रकार गिरनार के पञ्चम शिलालेख में अशोक अपने राज्याभिषेक के तेरहवें वर्ष में धर्ममहामात्रों की नियुक्ति की बात कहता है-

**त मया त्रैदसवासाभिसितेन धंममहामाता कता ।**[2]

अष्टम शिलालेख में राज्याभिषेक के दसवें वर्ष अशोक द्वारा बोधगया जाने का वर्णन है जिससे धर्मयात्रा की प्रथा का आरम्भ हुआ-

**सो देवनंपियो पियदसि राजा दसवसभिसितो संतो अयाय संबोधि ।**[3]

त्रयोदश शिलालेख में अशोक के जीवन की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण घटना 'कलिंग विजय' का वर्णन है। अपने राज्याभिषेक के आठवें वर्ष में उसने कलिंग पर विजय प्राप्त की जिससे संतप्त होकर उसने अहिंसा का मार्ग अपनाया-

**अठ-वष-अभंसितस देवनप्रिअस प्रियद्रशिस रञो कलिंग विजित ।**[4]

**शुंगवंशीय अभिलेखों में कालगणना पद्धति:**

शुंग वंश का सर्वाधिक प्रसिद्ध अभिलेख द्वितीय शताब्दी ईसा पूर्व में उत्कीर्ण हेल्योडोरस का बेसनगर गरुड़ध्वज अभिलेख है। इस अभिलेख

---

[1] अशोक के अभिलेख, पाण्डेय, राजबली, पृ० सं० 4

[2] अशोक के अभिलेख, पाण्डेय, राजबली, पृ० सं० 7

[3] अशोक के अभिलेख, पाण्डेय, राजबली, पृ० सं० 12

[4] अशोक के अभिलेख, पाण्डेय, राजबली, पृ० सं० 18

से संकेत मिलता है कि यह स्तम्भ काशी के राजा शुंगवंशीय भागभद्र के शासन काल में तक्षशिला के यवन शासक अंतलिकितस(Antialkidas) के दूत हेल्योडोरस द्वारा स्थापित करवाया गया। इस अभिलेख के अध्ययन से ज्ञात होता है कि शुंगवंश के शासनकाल में कालगणना का स्वरूप अशोक के समय में प्रचलित कालगणना पद्धति से अत्यधिक साम्य रखता था। इस अभिलेख में लेखक का नाम तथा तिथि नहीं दी गयी है। मात्र संकेत मिलता है कि यह स्तम्भ भागभद्र के शासन के चौदहवें वर्ष में यवन दूत हेल्योडोरस द्वारा स्थापित किया गया था ।

**कासी-पु [त्र] स [भा] गभसद्र त्रातारस वसेन**
**च [तु] दसेन राजेन वधमानस ।[1]**

**चेदिवंशीय खारवेल के अभिलेख में कालगणना पद्धति:**

प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व के उत्तरार्द्ध में उत्कीर्ण चेदि वंशीय खारवेल का हाथीगुम्फा अभिलेख इतिहास में अपनी विशिष्ट भूमिका रखता है। इस महाप्रतापी शासक के विषय में सूचना देने वाला एकमात्र यही अभिलेख प्राप्त होता है। इस अभिलेख के अध्ययन से ज्ञात होता है कि इसने कालगणना के लिए सम्राट् अशोक द्वारा अपनायी गयी कालगणना पद्धति का ही अनुसरण किया है जिसमें राज्याभिषेक के वर्ष से कालगणना की जाती है। इस अभिलेख में राज्याभिषेक के प्रथम वर्ष से तेरहवें वर्ष तक का क्रमशः विवरण दिया गया है। उदाहरण- अभिषिक्त होने के प्रथम वर्ष तीव्र वायु वेग से क्षतिग्रस्त गोपुर एवं प्राकार का पुनर्निमाण करवाया।

**अभिसितमतो च पधमे वसे वात-विहत-गोपुर-पाकार-निवेसनं।[2]**

---

[1] अ० स० इ० (ए० रि०) 1908-09, पृ० 126, भण्डारकर, जे० वी० आर० ए० एस०, 23, पृ० सं० 104

[2] खारवेल का हाथीगुम्फा लेख, गुप्त, पी० एल०, पृ० सं० 98-117

राज्याभिषेक के दसवें वर्ष दण्ड-सन्धि-साम-नीतियुक्त खारवेल ने सेना का भारतवर्ष की महती विजय हेतु प्रस्थान कराया।

**दसमे च वसे दंडसंधीसा [ममयौ] भरघवस-पठा नं मह [ी] जयनं [?] कारापयति।[1]**

**सातवाहनवंशीय अभिलेखों में कालगणना पद्धति:**

सातवाहन वंशीय अभिलेखों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि इन अभिलेखों में कालगणना के लिए शासकों के शासन वर्ष को ही आधार बनाया है। इन अभिलेखों की विशेषता यह है कि इनमें वर्ष के लिए सम्वत् शब्द का प्रयोग किया गया है जो इससे पूर्व के अभिलेखों में देखने को नहीं मिलता है, इसके साथ ही इस समय के अभिलेखों में सम्वत् के साथ हेमन्त, वर्षा, ग्रीष्म आदि ऋतुओं, पक्ष एवं दिन का उल्लेख भी प्राप्त होता है। गौतमीपुत्र शातकर्णी के नासिक गुहालेख में उसके शासन के 18 वें वर्ष वर्षा ऋतु के द्वितीय पक्ष का उल्लेख किया गया है।

**दता पटिका सवछरे 10+8 वास पखे 2 दिवसे 1।[2]**

गौतमीपुत्र शातकर्णी के नासिक गुहालेख में भी कुछ इसी प्रकार से कालगणना की गई है । इसमें संवत्सर 24 में ग्रीष्म ऋतु के द्वितीय पक्ष में दसवें दिन का उल्लेख किया गया है।

**निबधो सवछरे 20+रखिय 4 गिंहान पखे 2 दिवसे 10।[3]**

वाशिष्ठीपुत्र पुलमावि के नासिक गुहालेख में संवत्सर 19 में, ग्रीष्म ऋतु के द्वितीय पक्ष के 13 वें दिन का उल्लेख है।

**सवछरे एकुनवीसे 10+9 गीम्हाणं पखे बितीये 2 दिवसे तेरसे10+3।[4]**

---

[1] वही

[2] सरकार, सेलेक्ट इन्स्क्रिप्शन्स, पृ० 197, इपि० इ० खण्ड 8, पृ० सं० 71।

[3] डॉ० पाण्डेय, हि० लि० इ०, पृ० 51, सरकार, स० ह०, पृ० सं० 200।

[4] भारतीय अभिलेखों का अध्ययन, सहाय, शिवस्वरूप, पृ० सं० 193।

**शकवंशीय अभिलेखों में कालगणना पद्धति:**

पश्चिम भारतीय शक क्षत्रप शासकों के अभिलेखों में एक अनिर्दिष्ट सम्वत् का प्रयोग दृष्टिगोचर होता है, जिसे बाद के विद्वानों ने शक सम्वत् माना है। यहाँ भी वर्ष के लिए सम्वत का प्रयोग होने लगा था। कृष्ण एवं शुक्ल दोनों पक्षों के साथ नक्षत्र और मुहूर्त का उल्लेख भी प्राप्त होता है। रुद्रदामन के जूनागढ़ अभिलेख में सम्वत् 72वें वर्ष मार्गशीर्ष के कृष्ण प्रतिपदा का उल्लेख है।

**रुद्रदाम्नो वर्षे द्विसप्ततितमे 70+2 मार्गशीर्ष-बहुल-प्रतिपदि।**[1]

**कुषाणकालीन अभिलेखों में कालगणना पद्धति:**

कुषाण कालीन शासकों के अभिलेखों मे प्रयुक्त कालगणना पद्धति में किञ्चित् विकास देखने को मिलता है। महाराज कनिष्क के राज्यारोहण का वर्ष 78 ईस्वी प्राप्त होता है। सर्वविदित है कि 78 ईस्वी को ही शक सम्वत् के नाम से जाना जाता है। कुषाण कालीन शासक कनिष्क के लेखों में सर्वप्रथम शासक का नाम तत्पश्चात् उसके राज्यवर्ष का उल्लेख किया गया है। यही राज्यवर्ष कालान्तर में शक सम्वत् के नाम से जाना गया। अब अभिलेखों में निश्चित सम्वत् का प्रयोग किया जाने लगा। पक्ष और नक्षत्र के साथ ऋतु एवं मासों के नाम भी देखने को मिलने लगे। ऋतुओं में हेमन्त, ग्रीष्म तथा वर्षा ऋतु का उल्लेख होने लगा। इन लेखों में ज्येष्ठ, आषाढ़, कार्त्तिक, भाद्रपद आदि मासों के नाम प्राप्त होते हैं। कृष्ण पक्ष तथा उत्तरफाल्गुनी नक्षत्र का उल्लेख भी मिलता है । उदाहरणस्वरूप कनिष्क प्रथम के सारनाथ बौद्ध प्रतिमा अभिलेख में लिखित है कि कनिष्क के द्वारा अपने शासनकाल के तृतीय वर्ष, हेमन्त ऋतु के तृतीय पक्ष के 22वें दिन बोधिसत्व का छत्र एवं यष्टि स्थापित

---

[1] इपि० इण्डि०, खण्ड 16, पृ० सं० 23।

किया गया।

**महरजस्य कणिष्कस्य सं 3 हे 3 दि 20+ ।[1]**

कनिष्क के सुई विहार लेख में कनिष्क सम्वत् एकादश, दैशिक नामक मास के 28वें दिन का उल्लेख मिलता है।

**कनिष्कस्य संवत्सरे एकदशे सं 10+1 दइसिंकस्य मसस्य दिवसे अठविशे दि 20 + 4 + 4 ।[2]**

हुविष्क के मथुरा प्रस्तर अभिलेख में सम्वत्सर 28 गुर्पिये मास के प्रथम दिन का वर्णन है।

**संवत्सरे 20 + 8 गुर्प्पिये दिवसे 1 ।[3]**

**गुप्तवंशीय शासकों के अभिलेखों में कालगणना पद्धति:**

गुप्तकालीन अभिलेखों में प्रथम एवं सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अभिलेख समुद्रगुप्त का प्रयाग स्तम्भ अभिलेख है जिसे समुद्रगुप्त की प्रयाग-प्रशस्ति भी कहा जाता है। इसमें किसी भी प्रकार की कोई तिथि का उल्लेख नहीं किया गया है। गुप्तवंशीय शासकों के अभिलेखों में सर्वप्रथम चन्द्रगुप्त द्वितीय के मथुरा स्तम्भ लेख कालगणना की एक पृथक् पद्धति दृष्टिगोचर होती है जिसमें कालगणना के लिए शासक के राज्याभिषेक के वर्ष के साथ पूर्व से चले आ रहे एक अनिर्दिष्ट सम्वत् का भी प्रयोग किया गया है। इसके साथ ही मास, पक्ष, एवं तिथि का उल्लेख भी किया गया है।

**महाराजराजाधिराज श्री चंद्रगुप्तस्य विजय राज्य संवत्सरे पंचमे कालानुवर्तमानसंवत्सरे एक षष्ठेतमे 60+1 आषाढ मासे प्रथमे शुक्ल दिवसे**

---

[1] इपि० इण्डि०, खण्ड 8, पृ० सं० 173

[2] भारतीय अभिलेखों का अध्ययन, सहाय, शिवस्वरूप, पृ० सं० 235

[3] इपि० इण्डि० 21, पृ० 60, जायसवाल, जे० बी० ओ० आर० एस० 18, पृ० सं० 4

**पंचम्या ।[1]**

विद्वानों का मत है कि जिस सम्वत् का उल्लेख यहाँ किया गया है, वह पूर्व में प्रचलित गुप्त सम्वत् ही है।

चन्द्रगुप्त द्वितीय के ही उदयगिरि गुहा-अभिलेख सम्वत् 82 के आषाढ़ मास के शुक्लपक्ष की एकादशी तिथि का उल्लेख है। यह निश्चित रूप से गुप्त सम्वत् ही है।

**संवत्सरे 80 + 2 आषाढ मास शुक्लैकादश्याम्[2]**

इसके पश्चात् कुमारगुप्त प्रथम के काल के लगभग 18 अभिलेख प्राप्त होते हैं। उनके अध्ययन से ज्ञात होता है कि चन्द्रगुप्त द्वितीय के समय की कालगणना पद्धति में जिस सम्वत् का प्रयोग किया गया है, उसी क्रम में कुमारगुप्त प्रथम के अभिलेखों में सम्वत् का उल्लेख किया गया है। कुमारगुप्त प्रथम के गढ़वा अभिलेख में संवत्सर 98 का उल्लेख है जो चन्द्रगुप्त द्वितीय के समय के अभिलेखों में दर्शाये गए सम्वत् से आगे का ही क्रम है।

**श्री कुमारगुप्त राज्य संवत्सरे 90 + 8 अस्या ।[3]**

कुमार प्रथम के उदयगिरि गुहालेख में सम्वत् 106 कार्तिक मास के कृष्ण पक्ष की पञ्चमी तिथि का उल्लेख है।

**गुप्तान्वयानीं नृपसत्तमानां राज्ये कुलस्याभिविवर्द्धमाने षडभिर्य्युते वषेशतेऽथ मासे सुकार्तिके बहुल दिनेअथ पंचमे ।[4]**

कुमारगुप्त प्रथम के मथुरा लेख में कुमारगुप्त की विजय तिथि सम्वत् 107 के श्रावणमास दिवस 20 का उल्लेख किया गया है।

---

[1] गोयल, गुप्तकालीन अभिलेख, पृ० 99-105, वासुदेव उपा०, गु० अ०, पृ० सं० 368

[2] सहाय, शिवस्वरूप, भारतीय पूरालेखों का अध्ययन, पृ० सं० 271

[3] गुप्त, पी० एल०, प्राचीन भारत के प्रमुख अभिलेख, पृ० सं० 87

[4] गुप्त, पी० एल०, प्राचीन भारत के प्रमुख अभिलेख, पृ० सं० 92

**श्री कुमारगुप्तस्य 100+7 अधिक श्रावण मास दिवस 20 ।[1]**

इसी प्रकार कुमारगुप्त के अन्य अभिलेखों में भी कालगणना के लिए बढ़ते क्रम में गुप्त सम्वत् का प्रयोग किया है। कुमारगुप्त प्रथम के कर्मदण्डा शिवलिंग अभिलेख, दामोदर ताम्रपत्र अभिलेख, कुमारगुप्त प्रथम एवं उसके गोप्ता बन्धुवर्मन् के मन्दसौर प्रस्तर अभिलेख आदि में इसी प्रकार बढ़ते हुए क्रम में गुप्त सम्वत् के साथ पक्ष, मास एवं तिथि का उल्लेख प्राप्त होता है।

इसी प्रकार गुप्त वंश के एक और प्रतापी शासक स्कन्दगुप्त के जूनागढ़ अभिलेख में स्पष्ट रूप से गुप्त सम्वत् के अनुसार कालगणना का उल्लेख प्राप्त होता है। यहाँ गुप्तसम्वत् की गणना के अनुसार 136 वें गुप्तसम्वत् में भाद्रपद की षष्ठी तिथि की रात में सुदर्शन सरोवर के बांध के टूटने की घटना का उल्लेख है।

**संवत्सराणामधिके शते तु त्रिंशऽभिरन्यैरपि षड्भिरेव।**
**रात्रौ दिने प्रौष्ठपदस्य षष्ठे गुप्त-प्रकाले गणनां विधाय ॥[2]**

स्कन्दगुप्त के इन्दौर ताम्रपत्र अभिलेख में गुप्तसम्वत् 146 में फाल्गुन मास का स्पष्ट उल्लेख किया गया है।

**श्री स्कन्दगुप्तस्याभि वर्द्धमान विजय राज्य संवत्सरशते षट्चत्वारिंशदुत्तरतमे फाल्गुन मासे ।[3]**

बुधगुप्त के सारनाथ मूर्त्तिलेख में स्पष्ट उल्लिखित है कि गुप्तशासकों को शासन करते हुए 157 वर्ष व्यतीत जाने पर बुधगुप्त का शासन वैशाख मास के कृष्णपक्ष की सप्तमी को मूल नक्षत्र में आरम्भ हुआ था।

**गुप्तानां समतिक्रान्तेसप्तपंचाशदुत्तरेशते समानां पृथिवीं**

---

[1] गुप्त, पी० एल०, प्राचीन भारत के प्रमुख अभिलेख, खण्ड 2, पृ० सं० 64

[2] सहाय, शिवस्वरूप, भारतीय पुरालेखों का अध्ययन, पृ० सं० 312

[3] फ्लीट, जॉन फेथफुल, कार्पस इन्स्क्रिप्शनम इण्डिकेरम, भाग 3, पृ० सं० 30

**बुधगुप्तेप्रशासतिवैशाखमास सप्तम्यां मूलेश्यामगते ।**[1]

बुधगुप्तकालीन एरण प्रस्तर स्तम्भ लेख में वर्ष 165 में जब बुद्धगुप्त राजा था, आषाढ़ मास के शुक्ल पक्ष की द्वादशी तिथि में दिन बृहस्पतिवार का उल्लेख मिलता है।

**शते पञ्चषष्ट्यधिके वर्षाणां भूपतौ च बुधगुप्ते।**
**आषाढ़-मास-शुक्ल-द्वादश्यां सुरगुरोर्द्दिवसे।**
**सं०100 (+) 60 (+) 5 (॥)**[2]

भानुगुप्तकालीन एरण प्रस्तर स्तम्भलेख में गुप्त सम्वत् 191 में श्रावण मास के कृष्णपक्ष की सप्तमी को श्रावण मास के बहुल पक्ष में दिवस 7 का उल्लेख मिलता है।

**संवत्सर शते एकनवत्युत्तरे श्रावण-बहुलपक्ष-सप्तम्यम्यां सम्वत्**
**100(+)90(+)1 श्रावण-बदि 7 ।**[3]

**निष्कर्ष:**

प्राचीन भारतीय अभिलेखों में प्रयुक्त विभिन्न कालगणना पद्धतियों के विश्लेषण के पश्चात् निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि सम्राट् अशोक के अभिलेखों में कालगणना की जिस पद्धति का प्रयोग दृष्टिगोचर होता है, उसमें कालगणना का आधार पूर्व में प्रचलित कोई सम्वत् नहीं अपितु सम्राट् अशोक के राज्याभिषेक के वर्ष को ही आधार बनाकर क्रमशः अभिलेखों में उल्लिखित किया गया है। अशोक के अभिलेखों में कहीं भी ऋतु, पक्ष, मास, दिवस आदि का कोई उल्लेख प्राप्त नहीं होता है।

---

[1] सरकार, डी० सी०, सलेक्ट इन्स्क्रिप्शन्स, पृ० सं० 331

[2] गोयल, श्री राम, गुप्तकालीन अभिलेख, पृ० सं० 288, पाण्डेय, हि० लि० इ०, पृ० 106

[3] सहाय, शिवस्वरूप, भारतीय पुरालेखों का अध्ययन, पृ० सं० 326-27

अशोक के पश्चात् शुंग कालीन अभिलेखों एवं चेदि वंशीय खारवेल के हाथीगुम्फा अभिलेख के अध्ययन से ज्ञात होता है कि प्रथम शताब्दी ईसापूर्व के उत्तरार्ध तक कालगणना का स्वरूप अशोक के समय में प्रचलित कालगणना पद्धति से अत्यधिक साम्य रखता था क्योंकि यहाँ पर भी कालगणना का आधार शासक के राज्याभिषेक को ही बनाया गया है, साथ ही ऋतु, पक्ष, मास, दिवस आदि का उल्लेख यहाँ भी दृष्टिगोचर नहीं होता है। इसका तात्पर्य यह है कि प्रथम शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक कोई एक सम्वत् प्रचलन में नहीं था अपितु प्रचलित एवं सशक्त शासक के शासनवर्ष को आधार बनाकर कालगणना की जाती थी।

वर्ष के लिये सम्वत् शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम सातवाहन कालीन अभिलेखों में दृष्टिगोचर होता है किन्तु किसी एक सम्वत् को आधार मानकर कालगणना की जाये, ऐसा प्रतीत नहीं होता है। शातकर्णी के अभिलेखों में उसके शासन वर्ष से कालगणना की गई है, जहाँ वर्ष को संवत्सर कहा गया है, वहीं शातकर्णी के पुत्र पुलमावि ने कालगणना के लिए अपने पिता के शासनवर्ष को आधार न मानकर अपने शासनवर्ष को आधार बनाकर कालगणना की है। इसके साथ ही इस समय के अभिलेखों में सम्वत् के साथ हेमन्त, वर्षा, ग्रीष्म आदि ऋतुओं, पक्ष और दिन का उल्लेख भी प्राप्त होता है जो इससे पूर्व के अभिलेखों में दृष्ट नहीं है। इसका तात्पर्य यह है कि द्वितीय शताब्दी ईस्वी तक कालगणना के लिए किसी निश्चित सम्वत् का प्रयोग नहीं होता था किन्तु कालगणना पद्धति में किञ्चित् विकास अवश्य हुआ था क्योंकि अब वर्ष के साथ हेमन्त, वर्षा, ग्रीष्म आदि ऋतुओं, पक्ष और दिन का उल्लेख भी होने लगा था।

कालगणना के लिए निश्चित सम्वत् का सर्वप्रथम प्रयोग पश्चिमी भारतीय शकक्षत्रप शासकों के अभिलेखों में दृष्ट होता है। तात्कालिक शासक अपने अभिलेखों में तिथि उल्लिखित करते समय अपने-अपने शासन वर्ष को आधार बनाकर कालगणना नहीं करते थे अपितु एक

प्रचलित एवं निश्चित सम्वत् को ही आधार मानकर कालगणना करते थे । कृष्ण एवं शुक्ल दोनों पक्षों के साथ नक्षत्र और मुहूर्त का उल्लेख भी प्राप्त होता है।

कुषाण वंशीय शासकों में सर्वाधिक प्रतापी शासक सम्राट् कनिष्क को माना गया है। कनिष्क का समय विद्वानों ने 78 ईस्वी स्वीकार किया है। कनिष्क ने कालगणना के लिए जिस सम्वत् की स्थापना की, कालान्तर में उसे शक सम्वत् के नाम से जाना गया। अतः 78 ईस्वी को शक सम्वत् के रूप में मान्यता प्राप्त है । कुषाण वंश के शासक सम्राट् कनिष्क के अभिलेखों में सर्वप्रथम शासक का नाम तत्पश्चात् उसके शासनवर्ष उल्लेख किया गया है। यही राज्यवर्ष कालान्तर में शक सम्वत् के नाम से जाना गया जिसमें अभिलेखों में निश्चित सम्वत् का प्रयोग किया जाने लगा था। पक्षों एवं नक्षत्रों के साथ-साथ ऋतुओं एवं मासों के नामोल्लेख भी प्राप्त होने लगे थे। ऋतुओं में हेमन्त, ग्रीष्म तथा वर्षा ऋतु का उल्लेख होने लगा था। इन लेखों में ज्येष्ठ, आषाढ़, कार्त्तिक, भाद्रपद आदि मासों के नाम प्राप्त होते हैं। कृष्ण पक्ष तथा उत्तरफाल्गुनी नक्षत्र का उल्लेख भी प्राप्त होता है।

गुप्तकालीन अभिलेखों में समुद्रगुप्त को छोड़कर अन्य सभी शासकों के अभिलेखों में कालगणना के लिए एक विशिष्ट तिथि का उल्लेख प्राप्त होता है जिसे कालान्तर में गुप्त सम्वत् के नाम से जाना गया। विद्वानों ने 319 ईस्वी को गुप्त सम्वत् के रूप में स्वीकार किया है। गुप्तवंशीय शासकों के अभिलेखों में कालगणना की एक पृथक् पद्धति दृष्टिगोचर होती है जिसमें कालगणना के लिए शासक के राज्याभिषेक के वर्ष के साथ पूर्व से चले आ रहे गुप्त सम्वत् का भी प्रयोग किया गया है। गुप्तकालीन अभिलेखों की विशेषता यह है कि इस वंश के सभी शासकों के अभिलेखों में गुप्त सम्वत् का क्रमशः प्रयोग देखने को मिलता है। इसके साथ ही इन अभिलेखों में ऋतु, पक्ष, मास तथा वार का भी स्पष्ट उल्लेख

है।

निष्कर्षतः हम यह कह सकते हैं कि प्राचीन भारतीय अभिलेखों में कालगणना का जो स्वरूप दृष्टिगोचर होता है, वह प्रारम्भ से ऐसा नहीं था। कालगणना की ये विभिन्न पद्धतियाँ शनैः-शनैः विकसित हुई थीं। वर्त्तमान समय में भारत में जब भी महत्त्वपूर्ण पत्रकों, शासकीय पत्र-पत्रिकाओं, पुस्तकों, भवनों इत्यादि पर तिथियों का उल्लेख किया जाता है तो वे कहीं न कहीं हमारे प्राचीन भारतीय अभिलेखों में प्रयुक्त कालगणना की पद्धतियों से ही अनुसृत एवम् अभिप्रेरित होती हैं जो भारतीय कालगणना की पद्धतियों के अत्यन्त दीर्घकालीन विकास की परम्परा का ही परिणाम हैं।

**सन्दर्भ-ग्रन्थ सूची :-**


१. पाण्डेय, राजबली, अशोक के अभिलेख, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, 2022
२. गुप्त, परमेश्वरीलाल, प्राचीन भारत के प्रमुख अभिलेख, खण्ड 1, 2, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2011
३. उपाध्याय, वासुदेव, प्राचीन भारतीय अभिलेखों का अध्ययन, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1961
४. सहाय, शिवस्वरूप, भारतीय पुरालेखों का अध्ययन, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2000
५. अवस्थी, श्रीपति, भारत के प्रसिद्ध अभिलेख, जे. पी. पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 2007
६. काम्बोज, जियालाल, उत्कीर्णलेखस्तबकः, विद्यानिधि प्रकाशन, दिल्ली, 2015
७. ओझा, गौरीशंकर, अशोककालीन धार्मिक अभिलेख, भारतीय कला प्रकाशन, दिल्ली, 2002
८. उपाध्याय, वासुदेव, गुप्त अभिलेख, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना, 2010
९. गोयल, श्रीराम, प्राचीन भारतीय अभिलेख संग्रह, भाग 1, जयपुर, 1982
१०. पाण्डेय, राजबली, भारतीय पुरालिपि, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2012
११. फ्लीट, जॉनफेथफुल, भारतीय अभिलेख संग्रह, भाग 1, 2, 3, राजस्थान हिन्दी

ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 1974

१२. सैनी, रणजीत सिंह, अभिलेखमञ्जूषा, न्यू भारतीय बुक कॉर्पोरेशन, दिल्ली, 2000

१३. Sircar, Dinesh Chandra, Selected Inscription Bearing on Indian History and Civilization, Vol. 1, V.k. Publishing House, 1993

१४. Fleet, John Faithfull, corpus Inscriptionum Indicarum, Indological Book House, Vranasi, 1970

१५. Cunnigham, Corpus Incriptionum Indicarum vol 1: Inscriptions of Ashoka, 1879

# प्राचीन भारतीय शिक्षा में संस्कृत की भूमिका

डॉ.चमन कुमार, असिस्टेंट प्रोफेसर
श्री ब्रज बिहारी महाविद्यालय, कोसीकलां, मथुरा-281403

शिक्षा शब्द 'शिक्ष विद्योपादाने' धातु से 'गुरोश्च हलः'[1] सूत्र से भाव में 'अ' प्रत्यय तथा स्त्रीलिंग में 'टाप्' प्रत्यय करने पर सिद्ध होता है इस प्रकार शिक्षा का अर्थ विद्या ग्रहण करना है। भारतीय ऋषियों ने विद्या को दो भागों में विभाजित किया है- परा विद्या और अपरा विद्या। वेद और वेदांगों को अपरा विद्या और जिस विद्या से अक्षर ब्रह्म का साक्षात्कार किया जाता है उसे परा विद्या कहा गया है[2]। अतः प्राचीन भारत में शिक्षा से तात्पर्य वेद वेदांग आदि का अध्ययन करना तथा अक्षर ब्रह्म का साक्षात्कार करना था। इस प्राचीन भारतीय शिक्षा का माध्यम संस्कृत भाषा था। संस्कृत भाषा के दो रूप प्राप्त होते हैं- वैदिक संस्कृत और लौकिक संस्कृत। वैदिक संस्कृत श्रुतिकाल से सम्बन्धित है जिसके अन्तर्गत संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् आते हैं तथा लौकिक संस्कृत के दो विभाजन हैं- 1.स्मृतिकाल, जिसमें वेदाङ्ग, रामायण, महाभारत और पुराणों की रचना हुई 2.पाणिनि रचित व्याकरण के बाद की रचनाएँ। आलोचक इसी काल को "लौकिक संस्कृत का काल" के नाम से संबोधित करते हैं[3]। इस प्रकार **प्राचीन भारतीय शिक्षा में संस्कृत भाषा की भूमिका को क्रमशः श्रुतिकाल, स्मृतिकाल और पाणिनि मुनि रचित व्याकरण के बाद के काल में प्रदत्त ज्ञान के माध्यम से समझा जा सकता है।** श्रुतिकाल और स्मृतिकाल में उल्लिखित श्रुति और स्मृति का अर्थ मनुस्मृति के अनुसार क्रमशः वेद और

---

[1] अष्टाध्यायी- 3/3/103

[2] मुण्डकोपनिषद्-1/4-5

[3] संस्कृत साहित्य का इतिहास, आचार्य बलदेव उपाध्याय पृ.17

धर्मशास्त्र है जिनसे धर्म हुए हैं[1]।

संस्कृतभाषा में उपर्युक्त सभी कालों में अनेक पाठ्यविषयों के माध्यम से शिक्षाएं दी गईं जिनके अनेक उद्धरण प्राप्त होते हैं - छान्दोग्योपनिषद् के एक प्रसंग में नारद के प्रति सनत्कुमार के उपदेश में नारद जी सनत्कुमार जी से विभिन्न पाठ्य-विषयों की चर्चा करते हैं- **"ऋग्वेदं भगवो अध्येमि यजुर्वेदं सामवेदमाथर्वणम् चतुर्थमितिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदं पित्र्यं राशिं दैवं निधिं वाकोवाक्यमेकायनं देवविद्यां ब्रह्मविद्यां भूतविद्यां क्षत्रविद्यां नक्षत्रविद्यां सर्पदेवजनविद्यामेतद् भगवो अध्येमि।"[2]** अर्थात् चारों वेद, इतिहास पुराण, व्याकरण, श्राद्धकल्प, गणित, दैव (भूकंप, वायु आदि ज्ञान) महाकालादि निधिशास्त्र, तर्कशास्त्र, राजनीति, निरुक्त, छन्द और ध्वनिविद्या, भूतविद्या, धनुर्वेद, ज्योतिष, सर्पविद्या और देवजनविद्या(नृत्य, गीत, शिल्प आदि विज्ञान)। याज्ञवल्क्य स्मृति में चतुर्दश विद्याओं का वर्णन है- चार वेद, छह वेदांग, पुराण, न्याय, मीमांसा और धर्मशास्त्र[3]। महाभाष्य में भी वेदांगों और वेद का अध्ययन करना ब्राह्मण का धर्म बताया गया है[4]। कौटिल्य के अनुसार विद्या चार हैं जिनसे धर्म और अर्थ के स्वरूप का ज्ञान होता है- आन्वीक्षकी, त्रयी, वार्ता और दंडनीति। आन्वीक्षकी में सांख्य, योग, लोकायत का, त्रयी में धर्म और अधर्म का, वार्ता में अर्थ अनर्थ का, दंडनीति में संधि विग्रह आदि षाड्गुण्य का प्रतिपादन किया जाता है[5]। मनुस्मृतिकार ने भी वेद, स्मृति, न्यायशास्त्र, मीमांसा, निरुक्त और सदाचार इत्यादि विषयों को महत्वपूर्ण

---

[1] मनुस्मृति - 2/10

[2] छान्दोग्योपनिषद्- 7/1/2

[3] याज्ञवल्क्य स्मृति - 1/3

[4] महाभाष्य- पतंजलि मुनि, पृ.9

[5] अर्थशास्त्र - 1.2.8-11

माना है[1]। ध्यातव्य है कि उपर्युक्त सभी विद्याएँ एवं पाठ्य-विषयों का अध्ययन और अध्यापन समय के साथ-साथ गुरुकुलों, आश्रमों, मठों और विश्वविद्यालयों में होता रहा है, जिनमें मुख्यतः तक्षशिला, नालंदा, वलभी और विक्रमशिला विश्वविद्यालयों का नाम शामिल है[2]। उपर्युक्त प्राचीन भारतीय शिक्षा में संस्कृत की भूमिका को उपर्युक्त तीन कालक्रमों और शिक्षा की विभिन्न विद्याओं के माध्यम से समझा जा सकता है-

**श्रुतिकालीन शिक्षा में संस्कृत:**

श्रुतिकाल में वेद की शिक्षा दी जाती थी। आचार्य सायण के अनुसार जो इष्ट-प्राप्ति और अनिष्ट-निवारण के लिए अलौकिक उपाय बताता है वह वेद है[3]। आपस्तम्ब ने यज्ञ-परिभाषा(परि.सं.31) में वेद के मन्त्र और ब्राह्मण दो भाग माने है- "मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्"। मन्त्र में संहिता और ब्राह्मण में ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् को शामिल किया जाता है।

**1.<u>संहिता</u>:**

संहिताओं की संख्या चार है ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद। इनमें अनेक ऋषियों के साक्षात् किए गए विचारों का समावेश है। जो गुरुकुलों और कालांतर में विभिन्न माध्यमों से समाज के लिए कल्याणकारी हुए। कुछ विचारों का निदर्शन निम्नलिखित है जैसे- ऋग्वेद- परम सत् एक है, हमें साथ चलना चाहिए इत्यादि[4]। यजुर्वेद- **"भद्रं**

---

[1] मनुस्मृति - 2/12, 12/111

[2] भारतीय संस्कृति, डॉ. प्रीतिप्रभा गोयल, पृष्ठ 120 - 124

[3] "इष्टप्राप्त्यनिष्टपरिहारयोरलौकिकमुपायं यो ग्रन्थो वेदयति स वेद", तैत्तिरीय संहिता भाष्य भूमिका, आचार्य सायण

[4] "एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति"। ऋग्वेद 1/164/46, "सं गच्छध्वं सं वदध्वम्...."। ऋग्वेद - 10/191/2,
"स्वस्ति पन्था मनुचरेम"। ऋग्वेद- 5/51/15, "समाना हृदयानि वः"। ऋग्वेद- 10/191/4

**कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः"** (हम कानों से भद्र सुनें, भद्र देखें), **"मा गृधः कस्यस्विद् धनम्"**(किसी के धन पर लालच न करो), **"कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः"**(कर्म करते हुए सौ वर्ष जीने की इच्छा करे), **"तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु"**(वह मेरा मन अच्छे संकल्पों वाला हो)[1] इत्यादि। अथर्ववेद में यज्ञ को विश्व की नाभि(यज्ञो विश्वस्य भुवनस्य नाभिः), ब्रह्मचर्य से मृत्यु को जीतना(ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नतः) तथा भूमि के साथ माता और पुत्र का सम्बंध बताया गया है(माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः)[2] इत्यादि।

**2.<u>ब्राह्मण ग्रन्थ</u>:**

मंत्रों के व्याख्या ग्रन्थों को ब्राह्मण कहा गया। ब्राह्मणों की विषयवस्तु दश प्रकार की है- हेतु, निवचन, निन्दा, प्रशंसा, संशय, विधि, परक्रिया, पुराकल्प, व्यवधारण-कल्पना और उपमान[3]। संहिताओं से संबद्धता के अनुसार इनका विभाजन निम्न प्रकार है- ऋग्वेदीय ब्राह्मण- ऐतरेय, शांखायन। शुक्ल यजुर्वेद ब्राह्मण- शतपथ। कृष्ण यजुर्वेदीय ब्राह्मण- तैत्तिरीय ब्राह्मण। सामवेद ब्राह्मण- पञ्चविंश, षड्विंश, सामविधान, आर्षेय, देवताध्याय, मन्त्र, वंश, आदि। अथर्ववेदीय ब्राह्मण- गोपथ।

**3.<u>आरण्यक ग्रन्थ</u>:**

आरण्यकों में उपनिषदों में वर्णित तत्वज्ञान का प्रारंभिक रूप है। सायणाचार्य के अनुसार अरण्य में अध्ययन होने के कारण इनका नाम आरण्यक हुआ[4]। आरण्यकों का विभाजन निम्न प्रकार है- ऋग्वेदीय आरण्यक- ऐतरेय, शांखायन। शुक्लयजुर्वेद आरण्यक- बृहदारण्यक।

---

[1] यजुर्वेद- क्रमशः 25/21, 40/1, 40/2, 64/1

[2] अथर्ववेद- क्रमशः 9/10/14, 11/7/19, 12/1/12

[3] "हेतुर्निवचननिन्दाप्रशंसासंशयो विधिः परक्रिया पुराकल्पो व्यवधारण-कल्पना"। ऋग्वेदभाष्यभूमिका, सायण आचार्य पृ.- 66

[4] "अरण्याध्ययनादेतदारण्यकमितीर्यते"। तैत्तिरीयारण्यकसायणभाष्य- मङ्गलाचरण

कृष्णयजुर्वेदीय आरण्यक- तैत्तिरीय। सामवेद आरण्यक- तलवकार। अथर्ववेदीय आरण्यक- कोई नहीं।

**4.<u>उपनिषद् ग्रन्थ</u>:**

ब्रह्मविद्या का उपदेश देने वाले ग्रंथ उपनिषद् कहलाए। शंकराचार्य के अनुसार उपनिषद् शब्द का अर्थ विद्या है- **"उपनिषच्छब्देन च व्याचिख्यासितग्रन्थप्रतिपाद्यवेद्यवस्तुविषया विद्योच्यते[1]"**। इससे मोक्षकामी लौकिक और पारलौकिक विषयों से विरक्त होकर अविद्यादि संसार के बीज का नाश करता है[2]। विद्या से अमृत की प्राप्ति बताई गई है[3]। उपनिषदों में शिक्षार्थी को सत्य बोलना, धर्म का आचरण करना, स्वाध्याय को न छोड़ना, माता, पिता, आचार्य और अतिथि को देव मानना आदि की भी शिक्षा दी जाती थी।[4] उपनिषदों की संख्या 100 से अधिक थी किंतु वर्तमान में आचार्य शंकर का भाष्य मात्र 10 उपनिषदों पर ही उपलब्ध है अतः 10 उपनिषद् ही प्रामाणिक एवं प्राचीन मानी गई हैं। उपनिषदों और उनके संबंधित वेदों का विवरण निम्न प्रकार है- ऋग्वेदीय उपनिषद्- ऐतरेय। शुक्लयजुर्वेदीय उपनिषद्- ईश, बृहदारण्यक। कृष्णयजुर्वेदीय उपनिषद्- कठ, तैत्तिरीय। सामवेदीय उपनिषद्- केन, छांदोग्य। अथर्ववेदीय उपनिषद्- प्रश्न, मुण्डक, मांडूक्य[5]।

**स्मृतिकालीन शिक्षा में संस्कृत:**

संस्कृत साहित्य के इतिहासकार संस्कृत साहित्य में वेदांग, रामायण, महाभारत, पुराण, स्मृति और कौटिल्य का अर्थशास्त्र के काल को

---

[1] कठोपनिषत् - शाङ्करभाष्य प्रस्तावना, पृ.12

[2] "ये मुमुक्षवो दृष्टा नुश्र विक विषय वितृष्णाः....उपनिषदित्युच्यते"। कठोपनिषत् - शाङ्कर भाष्य प्रस्तावना पृ.12

[3] "विद्ययामृतमश्नुते"। ईशावास्योपनिषद्- मन्त्रसंख्या- 11

[4] तैत्तिरीयोपनिषद्- शीक्षावल्ली- एकादश अनुवाक

[5] वैदिक साहित्य एवं संस्कृति- डॉ कपिल देव द्विवेदी, पृ.44- 188

स्मृतिकाल के नाम से अभिहित करते हैं। जिनका क्रमशः वर्णन है:

वेदांग की संख्या 6 है[1]। पाणिनीय शिक्षा में एक रूपक के माध्यम से वेदपुरुष के अंगों के रूप में वेदांगों को प्रतिपादित किया गया है जिसमें छन्द, कल्प, ज्योतिष, निरुक्त, शिक्षा और व्याकरण को क्रमशः पाद(पैर), हस्त(हाथ), चक्षु, श्रोत्र, घ्राण और मुख कहा गया है[2]। इनमें शिक्षा और छन्द वेद के उच्चारण से, व्याकरण और निरुक्त वेद के अर्थ ज्ञान से, कल्प और ज्योतिष वेद के उचित यज्ञ में प्रयोग से सम्बंधित हैं। शिक्षा वेदांग वर्णोच्चारण से संबंधित है- **"स्वरवर्णाद्युच्चारणप्रकारो यत्रोपदिश्यते सा शिक्षा[3]"।** शिक्षा के षड् विषय माने गए हैं- वर्ण, स्वर, मात्रा, बल, साम और सन्तान[4]। शिक्षा वेदांग के कुछ प्रसिद्ध ग्रंथ हैं- पाणिनीय शिक्षा, भरद्वाज शिक्षा, याज्ञवल्क्य शिक्षा इत्यादि। **कल्पसूत्रों** में यज्ञ संबंधी विधियों का प्रतिपादन किया गया है कल्पसूत्र चार होते हैं- श्रोतसूत्र, गृह्यसूत्र, धर्मसूत्र और शुल्बसूत्र। श्रोतसूत्र में वैदिक ब्राह्मणों में वर्णित यज्ञ-यागादि विधानों का संक्षिप्त वर्णन है। गृह्यसूत्र में गृहस्थ जीवन से जुड़े धार्मिक अनुष्ठानों, यज्ञों, संस्कारों और अन्य कृत्यों का वर्णन है। धर्मसूत्र से सामाजिक जीवन के विधि-निषेध आचार-विचार और नियमों का वर्णन है। शुल्बसूत्र में यज्ञवेदिका के निर्माण की विधियां वर्णित हैं। शुल्ब सूत्रों से ही भारतीय ज्यामिति का प्रारम्भ माना जाता है। **व्याकरण** में प्रकृति-प्रत्यय का विवेचन किया जाता है। व्याकरण को दो भागों में बांटा गया है- वैदिक संस्कृत व्याकरण और लौकिक संस्कृत व्याकरण। वैदिक

---

[1] ".....शिक्षा कल्पो व्यकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषामिति"। मुण्डकोपनिषद्- 1/1/5

[2] छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोथ पठ्यते। ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्त श्रोत्रमुच्यते।
शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम्। तस्मात्साङ्गमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते।।
पाणिनीय शिक्षा- श्लोक सङ्ख्या- 41-42

[3] ऋग्वेदभाष्यभूमिका- सायणाचार्य, पृ.117

[4] "वर्णः स्वरः मात्रा बलं साम सन्तान इत्युक्तः शीक्षाध्यायः"। तैत्तिरीयोपनिषद्- शिक्षावल्ली 1/2

संस्कृत व्याकरण के ग्रन्थ प्रातिशाख्य हैं यथा ऋक्-प्रातिशाख्य, शुक्ल यजुः प्रातिशाख्य, तैत्तिरीय प्रातिशाख्य, सामवेदीय प्रातिशाख्य और अथर्ववेदीय प्रातिशाख्य। लौकिक संस्कृत व्याकरण में आचार्य पाणिनि द्वारा रचित अष्टाध्यायी आदि पांच ग्रन्थ उपलब्ध हैं। पाणिनि के बाद आचार्य कात्यायन ने वार्तिक और महर्षि पतंजलि ने महाभाष्य, भर्तृहरि ने वाक्यपदीय, जयादित्य वामन ने काशिका ग्रन्थों की रचना की जिससे व्याकरण की परम्परा समृद्ध हुई। इस व्याकरण वेदांग के अध्ययन करने के पाँच लाभ (प्रयोजन) माने गए हैं- वेदों की रक्षा, विभक्तियों के विपरिणाम का ज्ञान, आगम, लघु-उपाय से शब्द-ज्ञान और संदेहरहितता[1]। इनके अतिरिक्त व्याकरण के ज्ञान को ऋग्वेदकाल से ही आवश्यक माना है और इसको सभी विषयों में प्रविष्ट माना है- **"चत्वारि शृङ्गा त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य। त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्यां आविवेश"** अर्थात् शब्द रूपी वृषभ के चार सींग(नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात), तीन पैर(वर्तमान भूत और भविष्यत् काल), दो सिर(सुप् और तिङ् प्रत्यय), सात हाथ(सात विभक्तियां) और तीन स्थानों में बंधा हुआ(उर, कण्ठ, सिर) हैं।[2] पाणिनि अष्टाध्यायी में संस्कृत के लिए भाषा शब्द का प्रयोग है[3] जिससे स्पष्ट है कि जिस भाषा का व्याकरण आचार्य पाणिनि ने लिखा वह भाषा लोक में प्रचलित थी। **निरुक्त** में शब्दों का निर्वचन या व्युत्पत्ति का वर्णन है। वर्तमान में आचार्य यास्क द्वारा रचित निरुक्त ग्रंथ ही उपलब्ध है। यह ग्रन्थ निघण्टु नामक वैदिक शब्दकोश की

---

[1] "रक्षोहागमलध्वसन्देहाः प्रयोजनम्"। महाभाष्य- पस्पशाह्निक, पृ. 8

[2] महाभाष्य - पस्पशाह्निक, पृ.18

[3] "भाषायां सदवसश्रुवः"। अष्टाध्यायी- 3/2/108, "पूर्वं तु भाषायां"। अष्टाध्यायी- 8/2/98

व्याख्या है[1]। निर्वचन के तीन नियमों का वर्णन करते हुए आचार्य यास्क ने कहा है कि- 1.**"तद् येषु पदेषु स्वरसंस्कारौ समर्थौ प्रादेशिकेन गुणेनान्वितौ स्यातां तथा निर्ब्रूयात्"। 2."अथानन्विते अर्थे अप्रादेशिके विकारे अर्थनित्यः परीक्षेत केनचिद्वृत्तिसामान्येन"। 3."अविद्यमाने सामान्ये अप्यक्षर वर्ण सामान्य यान्निर्ब्रूयात्....."**।[2] निरुक्त का यह सम्पूर्ण ज्ञान संस्कृत भाषा में है तथा अष्टाध्यायी के समान यहां भी संस्कृत के लिए भाषा शब्द का प्रयोग किया गया है- "न इति प्रतिषेधार्थीयो भाषायाम्, उभयमन्वध्यायम्"[3]। **छंद** विचारों को आच्छादित करने का शास्त्र है- "छन्दांसि छादनात्"[4]। छंदों से संबंधित प्रामाणिक ग्रन्थ पिङ्गलाचार्य कृत छन्दःसूत्र और कात्यायन कृत छन्दोऽनुक्रमणी है। पिंगलाचार्य कृत छंदसूत्र के प्रथम अध्याय में गण परिचय[5], द्वितीय अध्याय के 'छन्दः' सूत्र से लेकर चतुर्थ अध्याय के सप्तम सूत्र तक वैदिक छन्द[6] शेष चतुर्थ अध्याय से ग्रंथान्त तक लौकिक छंदों का वर्णन है जिनकी विचारों के आच्छादन में महत्त्वपूर्ण भूमिका है। **ज्योतिष** यज्ञ हेतु काल के विधान के लिए प्रसिद्ध है[7]। अतः इस वेदांग को कालविधानशास्त्र कहा गया। ज्योतिष का केवल एक ही प्राचीन ग्रंथ उपलब्ध है वेदांग ज्योतिष। जिसके रचयिता लगध आचार्य हैं यह दो भागों में प्राप्त है आर्च ज्योतिष और याजुष् ज्योतिष।

---

[1] "समाम्नायः समाम्नातः। सः व्याख्यातव्यः तमिमं समाम्नायं निघण्टवः इत्याचक्षते..."। निरुक्त- 1/1

[2] निरुक्त- 2/1

[3] निरुक्त- 1/2

[4] निरुक्त- 7/3

[5] "1.धी श्री स्त्री म् 2. वरा सा य् 3. का गुहा र् 4..." इत्यादि। छन्दसूत्र- प्रथम अध्याय

[6] छन्दसूत्र- 2/1-4/7

[7] "वेदा हि यज्ञार्थमभिप्रवृत्ताः, कालानुपूर्व्या विहिताश्च यज्ञाः। तस्मादिदं कालविधानशास्त्रं, यो ज्योतिषं वेद स वेद यज्ञम्"। वैदिक साहित्य एवं संस्कृति- डॉ कपिलदेव द्विवेदी, पृ. 208

**रामायण, महाभारत और पुराण:**

महर्षि वेदव्यास ने विभिन्न ऋषियों द्वारा दृष्ट मंत्र समूह को यज्ञ में उपयोग के आधार पर चार संहिता में विभक्त किया जिसे सामान्यतः वेद कहा जाता है। इस वेद के अर्थ का ज्ञान कराने में इतिहास और पुराण को महत्वपूर्ण माना गया है[1]। अथर्ववेद में इतिहास, पुराण, गाथा और नाराशंसी का उल्लेख है इनमें नाराशंसी से ही ऐतिहासिक वीर-काव्य रामायण और महाभारत विकसित हुए[2]। कालांतर में राजशेखर ने भी रामायण और महाभारत को इतिहास माना और इनके एक या अनेक नायकों के आधार पर इतिहास के दो प्रकार माने जो परिक्रिया और पुराकल्प है[3]। वेदव्यास भी महाभारत को इतिहास और पुराण के रूप में स्वीकार करते हैं[4]। आधुनिक संस्कृत साहित्य के इतिहासकार रामायण और महाभारत को आचार संहिता के ग्रन्थ मानते हैं। जिसमें वर्णाश्रम धर्म और पुरुषार्थचतुष्ट्य, नैतिकता, राजधर्म इत्यादि के साथ-साथ जीवन के प्रत्येक पक्ष को संबोधित किया गया है। महाभारत में जीवन के इन विषयों का उद्घाटन करने वाले पात्र संस्कृत भाषा में संवाद करते थे[5]। महाभारतकार

---

[1] "इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्। बिभेत्यल्पश्रुताद् वेदो मामयं प्रहरिष्यति"। महाभारत आदिपर्व-1/204

[2] संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास- डॉ. कपिलदेव द्विवेदी पृ.100-102

[3] "परिक्रिया पुराकल्पः इतिहास गतिर्द्विधा। स्यादेकनायका पूर्वा द्वितीया बहुनायका"। काव्यमीमांसा- काव्यरहस्य नामक प्रथम अधिकरण का शास्त्रनिर्देश नामक द्वितीय अध्याय ।

[4] महाभारत आदि पर्व- 1/17, 21

[5] "अहं ह्यतितनुश्चैव वानरश्च विशेषतः। वाचं चोदाहरिष्यामि मानुषीमिह संस्कृताम्"।। "यदि वाचं प्रदास्यामि द्विजातिरिव संस्कृताम्। रावणं मन्यमाना मां सीता भीता भविष्यति"।। रामायण- 5/30/17-18

कहते है कि जो महाभारत ग्रन्थ में नहीं है वह कहीं नहीं है[1]। महाभारत की अंगभूत गीता को प्रस्थानत्रयी में स्थान प्राप्त है। गीता पर ही अपने-अपने समय में पांच दार्शनिकों क्रमशः शंकर, रामानुज, निम्बार्क, मध्व और वल्लभ आचार्यो ने स्वतंत्र भाष्य लिखे। जिनका क्रमशः अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, द्वैताद्वैत, द्वैत और शुद्धाद्वैत दर्शन संप्रदायों की स्थापना में महत्त्वपूर्ण योगदान है। गीता में ज्ञान को सर्वाधिक पवित्र माना गया है[2]। शंकराचार्य और कुमारिल भट्ट महाभारत को स्मृति-ग्रंथ मानते है। शंकराचार्य के अनुसार धार्मिक शिक्षा देना और कुमारिल भट्ट के अनुसार कर्तव्य की शिक्षा देना इसका उद्देश्य है[3]। रामायण में रामकथा उपर्युक्त विशेषताओं और उपदेशप्रद होने के कारण लगभग चीन, तिब्बत, खोतानी, जावा, हिंदचीन, श्यामदेश(थाईलैंड), ब्रह्मदेश आदि देशों में धार्मिक ग्रंथ एवं वीर काव्य के रूप में प्रसिद्ध हुई[4]। ये दोनों महाकाव्य उपजीव्य काव्य के नाम से भी जानें जाते हैं जिनके आचार विचार से समाज प्रभावित हुआ। पुराण- छांदोग्य उपनिषद् के सातवें अध्याय में इतिहास और पुराण को पंचम वेद बताया गया है। महाभारत भी पुराण को वेदार्थ ज्ञान में सहायक मानती है क्योंकि पुराणों से ही प्राचीन आख्यान एवं विषय जिसमें सृष्टि उत्पत्ति, विभिन्न काल और वंशावलियों की जानकारी के साथ विभिन्न व्याकरण, आयुर्वेद ज्योतिषादि शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त होता है। पुराणों की संख्या 18 है[5]।

**<u>स्मृतिग्रंथ</u>:**

---

[1] "धर्मे अर्थे च कामे च मोक्षे च भरतर्षभः। यदिहास्ति तदन्यत्र यत्रेहास्ति न तत् क्वचित्।। महाभारत, आदि पर्व- 62/53

[2] "न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते"। गीता- 4/38

[3] संस्कृत साहित्य का इतिहास- डॉ.प्रीतिप्रभा गोयल पृ. 36

[4] संस्कृत साहित्य का इतिहास- आचार्य बलदेव उपाध्याय, पृष्ठ 53-57

[5] संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास- डॉ कपिलदेव द्विवेदी, पृ. 94-99

स्मृतिग्रन्थों में आचार-विचार[1], नैतिक-शिक्षा[2], वर्ण-आश्रम धर्म[3], सामाजिक एवं धार्मिक जीवन[4], सामाजिक अनुशासन के साथ नैतिक मानदंडों एवं आदर्श जीवन[5] का वर्णन है। आचार को परम धर्म कहा गया है[6] और वेद, स्मृति, सदाचार और अपने-अपने आत्मा के प्रिय संतोष इन चारों को धर्म के लक्षण माना है[7]। समय के साथ साथ विभिन्न स्मृतियों का निर्माण हुआ जैसे- मनुस्मृति, याज्ञवल्क्यस्मृति, अत्रिस्मृति, विष्णुस्मृति, हारीतस्मृति, औशनसी-स्मृति, आङ्गिरसस्मृति, कात्यायनस्मृति, बृहस्पतिस्मृति और पाराशरस्मृति इत्यादि।

**कौटिल्य का अर्थशास्त्र:**

इस ग्रन्थ से मौर्यों के विस्तृत प्रशासन-तंत्र की जानकारी प्राप्त होती है। इसमें 15 अधिकरण है जिसमें राजा, राज्य, प्रशासन, प्रशासन के लिए विभिन्न अध्यक्षों की नियुक्ति, वित्त, रक्षा, सुरक्षा, व्यसन, युद्ध, चिकित्सा इत्यादि विषयों के साथ साथ राज्य के सप्तांग सिद्धान्त और षाड्गुण्य का विस्तार से वर्णन है। कौटिल्य के अनुसार राज्य के सात अनिवार्य अङ्ग है- स्वामी, अमात्य, जनपद, दुर्ग, कोश, दण्ड और मित्र। ये सात इन षाड्गुण्य के कारण है - सन्धि, विग्रह, आसन, यान, संश्रय और

---

[1] हारीतस्मृति - 4/4

[2] "अन्यानभ्यागतान्विप्रान्पूजयेच्छक्तितो गृही। स्वदार निरतो नित्यं परदारविवर्जितः"।। हारीत-स्मृति-1/28

[3] हारीतस्मृति- 2/1-11, 7/1, पाराशरस्मृति- 2/1, व्यासस्मृति- 3/1

[4] कात्यायनस्मृति- 2/4, 13/1, व्यासस्मृति- 1/4

[5] "एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः। स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः"।। मनुस्मृति- 2/20

[6] "आचारः परमो धर्मः..."। मनुस्मृति- 1/108

[7] "वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रिय मात्मनः। एतत्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम्"।। मनुस्मृति- 2/12

द्वैधीभाव[1]।

**पाणिन्युत्तरकालीन शिक्षा में संस्कृत:**

लौकिक संस्कृत का आविर्भाव पाणिनि व्याकरण के बाद हुआ जिसमें अनेक विधाओं में ग्रन्थों का प्रतिपादन हुआ। जो कालक्रम की दृष्टि से अधोलिखित हैं-

मौर्यकाल के बाद लगभग 200 ई. पू. से 300 ई. के मध्य मौर्य के स्थान पर पूर्वी भारत मध्य भारत और दक्कन में शुंग, कण्व और सातवाहन जैसे स्थानीय शासक सत्ता में आए। सातवाहनों की राजकीय भाषा प्राकृत थी जिसमें सातवाहन राजा हाल का प्रसिद्ध ग्रंथ 'गाथाहासत्तसई'(गाथासप्तशती) है। पश्चिमोत्तर भारत में मौर्यों के स्थान पर मध्य एशिया से आए कई राजवंशों क्रमशः हिंद यूनानी, शक, पार्थियाई या पहलव और कुषाण राजवंशों ने राज किया। मध्य एशिया से आने वाले इन राजवंशों ने भारत में संस्कृत भाषा को संरक्षण दिया। इन्हीं के समय अश्वघोष ने संस्कृत में बुद्धचरित और सौन्दरानन्द, वात्स्यायन ने कामसूत्र, चरक ने चरक संहिता का निर्माण किया। इन्हीं के समय खगोल और ज्योतिष शास्त्र में भी प्रगति हुई[2]।

ईसा की तीसरी सदी के मध्य तक सातवाहन और कुषाण साम्राज्य का अंत हो गया। कुषाण साम्राज्य के स्थान पर गुप्त साम्राज्य का उदय हुआ। गुप्त काल का संस्कृत और पाणिनि व्याकरण के विकास में महत्वपूर्ण योगदान है। गुप्त साम्राज्य में चंद्रगुप्त प्रथम के पुत्र समुद्रगुप्त के दरबारी कवि हरिषेण ने समुद्रगुप्त की वीरता का वर्णन इलाहाबाद स्थित "प्रयागप्रशस्ति" नामक अभिलेख में किया है जो संस्कृत में है। चंद्रगुप्त द्वितीय के दरबार में संस्कृत महाकवि कालिदास ने दो महाकाव्य- रघुवंश, कुमारसंभव, दो गीतिकाव्य- मेघदूत, ऋतुसंहार, तीन नाटक-

---

[1]"सन्धिविग्रहासनयानसंश्रयद्वैधीभावाः षाड्गुण्यमित्यचार्याः"। अर्थशास्त्र- 7.1.2

[2] प्राचीन भारत- रामशरण शर्मा, पृष्ठ- 166

अभिज्ञानशाकुंतल, मालविकाग्निमित्र, विक्रमोर्वशीय और अमर सिंह ने संस्कृत में अमरकोष नामक कोष ग्रंथ की रचना की। महान् नाटककार भास के संस्कृत में रचित स्वप्नवासवदत्त आदि 18 नाटक और शूद्रक रचित मृच्छकटिक नामक संस्कृत प्रकरण ग्रन्थ गुप्त काल की रचना हैं। सामाजिक और न्याय व्यवस्था पर आधारित नारदस्मृति और नित्य एवं द्विजत्व के कार्यों से सम्बन्धित कात्यायन रचित कात्यायन स्मृति के साथ साथ बहुत सी स्मृतियों की रचना इसी काल में हुई। भागवतपुराण की रचना से इस काल में भागवत संप्रदाय को बल मिला। इनके अतिरिक्त विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में आर्यभट्ट विरचित आर्यभट्टीय नामक ग्रन्थ गणित में और रोमकसिद्धान्त नामक ग्रन्थ खगोलशास्त्र में प्रख्यात हैं[1]।

गुप्त काल के बाद हर्षवर्धन के शासन काल को संस्कृत गद्यकाव्य के प्रसिद्ध कवि बाणभट्ट की हर्षचरित नामक रचना से जाना जा सकता है बाणभट्ट द्वारा कादम्बरी की भी रचना की गई। हर्षवर्धन ने भी तीन नाटकों प्रियदर्शिका रत्नावली और नागानंद की रचना की।

इन्हीं कालक्रमों में भारत में संस्कृत में अनेक काव्यों की विधाओं में रचनाएं लिखी गई-

**महाकाव्य:** किरातार्जुनीय-भारवि, भट्टिकाव्य-भट्टी, जानकीहरण-कुमारदास, शिशुपालवध-माघ, नैषधीयचरित-श्रीहर्ष इत्यादि। **गीतिकाव्य:** नीतिशतक, श्रृंगारशतक, वैराग्यशतक-भर्तृहरि इत्यादि। **ऐतिहासिककाव्य**:नवसाहसांकचरित-पद्मगुप्त 'परिमल', विक्रमांकदेवचरित-बिल्हण, राजतरंगिणी-कल्हण इत्यादि। **गद्यकाव्य**: वासवदत्ता-सुबंधु, दशकुमारचरित, अवंतिसुन्दरीकथा इत्यादि। **चम्पू-साहित्य,कथा-साहित्य**: बृहत्कथा-गुणाढ्य, कथासरित्सागर-पंडित सोमदेव, पंचतंत्र-विष्णु शर्मा, वेतालपंचविंशति इत्यादि। **नाटक**: मुद्राराक्षस-विशाखदत्त, वेणीसंहार-भट्टनारायण, मालतीमाधव, महावीरचरित, उत्तररामचरित-भवभूति

[1] प्राचीन भारत- रामशरण शर्मा, पृ. 175, 197, 213-214

इत्यादि। **अलंकारशास्त्र:** इस शास्त्र का कार्य काव्य के अंतस्तत्त्व के अन्वेषण के साथ उसकी गुण दोष आदि की विवेचना करना जिससे श्रेष्ठ काव्य की रचना हो सके। इसके अनेक नाम है जैसे साहित्यशास्त्र, काव्यशास्त्र, अलंकारशास्त्र आदि। इसके कुछ प्राचीन ग्रंथ निम्नलिखित हैं- भरत मुनि-नाट्यशास्त्र, भामह-काव्यालंकार, दंडी-काव्यादर्श, वामन-काव्यालनकारसूत्र, आनंदवर्धन- ध्वन्यालोक इत्यादि।

**प्राचीन भारतीय दर्शन की शिक्षा:**

वैदिक काल से ही दार्शनिक विचारों का उदय हुआ वैदिक साहित्य में प्रकृति के विभिन्न स्वरूपों को देव स्तुति के माध्यम से अभिव्यक किया गया। लेकिन उत्तर काल में दर्शन की स्थिति स्पष्ट दिखाई देती है जिसमें आत्मा, सृष्टि, ईश्वर आदि के विषय में तात्विक चिंतन है। जो कालांतर में अनेक भागों में विभक्त हुआ- न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा और वेदांत ये छह आस्तिक दर्शन कहलाए तथा चार्वाक, बौद्ध और जैन ये नास्तिक दर्शन। इन दर्शनों के प्राचीन ग्रंथ और उनके रचयिता निम्नलिखित है[1]-

1.**न्यायदर्शन:** इसकी स्थापना गौतममुनि रचित न्यायसूत्र द्वारा हुई। न्यायसूत्र में पांच अध्याय और प्रत्येक अध्याय में दो आह्निक हैं। यह दर्शन प्रमाण-प्रमेयादि 16 पदार्थों के तत्त्वज्ञान से निःश्रेयसाधिगम मानता है[2]। 2.**वैशेषिकदर्शन:** महर्षि कणाद रचित वैशेषिक सूत्र में 10 अध्याय और प्रत्येक अध्याय में दो आह्निक हैं। वैशेषिक सूत्रों में जिस धर्म से अभ्युदय और निःश्रेयस की सिद्धि होती है उसकी व्याख्या की गई है। ऐसे धर्मविशेष के प्रसूत से द्रव्य-गुण आदि 6 पदार्थों के साधर्म्य और वैधर्म्य के

---

[1] षड्दर्शनसूत्रसङ्ग्रहः(मूल मात्रम्)- जे. एल. गुप्त 'चैतन्य'

[2]"प्रमाणप्रमेयसंशयप्रयोजनदृष्टांतसिद्धांतावयवतर्कनिर्णयवादजल्पवितण्डाहेत्त्वाभासच्छलजातिनिग्रहस्थानानां तत्वज्ञानान्निश्रेयसाधिगमः"। न्यायसूत्र- 1.1

तत्त्वज्ञान से निःश्रेयस होता है[1]। 3.**सांख्यदर्शन:** कपिल मुनि रचित सांख्यसूत्र में क्रमशः विषयाख्य, प्रधानकार्याख्य, वैराग्याख्य, आख्यायिकाख्य, परपक्षनिर्जयाख्य और तन्त्राख्य नामक 6 अध्याय हैं और त्रिविध दुःख (आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक) की सर्वकालिक निवृत्ति ही दर्शन का उद्देश्य है[2]। 4.**योगदर्शन**: पतंजलि मुनि रचित योगसूत्र में क्रमशः समाधिपाद, साधन पाद, विभूति पाद और कैवल्य पाद नामक चार पाद है। जिनमें योग अर्थात् समाधि के विषय में बताया गया है जो चित्तवृत्तियों के निरोध से सिद्ध होता है[3]। 5.**मीमांसादर्शन**: जैमिनी मुनि रचित मीमांसा सूत्र में 12 अध्याय हैं और प्रत्येक अध्याय को पादों में बांटा गया है। इसका प्रतिपाद्य विषय धर्मजिज्ञासा है जिसमें धर्म का अर्थ चोदनालक्षण अर्थात् विधिवाक्य द्वारा लक्षित अर्थ है[4]। 6.**वेदान्तदर्शन-** महर्षि बादरायण व्यास द्वारा रचित ब्रह्मसूत्र में चार अध्याय हैं और प्रत्येक अध्याय में चार पाद हैं। इसका प्रतिपाद्य विषय ब्रह्मजिज्ञासा है[5]। वेदान्त दर्शन के आचार्यों ने ब्रह्म सूत्र पर भाष्य लिखकर अपने अपने वेदान्त संप्रदायों की प्रतिष्ठा की इनमें प्राचीनतम शंकराचार्य तदनंतर कालक्रमशः रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य, निंबार्काचार्य और वल्लभाचार्य हैं।

**1.चार्वाक**: इसको बार्हस्पत्य दर्शन और लोकायत दर्शन के नाम से भी जाना जाता है। वर्तमान में इस दर्शन का कोई भी ग्रंथ उपलब्ध नहीं है।
**2.जैन**: जैन धर्म एवं दर्शन 24 तीर्थंकरों के उपदेश का परिणाम है इन

---

[1]"अथातो धर्मं व्याख्यास्यामः"। "यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः"।
"धर्मविशेषप्रसुताद् द्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषसमवायानां पदार्थानां साधर्म्यवैधर्म्याभ्यां तत्त्वज्ञानान्निःश्रेयसम्"। वैशेषिकसूत्र- 1.1,2,4

[2]"अथ त्रिविध दुःखात्यन्तनिवृत्तिरत्यंतपुरुषार्थः"। सांख्यसूत्र- 1.1

[3]"अथ योगानशासनम्"। "योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः"। योगसूत्र- 1.1,2

[4]"अथातो धर्मजिज्ञासा" । "चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः"। मीमांसासूत्र- 1.1, 2

[5]"अथातो ब्रह्मजिज्ञासा"। ब्रह्मसूत्र- 1.1

24 तीर्थंकरों में ऋषभदेव प्रथम और महावीर अंतिम है। इस दर्शन एवं धर्म की भाषा संस्कृत की अपेक्षा सामान्य बोलचाल की भाषा 'प्राकृत भाषा' थी। **3.बौद्ध:** बौद्ध दर्शन महात्मा बुद्ध के उपदेशों पर आधारित है। महात्मा बुद्ध के उपदेश मौखिक थे, इनके निर्वाण के पश्चात् बुद्ध के शिष्यों द्वारा उनके दिए गए उपदेशों को 'त्रिपिटक' में संग्रहित कर दिया गया। त्रिपिटक की भाषा पालि है। बौद्धों ने ईसा की प्रथम तीन सदियों में पालि और संस्कृत को मिलाकर एक नवीन 'मिश्रित संस्कृत' का निर्माण किया था[1]। शक और कुषाण शासन में इसी मिश्रित संस्कृत भाषा में ही कई अवदानों का निर्माण हुआ[2]। जैन धर्म और बौद्ध धर्म के प्रभाव के कारण भारत में प्राकृत भाषा में लम्बे अभिलेख प्राप्त हुए किन्तु सर्वप्रथम संस्कृत में लम्बा अभिलेख शक शासक रुद्रदामन प्रथम ने जारी किया था[3]।

**प्राचीन भारतीय कला की शिक्षा:**

भारत में साहित्य के साथ-साथ कला का भी विशेष महत्व रहा है भर्तृहरि के अनुसार जो व्यक्ति साहित्य संगीत कला से रहित है वह पशु के समान है- **"साहित्यसंगीतकलाविहीनः साक्षात्पशुः पुच्छविषाणहीनः। तृणं न खादन्नपि जीवमानस्तद्भागधेयं परमं पशूनाम्"[4]**।। प्राचीन भारत में कला क्षेत्र में अनवरत उन्नति हुई जिसके अनेक प्रमाण व ग्रंथ उपलब्ध है। कलाओं का सर्वप्रथम वर्णन भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में प्राप्त होता है इसी नाट्यशास्त्र को पंचम वेद भी कहा गया है। कलाओं को दो भागों में विभक्त किया गया है- 1.उपयोगी कला(कारु शिल्प) और 2.ललित कला(fine art, चारु शिल्प)। 1.उपयोगी कला में कढ़ाई, बुनाई और व्यंजन बनाना इत्यादि को शामिल किया जाता है तथा इसी को शिल्पकला

---

[1] प्राचीन भारत- रामशरण शर्मा, पृ.109।

[2] - वही - पृ.- 166।

[3] प्राचीन भारत - रामशरण शर्मा, पृष्ठ-157।

[4] नीतिशतकम् - भर्तृहरि, श्लोक संख्या - 12।

भी कहा गया है। परन्तु ध्यातव्य है कि प्राचीन भारत में सम्पूर्ण कला-क्षेत्र के लिए ही शिल्प शब्द का प्रयोग होता था। 2.ललित कला में संगीत (नृत्य, गीत, वाद्य), काव्य(नाट्य), वास्तु, मूर्ति एवं चित्र शामिल हैं[1]। वात्स्यायन रचित कामसूत्र के प्रथम अधिकरण के तीसरे अध्याय में भी 64 कलाओं का उल्लेख है[2]। प्राचीन भारत में इन कलाओं पर अनेक ग्रंथों का निर्माण हुआ जो भारतीय कला की विभिन्न विधाओं पर गहन जानकारी प्रदान करते हैं।

**वास्तुकला और मूर्तिकला:**

वैदिक साहित्य में इन कलाओं के अनेक उद्धरण हैं तथा अथर्ववेद का उपवेद स्थापत्यवेद के नाम से प्रख्यात है। इन कलाओं के रामायण, महाभारत, अष्टाध्यायी, शुक्रनीति, कौटिल्य-अर्थशास्त्र, अग्निपुराण, भविष्यपुराण आदि अनेक ग्रन्थों में प्रसंग है। वास्तुकला के प्रवर्तकों के संदर्भ में कल्पना की गई कि भारत के उत्तर में विश्वकर्मा, जो देवताओं के स्थापति थे और दक्षिण में मय इस कला के प्रवर्तक हैं।[3] मानसार रचित मानसार ग्रंथ और मय द्वारा रचित मयमतम् ग्रंथ महत्वपूर्ण ग्रंथ हैं जिनमें भवन निर्माण और प्रतिमाओं का वर्णन है। विश्वकर्मप्रकाश में भी भवन निर्माण का मुख्य रूप से उल्लेख है। जबकि राजा भोज द्वारा रचित समरांगणसूत्रधार नामक ग्रंथ में वास्तुकला के सभी अंगों पूर, दुर्ग, भवन, प्रासाद, प्रतिमा, चित्र, यंत्र आदि सभी का वर्णन है। मानसोल्लास (अभिलषितार्थचिंतामणि) ग्रंथ भी इन कलाओं का वर्णन करता है।

**चित्रकला:** कामसूत्र में वर्णित 64 कलाओं में चित्रकला को आलेख्य नाम से संबोधित किया गया है यह स्थिर अर्थात् देशसापेक्ष और

---

[1] चित्रकला के मूलाधार- डॉ जुही शुक्ला, अध्याय- 6, पृ.37

[2] कामसूत्र- 1.3

[3] भारतीय स्थापत्य- डॉ द्विजेंद्र शुक्ल पृ. 25

दृश्य कला का उदाहरण है[1]। मार्कण्डेय मुनि द्वारा रचित विष्णुधर्मोत्तर पुराण कलाओं के व्याख्यान के लिए प्रसिद्ध है इसके नौ अध्यायों(35वे अध्याय से 43वें अध्याय तक) में चित्रकला के विभिन्न सूत्र वर्णित हैं। वास्तुशास्त्र के लिए प्रसिद्ध मानसार और समरांगणसूत्रधार ग्रंथों में भी चित्र कला के तथ्य उपलब्ध हैं। 12 वीं शताब्दी में चालुक्य वंशज राजा सोमेश्वर द्वारा लिखा गया मानसोल्लास (अभिलषितार्थचिंतामणि) ग्रंथ भी संगीत, नृत्य, वास्तु, मूर्ति और अन्य कला रूपों के वर्णन के साथ साथ चित्रकला का भी विस्तृत वर्णन करता है[2]।

**संगीत कला(नृत्य, गीत, वाद्य):** वैदिक काल में संगीत का महत्त्वपूर्ण स्थान था। वेदों को संगीतबद्ध करने के लिए तीन स्वरों का प्रयोग किया गया- उदात्त अनुदात्त और स्वरित। आगे चलकर इनकी संख्या सात हो गई- निषाद, गांधार, ऋषभ, धैवत, षड्ज, मध्यम और पंचम[3]। चारों वेदों में से सामवेद में संगीत का स्वरूप स्पष्ट दिखाई देता है। इसके चार साम गान प्रसिद्ध हैं- ग्रामगेयगान, आरण्यगान, ऊहगान और ऊह्यगान[4]। वैदिक काल में स्त्रियां वरों की खोज में एक 'समन' नामक उत्सव अथवा मेले में जाती थीं जहां यज्ञ होमादि के साथ नृत्य, गायन और वादन भी होते थे[5] तथा चार आश्रमों में विद्यार्थी काल में शिक्षा के साथ-साथ संगीत का भी अध्ययन किया जाता था गृहस्थ जीवन भी संगीतमय था लेकिन सामान्य लोगों में कलांतर में शास्त्रीय संगीत का प्रेम कम होता गया और लोकगीत व लोकनृत्य का प्रचार बढ़ता गया[6]। रामायण,

---

[1] चित्रकला के मूलाधार- डॉ जुही शुक्ला, पृ. 42

[2] भारतीय चित्रकला का इतिहास- डॉ अविनाश बहादुर वर्मा, पृ. 110

[3] पाणिनीय शिक्षा- श्लोक संख्या- 12

[4] वैदिक साहित्य एवं संस्कृति- डॉ. कपिलदेव द्विवेदी पृ.89-90

[5] भारतीय संगीत का इतिहास- उमेश जोशी, पृ.79-81

[6] भारतीय संगीत का इतिहास- उमेश जोशी, पृ. 97

महाभारत, वायुपुराण, मार्कंडेयपुराण और विष्णुपुराण आदि में भी संगीत के तत्व विद्यमान है। कालांतर में भरत मुनि द्वारा रचित नाट्यशास्त्र का 28, 29 और 30 वां अध्याय संगीत को समर्पित है जिसमें गायन वादन और नृत्य शामिल है। इनके अतिरिक्त मतंग रचित वृहद्देशीय ग्रंथ, नारद मुनि का संगीतमकरंद ग्रंथ और शार्ङ्गदेव रचित संगीत रत्नाकर आदि प्राचीन काल के संगीत के सिद्धांतों पर केंद्रित ग्रन्थ हैं और जो भारतीय शास्त्रीय संगीत के महत्वपूर्ण स्रोत हैं।

**नाट्यकला:** कुछ विद्वान मानते हैं कि वैदिक युग के संगीत के गर्भ से ही नाटक की उत्पत्ति हुई वैदिक युग के बाद ही नाटक की धारा संगीत की धारा से पृथक हुई[1]। वर्तमान में नाट्य विषय पर उपलब्ध प्राचीनतम ग्रंथ भरत मुनि रचित नाट्यशास्त्र है जिसमें रस को मुख्य स्थान दिया गया है कालांतर में इस विषय को बढ़ाने में अनेक विद्वानों ने योगदान दिया है। संस्कृत नाट्य एवं नाट्यशास्त्र का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है।

**प्राचीन भारतीय विज्ञान और प्रौद्योगिकी की शिक्षा:**

प्राचीन भारत में संस्कृत में विज्ञान, गणित, खगोलशास्त्र, आयुर्वेद और प्रौद्योगिकी आदि के अनेक साक्ष्य एवं ग्रंथ उपलब्ध हैं-

**चिकित्सा विज्ञान:**

सुश्रुत ऋषि द्वारा रचित सुश्रुत संहिता आयुर्वेदिक शल्य चिकित्सा का मुख्य स्रोत है और चरक ऋषि द्वारा रचित चरक संहिता आयुर्वेदिक चिकित्सा का प्रमुख ग्रंथ है। इनके अतिरिक्त ऋषि वाग्भट्ट अष्टांगहृदयम् आयुर्वेद का प्रधान ग्रन्थ है

**खगोलविज्ञान और गणित:**

खगोल विज्ञान की प्रसिद्ध पुस्तक 'सूर्यसिद्धांत' है। आर्यभट्ट द्वारा

---

[1] भारतीय संगीत का इतिहास- उमेश जोशी, पृष्ठ 82

रचित आर्यभट्टीय ग्रंथ में गणित, खगोलशास्त्र, और ज्योतिष के सिद्धांतों का और वराहमिहिर द्वारा रचित बृहत्संहिता ग्रंथ में गणित, मौसम विज्ञान, और खगोलशास्त्र का अध्ययन किया गया है। भास्कराचार्य द्वारा रचित सिद्धांतशिरोमणि ग्रंथ प्रमुख ग्रंथ हैं। किन्तु भास्कराचार्य द्वारा रचित लीलावती ग्रंथ केवल गणित के विविध क्षेत्रों, जैसे अंकगणित, बीजगणित, और ज्यामिति पर आधारित है।

**धातुकर्म और रसायन शास्त्र:**

नागार्जुन द्वारा रचित रसरत्नाकर ग्रंथ में धातुओं और उनके मिश्र धातुओं के निर्माण की विधियों का वर्णन है तथा रसहृदयतंत्र, रसार्णव और रसरत्नसमुच्चय ग्रन्थों में धातुकर्म, रसशास्त्र, और औषध निर्माण पर विस्तार से चर्चा की गई है।

**रक्षा एवं सुरक्षा अध्ययन तथा सैन्य विज्ञान:**

यजुर्वेद का उपवेद धनुर्वेद प्राचीन भारतीय युद्धकला पर आधारित है। जिसमें विभिन्न युद्ध तकनीकों, युद्ध योजनाओं, और शस्त्रों के निर्माण का विवरण दिया गया है।

**उपसंहार:**

प्राचीन भारत की शिक्षा को "भारतीय शिक्षा" के नाम से अभिहित किया जा सकता है क्योंकि इसमें भारतीय चेतना के मूल आधार शांति, मुक्ति, सरल-जीवन, विश्व-बंधुत्व के साथ धर्म का महत्वपूर्ण स्थान था। यह उपनयन संस्कार से प्रारंभ होकर समावर्तन संस्कार तक गुरुकुलों, आश्रमों और कालांतर में विश्वविद्यालय में मुख्यतया संस्कृत के माध्यम से दी जाती थी। इसमें गुरु शिष्य को श्रुति-परंपरा के माध्यम से विद्याभ्यास कराता था। शिक्षा का मुख्य उद्देश्य आत्मज्ञान और मोक्ष था। श्रुति काल से ही मनुष्य का एकमात्र कर्तव्य विद्या और अविद्या दोनों को जानना माना गया है इसी कारण श्रुतिकाल में और बाद के स्मृतिकाल और पाणिन्युत्तरकालों में सैद्धांतिक और आत्मिक ज्ञान के साथ-साथ लौकिक

व्यवहारोपयोगी ज्ञान जैसे कला, विज्ञान, आयुर्वेद, धनुर्वेद इत्यादि का विकास हुआ। इन सभी ज्ञान के क्षेत्रों का संस्कृतभाषा में निहित होना प्राचीन भारतीय शिक्षा में संस्कृत की भूमिका को प्रतिपादित करने में सक्षम है।

**सन्दर्भ ग्रन्थ सूची:**


1. पाणिनि, अष्टाध्यायी, संपादक- विरजानन्द देवकरणि, हरयाणा साहित्य संस्थान, गुरूकुल झज्जर (हरयाणा), विक्रमसंवत् २०५८
2. उपनिषद् अङ्क, संपादकद्वय- श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार, चिम्मनलाल गोस्वामी, गीतप्रेस गोरखपुर, सं.२०६९
3. छन्दोग्योपनिषद्(शाङ्करभाष्यसहित), गीताप्रेस, गोरखपुर, सं.२०६८
4. ईशावास्योपनिषद्(शाङ्कर भाष्य सहित), संपादक पं. शिवनारायण शास्त्री, परिमल पब्लिकेशंस, दिल्ली, 2007
5. मनुस्मृति(सुबोधिनीहिन्दी व्याख्या), संपादक- श्रीवासुदेव, ठाकुर प्रसाद एण्ड संस बुक्सेलर, वाराणसी।
6. पतञ्जलि, महाभाष्य, हिन्दी व्याख्याकार- आचार्य मधुसूदनप्रसाद मिश्र, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, ई. 2010
7. डॉ.कपिलदेव द्विवेदी, वैदिक साहित्य एवं संस्कृति, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2008
8. डॉ.कपिलदेव द्विवेदी, संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास, प्रकाशक- रामनारायणलाल विजय कुमार, कटरा रोड़, इलाहाबाद, 2009
9. पाणिनि मुनि, पाणिनीय शिक्षा, चौखम्बा पब्लिशर्स, वाराणसी, 2007
10. यास्काचार्य, निरुक्तम् (निघण्टुभाष्यम्), वैदिक पुस्तकालय, अजमेर, विक्रम सम्वत् २०६०
11. पिङ्गलाचार्य, छन्दःशास्त्रम् (श्रीमेधाव्रताचार्यविरचिता "वृत्तिमङ्गला"वृत्ति), भगवान्देव- आचार्य हरियाणा साहित्य संस्थानाध्यक्ष गुरूकुल झज्जर, रोहतक विक्रमाब्द २०२४
12. महर्षि वाल्मीकि, रामायण, गीताप्रेस गोरखपुर, सं.२०६५
13. श्रीमद्भगवद्गीता(यथारूप), भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट, 1990
14. डॉ. प्रीति प्रभा गोयल, संस्कृत साहित्य का इतिहास(लौकिक खण्ड), राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, 2006

15. आचार्य बलदेव उपाध्याय, संस्कृत साहित्य का इतिहास, शारदा निकेतन, वाराणसी, 2001
16. रामशरण शर्मा, प्राचीन भारत, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान और प्रशिक्षण परिषद्, 2000
17. षड्दर्शनसूत्रसङ्ग्रहः, सम्पादक- जे.एल. गुप्त 'चैतन्य', चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली, 2012
18. भर्तृहरि, नीतिशतकम्- https://archive.org/download/nitishatakamofbhartrhari dr.rajeshwarkumarmusalgankar/Nitishatakam%20Of%20Bhartrhari%20-%20Dr.%20Rajeshwar%20Kumar%20Musalgankar.pdf
19. कौटलीय अर्थशास्त्र, अनुवादक- प्रो. उदयवीर शास्त्री- https://archive.org/details/in.ernet.dli.2015.405570
20. ऋग्वेद- https://archive.org/details/rigveda-hindi-dr-ganga-sahay-sharma
21. यजुर्वेद- https://archive.org/details/Yajurved
22. अथर्ववेद - https://archive.org/details/uRyk_atharva-ved-sanhita-vol-6-with-sayan-commentary-edited-with-hindi-translation-by
23. याज्ञवल्क्य-स्मृति -https://archive.org/details/dharmshashtra-smritis-collection-translations
24. ऋग्वेदभाष्यभूमिका, सायणाचार्य- https://archive.org/details/NLle_rigved-bhashya-bhumika-of-sayan-with-explanation-by-virendra-kumar-varma-chaukha
25. तैत्तिरीयारण्यक, सायणाचार्य- https://archive.org/details/taittirIya-araNyaka-sAyaNa-bhAShya-rAjendralAla-mishra
26. कठोपनिषद् (शाङ्कर-भाष्य)- https://archive.org/details/KathopanishadGitaPressGorakhpur_201809

27. महाभारत, आदिपर्व- https://archive.org/details/BeYf_mahabharat-adi-parva-by-damodar-satvalekar-svadhyay-mandal
28. अष्टादशस्मृतिसङ्ग्रह- https://archive.org/details/AshtadashSmriti
29. भारतीय स्थापत्य- डॉ. द्विजेंद्र शुक्ल- https://ia601502.us.archive.org/6/items/in.ernet.dli.2015.442085/2015.442085.BhartiyeSathaptya1968AC5475.pdf
30. भारतीय चित्रकला का इतिहास- डॉ. अविनाश बहादुर शर्मा- https://archive.org/details/ypWh_bharatiya-chitra-kala-ka-itihas-by-avinas-bahadur-sharma-prakash-book-depot-bareli
31. भारतीय सङ्गीत का इतिहास- उमेश जोशी- https://archive.org/download/in.ernet.dli.2015.481351/2015.481351.bhartiy-.pdf
32. चित्रकला के मूलाधार- डॉ. जूही शुक्ला- https://www.aicteindia.org/sites/default/files/HINDI_BOOKS/BOOK%205.pdf

# प्राचीनभारते संन्यासाश्रमस्य महत्त्वम्

डॉ.मनोजकुमारसाहुः
सहायकाचार्यः
शास्त्रीयज्ञानप्रणालीविद्यास्थानं, धर्मशास्त्रविद्याशाखा
के.सं.वि.,एकलव्यपरिसरः,अगरतला

मानवः शतं वर्षाणि यावज्जीवति। तस्य समग्रमायुः चतुर्धा विभज्य प्रत्येकेऽस्मिन् भागे एकैकस्याश्रमस्य परिकल्पना जाता। प्रथमे पञ्चविंशतिवर्षाणि यावत् ब्रह्मचर्याश्रमस्य, ततः पञ्चाशद्वर्षाणि यावत् गृहस्थाश्रमस्य कालः, ततः पञ्चसप्ततिवर्षाणि यावद्वानप्रस्थाश्रमस्य, अन्तिमे शतं वर्षाणि यावत् संन्यासाश्रमस्य कालो विहितोऽस्ति। सर्वेषु आश्रमेषु यद्यपि गृहस्थाश्रमस्य श्रेष्ठत्वं विद्वांसः स्वीकुर्वन्ति तथापि संन्यासाश्रमस्य महत्त्वमपि विद्यते। स्थलविशेषे संन्यासी गृहिणं सन्मार्गं प्रदर्शयति। प्राचीने राजानः अपि स्वसुशासनाय संन्यासिभ्यः सन्मार्गं प्राप्तवन्तः आसन्।

**संन्यासाश्रमस्य व्युत्पत्तिः** 'सम्' उपसर्गात् 'नि' उपसर्गात् 'अस्' धातोः 'घञ्'प्रत्यये कृते संन्यासशब्दः निष्पद्यते[1]। "काम्यानां कर्मणां न्यासं संन्यासं कवयो विदुः" इति गीतायामुक्तमस्ति[2]। 'आङ्' उपसर्गात् 'श्रम्' धातोः 'घञ्' प्रत्यये कृते आश्रमशब्दः निष्पद्यते। आश्राम्यन्ति स्वं स्वं तपश्चरन्त्यत्र आश्रमः[3]। संन्यास+आश्रमः = संन्यासाश्रमः।

वृहदारण्यकोपनिषदि एकस्मिन् स्थले विचारोऽस्ति यत् संन्यासाश्रमप्रवेशकाले याज्ञवल्क्यः स्वसम्पत्तिं पत्न्योः मैत्रेयी-कात्यायन्योः विभागं कृतवान्। यथोक्तमस्ति " मैत्रेयीति होवाच याज्ञवल्क्य उद्यास्यन्वा अरेऽहमस्मात् स्थानादस्मि हन्त तेऽनया कात्यायन्याऽन्तं करवाणीति"[4]। जाबालोपनिषदि विचारोऽस्ति यत् परिव्राजकः विवर्णवासः(न तु श्वेतवस्त्रधारकः), मुण्डितशिरः, सम्पत्तिहीनः, पवित्रः, अद्रोही, भिक्षाचारी च भूत्वा परंब्रह्मणि संलग्नो स्यात्[5]। अनेन ज्ञायते तदानीन्तनकाले संन्यासी

स्वगृहं, स्वजनं, सम्पत्यादिकं त्यजति स्म इति ।

**संन्यासधर्माः** गौतमापस्तम्व-बौधायन-विष्णु-वसिष्ठादिधर्मसूत्रेषु, मनु-याज्ञवल्क्य-शङ्खादिस्मृतिषु, अग्निपुराण-कूर्मपुराण-महाभारतादिषु च संन्यासधर्माः वर्णिताः सन्ति। संन्यासाश्रमं गन्तुं जनः प्रजापतये यज्ञं कुर्यात्। स्वस्य समग्रं सम्पत्तिं पुरोहित-दरिद्रासहायेभ्यो दद्यात्[6]। नृसिंहपुराणानुसारं संन्यासग्रहणात्पूर्वं जनः अष्टश्राद्धानि कुर्यात्। यथा दैवार्ष-दिव्य-मानुष-भौतिक-पैतृक-मातृश्राद्धात्मश्राद्धानि[7]। तत्र वसु-रुद्रादित्येभ्यो क्रियमाणं श्राद्धं दैवश्राद्धम्। मरिच्यादिदशर्षिभ्यः क्रियमाणं श्राद्धमार्षश्राद्धम्। हिरण्यगर्भ-वैराजभ्यां क्रियमाणं श्राद्धं दिव्यश्राद्धम्। सनक-सनन्दनाभ्यां तथा अन्यपञ्चेभ्यो ऋषिभ्यो क्रियमाणमृषिश्राद्धम्। पञ्चमहाभूतेभ्यो क्रियमाणं भौतिकश्राद्धम्। अग्नि-सौमार्यमाऽग्निष्वात्तादिपितृभ्यो क्रियमाणं पैतृकश्राद्धम् । गौरी-पद्मादिदशमातृभ्यो क्रियमाणं मातृश्राद्धम्। परमात्मने क्रियमाणमात्मश्राद्धमिति[8]। गृह-स्त्री-पुत्रीदीन् त्यक्त्वा लोकालयाद्बहिः तिष्ठेत्। सूर्यास्ते काले वृक्षस्य अधः, ग्रामाद्बहिर्वा तिष्ठेत्। वर्षर्तुं विहाय सदैव स्थानान्तरं गच्छेत्। अनपत्यः. विधुरश्च गृही अथवा यस्य गृहिणः पुत्रः सन्मार्गे चलति तथा सप्तत्यधिकवयः जनः सन्यासाश्रमं गच्छेदिति बौधायनधर्मसूत्रे, बैखानसस्मार्त्तसूत्रेऽपि विचारोऽस्ति यथा-

संन्यासक्रमं सप्तत्यूर्द्धं वृद्धोऽनपत्य विधुरो वा जन्ममृत्युजरादीन् विचिन्त्य योगार्थी यदा स्यात्तदाऽथवा पुत्रे भार्यां निक्षिप्य परमात्मनि बुद्धिं निवेश्य वनात्संन्यासं कुर्यात्[9]। अथ शालीनयायावराणामनपत्यानाम्। विधुरो वा। प्रजाः स्वधर्मे प्रतिष्ठाप्य वा। सप्तत्या ऊर्ध्वं संन्यासमुपदिशन्ति[10]।

संन्यासिनः कृते चत्वारि कर्माण्यनीवार्याणि सन्ति। यथा ध्यानं, शौचं, भिक्षा, नित्यमेकान्तशीलता च। यथोक्तमस्ति दक्षस्मृतौ–

**ध्यानं शौचं तथा भिक्षा नित्यमेकान्तशीलता।**
**भिक्षोश्चत्वारि कर्माणि पञ्चमो नोपपद्यते ॥[11]**

भूतेभ्यो निर्भयो भूत्वा, मानापमानाभ्यामुदासीनः, क्रोधिनं प्रति

अक्रोधी सन्, अकल्याणवादिनं प्रति कल्याणप्रदमुच्चार्य सदैव संन्यासी सत्यं वदेत्[12]। केवलं भिक्षायै ग्रामं गच्छेत्। वर्षर्तुं विहाय एकरात्रेः अधिकं ग्रामे न तिष्ठेत्[13]। सप्तगृहेभ्यो भिक्षां याचेत। विधुमे, सन्नमुसले, व्यङ्गारे तथा गृहीणः भोजनान्ते, भिक्षां याचेत[14]। मनोः विशेषो विचारोऽस्ति यत् उत्पात-निमित्त-नक्षत्राङ्गविद्यानुशाषनवादैः कदापि संन्यासी न लिप्सेत। भक्षणशीलैः वानप्रस्थैरनैर्वा ब्राह्मणैः, पक्षिभिः, कुक्कुरैर्वा व्याप्तं गृहं भिक्षायै न प्रविशेत्। यथोक्तमस्ति-

**न चोत्पातनिमित्ताभ्यां न नक्षत्राङ्गविद्यया।**
**नानुशाषनवादाभ्यां भिक्षां लिप्सेत कर्हिचित्॥**
**न तापसैर्ब्राह्मणैर्वा वयोभिरपि वा श्वभिः।**
**आकीर्णं भिक्षुकैर्वाऽन्यैरगारमुपसंव्रजेत्॥ 15**

मृन्मयकर्परादिभिक्षापात्रं, स्थूलजीर्णवस्त्रञ्च धारयेत्। द्रव्यसंग्रहरहितो सन् सर्वत्र ब्रह्मबुद्ध्या शत्रुमित्राभावेन तिष्ठेत्[16]। आश्रमिणां भोजनपरिमाणन्तु विचार्यते यत्-

**अष्टौ ग्रासा मुनेर्भक्ष्याः षोडशाऽरण्यवासिनः।**
**द्वात्रिंशतं गृहस्थस्याऽपरिमितं ब्रह्मचारिणः॥[17]**

संन्यासी द्रव्यसंग्रहं न कुर्यात्। परन्तु सर्वनिम्नावश्यतां पुरणाय मृन्मय-कर्परादिभिक्षापात्रं, स्थूलजीर्णवस्त्रं, जलपात्रञ्च स्थापयेत्। वासार्थं वृक्षमूलमाश्रयेत्। सर्वेषु जीवेषु ब्रह्मबुद्ध्या शत्रुमित्राभावं स्थापयेत्। याज्ञवल्क्यस्मृतेः मिताक्षराटीकायां देवलोक्तदिशा विचारोऽस्ति यत् संन्यासी केवलं जलपात्रं, कमण्डलुं, जलशुद्ध्यर्थं पवित्रं, पादुकाम्, आसनं, कन्थामात्रमेव धारयेत्। यथोक्तमस्ति"काषायी मुण्डस्त्रिदण्डी सकमण्डलुपवित्रपादुकासनकन्थामात्रः" इति देवलस्मरणात्[18]।

संन्यासी केवलं स्वगुप्ताङ्गावृतायैव वस्त्रं धारयेत्। कदाचिदपरस्य त्यक्तं जीर्णं शीर्णं परन्तु स्वच्छवस्त्रमेव धारयेत्। केषाञ्चन मते वस्त्रांशेन, मृगचर्मणा, ग्रासेन वा संन्यासी स्वलज्यां निवारयेत्। बौधायनमते तस्य वस्त्रं

तु काषायं स्यात्। यथोक्तमस्ति काषायवासा[19]।

संन्यासिनः भिक्षापात्राणि अतैजसानि अलाबु-दारु-मृत्तिका-वंशादिखण्डनिर्मितानि स्युः। तेषां शुद्धिः सलिलैः गोवालावघर्षणैर्भवति[20]। केवलं स्थण्डिलैव शयित। अस्वस्थावस्थायां विचलितः न स्यात्। वैदिकमन्त्रान् विहाय मौनी स्यात्। स्वमृत्योः उपरि निर्भयो भूत्वा यथा भृतकः स्वस्वामिनः आदेशं प्रतीक्षेत तथा कालं प्रतीक्षेत । यथोक्तमस्ति मनुस्मृतौ-

**नाभिनन्देत मरणं नाभिवन्देत जीवितम्।**
**कालमेव प्रतीक्षेत निर्देशं भृतको यथा॥** [21]

संन्यासीनः अपरो नाम त्रीदण्डीति। साधारणतः दण्डशब्दस्य दौ अर्थौ दृश्येते यथा वंशनिर्मितदण्डः, नियन्त्रणञ्च। याज्ञवल्क्यमते त्रीन् दण्डान् धारयेत्। मनोर्मते दण्डमेकं तु धारयेत्। बौधायनमते तु दण्डमेकं, त्रीन्दण्डान् वा धारयेत्। तन्मते संन्यासी प्राणिनां वाणी-क्रिया-विचारेषु हानिं न कुर्यात्। मनु-दक्षयोराशयः यत् यः काय-मन-वाक्येषु संयमं नियन्त्रणं वा करोति स त्रीदण्डीत्युच्यते। यथोक्तमस्ति मनुस्मृतौ-

**वाग्दण्डोऽथ मनो दण्डः कायदण्डस्तथैव च।**
**यस्यैते निहिता वृद्धौ त्रिदण्डीति स उच्यते॥** [22]

संन्यासी सदैव दशलक्षणकान् धर्मानाचरेत्। यथोक्तमस्ति मनु-याज्ञवल्क्यस्मृत्योः-

**धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।**
**धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥**
**सत्यमस्तेयमक्रोधो ह्रीः शौचं धीर्धृतिर्दमः।**
**संयतेन्द्रियता विद्या धर्मः सर्व उदाहृतः॥**

एतान् विहाय केवलं वेश-कमण्डल्वादिधारणेन स वञ्चको स्यात। स प्राणायाम-योगाङ्गैः स्वमनः पवित्रं स्थापयेत् येन मोक्षं प्राप्नुयात्[23]।

**संन्यासिनां भेदाः**- महाभारतस्यानुशासनपर्वानुसारं चत्वारः भेदाः

सन्ति। यथा कुटीचक-वहूदक-हंस-परमहंसाश्च। एतेषु उत्तरोत्तरः श्रेष्ठोऽस्ति। संन्यासोपनिषदि तुरीयातीतावधूतयोः संन्यासिनोः विचारोऽस्ति[24]।

कुटीचकः- एवंभूतः संन्यासी स्वगृहे स्थित्वा शिखा-यज्ञोपवीत-कमण्डल्वादीनि धारयति। स्वपुत्रेभ्यो कुटुम्वेभ्यो भिक्षां कृत्वा खादति। स्वपुत्रैः निर्मिते कुटीरे तिष्ठति। प्रत्यहमष्टग्रासं खादति। योगमार्गे स्थित्वा मोक्षप्राप्तये युक्तो भवति।

वहूदकः- एषः त्रिदण्ड-कमण्डलु-काषायवस्त्राणि धारयति। ऋषितुल्येभ्यो सप्तब्राह्मणेभ्यो भिक्षां करोति। परन्तु मांस-लवण-पर्युषितानि न खादति।

हंसः- एषः ग्रामे एकरात्रं तथा नगरे पञ्चरात्रं यावत् भिक्षायै तिष्ठति। गोमूत्र-गोमयं खादति। मासं यावदुपवासं करोति अथवा सदैव चान्दायणव्रतमाचरति। स्मृतिमुक्ताफलग्रन्थे पितामहोक्तदिशा हंसः एकदण्डी स्यात्। भिक्षायै ग्रामं प्रविशेत्। पर्वतगह्वरे, नदीतटे, वृक्षमूले वा तिष्ठेत्[25]।

परमहंसः- एषः सदैव वृक्षमूले, शून्यागारे, श्मशाने वा तिष्ठति। स धर्माधर्म-सत्यासत्य-पवित्रापवित्रद्वन्देषु मुक्तोऽस्ति। सर्वेषु समं पश्यति। सर्वेभ्यो वर्णेभ्यो भिक्षां करोति। पराशरमाधवीयानुसारं परमहंसस्य द्वौ भेदौ यथा विद्वतपरमहंसः, विविदिषुश्च। यः ब्रह्मानुभूतिं प्राप्नोति स विद्वतपरमहंसः तथा आत्मज्ञानाय सदैव चेष्टारतः स विविदिषुः[26] ।

तुरीयातीतः- परमहंसस्योपरि तूरीयातीतो आगच्छति। स गौरिव हस्तौ विना फलं खादति। प्रत्यहं केवलं त्रिभ्यः गृह्येभ्यः भोजनं गृह्णाति। वस्त्रं न धृत्वा मृतवद्व्यवहरति।

अवधूतः- एषः किमपि नियत्रणं न स्वीकरोति। पतितान् त्यक्त्वा येभ्यः केभ्यः वर्णेभ्यः भोजनं गृह्णाति। कदाचिदुपवासेन तिष्ठति, कदाचिच्च आकण्ठं खादति। ध्यनेन परंब्रह्मणि निमग्नो भवति।

**<u>संन्यासिनः वर्णः</u>** चातुर्वर्णेषु के सन्यासिनः भवितुमर्हन्तीति विषये यद्यपि मतभेदाः दृश्यन्ते तथापि वृहदारण्यकोपनिषदि[27], मुण्डकोपनिषदि[28] , मनुस्मृतौ[29], लघुविष्णुस्मृतौ[30] च केवलं ब्राह्मणाय एव संन्यासाश्रमः

विहितोऽस्ति। परन्तु केषांचन विदूषां मते ब्राह्मणशब्दस्तु उपलक्षणाय प्रयुक्तोऽस्ति। कात्यायनस्यायमभिप्रायो यत् द्विजाः नाम ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्याः वेदाध्ययनानन्तरं सर्वेषु आश्रमेषु प्रविशेयुः। जाबालोपनिषदि विचारोऽस्ति यत् जनः व्रत-समावर्त्तन-वैदिकाग्न्यभावेषु अपि भौतिकसंसारे परिव्राजकः भवितुमर्हति। यथोक्तमस्ति- अथ पुनरव्रती व्रती वा स्नातको वाऽस्नातको वा उत्सन्नाग्निरनग्निको वा यदहरेव विरजेत्तदहरेव प्रव्रजेत्[31]। याज्ञवल्यस्याभिप्रायो यत् द्विजातीनां विषयेषु मनशुद्धेः साधनमस्ति संन्यासः[32]। बृहदारण्यकोपनिषद्भाष्ये शंकराचार्यः केवलं ब्राह्मणायैव संन्यासं स्वीकृतवान्[33] । परन्तु तस्य शिष्यः सुरेश्वरः स्वगुरुमतं खण्डितवान्। मनुस्मृतौ मेधातिथेः मनुभाष्ये, याज्ञवल्क्यस्मृतेः मिताक्षराटीकायां, मदनपारिजाते, स्मृतिमुक्ताफले केवलं ब्राह्मणायैव संन्यासस्य विचारोऽस्ति[34]। स्मृतिचन्द्रिकायां[35] द्विजातीनां विचारोऽस्ति। महाभारतस्यादिपर्वणि, शान्तिपर्वणि तथा कालिदासस्य रघुवंशेऽपि क्षत्रियस्य संन्यासग्रहणविचारोऽस्ति[36]।

**संन्यासे शूद्रस्याधिकारः** स्मृतिषु यद्यपि शूद्राय संन्यासविचारो नास्ति तथापि विष्णुधर्मसूत्रे याज्ञवल्क्यस्मृतौ च अभिप्रायोऽस्ति यत् दैव-पितृपूजनकर्मसु यः शूद्रसंन्यासिभ्यो भोजनं ददाति, तस्मै राजा शतपणैः दण्डयेत्। महाभारतस्य शान्तिपर्वणि यद्यपि शूद्राय संन्यासविचारो नास्ति तथापि आश्रमवासिकपर्वणि विदूरस्य संन्यासग्रहणं दृश्यते[37]। अनेन ज्ञायते प्राचीने कदाचित् संन्यासाश्रमे शूद्रस्याधिकारो आसीत्।

**संन्यासे नार्याः अधिकारः** प्राचीने भारते कुत्रचित् नार्याः संन्यासग्रहणोपरि विचारो आगच्छति। याज्ञवल्क्यसमृतेः मिताक्षराटीकायां बौधायनस्यैकस्मात् सूत्रात् 'स्त्रीणां चैके' ज्ञायते यत् तदानीन्तनकाले कदाचित् स्त्रीणां संन्यासे अधिकारो आसीत्। परन्तु अधुना उपलब्धबौधायनधर्मसूत्रे सूत्रमेतन्नास्ति। पतञ्जलिः स्वमहाभाष्ये ग्रन्थे शंकरानाम्ना परिव्राजिकामुल्लेखितवान्। स्मृतिचन्द्रिकायां व्यवहारकाण्डे

यमस्याभिप्रायो यत् नारीणां कृते वेद-धर्मशास्त्र-संन्यासाश्रमेषु प्रवेशाधिकारो नास्ति। केवलं स्वधर्मपालनेन सन्तानोत्पत्तिविचारोऽस्ति। जप-तप-प्रव्रज्या-तीर्थयात्रा-मन्त्रसाधन-देवताराधनानि षड्कर्माणि स्त्री-शूद्रयोः कृते निषिद्धानीति अत्रेः आशयोऽस्ति। कालिदासः मालविकाग्निमित्रे नाटके पण्डिताकौशिक्याः संन्यासधारणं दर्शितवान्[38]। एतैरुदाहरणैः ज्ञायते यत् प्राचीने नारीणां कृते अगृही भूत्वा संन्यासी इव इतस्ततः भ्रमणं समीचीनं जनाः न आमनन्ति स्म ।

**संन्यासिनः नियमभ्रष्टताः** अत्रेरयमभिप्रायो यत् तादृशस्य जनस्य कृते प्रायश्चित्तं कर्तुं न शक्यते यस्तावत् संन्यासाश्रमात् च्युतो भ्रष्टो वा भवति। संन्यासाश्रमच्युतेन जनः द्विजः, शूद्रो पदवाच्यो वा न भवति। तस्य सन्तानाः चाण्डालाः विदूराश्चोच्यन्ते। दक्षस्याभिप्रायो यत् संन्यासाश्रमाद्भष्टस्य जनस्य ललाटे श्वपदं कृत्वा स्वदेशात् निर्वाशयेद्राजा। स्वधर्मच्युतः संन्यासी आजीवनं राज्ञः दासः भवेत्। अत्रेरयमभिप्रायो यत् संन्यासी स्वपितृ-मातृ-भ्रातृ-भग्नी-पत्नी-पुत्र-वधु-सम्बन्धि-सजातीय-मित्र-पुत्री-पौत्राणां निवासस्थानेषु दिनमेकमपि न तिष्ठेत्[39]।

**संन्यासिनः दायाधिकारः** प्राचीनाधुनिकहिन्दुविध्यनुसारं संन्यासग्रहणादनन्तरं जनः स्वसम्पत्ति-परिवारपरिजनेभ्यो विच्युतो भवति[40]। तस्य देहत्यागानन्तरं वस्त्र-पादुकादीनि स्वजनाः न प्राप्नुवन्ति, अपि तु शिष्याः एव प्राप्नुवन्ति। शूद्रसंन्यासिनः कृते एते नियमाः न सन्ति।

**नृपतिपरिव्राजकः** कदाचिद्गुप्तकालिनाभिलेखात् ज्ञायते यत् तदा केषाञ्चन राज्ञामुपाधिः नृपति-परिव्राजकः आसीत्। अर्थात् राजकीयसंन्यासी। डॉ. फ्लीट्टते अयमुपाधिः राजर्षिसमकक्षो आसीत्[41]। परन्तु एतन्न समीचीनम्। यतो हि नृपतिपरिव्राजकस्य गोत्रं भरद्वाजं तथा संस्थापकः कपिलस्यावतारं मन्यते। संभवतः कुलस्य संस्थापकः मूलराजा राज्यग्रहणानन्तरं वृद्धावस्थायां संन्यासं गृहीतवान्। तत्परवर्त्तिनः वंशजाः परम्पराधारेण राज्यग्रहणादनन्तरं वृद्धावस्थायां संन्यासं गृहीतवन्तः। संभवतः

ते नृपतिपरिव्राजकाः उच्यन्ते। परन्तु कलौ संन्यासं निषिद्ध्यते। यथोक्तमस्ति निर्णयसिन्धौ तृतीयपरिच्छेदे कलिवर्ज्यप्रसंगे-

**अग्निहोत्रं गवालम्भं संन्यासं पलपैतृकम्।**
**दैवराच्च सुतोत्पत्तिः कलौ पञ्च विवर्जयेत्॥** [42]

**आतुरसंन्यासः-** जाबालोपनिषदि मरणासन्नस्यातुरस्य कृतेऽपि संन्यासविचारोऽस्ति। स्मृतिमुक्ताफले अंगिरा-सुमन्त्वोः अभिप्रायो यत् जीर्ण-शीर्णवृद्धावस्थायां, शत्रुभिः व्यथिते, असाध्यरोगपीडिते सति केवलं प्रैषमन्त्रेण संन्यासग्रहितुं शक्यते। प्रैषमन्त्रविधिः यथा-

**संन्यस्तोऽहमिति ब्रूयात् सवनेषु त्रिषु क्रमात्।**
**त्रीन्वारांस्तु त्रिलोकात्मा शुभाशुभविशुद्धये॥**
**यत्किञ्चिद्वन्धकं कर्म कृतमज्ञानतो मया।**
**प्रामादालस्यदोषाद्यत् तत्सर्वं संत्यजाम्यहम्॥**
**पद्भ्यां कराभ्यां विरहन्नाहं वाक्कायमानसैः।**
**करिष्ये प्राणिनां हिंसां प्राणिनः सन्तु निर्भयाः॥**[43]

**संन्यासिनः शिखा-यज्ञोपवितधारणविचारः-** विषयेऽस्मिन् प्राचीने मतभेदाः आसन्। जाबालोपनिषदि अत्रेः शंकया याज्ञवल्क्यस्याभिप्रायो यत् संन्यासिनः आत्मा यज्ञोपवितमस्ति। जाबालोपनिषदि आरुणिकोपनिषदि अभिप्रायोऽस्ति यत् परमहंसः जले दण्ड-कमण्डलु-शिक्य-भिक्षापात्र-पवित्र-शिखा-यज्ञोपवितानि त्यजेत् तथा आत्मनः सन्धाने रतः स्यात्। बृहदारण्यकोपनिषदि शङ्कराचार्यस्य तथा याज्ञवल्क्यस्मृतेः बालक्रीडाटीकायां विश्वरुपस्यायमभिप्रायो यत् संन्यासी यज्ञोपवितं शिखाञ्च त्यजेत्। वृद्धहारितस्यायमभिप्रायो यत् संन्यासी शिखोपवितयोः परित्यागेन जीविते सति चण्डालो भवति तथा मरणादनन्तरं श्वजन्म प्राप्नोति। [44]

**उपसंहारः** पद्मपत्रमिवाम्भसि कथमावश्यकतानुरुपाः आशक्तशून्याः सन्तः सर्वे गृहिणः स्वस्वदायित्वं निर्वहेयुः? एतान् विषयान् संन्यासिनः सांसारिकेभ्यो शिक्षयन्ति, ये तु अधुनाऽपि समाजे गुरुत्वपूर्णाः

सन्ति। कलिवर्ज्येषु यद्यपि संन्यासः अन्तर्भवति तथापि संन्यासनियमस्य इदानीन्तनकालेऽपि प्रासङ्गीकता विद्यते। शास्त्रीयसंस्कृतसाहित्यमधिकृत्य शास्त्रीयज्ञानप्रणाल्यन्तर्गते धर्मशास्त्रे संन्यासाश्रमोपरि शोधविचारः मया संक्षेपेणोपस्थापितः। इति।

अन्तिमापादटीका-

1. श.क.द्व
2. श्री.भ.गी 18/2
3. श.क.द्व
4. वृह. उ. 2/4/1
5. ध.शा.इ, प्रथम पृ. 490
6. म. स्मृ. 3/38, या. स्मृ. 3/56, वि.ध.सू. 96
7. नृ.पु. 60/2-4
8. ध.शा.इ., प्रथमो भागः, पृ. 491
9. वै. स्मा. सू. 9/6
10. बौ.ध.सू 2/10/3-6
11. द. स्मृ 8/38
12. म.स्मृ 6/40,47-48, या.स्मृ 3/61, गौ.ध.सू 1/3/23
13. गौ.ध.सू 1/3/13,20, म.स्मृ 6/43,55
14. व.ध.सू 10/7-8, शं.स्मृ 7/2-3, म.स्मृ 6/56, या.स्मृ 3/59
15. म.स्मृ 6/50-51
16. म.स्मृ 6/57,59, व.ध.सू 10/21-22,25, या.स्मृ 3/59
17. बौ.ध.सू 2/10/15, आ.ध.सू 2/4/13
18. या.स्मृ,मिता. 3/58
19. गौ.ध.सू 1/3/17-18, आ.ध.सू 2/9/21/11-12, व.ध.सू 10/9-11, बौ.ध.सू 2/6/23
20. म.स्मृ 6/53-54, या.स्मृ 3/60
21. म.स्मृ 6/45-46, गौ.ध.सू 1/3/16, बौ.ध.सू 2/10/79, आ.ध.सू 2/9/21/10
22. म.स्मृ 6/52,12/10, बौ.ध.सू 2/10/53, 2/6/25, द.स्मृ. 7/30
23. म. स्मृ 6/92 या.स्मृ 3/65-66 व.ध.सू 10/30 वौ.ध.सू 2/10/55-56, म.भा,अनु. 141/89

24. ध.शा.इ., प्रथमो भागः, पृ. 496
25. स्मृ.मु.फ. पृ.184
26. परा.माध. 1/2, पृ.172-176
27. बृह.उ. 4/4/22, 3/5/1
28. मुण्ड.उ. 1/2/12 ।
29. म.स्मृ. 6/38
30. ल.वि.स्मृ. 5/13
31. जाबा. उ. 4/1
32. या. स्मृ 3/32
33. बृह.उ.भाष्य. 3/5/1, 4/5/15
34. म.स्मृ,मनुभाष्यं 6/97, म.पा. 365-373, स्मृ.मु.फ, वर्णाश्रम, पृ. 176
35. स्मृ.च, प्रथम. पृ. 65
36. म.भा. आदि.119, शान्ति. 63/16-21, रघु. 8/14,16
37. वि.ध.सू. 5/115, या.स्मृ. 2/241, म.भा. शान्ति. 63-11-14
38. या.स्मृ. मिता. 3/58, स्मृ.च.व्य.का.पृ. 254 ध.सा.इ. प्रथमभाग पृ. 497, मालवि. 1/14
39. ध.सा.इ. प्रथम. पृ. 498-499
40. व.ध.सू 17/52
41. गुप्ताभिलेख, पृ. 95, पादटीप्पणी 1
42. नि.सि. पृ. 264
43. स्मृ.मु.फ. पृ.174,182
44. ध.सा.इ. प्रथम. पृ. 503

**सहायकग्रन्थसूचयः-**


- आपस्तम्बधर्मसूत्रणि।
- गुप्ताभिलेखः।
- गौतमधर्मसूत्राणि।
- जाबालोपनिषद्।
- दक्षस्मृतिः।
- धर्मशास्त्र का इतिहास।
- निर्णयसिन्धुः।

- नृसिंहपुराणम्।
- पराशरमाधवीयः।
- बृहदारण्यकोपनिषद्।
- बौधायनधर्मसूत्राणि।
- मनुस्मृतिः।
- महाभारतम्।
- मालविकाग्निमित्रम्।
- मुण्डकोपनिषद्।
- याज्ञवल्क्यस्मृतिः।
- लघुविष्णुस्मृतिः।
- वसिष्ठधर्मसूत्राणि।
- विष्णुधर्मसूत्रम्।
- वैखानसस्मार्तसूत्राणि।
- शङ्खस्मृतिः।
- शब्दकल्पद्रुमः।
- श्रीमद्भगवद्गीता।
- स्मृतिचन्द्रिका।
- स्मृतिमुक्ताफलम्।

***

# भारत की सञ्जीवनी शक्ति : संस्कृत

डॉ.चन्द्र किशोर शास्त्री
सहायक आचार्य संस्कृत विभाग
ब्रह्मावर्त पी.जी.कॉलेज,मन्धना
कानपुर नगर,उ. प्र.

**शोध-सारांश:**

संस्कृत ने इस देश की चेतना एवं वित्तवृत्ति को सजाया-संवारा है। भारत की सांस्कृतिक शक्ति को सम्बर्द्धित एवं अनुरञ्जित किया है। धर्मप्रवण चिन्तन से अनुप्राणित इस साहित्य ने भारत की आत्मा को आध्यात्मिकता से भी अभिमण्डित किया है। भारत में अध्यात्म आनन्द का पर्याय रहा है। आनन्द में भुवमोहिनी भगवान् की शक्ति अन्तर्निहित है। सच्चिदानन्द-विग्रह भगवान् साक्षात् रस के अवतार हैं। अतएव संस्कृत काव्यानन्द से परमानन्द के मार्ग का सुन्दर सेतु है।

**प्रस्तावना:**

संस्कृत भाषा समस्त भारतीय भाषाओं की जननी के रूप में अभिहित है, क्योंकि संस्कृत भाषा का साहित्य इतना विशाल एवं समृद्ध है जो न केवल भारत,अपितु समूचे विश्व का पथ-प्रदर्शन करने में समर्थ है। वैदिक साहित्य से लेकर भारतीय दर्शन, पुराण, स्मृतियों, रामायण, महाभारत एवं श्रीमद्भगवद्गीता तथा संस्कृत महाकाव्यों आदि में जगह-जगह पर सांस्कृतिक, सामाजिक और नैतिक मूल्यों का उपदेश दिया गया है। वैदिक ऋषियों ने देश वासियों को पावन उपदेश दिया था कि- "वह आपस में मिलकर चलें, मिलकर बोलें, मिलजुल कर ही ज्ञान प्राप्त करें,परस्पर सम्पर्क में रहें, सौमनस्य बनायें, यथायोग्य दायित्व में भाग लें, मिलकर मंत्रणा करें। समितियों में समान अधिकार समझें, उद्देश्य में हार्दिक समानता रखें और सब साथ-साथ काम करें"। साथ ही देश

वासियों से ऋषिगण यह आशा रखते थे कि वे अपनी सुविधा एवं अभ्यास के अनुसार चाहे जिस भाषा में वार्तालाप करें तथा अपनी इच्छानुसार चाहे जिस धर्म (ईश्वर) की उपासना करें, किन्तु उन्हें अपने समग्र राष्ट्र को गृह के समान समझना चाहिए और उसकी मिल जुलकर देखभाल करनी चाहिए तभी हमारा राष्ट्र ऐश्वर्य सम्पन्न हो सकेगा। क्योंकि संस्कृत की साहित्य-वीथिका में वेद-वेदान्त,उपनिषद्, पुराण, रामायण, महाभारत, स्मृतिग्रंथ, दर्शन, काव्यशास्त्र, महाकाव्य, नाटक, गद्यकाव्य, गीतिकाव्य, आख्यान, साहित्य, व्याकरण, काव्यशास्त्र, गणित, ज्योतिष, नीतिशास्त्र, कामशास्त्र, आयुर्वेद, धनुर्वेद, वास्तुशास्त्र, अर्थशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, इतिहास, छन्दशास्त्र, कोशग्रन्थ, चौंसठ कलायें सभी अपने विपुल वैभव के साथ विद्यमान हैं। जिसके कारण कहा जा सकता है कि संस्कृत भारत की सञ्जीवनी शक्ति है।

**कूट शब्द:**

सञ्जीवनी शक्ति, भारतीय भाषाओं की जननी, वैदिक साहित्य, भारतीय दर्शन, पुराण, स्मृतियां, रामायण, महाभारत एवं श्रीमद्भगवद्गीता।

**अध्ययन का उद्देश्य:**

संस्कृत साहित्य को भारत की सञ्जीवनी शक्ति के रूप प्रतिष्ठित करना।

**विषय का उपस्थापन/ मुख्य विषय:**

संस्कृत के शिल्पकार के चित्त की भाव लहरी जब किसी विशेष प्रेरणा, उद्वेग एवं प्रोत्साहन से घनीभूत हो जाती है, तभी हृदय के तरल विचार काव्य का रूप ले लेते हैं। इस दृष्टि से वे दृश्य जो हृदय की गहन संवेदना का स्पर्श करने वाले करुणामय एवं चित्त को झकझोर देते हैं, काव्य के उद्गम में विशेष महत्वपूर्ण भूमिका प्रस्तुत करते हैं। सभी रसों में शिरोमणि करुण रस इस दृष्टि से उल्लेखनीय है। महर्षि वाल्मीकि, जब माध्यन्दिन सवनार्थ तमसा नदी के तट पर पहुँचते हैं, उसी क्षण व्याध के द्वारा मारे गये क्रौञ्चयुग्म में से एक को विलाप करते हुए देखते हैं, तो

उनका हृदय करुणार्द्र हो उठता है और उनके हृदय की तरलता काव्यरूप में प्रवाहित होने लगती है। इस प्रकार संस्कृत साहित्याकाश में महाकवि वाल्मीकि का अवतरण होता है और उनकी इस परम्परा को महर्षि वेदव्यास ने विशदता, व्यापकता एवं महनीयता प्रदान की है। महर्षि वेदव्यास का महाभारत संस्कृत-काव्य की परम्परा को गतिशीलता देने में अतीव महत्वपूर्ण भूमिका प्रस्तुत करता है। ये दोनों ही कवि अपनी विशिष्ट प्रतिपादन प्रविधि के कारण आर्ष कवि की महिमा से अभिमण्डित किये जातेहैं।

वस्तुतः संस्कृत भारत की सञ्जीवनी शक्ति है। गौरव गरिमा संभरित इस देश का संरक्षण एवं संवर्द्धन जिस भाषा में हो रहा है, वह स्वनामधन्या 'संस्कृत' कल-कल छल-छल निनाद से प्रवहमान होकर अपने अमृतोपम सुधा-सीकर से इस राष्ट्र को अभिसिञ्चित कर रही है। प्राची अरुणिमा के साथ नित्य जिस भूमि का अभिनन्दन करती है। अनुदिन उदीयमान दिवाकर, जिसका सौभाग्य सिन्दूर है। उसका प्राणतत्व यह संस्कृत भाषा ही है। इसी भाषा की ओजस कान्ति से विराट् विश्व को आलोक एवं दिव्य दृष्टि मिली है। अतीव सुन्दर वाणी में संस्कृत का प्रशस्तिगान करते हुए आचार्य पं. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कहा है-

**"संस्कृत का साहित्य वह उच्च गिरिश्रृङ्ग है, जिस पर चढ़कर मनुष्य काल के सुदीर्घ-स्रोत को बड़ी दूर तक देख सकता है। इस महानद के तट पर मनुष्य के उत्थान और पतन के अनेक चिन्ह दिखाई देते हैं"।**[1]

अर्थात् संस्कृत ने इस देश की चेतना एवं वित्तवृत्ति को सजाया-संवारा है। भारत की सांस्कृतिक शक्ति को सम्बर्द्धित एवं अनुरञ्जित किया है। धर्मप्रवण चिन्तन से अनुप्राणित इस साहित्य ने भारत की आत्मा को आध्यात्मिकता से भी अभिमण्डित किया है। भारत में अध्यात्म आनन्द का पर्याय रहा है। आनन्द में भुवमोहिनी भगवान् की शक्ति अन्तर्निहित है। सच्चिदानन्द-विग्रह भगवान् साक्षात् रस के अवतार हैं, अतएव संस्कृत

काव्यानन्द से परमानन्द के मार्ग का सुन्दर सेतु है। इस सम्बन्ध में आचार्य बलदेव उपाध्याय ने भी कहा है-

**"संस्कृत साहित्य के रूप-निर्माण तथा विकास के ऊपर भारतीय तत्त्वज्ञान का विशेष प्रभाव पड़ा है। भारतीय दर्शन सर्वदा से आशावादी रहा है"।**[2]

संस्कृत की साहित्य-वीथिका में वेद-वेदान्त, उपनिषद्, पुराण, रामायण, महाभारत, स्मृतिग्रंथ, दर्शन, काव्यशास्त्र, महाकाव्य, नाटक, गद्यकाव्य, गीतिकाव्य, आख्यान, साहित्य, व्याकरण, काव्यशास्त्र, गणित, ज्योतिष, नीतिशास्त्र, कामशास्त्र, आयुर्वेद, धनुर्वेद, वास्तुकाव्य, अर्थशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, इतिहास, छन्दशास्त्र, कोशग्रन्थ, चौंसठ कलायें सभी अपने विपुल वैभव के साथ से विद्यमान हैं।

व्युत्पत्तिपरक अर्थ में संस्कृत सम्यक् परिष्कृत भाषा है **'सम्यक्कृतं परिष्कृतम् संस्कृतम्'**। संस्कृत शब्द सम् उपसर्ग पूर्वक कृ धातु से क्त प्रत्यय लगाकर निष्पन्न होता है। सुर-भारती, गीर्वाणवाणी, गीर्वाणगीः, देववाणी, देवभाषा आदि इसकी अन्य अन्वर्थ संज्ञाएँ हैं। इसे तत्त्वदृष्टा, ऋषियों, मनीषियों, शिष्टजनों की भाषा भी कहा गया है। देवों के आवाहनार्थ वेदमंत्रों की रचना इसी भाषा में हुई है। मंत्रों में अपार शक्ति संचित होती है। यह देवों की प्रिय एवं ग्राह्य है। देवता इसी भाषा में संवाद करते हैं। आचार्य दण्डी ने 'काव्यादर्श' में कहा है-

**संस्कृतं नाम दैवीवाग्न्वाख्याता महर्षिभिः।**
**भाषासु मधुरा मुख्या दिव्या गीर्वाण भारती।।**[3]

साहित्य शब्द एवं अर्थ के मञ्जुल सामञ्जस्य का सूचक है। इसकी व्युत्पत्ति **'सहितयोः भावः साहित्यम्'**, अर्थात् जिसमें (शब्द तथा अर्थ में) हित की भावना विद्यमान हो। भर्तृहरि ने साहित्य-संगीत से विहीन पुरुष को पशु कहा है-

**साहित्य सङ्गीत कला विहीनः।**

**साक्षात्पशुपुच्छविषाण हीनः।।[4]**

साहित्य की परिभाषा करते हुए आचार्य कुन्तक ने कहा है-

**साहित्यमनयोः शोभाशालितं प्रतिकाप्यसो।**
**अन्यूतानिरिक्तत्वं मनोहारिण्यवस्थितिः।।[5]**

अर्थात् साहित्य वह है, जिसमें शब्द और अर्थ की परस्पर स्पर्धामय मनोहारिणी श्लाघनीय स्थिति हो। इस दृष्टि से संस्कृत साहित्य वरेण्य है।

ऋषियों ने देशवासियों को संस्कृत भाषा में पावन उपदेश दिया था कि वे आपस में मिलकर चलें, मिलकर बोले, मिल जुलकर ही ज्ञान प्राप्त करें, परस्पर सम्पर्क में रहे, सौमनस्य बनायें, यथायोग्य दायित्व में भाग लें, मिलकर मंत्रणा करें, समितियों में समान अधिकार समझें, उद्देश्य में हार्दिक समानता रखें, सब साथ-साथ काम करें। देशवासियों से ऋषिगण यह आशा रखते थे कि वे अपनी सुविधा एवं अभ्यास के अनुसार चाहे जिस भाषा में वार्तालाप करें तथा अपनी इच्छानुसार चाहे जिस धर्म (ईश्वर) की उपासना करें, किन्तु उन्हें अपने समग्र राष्ट्र को गृह के समान समझना चाहिए और उसकी मिलजुलकर देखभाल करनी चाहिए तभी हमारा राष्ट्र ऐश्वर्य सम्पन्न हो सकेगा-

**संगच्छध्वं संवदध्वं संनोमनांसिजानताम्।**
**देवभागं यथा पूर्वे संजाना उपासते।।**
**समानो मन्त्रः सिमितः समानी समानंमनः सहचित्तमेषाम्।**
**समानं मन्त्रभिमन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि।।**
**समानी व आकूतिः समाना हृदयानिवः।**
**समानस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति।।[6]**

संस्कृत काव्य के अभ्युदय एवं विकास का आद्यान्त ऐतिहासिक वृत्त बहुत प्रामाणिक रूप से हमें ज्ञात नहीं है, फिर भी अनुमानतः यह सहस्रों वर्ष प्राचीन है। संस्कृत के शिल्पकार के चित्त की भाव लहरी जब

किसी विशेष प्रेरणा, उद्वेग एवं प्रोत्साहन से घनीभूत हो जाती है, तभी हृदय के तरल विचार काव्य का रूप ले लेते हैं। इस दृष्टि से वे दृश्य जो हृदय की गहन संवेदना का स्पर्श करने वाले करुणामय एवं चित्त को झकझोर देते हैं, काव्य के उद्गम में विशेष महत्त्वपूर्ण भूमिका प्रस्तुत करते हैं। सभी रसों में शिरोमणि करुण रस इस दृष्टि से उल्लेखनीय है। महर्षि वाल्मीकि, जब माध्यन्दिन सवनार्थ तमसा नदी के तट पर पहुंचते हैं, उसी क्षण व्याध के द्वारा मारे गये क्रौञ्चयुग्म में से एक को विलाप करते हुए देखते हैं, तो उनका हदय करुणार्द हो उठता है और उनके हृदय की तरलता काव्यरूप में प्रवाहित होने लगती है-

**मा निषाद ! प्रतिष्ठां स्वमगमः शाश्वतीः समाः।**
**यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्।।**[7]

काव्य की आत्मा वही प्रतीयमान अर्थ- रस है। इसी से प्राचीनकाल में कौञ्च पक्षी के जोड़े के वियोग से उत्पन्न आदिकवि वाल्मीकि का शोक (करुणरस का स्थायिभाव) श्लोक (काव्य) रूप में परिणत हुआ-

**काव्यस्यात्मा स एवार्थस्तथा चादिकवेः पुरा।**
**क्रौञ्चद्वन्द्वियोगोत्थः शोकः श्लोकत्वमागतः॥**[8]

इस प्रकार संस्कृत साहित्याकाश में महाकवि वाल्मीकि का अवतरण होता है और उनकी इस परम्परा को महर्षि वेदव्यास ने विशदता, व्यापकता एवं महनीयता प्रदान की है। महर्षि वेदव्यास का महाभारत संस्कृत-काव्य की परम्परा को गतिशीलता देने में अतीव महत्त्वपूर्ण भूमिका प्रस्तुत करता है। ये दोनों ही कवि अपनी विशिष्ट प्रतिपादन प्रविधि के कारण आर्ष कवि की महिमा से अभिमण्डित किये जाते हैं।

संस्कृत काव्यांगन में आर्ष कवियों के अवतरण के पश्चात् साहित्य-शिल्पियों की एक समृद्ध परम्परा विकसित होती है। उनमें महाकवि कालिदास, अश्वघोष, माघ, भट्टि, कुमारदास जैसे मूर्धन्य महाकाव्यकार हैं। नाट्य के क्षेत्र में महाकवि भास, शूद्रक, कालिदास,

विशाखदत्त, हर्ष, भट्टनारायण, भवभूति, दिंगनाग, जयदेव जैसे नाट्य-शिल्पी हैं। गद्य के क्षेत्र में दण्डी, सुबन्धु, बाणभट्ट, पं. अम्बिकादत्त व्यास जैसे रचनाकार हैं। इसी प्रकार गीतिकाव्य को जिन विभूतियों ने अपनी प्रतिभा से सुसज्जित किया है उनमें कालिदास, महाकवि भर्तृहरि, अमरुक, जयदेव, पंडितराज जगन्नाथ एवं चम्पू काव्य प्रणेता त्रिविक्रम भट्ट प्रमुख हैं।

नाट्यशास्त्र के प्रणेता आचार्य भरत (दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व) ने नाट्य के महत्त्व का प्रतिपादन करते हुए कहा है कि ऐसा कोई ज्ञान शिल्प, विद्या, कला, योग (प्रयोग) और कर्म नहीं है, जो इसमें समाहित न हो -

**न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला।**
**नासौ योगो न तत्कर्म नाट्येऽस्मिन् यन्न दृश्यते।।**[9]

अर्थात् ऐसा कोई ज्ञान नहीं, ऐसा कोई शिल्प नहीं है, ऐसी कोई विद्या नहीं है, ऐसी कोई कला नहीं है, ऐसा कोई योग नहीं है और ऐसा कोई धर्म नहीं है जो इस नाट्य में न दिखाई देता हो।

अतः सातों द्वीपों के भावों के अनुकीर्तन रूप इस दृश्यमान नाट्य में जो दिखाई न देता हो, अर्थात् जो हृदय गोचर नहीं होता हो, उस प्रकार का ज्ञान आदि नहीं है, यह अभिप्राय है। यहाँ 'ज्ञान' इस पद से उपादेय आत्मज्ञान आदि का ग्रहण करना चाहिए। जैसे वेणीसंहार नाटक में कहा गया है-

**आत्मारामा विहितरतयो निर्विकल्पे समाधौ**
**ज्ञानोत्सेकाद्विघटिततमोग्रन्थयः सत्त्वनिष्ठाः।**
**यं वीक्षन्ते कमपि तमसां ज्योतिषां वा परस्तात्**
**तं मोहान्धः कथमयममुं वेत्तु देवं पुराणम्।।**[10]

अर्थात् आत्मा में रमण करने वाले निर्विकल्प समाधि में रत रहने वाले, ज्ञान के उद्रेक से जिनके हृदय के अन्धकाररूप अज्ञान की गाँठें नष्ट हो गई हैं, ऐसे सत्त्वनिष्ठ योगी लोग अन्धकार से परे और प्रकाश से भी परे

जिस गुणातीत परस्पर परमात्मा को देखते हैं, उस पुरातन देव श्रीकृष्ण को मोह से अन्धा यह दुर्योधन कैसे जान सकता है?

आचार्य भरत ने नाट्यशास्त्र तथा आचार्य अभिनवगुप्त ने अभिनवभारती में नाटक के महत्त्व को अतीव विस्तार के साथ विवेचित किया है। उनका अभिमत है कि नाट्यशास्त्र में विश्व की समस्त भावनाओं का प्रदर्शन किया जाता है। जीवन की समग्र घटनाओं और तत्त्व जैसे धर्म, मनोरंजन, हास्य, युद्ध, श्रृंगार आदि का विशद् विवेचन किया जाता है, जिसके कारण प्रत्येक दर्शक अपनी भावनाओं के अनुरूप प्रतिफल अथवा निष्कर्ष प्राप्त करता है। नाटक के देखने से सहृदयों में अतीव उत्साह की वृद्धि होती है। यहाँ धन-धान्य से परिपूर्ण व्यक्ति को पर्याप्त मनोरञ्जन, त्रासित एवं दुःखी मनुष्य के लिए आश्वासन, व्यवसाय में सम्बद्ध जनों के लिए आय का साधन और अशान्त एवं व्याकुल अन्तर्मन वाले मनुष्य के लिए शान्ति एवं तोष की प्राप्ति होती है। पीड़ाग्रस्त मनुष्य के सारे दुःख दूर हो जाते हैं। चाहे वह थकित अथवा विकल हो या सामान्य व्यक्ति हो। नाटक द्वारा मनुष्य की सभी कामनाओं, धर्म, यश, स्वास्थ्य लाभ, ज्ञान वृद्धि और आचार सम्पन्नता की पूर्ति होती है-

**दुःखार्तानां श्रमार्तानां शोकार्तानां तपस्विनाम्।**
**विश्रान्तिजननं काले नाट्यमेतन्मया कृतम्।।**[11]

अर्थात् यह नाट्य दुःखियों के लिए , थके हुए लोगों के लिए, शोक से संतप्त लोगों के लिए, तपस्वियों के लिए विश्रान्ति देने वाला होगा।

वस्तुतः संस्कृत वाग्धारा का शाश्वत प्रवाह अनादिकाल से कल-कल छल-छल निनादिनी सरिता की तरह प्रवाहित होते हुए जनमानस की चेतना को अभिसिञ्चित कर रहा है। संस्कृत की चिन्तन-धारा को सृजनकर्ता मनीषियों ने अपनी अलौकिक प्रतिभा शक्ति से पूर्णत्व प्रदान किया है। निरुक्त के रचनाकार महर्षि यास्क ने इसी कारण सहृदय रचनाकार को

**"कवयः क्रान्तदर्शिनः"** कहकर अतीव आदरास्पद स्थान प्रदान किया है। शुक्ल यजुर्वेद में भी इसी भाव को अभिव्यक्त करते हुए कहा गया है-

**कविकर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूः।** [12]

इसी विचारराशि को अग्निपुराणकार ने इस प्रकार कहा है-

**अपारे काव्य संसारे कविरेकः प्रजापतिः।**
**यथास्मै रोचते विश्वं तथेदं परिवर्तते।।**[13]

अर्थात् इस अपार काव्य संसार में कवि ही प्रजापति है , इसलिए उसको संसार का जैसा स्वरूप रुचिकर लगता है,काव्य में यह जगत् वैसे ही परिवर्तित हो जाता है।

कवि के कर्म को काव्य की संज्ञा दी जाती है- **"कवेः कर्म काव्यम्।"** काव्य कवि की संचेतना का संवाहक होता है। उसके चिन्तन का दर्पण होता है, उसकी अनुभूतियों का सम्पूर्ण चैतसिक प्रसार काव्य में देखा जा सकता है। अतः लोक-जीवन के आरोह एवं अवरोह का वास्तविक बिम्ब देखने के लिए काव्य से बढ़कर कोई दूसरा माध्यम नहीं है।

**निष्कर्ष:**

संस्कृत काव्यांगन में आर्ष कवियों के अवतरण के पश्चात् साहित्य-शिल्पियों की एक समृद्ध परम्परा विकसित होती है। उनमें महाकवि कालिदास, अश्वघोष, माघ, भट्टि, कुमारदास जैसे मूर्धन्य महाकाव्यकार हैं, जिन्होंने अपनी रचनाओं में तत्कालीन सामाजिक सांस्कृतिक और नैतिक मूल्यों का विवेचन किया है। वर्तमान समय की ज्वलन्त समस्याओं के परिप्रेक्ष्य में संस्कृत भाषा ही एक सक्षम साधन है, जिनसे हम राष्ट्र के समक्ष उभरते हुए प्रश्नचिह्नों का समाधान प्राप्त कर सकते हैं। विषय की व्यापकता और वैचारिक गहनता से संवलित संस्कृत भाषा हमारे राष्ट्र के लिए अतीव उपयोगी साधन है। क्योंकि संस्कृत की विपुल ज्ञान-धारा अनन्त विशेषताओं से सम्पृक्त होते हुए अपनी विषय-परिधि में मनोरम एवं

मनोज्ञ विषयों को आत्मस्थ करती हुई अनवरत अद्यावधि प्रवाहमान है। अतः कह सकते हैं कि संस्कृत साहित्य ही ऐसा साहित्य है, जहां विश्व को परिवार मानकर सबके कल्याण की कामना की जाती है, इसी से भारतीयों को जीवंतता प्राप्त होती है। इसीलिए संस्कृत को भारत की सञ्जीवनी कहा जा सकता है।

**सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।**
**सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दुःख भाग्भवेत्।।**

सन्दर्भ- ग्रन्थ-सूची:

1.संस्कृत साहित्य की प्रवृत्तियाँ, भूमिका, आगरा- 1968
2.संस्कृत साहित्य का इतिहास आचार्य बलदेव उपाध्याय, वाराणसी, पृ.- 4
3.काव्यादर्श,प्रथम परिच्छेद, श्लोक- 33
4.नीतिशतकम्- ½
5.वक्रोक्ति जीवित- 1/17
6.ऋग्वेद- 10/191/2-4
7.ध्वन्यालोक,अचार्य आनन्दबर्धन,प्रथम उद्योत
8.ध्वन्यालोक,अचार्य आनन्दबर्धन,प्रथम उद्योत,कारिका- 05
9.नाट्यशास्त्र-आचार्य भरतमुनि,अभिनवभारती- आचार्य अभिनवगुप्त- 1/118
10. वेणीसंहार- 1/23
11. वही, 1/116
12.शुक्ल यजुर्वेद - 40/8
13.अग्नि पुराण- 339/10

# भारत के बाहर संस्कृत का वैश्विक प्रभाव और अध्ययन

Dev Prakash Gujela
Ph. D. Scholar, PG Department of Sanskrit
Magadh University, Bodh-Gaya

**प्रस्तावना-**

संस्कृत विश्व की प्राचीनतम और समृद्ध भाषाओं में से एक है, जो न केवल भारतीय उपमहाद्वीप में, बल्कि पूरी दुनिया में अपने गहरे प्रभाव के लिए जानी जाती है। प्राचीन काल से लेकर आज के आधुनिक युग तक संस्कृत ने धर्म, दर्शन, साहित्य, विज्ञान और कला के क्षेत्रों में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। यह भाषा अपने विशिष्ट व्याकरणिक संरचना और ध्वन्यात्मक सौंदर्य के कारण विद्वानों, भाषाविदों और अन्वेषकों के लिए सदैव आकर्षण का केंद्र रही है। इस शोध पत्र में संस्कृत के भारत के बाहर के वैश्विक प्रभाव और इसके अध्ययन की यात्रा को समझने का प्रयास करेंगे, जिसमें इस भाषा ने विभिन्न संस्कृतियों और सभ्यताओं पर अपनी छाप छोड़ी है।

यह शोध पत्र "भारत के बाहर संस्कृत का वैश्विक प्रभाव और अध्ययन" विषय पर केंद्रित है। संस्कृत जो कि भारत की प्राचीनतम और समृद्ध भाषा है, ने न केवल भारतीय उपमहाद्वीप में, बल्कि विश्वभर में अपने गहरे प्रभाव को स्थापित किया है। धार्मिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक और वैज्ञानिक क्षेत्रों में इस भाषा ने महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

इस शोध पत्र में, सबसे पहले संस्कृत के धार्मिक और सांस्कृतिक प्रभाव पर चर्चा की गई है, जिसमें हिंदू धर्म, बौद्ध धर्म, और जैन धर्म के प्रसार में संस्कृत के महत्व को दर्शाया गया है। इसके साथ ही संस्कृत साहित्य और शास्त्रीय ग्रंथों के यूरोप और एशिया के देशों में अध्ययन और

शिक्षण पर भी प्रकाश डाला गया है। संस्कृत के वैज्ञानिक और दार्शनिक योगदान जैसे गणित, ज्योतिष और चिकित्सा में इसकी भूमिका का विश्लेषण किया गया है।

आधुनिक युग में संस्कृत के वैश्विक प्रभाव पर ध्यान केंद्रित करते हुए, इस शोध में संस्कृत के अध्ययन के लिए स्थापित वैश्विक शिक्षा संस्थानों, शोध परियोजनाओं और प्रकाशनों की चर्चा की गई है। इसके अलावा प्रौद्योगिकी के विकास के साथ संस्कृत के अध्ययन में आई नई विधियों और डिजिटल माध्यमों के उपयोग पर भी विचार किया गया है।

अंत में, यह शोध पत्र निष्कर्ष निकालता है कि संस्कृत न केवल एक प्राचीन धरोहर है, बल्कि आज भी यह भाषा वैश्विक स्तर पर सांस्कृतिक, शैक्षिक और बौद्धिक संवाद को समृद्ध कर रही है। संस्कृत का अध्ययन, जिसे आधुनिक संदर्भों में नए दृष्टिकोणों के साथ अपनाया जा रहा है, भविष्य में भी वैश्विक ज्ञान और संस्कृति के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगा।

**कुंजी शब्द-** वैश्विक प्रभाव, शैक्षिक अध्ययन, संस्कृत शिक्षा संस्थान, वैज्ञानिक और दार्शनिक योगदान, आधुनिक प्रौद्योगिकी, सांस्कृतिक पुनर्जागरण

**संस्कृत का वैश्विक प्रभाव-**

संस्कृत का वैश्विक प्रभाव कई आयामों में देखा जा सकता है। यह प्रभाव धर्म, साहित्य, विज्ञान, दर्शन और कला के क्षेत्र में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। निम्नलिखित बिंदुओं के माध्यम से हम संस्कृत के इस वैश्विक प्रभाव को समझ सकते हैं:

**1. धार्मिक और सांस्कृतिक प्रभाव-**

संस्कृत भाषा का सबसे महत्वपूर्ण योगदान धार्मिक और सांस्कृतिक परंपराओं के प्रसार में रहा है। हिन्दू धर्म के वेद, उपनिषद, महाभारत, रामायण और पुराण जैसे प्राचीन ग्रंथ संस्कृत में ही रचित हैं।

इन ग्रंथों का प्रभाव केवल भारत तक सीमित नहीं रहा, बल्कि नेपाल, तिब्बत, श्रीलंका, थाईलैंड, कंबोडिया, इंडोनेशिया और अन्य दक्षिण-पूर्व एशियाई देशों में भी व्यापक रूप से देखा गया है। बौद्ध धर्म और जैन धर्म के संस्कृत साहित्य ने इन धर्मों के वैश्विक प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इसके अलावा संस्कृत मंत्रों और श्लोकों का प्रभाव आज भी विश्वभर के धार्मिक अनुष्ठानों और योग अभ्यासों में देखा जा सकता है।

**2. शैक्षिक और साहित्यिक प्रभाव-**

संस्कृत साहित्य जो अपने विशाल और विविध रूपों में रचा गया है, पूरे विश्व में विद्वानों और साहित्यकारों को प्रभावित किया है। कालिदास, भास, बाणभट्ट और भवभूति जैसे महान कवियों और नाटककारों की रचनाएँ संस्कृत साहित्य की समृद्ध परंपरा का हिस्सा हैं। 18वीं और 19वीं शताब्दी में यूरोप में संस्कृत के अध्ययन में विशेष रुचि देखी गई, जब मैक्स मूलर और विलियम जोन्स जैसे विद्वानों ने संस्कृत ग्रंथों का अनुवाद किया और उन्हें पश्चिमी दुनिया के सामने प्रस्तुत किया। इसने यूरोप में शास्त्रीय भाषाओं के अध्ययन में नई दृष्टि दी और संस्कृत को एक महत्वपूर्ण शास्त्रीय भाषा के रूप में स्थापित किया।

**3. वैज्ञानिक और दार्शनिक प्रभाव-**

संस्कृत भाषा में विज्ञान, गणित, ज्योतिष, चिकित्सा और दर्शन के अनेक महत्वपूर्ण ग्रंथ लिखे गए हैं। उदाहरण के लिए आर्यभट्टीय (गणित और खगोल विज्ञान), चरक संहिता (चिकित्सा), सुश्रुत संहिता (शल्य चिकित्सा) और वास्तुशास्त्र (वास्तुकला) जैसी रचनाएँ संस्कृत में ही रचित हैं। इन ग्रंथों का प्रभाव प्राचीन यूनान, अरब और यूरोप के विद्वानों पर भी पड़ा और उन्होंने इनसे प्रेरणा लेकर अपने वैज्ञानिक और दार्शनिक विचारों को विकसित किया। संस्कृत के दर्शन ग्रंथ जैसे योगसूत्र, सांख्यकारिका और वेदांतसूत्र ने भी विश्वभर में दार्शनिक चिंतन को समृद्ध किया है।

**4. आधुनिक युग में प्रभाव-**

आज के युग में भी संस्कृत का वैश्विक प्रभाव देखा जा सकता है। संयुक्त राष्ट्र संघ ने संस्कृत को विश्व की प्रमुख शास्त्रीय भाषाओं में से एक के रूप में मान्यता दी है। अमेरिका, यूरोप, और ऑस्ट्रेलिया जैसे देशों में कई विश्वविद्यालयों और शोध संस्थानों में संस्कृत के अध्ययन को बढ़ावा दिया जा रहा है। संस्कृत के शास्त्रीय साहित्य, दर्शन और भाषा विज्ञान पर गहन शोध किए जा रहे हैं। इसके अलावा, योग और आयुर्वेद जैसे प्राचीन भारतीय विधाओं के पुनरुत्थान के साथ संस्कृत की लोकप्रियता और अध्ययन में भी वृद्धि हुई है।

**5. सांस्कृतिक पुनर्जागरण और संस्कृत-**

आधुनिक समय में संस्कृत भाषा ने सांस्कृतिक पुनर्जागरण के संदर्भ में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। कई देशों में संस्कृत साहित्य और संस्कृति के अध्ययन के माध्यम से अपनी सांस्कृतिक जड़ों को पुनः प्राप्त करने का प्रयास किया जा रहा है। विभिन्न संस्कृतियों के बीच संवाद को बढ़ावा देने के लिए संस्कृत भाषा और साहित्य का उपयोग किया जा रहा है, जो कि वैश्विक स्तर पर सांस्कृतिक समझ को गहरा बना रहा है।

**संस्कृत का वैश्विक अध्ययन-**

संस्कृत का वैश्विक अध्ययन समय के साथ विभिन्न रूपों में विकसित हुआ है और आज यह विश्व के अनेक देशों में शैक्षणिक और अनुसंधान के प्रमुख विषयों में से एक है। संस्कृत भाषा के अध्ययन का यह विस्तार न केवल इसके साहित्यिक और धार्मिक महत्व के कारण हुआ है, बल्कि इसके वैज्ञानिक, दार्शनिक और सांस्कृतिक योगदान के कारण भी इसे वैश्विक स्तर पर मान्यता मिली है। संस्कृत के वैश्विक अध्ययन के कुछ प्रमुख आयाम निम्नलिखित हैं:

**1. संस्कृत शिक्षा संस्थान-**

भारत के बाहर संस्कृत शिक्षा के लिए कई प्रमुख संस्थान और

विश्वविद्यालय स्थापित किए गए हैं। इनमें ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय, कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय, हार्वर्ड विश्वविद्यालय, कोलंबिया विश्वविद्यालय और पेरिस विश्वविद्यालय जैसे प्रतिष्ठित संस्थान प्रमुख हैं। इन संस्थानों में संस्कृत के पाठ्यक्रम, अनुसंधान और सम्मेलन आयोजित किए जाते हैं। संस्कृत भाषा और साहित्य के अध्ययन के लिए अलग-अलग विभाग और केंद्र बनाए गए हैं, जहाँ छात्रों और शोधकर्ताओं को प्राचीन ग्रंथों, साहित्यिक कृतियों और व्याकरणिक संरचनाओं का अध्ययन करने का अवसर मिलता है।

**संस्कृत शिक्षा संस्थानों का उदय-**

संस्कृत के अध्ययन के प्रति वैश्विक रुचि का प्रारंभ 18वीं और 19वीं शताब्दी में हुआ, जब यूरोपीय विद्वानों ने इस भाषा की विशिष्टता और इसकी समृद्ध साहित्यिक परंपरा को पहचाना। संस्कृत भाषा के अध्ययन में सबसे प्रमुख योगदान अंग्रेज़ी विद्वान सर विलियम जोन्स का रहा, जिन्होंने 1784 में एशियाटिक सोसाइटी ऑफ़ बंगाल की स्थापना की और संस्कृत को पश्चिमी विद्वानों के लिए उपलब्ध कराया। इसके बाद मैक्स मूलर जैसे विद्वानों ने संस्कृत साहित्य का गहन अध्ययन किया और इसे यूरोप में लोकप्रिय बनाया।

**प्रमुख वैश्विक शिक्षा संस्थान-**

संस्कृत के अध्ययन के लिए विश्वभर में कई प्रमुख शिक्षा संस्थान स्थापित किए गए हैं। इनमें से कुछ महत्वपूर्ण संस्थान निम्नलिखित हैं:

**ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय, इंग्लैंड:** ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में संस्कृत अध्ययन का एक समृद्ध इतिहास है। यहां 19वीं शताब्दी में संस्कृत का अध्ययन शुरू हुआ और यह आज भी एक प्रमुख शैक्षणिक विषय बना हुआ है। ऑक्सफोर्ड में संस्कृत के अध्ययन के लिए एक समर्पित विभाग है, जहां विद्यार्थी प्राचीन ग्रंथों, भाषा विज्ञान और साहित्य का अध्ययन करते हैं।

**हार्वर्ड विश्वविद्यालय, संयुक्त राज्य अमेरिका:** हार्वर्ड विश्वविद्यालय भी संस्कृत के अध्ययन के लिए एक प्रमुख केंद्र है। यहां का डिविनिटी स्कूल और संस्कृत एवं भारतीय अध्ययन विभाग संस्कृत के धार्मिक, साहित्यिक और दार्शनिक पहलुओं का गहन अध्ययन कराता है। हार्वर्ड में संस्कृत अध्ययन के लिए अनेक शोध परियोजनाएं और सम्मेलन आयोजित किए जाते हैं।

**पेरिस विश्वविद्यालय, फ्रांस:** पेरिस विश्वविद्यालय का इनाल्को (INALCO) संस्थान संस्कृत अध्ययन के लिए प्रसिद्ध है। यहां संस्कृत भाषा, साहित्य और संस्कृति पर विस्तृत शोध और शिक्षण कार्यक्रम संचालित होते हैं। पेरिस विश्वविद्यालय में संस्कृत के अध्ययन का एक लंबा इतिहास रहा है और यहां के विद्वानों ने संस्कृत के कई महत्वपूर्ण ग्रंथों का अनुवाद और संपादन किया है।

**जर्मनी के विश्वविद्यालय:** जर्मनी के कई विश्वविद्यालय जैसे गोटिंगेन विश्वविद्यालय और हाइडेलबर्ग विश्वविद्यालय संस्कृत अध्ययन के लिए प्रसिद्ध हैं। यहां के विद्वानों ने संस्कृत व्याकरण और साहित्य का गहन अध्ययन किया है। जर्मनी में संस्कृत के अध्ययन को विशेष महत्व दिया जाता है और यहां के शैक्षणिक संस्थानों में इस भाषा पर कई शोध कार्य किए जा रहे हैं।

**सोआस, लंदन:** लंदन स्थित स्कूल ऑफ ओरिएंटल एंड अफ्रीकन स्टडीज (SOAS) भी संस्कृत अध्ययन के लिए एक प्रमुख संस्थान है। यहां संस्कृत भाषा और साहित्य के साथ-साथ दक्षिण एशियाई धर्मों और संस्कृतियों का भी अध्ययन किया जाता है। SOAS में संस्कृत के अध्ययन के लिए कई पाठ्यक्रम उपलब्ध हैं, जो छात्रों को इस प्राचीन भाषा की गहराई से समझने में मदद करते हैं।

**2. संस्कृत अध्ययन के आधुनिक दृष्टिकोण-**

संस्कृत का अध्ययन अब केवल शास्त्रीय ग्रंथों तक सीमित नहीं

है। आधुनिक युग में संस्कृत के अध्ययन में नए दृष्टिकोण अपनाए जा रहे हैं, जैसे कि डिजिटल मानविकी, तुलनात्मक भाषा विज्ञान और अनुवाद अध्ययन। डिजिटल माध्यमों के प्रयोग से संस्कृत ग्रंथों को संरक्षित करने और उन्हें वैश्विक स्तर पर उपलब्ध कराने के प्रयास किए जा रहे हैं। तुलनात्मक भाषा विज्ञान के तहत संस्कृत और अन्य प्राचीन भाषाओं के बीच संबंधों का अध्ययन किया जा रहा है, जिससे भाषाई विकास और संस्कृति के आदान-प्रदान को समझने में मदद मिलती है।

**3. अनुसंधान और प्रकाशन-**

संस्कृत पर वैश्विक स्तर पर अनेक शोध कार्य और प्रकाशन हो रहे हैं। विश्वभर में विभिन्न संस्कृत विद्वानों द्वारा संस्कृत के ग्रंथों का अनुवाद, टीका और समालोचना लिखी जा रही है। इसके अलावा संस्कृत भाषा के व्याकरण, साहित्य और दर्शन पर कई शोध पत्र और पुस्तकें प्रकाशित हो रही हैं। इन शोध कार्यों के माध्यम से संस्कृत के विभिन्न पहलुओं को गहराई से समझने और नए संदर्भों में व्याख्या करने का प्रयास किया जा रहा है। इन प्रकाशनों ने संस्कृत के अध्ययन को व्यापक और सुलभ बनाया है।

**4. संस्कृत और प्रौद्योगिकी-**

आधुनिक प्रौद्योगिकी के साथ संस्कृत के अध्ययन में भी नयापन आया है। इंटरनेट, डिजिटल पुस्तकालय और ऑनलाइन पाठ्यक्रमों के माध्यम से संस्कृत के अध्ययन को वैश्विक स्तर पर पहुँचाया गया है। संस्कृत के ग्रंथों को डिजिटाइज कर विश्व के किसी भी कोने में अध्ययन के लिए उपलब्ध कराया जा रहा है। कई ऑनलाइन प्लेटफार्म और मोबाइल एप्लिकेशन भी संस्कृत सीखने और समझने के लिए विकसित किए गए हैं। इस प्रकार प्रौद्योगिकी ने संस्कृत भाषा और साहित्य के अध्ययन को अधिक सुलभ और व्यापक बना दिया है।

**5. संस्कृत सम्मेलन और कार्यशालाएँ-**

वैश्विक स्तर पर संस्कृत पर आयोजित होने वाले सम्मेलन और कार्यशालाएँ भी इस भाषा के अध्ययन को प्रोत्साहित कर रही हैं। विश्व संस्कृत सम्मेलन, भारतीय विद्या संस्थान द्वारा आयोजित संगोष्ठियाँ और अन्य अंतर्राष्ट्रीय कार्यक्रम संस्कृत भाषा, साहित्य और दर्शन के अध्ययन और अनुसंधान को बढ़ावा देने के लिए महत्वपूर्ण मंच प्रदान करते हैं। इन सम्मेलनों में विद्वान, शिक्षक और छात्र संस्कृत के विभिन्न विषयों पर अपने विचार और शोध प्रस्तुत करते हैं, जिससे ज्ञान का आदान-प्रदान होता है और नई सोच का विकास होता है।

**संस्कृत अध्ययन की चुनौतियाँ-**

संस्कृत जो कि भारतीय सभ्यता और संस्कृति की आधारशिला रही है, वैश्विक अध्ययन आज भी एक महत्वपूर्ण शैक्षिक और बौद्धिक गतिविधि है। संस्कृत के अध्ययन से न केवल भारतीय शास्त्रों और साहित्य की समझ विकसित होती है, बल्कि यह विश्वभर के विद्वानों और छात्रों के लिए एक बौद्धिक संपदा भी है। हालांकि संस्कृत के वैश्विक अध्ययन में अनेक चुनौतियाँ हैं, जो इसके प्रचार और विस्तार में बाधक बनती हैं। इसमें संस्कृत के वैश्विक अध्ययन की प्रमुख चुनौतियों निम्नलिखित है:

**1. भाषाई जटिलता और कठिनाई:**

संस्कृत एक अत्यंत संरचित और जटिल भाषा है। इसके व्याकरण, संधि, समास, और धातु रूपों की विस्तृत प्रणाली इसे समझने और सीखने में कठिन बनाती है। संस्कृत के शास्त्रीय ग्रंथों की भाषा प्राचीन और कठिन होती है, जिससे नए छात्रों के लिए इसे समझना एक बड़ी चुनौती बन जाती है। यह कठिनाई वैश्विक स्तर पर संस्कृत के अध्ययन को कम करती है, क्योंकि गैर-भारतीय छात्र और विद्वान इसके व्याकरण और संरचना को समझने में कठिनाई का अनुभव करते हैं।

**2. शिक्षकों और विशेषज्ञों की कमी:**

संस्कृत के अध्ययन और शिक्षण के लिए योग्य और प्रशिक्षित

शिक्षकों की कमी एक बड़ी चुनौती है। विशेष रूप से विदेशों में, संस्कृत के विशेषज्ञों और विद्वानों की उपलब्धता सीमित है। इससे संस्कृत शिक्षा की गुणवत्ता प्रभावित होती है और इसे वैश्विक स्तर पर विस्तार देने में कठिनाई होती है। इसके अतिरिक्त संस्कृत के शिक्षकों को आधुनिक शिक्षण विधियों और तकनीकी उपकरणों का उपयोग करने में भी पर्याप्त प्रशिक्षण नहीं मिल पाता है।

**3. संसाधनों और वित्तीय सहायता की कमी:**

संस्कृत के अध्ययन के लिए आवश्यक संसाधनों की कमी भी एक महत्वपूर्ण चुनौती है। विश्वभर में कई विश्वविद्यालय और संस्थान संस्कृत के अध्ययन के लिए पर्याप्त वित्तीय सहायता प्राप्त नहीं कर पाते, जिससे शोध और शिक्षण की गुणवत्ता प्रभावित होती है। इसके अलावा संस्कृत के शास्त्रीय ग्रंथों की उपलब्धता और उनकी प्रामाणिकता को सुनिश्चित करने के लिए पर्याप्त संसाधनों की कमी भी महसूस की जाती है।

**4. प्राचीन ग्रंथों की प्रामाणिकता और व्याख्या:**

संस्कृत के प्राचीन ग्रंथों की प्रामाणिकता और उनकी व्याख्या में समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। विभिन्न पाठ्य संप्रदायों और संपादकों द्वारा किए गए परिवर्तनों के कारण कई ग्रंथों में भिन्नताएँ पाई जाती हैं। यह स्थिति ग्रंथों के अध्ययन और शोध के दौरान चुनौतीपूर्ण हो जाती है, क्योंकि विद्वानों को विभिन्न संस्करणों के बीच अंतर का अध्ययन करना पड़ता है और सही पाठ की पहचान करनी पड़ती है। इसके अलावा संस्कृत के प्राचीन ग्रंथों के अनुवाद और उनकी व्याख्या में भी कठिनाइयाँ आती हैं, जिससे इनका सही अर्थ और संदर्भ समझने में समस्या हो सकती है।

**5. आधुनिक संदर्भ में प्रासंगिकता बनाए रखना:**

संस्कृत का अध्ययन अक्सर प्राचीन और शास्त्रीय ग्रंथों तक सीमित रह जाता है, जिससे आधुनिक संदर्भ में इसकी प्रासंगिकता बनाए रखने में चुनौती आती है। आज के युग में संस्कृत का अध्ययन न केवल

धार्मिक और सांस्कृतिक दृष्टिकोण से बल्कि वैज्ञानिक, दार्शनिक और साहित्यिक दृष्टिकोण से भी महत्वपूर्ण है। संस्कृत की इस व्यापकता को समझने और इसे आधुनिक विषयों के साथ जोड़ने में शिक्षकों और विद्वानों के लिए नई चुनौतियाँ उत्पन्न होती हैं।

**6. डिजिटल और तकनीकी संसाधनों की सीमितता:**

डिजिटल युग में संस्कृत अध्ययन के लिए कई संसाधन उपलब्ध हो रहे हैं, लेकिन उनकी गुणवत्ता और व्यापकता में सुधार की आवश्यकता है। संस्कृत के शास्त्रीय ग्रंथों की डिजिटल सामग्री और ऑनलाइन पाठ्यक्रमों की संख्या सीमित है, और जो सामग्री उपलब्ध है, उसमें भी गुणवत्तापूर्ण अनुवाद और व्याख्या की कमी हो सकती है। इसके अलावा, डिजिटल प्लेटफार्मों पर संस्कृत के लिए एकीकृत और प्रमाणिक सामग्री का अभाव भी एक बड़ी चुनौती है।

इन चुनौतियों का समाधान संस्कृत के वैश्विक अध्ययन को नई ऊँचाइयों तक ले जा सकता है और यह भाषा भविष्य में भी वैश्विक बौद्धिक और सांस्कृतिक संवाद का एक महत्वपूर्ण माध्यम बनी रह सकती है।

**निष्कर्ष-**

संस्कृत का वैश्विक प्रभाव और अध्ययन यह दर्शाते हैं कि यह भाषा केवल एक प्राचीन धरोहर नहीं है, बल्कि आज भी विश्वभर में सांस्कृतिक, शैक्षिक और बौद्धिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। धार्मिक और सांस्कृतिक परंपराओं के प्रसार से लेकर वैज्ञानिक और दार्शनिक चिंतन में योगदान तक संस्कृत ने अनेक क्षेत्रों में अपना अद्वितीय प्रभाव छोड़ा है।

संस्कृत का अध्ययन न केवल ऐतिहासिक और सांस्कृतिक धरोहर को संरक्षित करने का कार्य कर रहा है, बल्कि यह आज की पीढ़ी के लिए एक बौद्धिक और सांस्कृतिक संवाद का माध्यम भी बन रहा है। संस्कृत का यह वैश्विक प्रभाव और अध्ययन हमें यह समझने में मदद करता है कि

यह भाषा केवल अतीत का हिस्सा नहीं है, बल्कि यह भविष्य की ओर भी हमारे बौद्धिक और सांस्कृतिक यात्रा का एक महत्वपूर्ण अंग है।

इसमें सबसे पहले संस्कृत के धार्मिक और सांस्कृतिक प्रभाव पर चर्चा की गई है, जिसमें हिंदू धर्म, बौद्ध धर्म और जैन धर्म के प्रसार में संस्कृत के महत्व को दर्शाया गया है। इसके साथ ही संस्कृत साहित्य और शास्त्रीय ग्रंथों के यूरोप और एशिया के देशों में अध्ययन और शिक्षण पर भी प्रकाश डाला गया है। संस्कृत के वैज्ञानिक और दार्शनिक योगदान जैसे गणित, ज्योतिष और चिकित्सा में इसकी भूमिका का विश्लेषण किया गया है।

आधुनिक युग में संस्कृत के वैश्विक प्रभाव पर ध्यान केंद्रित करते हुए इस शोध में संस्कृत के अध्ययन के लिए स्थापित वैश्विक शिक्षा संस्थानों, शोध परियोजनाओं और प्रकाशनों की चर्चा की गई है। इसके अलावा प्रौद्योगिकी के विकास के साथ संस्कृत के अध्ययन में आई नई विधियों और डिजिटल माध्यमों के उपयोग पर भी विचार किया गया है।

अंत में यह शोध पत्र निष्कर्ष निकालता है कि संस्कृत न केवल एक प्राचीन धरोहर है, बल्कि आज भी यह भाषा वैश्विक स्तर पर सांस्कृतिक, शैक्षिक और बौद्धिक संवाद को समृद्ध कर रही है। संस्कृत का अध्ययन जिसे आधुनिक संदर्भों में नए दृष्टिकोणों के साथ अपनाया जा रहा है, भविष्य में भी वैश्विक ज्ञान और संस्कृति के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगा।

**संदर्भ ग्रंथ सूची:**


- ❖ मैक्स मूलर, 2003, सांस्कृतिक और धार्मिक परिप्रेक्ष्य में संस्कृत का अध्ययन, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस
- ❖ विलियम जोन्स, 1999, भारतीय साहित्य और संस्कृत भाषा का इतिहास, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस
- ❖ शंकर भट्ट, 2015, संस्कृत साहित्य का विश्वव्यापी प्रभाव,

मोतीलाल बनारसीदास प्रकाशन

- राघवेंद्र दास, 2012, वैदिक साहित्य और इसका वैश्विक प्रभाव, चोखंबा संस्कृत सीरीज ऑफिस
- विद्यानाथ मिश्र, 2008, संस्कृत और पश्चिमी दर्शन का तुलनात्मक अध्ययन, रश्मि प्रकाशन
- आर. के. शर्मा, 2017, संस्कृत और आधुनिक विज्ञान: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन, दिल्ली: सृजन पब्लिशर्स
- विश्व संस्कृत सम्मेलन, 2019, संस्कृत के वैश्विक अध्ययन पर लेख संग्रह, जयपुर: भारतीय विद्या संस्थान
- श्यामलाल गुप्ता, 2010, संस्कृत भाषा और तकनीकी युग में इसका विकास, वाराणसी: ज्ञान भारती प्रकाशन
- पी. वी. राजगोपाल, 2005, संस्कृत और डिजिटल मानविकी, नई दिल्ली: ओरिएंट ब्लैकस्वान
- सौरभ मिश्रा, 2021, संस्कृत का अंतर्राष्ट्रीय अध्ययन और शोध: चुनौतियाँ और संभावनाएँ, मुंबई: साहित्य अकादमी

# भारतीय भाषाओं पर संस्कृत का प्रभाव

नयना.बी.गार्गी
श्री गोविन्द गुरु युनिवर्सिटि,गोधरा, गुजरात
पीएच्.डी छात्रा

**प्रास्ताविक-**

भाषाओ का उदभव एवं विकास इतिहास का सबसे बडा एवं जटिल प्रश्न है। किसी भाषा का जो स्वरुप हमारे सामने है उसको बनने और विकसित होने मै जो परिस्थितिया विद्यमान रही है उनको जाने एवं समजे बिना हम किसी भी भाषा के मूल स्वरुप को ह्यदयंगम नही कर सकते है। उसके लिये हम वैदिक भाषा का विचार कर सकते है। भाषा वैज्ञानिको का मत है की द्रविद, आर्य, निषाद और किरात यहा भी मूल जातिया थी। किन्तु भारतीय जनजीवन का जिस रूप मै भावी विकास हुआ और जिसकी परम्परा अब तक पहुचती है उसका श्रेय एकमात्र आर्य जाति को ही है। इस राष्ट्र के विचारो, मान्यताओं के निर्माण मे आर्य जाति और भाषा का बहोत बडा योगदान रहा है। भारतीय साहित्य का प्रत्येक अध्येता जर्मन विद्वान् मेक्समुलर के संबन्ध मे प्रायः कुछ-न-कुछ अवश्य जानता है। 'भारत के हम क्या शिक्षा ले सकते है'। मैं एक स्थान पर उन्होने लिखा है कि 'यदि आदिम से हमारा अभिप्राय उन लोगो से है जो आर्य जाति से पहले हुए है और अपने अस्तित्व के साहित्यिक चिन्ह पीछे पृथ्वी पर रह गये है तो मै कहता हू की भाषा वैदिक भाषा है,आदिम है,भारतीय भाषाए आदि काल से उत्पन्न हुइ है।

वैश्विक परिपेक्ष्य मै भाषाओ का बडा योगदान कह सकते है। क्योकि भाषा से ही मूल देश की पहेचान होती है। भाषा के बारे मे संस्कृत मे इस प्रकार कहा है की 'जिस प्रकार रमणीयवसना प्रिया अपने आपको

प्रिय के साथ सोंप देती,उसी प्रकार वाणी ने अपना सारा कलेवर ऋषि के हाथ न्योछावर कर दिया। वैविध्य में संस्कृति में, समानता, व्यवहार आदि मे भाषा की आवश्यकता जरुरी है। इतना समझ लेना पर्याप्त नहीं है कि वह आदिम आर्य भाषा बहुत लम्बे समय के विचारों के विकास का परिणाम है। उसकी रचना उन भग्नाशो या भाषा-बोलियो के उन अपभ्रंश रूपों से की गयी है, जो भारत, ग्रीक, इटली और जर्मनी में इधर-उधर भिखरे हुए हैं। भारतीय संविधान में जो २२ भाषा अनुसूची मे समाविष्ट की गयी है उन्हे हमारे राष्ट्र की भाषा कह सकते है। ये संस्कृत भाषा तो हमारे जीवन की भाषा है। जन-जन की भाषा है। देवभाषा है। भाषा के साथ-साथ मानव के जीवन व्यवहार का भी निर्माण होता है। आर्यों की या वैदिक भाषा के इतिहास की आरम्भिक सामग्री यही है।

**संस्कृत भाषा का इतिहास-**

भाषा के अर्थ में संस्कृत का सर्वप्रथम उल्लेख रामायण में मिलता है। संस्कृत भाषा मात्र हिन्दू भारतीयों की भाषा नहीं है, अपितु, सकल भारतीयों की बौध्द, जैन, यवनानि भाषा सम्प्रदायों की चिंतन भाषा बन गइ है। संस्कृत का प्रसार केवल भारत में ही नहीं हुआ है। सिंहल, ब्रह्म, श्याम, मलय, काम्बोज आदि बृहतर भारत द्वीपपुञ्ज स्थित देशों में, तथा भारत के बाहर चीन, जापान, कोरिया, प्राच्य तुर्किस्तान प्रभृति देशों में भी भारतीय ज्ञान, विज्ञान, धर्म और संस्कृति के प्रसार को लेकर संस्कृत भाषा का विशिष्ट अवदान एतिहासिक काल से सुरक्षित है। प्राचीन और मध्ययुग की सारी शिक्षा-दीक्षा, सारा दर्शन-विज्ञान और सारी संस्कृति का माध्यम यही संस्कृत भाषा रही है। संस्कृत ने ही एक बृहद् संस्कृति का निर्माण किया और अपनी सार्वभौमिक महानताओं के कारण वह इंडोनेशिया, द्वीपमय भारत, मध्य एशिया, तिब्बत, चीन, कोरिया, जापान आदि सुदूर देशों में प्रतिष्ठित हुई।

इस भाषा की यही ऐतिहासिक विशेषता है। ऋग्वेद की वैदिक

'साधु भाषा' और ब्राह्मण ग्रन्थो की 'साहित्यिक भाषा' के पश्चात् भारतीय आर्य भाषा का तीसरा रूप 'साहित्यिक संस्कृत' के नाम से कहा गया। मूलतः वह उदीच्य बोलियों पर आधारित थी। किन्तु मध्य, पूर्व तथा दक्षिण भारत के सभी अंचलो पर उसका व्यापक प्रभाव रहा। इस प्रकार एक महान एवं समृद्ध् भाषा की स्थापना हुई। वही भाषा भविष्य मे सांस्कृतिक धाराओं एवं सभ्य विचारों के अनुशीलन की माध्यम बनी।

संस्कृत के दो रूप है। वैदिक तथा लौकिक पाणिनि ने इसके लौकिक रूप को 'भाषा' ही कहा है। वैदिक संस्कृत के साथ-साथ इसका सुगम और सामान्य जनों के द्वारा प्रायोगिक रूप भाषा भी प्रचलित था। रामायण मे हनुमान सीता को राम का संदेश देने से पहले विचार करते हैं कि मैं द्विजातियों के द्वारा बोली जाने वाली संस्कृत भाषा में सीता देवी को संदेश सुनाऊ या सामान्य जनों के द्वारा बोली जाने वाली संस्कृत में? यदि द्विजातियों के द्वारा बोली जाने वाली संस्कृत में इनसे बात करुङ्गा, तो कहीं ये मुझे छद्मवेषधारी रावण समाज का समझकर डर न जाएं, अतः में सामान्य जनों के द्वारा बोली जाने वाली भाषा में ही बातचीत करुङ्गा-

**यदि वाचं प्रदास्यामि द्विजातिरिव संस्कृताम्।**
**रावणं मन्यमाना मां सीता भीता भविष्यति॥**
**अहं ह्यतितनुश्चैव वानरश्च विशेषतः।**
**वाचं चोदाहरिष्यामि मानुषीमिह संस्कृताम्॥**

असुर, राक्षस, वानर आदि जनजतियों के लोग अपने देश की भाषा बोलते होंगे, पर आवश्यकता पडने पर वे भी संस्कृत भाषा में बात करते थे। रामायण इसका उल्लेख मिलता है कि- इल्वल नामक दैत्य ब्राह्मणों को धोखा देने के लिये संस्कृत मे बात करता है-

**धारयन् ब्राह्मणं रुपमिल्वलः संस्कृतं वदन्।**
**आमन्त्रयति विप्रान् स श्राद्धमुदिश्य निर्घृणः॥**

वैदिक काल से ही संस्कृत भाषा आसेतु हिमालय सारे देश में

एक संपर्क भाषा का कार्य निरंतर करती रही है। उसकी यह भूमिका आज भी न्यूनाधिक रूप मे जारी है। संस्कृत के साथ अनेक भाषाएं भी प्रचलित हैं। कभी किसी क्षेत्र मे संस्कृत के स्थान पर उस क्षेत्र की भाषा को अधिक महत्व देते हुए राजकार्य की भाषा भी बना दिया गया है- ऐसा होता रहा है। फ़िर भी संस्कृत का स्थान अग्रेसर रहा है।

**संस्कृत भाषा के संबन्ध विविध भाषाविदो के मत-**

प्राच्य विद्याविद् टेलर साहबने अपने एक सारगर्भित लेख मे कहा है कि'संस्कृत योरोपी की श्रेष्ठतम भाषाओं की बडी बहिन ही नहि,अपितु दादिमा है। राज्यो के परिवर्तन के समय के उथल-पुथल के बावजूद भी भारत मे एक संपन्न तथा विचित्र भाषा वह तब भी बनी रहि,यह एक चकित कर देने वाली खोज की बात है। वह भाषा उन बोलियो की जननि है,जिन्हे योरोप शौक से श्रेष्ठ भाषाओ की श्रेणी मे गिनता है। '

तीसरे भाषाविद् कर्जन साहब जेन्द,ग्रीक और लेटिन आदि प्राचीन तम भाषाओ को वैदिक आर्य भाषा से प्रसूत माना है। उनका कहना है 'मैं समर्थन करने का साहस करता हूं कि जेन्द, ग्रीक, लेटिन और गाथा आदि सब भाषाएं विभिन्न एतिहासिक युगो में संस्कृत से निकली है, जो आर्य जातियों या भारत के पुरातन हिन्दुओं की आदिम लिखित भाषा थी'।

भारतीय-इरानी आर्यों और दास, दस्यु, अनार्यों के संपर्क से आर्य भाषा मे कई परिवर्तन हुए। उसका विकसित रूप लगभग ऋग्वेद की भाषा जैसा था। आर्य भाषा से इरानी प्रभाव धीरे-धीरे दूर होते गये और वो विशुद्ध भारतीय आर्य बन चुके थें ये प्रभाव रहा है। इन्हीं भारतीय आर्यों ने हिन्दु जाति, हिन्दु धर्म और हिन्दु संस्कृति के साथ-साथ वैदिक संस्कृत, लौकिक संस्कृत एवं भारत की समग्र प्रादेशिक भाषाओं को जन्म दिया। अपभ्रंश के बाद आधुनिक भारतीय भाषाओं का युग आता है, जिसके निर्माण की सीमा भाषा वैज्ञानिकों के अनुसार १०००-१४०० ई. के बीच

है।

भारतीय भाषाओं में संस्कृत का स्थान विशिष्ट है। यही भाषा सभी भाषाओं की धात्री के रूप में पांच हजार वर्षों से अधिक काल तक संजीवनी है और भाषाओं का पोषण करती आई है। यह भाषा प्राचिनतमा होते हुए भी नित नवीना है। यही भारतीय साम्य विधायिनी भाषा है। सभी दूसरी भाषाएं क्षेत्रिय भाषाएं हैं, जिनका भाषा क्षेत्र एक विशिष्ट जनपद में ही सीमित है। किन्तु संस्कृत भाषा का भाषा क्षेत्र समग्र भारतवर्ष है। सभी भारतीय भाषाएं संस्कृत के संरक्षण में परिपुष्ट है। संस्कृत से संजीवनी शक्ति पाकर सभी भारतीय भाषाएं समुल्लित है, क्योंकि सभी संस्कृतमयी है। प्रायः सभी भारतीय भाषाओं में अस्सी प्रतिशत शब्द संस्कृत से गृहीत हैं।

विविध ऐतिहसिक परिस्थितियों के परिज्ञान को लेकर भारतीय धर्म, दर्शन, संस्कृति तथा लोकनीति की संवाहिका बनकर संस्कृत एक्य विधायिनी भाषा के रूप मे सुदूर अतीत काल से लेकर अद्यावधि भारतीय भाषाओं में अपना विशिष्ट स्थान रखती है। यही कारण है कि भारत के विभिन्न भाषा-भाषी सम्प्रदायों के बीच संस्कृत संपर्क भाषा बनी हुई है। भाषिक सर्वग्रहण शीलता के चलते संस्कृत ने अपने अखिल भारतीय स्वरुप की रक्षा की है।

**संस्कृत और वर्तमान विश्व-**

संस्कृत भाषा ही नहीं, यह एक विश्व भाषा भी है। प्राचीन काल से ही संस्कृत का प्रचार-प्रसार भारत के बाहर के अनेक देशों में होता आया है। यही नहीं, अनेक देशों में संस्कृत राजकार्य की भाषा रही, और राजाओं के द्वारा इस भाषा मे राज्यादेश और शिलालेख लिखवाये गये। विशेष रूप से जावा, सुमात्रा, बाली, कम्बोडिया, सियाम तथा ब्रह्मदेश में संस्कृत का व्यापक प्रचार-प्रसार ईसा की शताब्दियों में लगभग सहस्त्र वर्षों तक रहा। संस्कृत साहित्य का अनुशीलन और साहित्य रचना भी इन देशों

में हुई। संस्कृत साहित्य के अनुवाद तो विश्व की प्राचीन भाषाओं में पिछले दो हजार वर्षो में होते ही रहे हैं। पञ्चतंत्र का सीरियाई भाषा में पांचवी शताब्दी में अनुवाद हुआ। श्रीमद्भगवदगीता और उपनिषदों के भी अनुवाद विश्व की अनेक भाषाओं में अनूदित हुए। सत्रहवीं शताब्दी से आधुनिक विश्व ने संस्कृत से विशेष रूप से परिचित होने लगा। मुगल सम्राट शाहजहां के ज्येष्ठ पुत्र दाराशिकोह ने उपनिषद् और् श्रीमदभगवदगीता के फ़ारसी में अनुवाद करके विश्व में इन महान ग्रन्थों के प्रचार मे चिरस्मरणीय योगदान दिया।

इसमें विश्व का बौद्धिक् जगत् भारतीय चिंतन परम्परा से प्रेरित और प्रभावित हुए। दार्शनिक शोपनहॉवर, इमर्सन आदि ने उपनिषदों के दर्शन की अर्थवत्ता को पहचाना। धर्म प्रचार के लिये आने वाले ईसाई मिशनरियों ने संस्कृत भाषा और उसके साहित्य का अध्ययन किया। ब्रिटिश शासन ने संस्कृत के पंडितो का सहयोग धर्मशास्त्र के ग्रन्थों का अंग्रेजी अनुवाद करवाने तथा उनके आधार पर एक प्रामाणिक संहिता तैयार करवाने में किया। इस द्रष्टि से वोरन हास्तिङ्ग्स के प्रयास विशेष उल्लेखनीय है। १७८५ में उसने पण्डितो से धर्मशास्त्र का एक संकलन तैयार करवा कर उसका स्वयं अग्रेजी में अनुवाद किया। इसी वर्ष चार्ल्स विल्किंस का श्रीमद्भगवद्गीता का अनुवाद इंग्लैन्ड से छपा। योरोप भारतीय चिंतन से चमत्कृत हुआ। इसी तरह संस्कृत का इतिहास और प्रभुत्व बना रहा है। संस्कृत भाषा को विदेशी विद्वानों ने भी अपनाया उसके रहस्यमय ज्ञान को अपनाया उपनिषदों में भी इसक उल्लेख मिलता हैं कि ये विद्या जीवन मे शांति का प्रतीक है एसा विद्वानों ने इसी भाषा के ग्रन्थों का चिंतन करके कहा है।

**संस्कृत भाषा का विशेष प्रभाव-**

वेदांग साहित्य से लेकर उक्त सूत्र-ग्रन्थों की शैली का प्रभाव तत्कालीन समाज पर अत्यधिक रूप से लक्षित हुआ। पाणिनि के उस युग

में लौकिक संस्कृत के साथ-साथ प्राकृत बोलियों का भी तीव्र गतियों से निर्माण हो रहा था। फ़िर भी इतिहास के अध्ययन से हमें विदित होता है की पाणिनि का साहित्य संस्कृत भाषा के लिये स्वर्णयुग जैसा कह सकते हैं। संस्कृत की यह धारा देश के कोने-कोने मै, कोटि-कोटि जनमानस पर अविरत रूप से आगे बढ रही है। यही प्रमाण है कि इस भाषा का प्रभाव अन्य भाषाओं में कितना महत्वपूर्ण रहा है। विभिन्न प्रान्तों में लोकभाषाएं बोली जाती थी, पर विभिन्न प्रान्तों के लोग जब किसी एक स्थान पर मिलते थे, तो उनमे संवाद का माध्यम संस्कृत भाषा ही होती थी। शंकराचार्य केरल में उत्पन्न हुए, उन्होने सारे देश में संस्कृत के माध्यम से अपने संदेश का प्रसार किया था। तथा शास्त्रार्थों में संस्कृत भाषा के द्वारा ही दिग्विजय की पताका फ़हरायी। श्रीहर्ष ने अपने नैषधीयचरित में कहा है- दमयंती के स्वयंवर में विभिन्न प्रदेशों से आये हुए राजाओं ने सोचा कि यदि अपने-अपने प्रदेश की भाषा में बोलेंगे तो दूसरे लोग नहीं समझ पायेंगें, इसलिये वे आपस में संस्कृत भाषा में ही बात कर रहे थें, इस कारण राजाओं के बीच वेश बदलकर आ मिले देवगण पह्चाने ना जा सके-

**अन्योन्यभाषान बोधभितेः संस्कृत्रिमाभीर्व्यवहारवत्सु।**
**दिग्भ्यः समेतेषु नरेषु वाग्भिः सौवर्गवर्गो न जनैरचिह्नि॥**

संस्कृत भाषा के साहित्य की बात करते हैं तब प्रथम वेद की महिमा का वेद के ज्ञान के नये क्षितिज सामने आये ये आधुनिक विश्व में ज्ञान की धारा का प्रवाह इसी साहित्य मे प्राप्त होता है और ये संस्कृत भाषा में है। यूरोप के बुद्धिजीवी तथा भाषा वैज्ञानिक ग्रीक और लेटिन को सबसे प्राचीन भाषाएं मानते आ रहे थे। ऋग्वेद और वैदिक साहित्य का पता चलने पर उन्हे भी स्वीकार करना पडा कि संस्कृत भाषा ग्रीक और लेटिन भाषाओं से भी प्राचीन है। इसके साथ ही संस्कृत की एशिया और यूरोप की भाषाओं के संबंध पर अन्वेषण-कार्य आरम्भ हुआ, जिससे भारोपीय

भाषा परिवार की अवधारणा सामने आयी। विश्वशांति की भावना, चिंतन की परिपक्वता, चरित्र निर्माण की भावना, समाज को दिशा निर्देश करने और महान विचारो का समायोजन इसी भाषा के सहित्यो में मिलते है।

भारतीय साहित्य के परम अनुरागी जर्मन के वेदविद् विद्वान् मेक्समूलर अपनी पुस्तक 'भारत से हम क्या शिक्षा ले सकते हैं' में एक जगह कहा है कि 'सारे संसार में ज्ञानीयों और पण्डितों का देश भारत ही एकमात्र एसा है जहां की विपुल-ज्ञान संपदा हस्तलिखित पोथियों के रूप मे सुरक्षित है।' इसी तरह संस्कृत भाषा और ज्ञान का प्रभाव अन्य देश के विद्वान भी कहते है। संस्कृत भाषा का इतिहास और अन्य भाषाओं पर इसका प्रभाव कहते है तब ही इस भाषा को दादिमा का दर्जा मिलता है। भाषा विज्ञान की दृष्टि से यह पूर्णतया सिद्ध हो चुका है की समग्र अंचलो की भाषाओं तथा बोलियों को साहित्यिक रूप देने का कार्य संस्कृत ने ही किया है। इसी प्रकार अन्य भाषाओं के साथ संस्कृत भाषा का संबंध पूर्ण समय के लिये रहेगा। यही इस भाषा का प्रभाव रहा हैं वह बदला नहीं जा सकता है।

**संदर्भ-ग्रन्थ-सूची:**

१.संस्कृत वाड.मय का परिदर्शन आचार्य मुनीश्वर झा, अमर ग्रन्थ पब्लिकेशन नई दिल्ली, प्रथम संस्करण- २००४

२.संस्कृत और वैदिक संस्कृति, डॉ. शिवम चतुर्वेदी, कला प्रकाशन वाराणसी प्रथम संस्करण- २००३

३.वैदिक साहित्य और संस्कृति, वाचस्पति गैरोला, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान दिल्ली संस्करण- २०१६

४.संस्कृत साहित्य का अभिनव इतिहास, डॉ. राधावल्लभ, विश्व विद्यालय प्रकाशन वाराणसी- २००१

# भाषाविज्ञानदृष्ट्या व्याकरणे पदविज्ञानतत्त्वम्

रिम्पा सिंह
पीएचडी गवेषिका, संस्कृतविभागः, बाँकुडा-विश्वविद्यालयः,
पुरन्दपुरम्

'अपदं न प्रयुञ्जीत' इति भाष्यकारस्य निर्देशेनैव पदप्रयोजनीयता प्रकाशिता। लोकव्यवहारे भाषान्तर्गतात् वाक्यप्रयोगादेव शाब्दबोधो भवति। वाक्ये सति तन्मध्ये पदावस्थिति आवश्यिकीति। सर्वभाषासु दृष्टान्तमिदं परिलक्षितमस्ति। पक्षान्तरे व्याख्यायां दृष्टं पदमात्रेण कोऽपि अर्थबोधः न भवति, पदसंयोगेनैव वाक्यं तथा च वाक्यप्रयोगादेव शाब्दबोधः। यथा- राम इति पदस्य आकाङ्क्षाऽभावे अर्थबोधः न सम्भवति। एवञ्च र् आ म् अः इति वर्णविश्लेषणे अपि निरर्थकभावः। 'रामः गृहं गच्छति' इति प्रयोगादेवार्थबोधः सञ्जातः। स्पष्टीक्रियते महर्षिभर्तृहरिणा- पदे नास्ति वर्णानां सार्थकत्वं, तथैव वर्णेषु न विद्यन्ते अवयवाः, न च सम्भवति वाक्यात् पदानां कोऽपि भेदप्रकल्पः।(वा.प.१-७३) आह चैवं भाष्यकारोऽपि। तेषां मते कर्तृकर्मक्रियादिपदविभाजनं मनुष्यानां बोधनार्थं कृतमिति। विश्लेषणोऽयम् अपोद्धार इति भर्तृहरिणा परिभाषितम्। पाणिनिव्याकरणे पदत्वं प्रकृत्याश्रितम्, प्रकृत्याः द्विधा सुबन्तं तिङन्तं चेति प्रत्ययोगेन रूपं निष्पद्यते। प्रकृतिः प्रातिपदिकं वा+ सुप्प्रत्ययः=पदम्, यथा राम+ सु= रामः। धातुः+तिङ्प्रत्ययः= पदं क्रियापदं वेति। यथा क्रीड्+ति= क्रीडति। 'कृत्तद्धितसमासाश्च' इति सूत्रेणापि पाणिनिना प्रातिपदिकं तथा पदत्वं निर्दिष्टम्। पदविज्ञानतत्त्वे अर्थतत्त्वं सम्बन्धतत्त्वञ्चेति अपरिहार्यमिति। यथा- हिमालयात् गङ्गा प्रवहति, अत्र हिमालय, गङ्गा, प्र+वह् चेति अर्थतत्त्वानि तथा च ङसि, सु, लटि तिप्प्रत्ययश्चेति सम्बन्धतत्त्वानि। सम्बन्धतत्त्वद्वारा अर्थभेदः परिलक्ष्यते। प्रायः सर्वभाषाविश्लेषणेन सम्बन्धतत्त्वे प्रायः नव प्रकाराः परिलक्षिताः। ते सर्वे संस्कृते सन्ति एव।

आचार्येण सर्वपदेष्वेव सुप्प्रत्ययः निर्दिष्टः, परन्तु अव्ययशब्दात् परमागतस्य सुप्प्रत्ययस्य 'अव्ययादाप्सुपः' इति सूत्रेण लोपे सति अव्यये शून्यं सम्बन्धतत्त्वं विद्यते। यथा- च, इति, वा, सहसा, सम्यकादय, इतोऽपि बालिका, नद्यादयः। भाषाविज्ञाने तत्त्वमिदं उपयोगीति। यतो ह्यत्र शब्दः स्वस्य रूपे स्थित्वा सम्बन्धतत्त्वं प्रकटितम्। अंग्रेजीभाषायां Fish, Aircraft, Deer चेत्यत्र एकवचनबहुवचने समानरूपं विद्यते। अपरञ्च He goes, He plays चेत्यत्र es, s सम्बन्धतत्त्वमिति। नव प्रकाराः- (१) शून्यतत्त्वम्- मधु वारि शिक्षादयश्चेति, (२) स्वतन्त्रशब्दः- इति कृते अर्थादयश्चेति, (३) पदक्रमः- घनश्यामः-श्यामघनादयः, (४) द्विरुक्तिः- पठ्>पपाठ, लिख्>लिलेखादयः,(५) आगमः- त्रिधा वर्तन्ते, पूर्वसर्गः मध्यसर्ग अन्तसर्गश्चेति। यथाक्रमेण, जय>विजय, पठ्>पठति, नर>नराः, (६) आन्तरिकपरिवर्तनम्- वसुदेवः>वासुदेवः, (७) आदेशः- दृश्>पश्य, ब्रू>वच्, (८) ध्वनिवियोजनम्- गम्+तः>गतः, (९) स्वराघातः- इन्द्रशत्रुः। अस्मिन् गवेषणापत्रे पदविज्ञानतत्त्वालोचनाप्रसङ्गे पदप्रयोजनीयता उपस्थिता, तथा च भाषाविज्ञानदृष्ट्या संस्कृतव्याकरणे पदविज्ञानतत्त्वं प्राय उल्लिखितभाषापेक्षया कथं विशेष इति तत्त्वानुसन्धानमपि कृतम्।

**कूटशब्दाः**

व्याकरणम्, पदविज्ञानम्, सम्बन्धतत्त्वम् , अर्थतत्त्वम्, शून्यतत्त्वम्, आदेशादयः।

**भूमिका:**

भाषा हि भावाभिव्यक्तेः परमं साधनम्। भाषयैव मनुष्याः पशुतः भिद्यन्ते। भाषाविदां मते कैश्चिज्जनैः सम्भूय व्यवहारसौकर्यार्थं भाषा सञ्जाता। तेनेदं चिन्तनीयमस्ति यद्यदा भाषा नैवासीत्तदा मनुष्यानां भावावेगः कथं प्रकाशितः। केचिद् परे भाषा ईश्वरोत्पादिता इति अङ्गीकरोति। तथा सति भाषायाः विश्वजननीत्वं कथन्न भवति। यतो हि दृश्यते प्रतिसमुदाये भिन्ना भिन्ना च भाषा। केचन मन्यन्ते भाषा क्रमेण विकसिता। आदौ

मनुष्यः एकाकी स्थित्वा विचरन्नासीत्। प्राकृतिकाकस्मिकमैथुनधर्मेण तस्य संख्यां वर्धित्वा कालक्रमेण सामूहिकं जीवनमारब्धम्। तत्र परस्परं विचारविनिमयस्य भिन्नतातः प्राक् चेष्टादयः, ततश्च ध्वनिप्रयोगः, परश्च ध्वनिषु अर्थसमावेशः जातः। एवंरूपेण बहुविथे काले भाषास्वरुपमागतम्। भाषोत्पत्तिविषये भारतीयपरम्परा केषाञ्चित् विशिष्टविचाराणां रक्षणं करोति।

---

**'अनादिनिधना नित्या वागुत्सृष्टा स्वयम्भुवा।**
**आदौ वेदमयी दिव्या यतः सर्वाः प्रवृत्तयः।।'[1] इति**

भारतीयवैदिकमुनीनामारभ्य दयानन्दसरस्वतीपर्यन्तं सर्वेषामाचार्याणां मते परमेश्वरः ऋषिभ्यो आदौ वेदरूपं ज्ञानं प्रददाति। तेन वेदाः नित्या अपौरुषेयाः च सन्ति। तस्मात् वैदिकज्ञानादेव लौकिकी भाषा प्रचलिता। यतो हि- य एव लौकिकास्त एव वैदिकास्त एव च तेषामर्थाः इति शबरस्वामी 'प्रयोगचोदनाभावादर्थैकत्वमविभागात्' इति जैमिनिसूत्रीव्याख्यायां लिखितम्।[2] व्याकरणशास्त्रस्य प्रमाणभूताचार्येण पतञ्जलिना व्याकरणाध्ययनप्रयोजनानि वर्णयता 'चत्वारि श्रृङ्गाः, चत्वारि वाक्, उत त्वः, सक्तुमिव, सुदेवोऽसि' इत्येतानि पञ्चकानि उल्लिखितानि। व्याकरणप्रवर्तनक्रमं निर्दिशन् ऋक्तन्त्रकारः दर्शयति- 'ब्रह्मा बृहस्पतये प्रोवाच, बृहस्पतिरिन्द्राय, इन्द्रो भरद्वाजाय, भरद्वाज ऋषिभ्य, ऋषियो ब्राह्मणेभ्यः।'[3]

भाषायाः विज्ञानामिति भाषाविज्ञानम्। विशिष्टं ज्ञानमिति विज्ञानम्। भाषाविज्ञाने भाषायाः सार्विकविवेचनात्मकमध्ययनं प्रस्तुतम्। भाषाशब्दद्वारा चत्वारः मूलघटकाः बोधिताः- (१)ध्वनिः, (२) पदम् शब्दः वा, (३) वाक्यम् (४) अर्थश्चेति। एषु सर्वादौ ध्वनिः संघटिता, ध्वनीः

---

[1] वेदान्ते शाङ्करभाष्ये उद्धृतम्

[2] मीमांसा १.३.३०

[3] ऋक्तन्त्र १.४२

समेत्य पदं सञ्जातम्। इदं पदविज्ञानं Morphology इति नाम्ना विदितम्। अत्र पदं कथं संघटितम्? पदेषु के अवयवाः? लिङ्गविभक्तिवचनादयः तत्त्वानि कानि इति विषये विवेचना कृता।

**मूलविषयः**

पदसंयोजनेनैव निर्मितं वाक्यम्, तथा च वाक्यप्रयोगादेव शाब्दबोधो भवति। ननु पदस्य का प्रयोजनीयता? यतो हि 'अपदं न प्रयुञ्जीत' इति भाष्यनिर्देशेन पदप्रयोजनीयता प्रकटिता। यथा- राम लक्षण चेति पदद्वयस्य आकाङ्क्षाऽभावे अर्थबोधः न सम्भवति। एवञ्च र् आ म् अ इति तथा ल् अ क् ष् अ ण् अ इति वर्णविश्लेषणे अपि निरर्थकभावः। 'रामः गृहं गच्छति' 'लक्षणः विद्यालयात् आगच्छति' चेति प्रयोगादेवार्थबोधः सञ्जातः। स्पष्टीक्रियते महर्षिभर्तृहरिणा, भाष्यवचनमपि तथैव प्रदर्शितम्- 'आह चैवं भाष्यकारोऽपि। तस्मान्मन्यामहे पदान्यसत्यानि एकमभिन्न-स्वभावकं वाक्यम्। तदबुधबोधनाय पदविभागः कल्पित इति।'[1] मनुष्यानां बोधनार्थं कर्तृकर्मक्रियादिपदविभाजनं कृतमिति। विश्लेषणोऽयम् अपोद्धार इति भर्तृहरिणा परिभाषितम्।[2] संस्कृतव्याकरणे पदं शब्दतः भिद्यते। शब्दः नाम मूलप्रकृतिः प्रातिपदिकं वा। पाणिनिव्याकरणे पदत्वं प्रकृत्याश्रितम्, प्रकृत्याः सुबन्तं तिङन्तं चेति द्विधा प्रत्ययययोगेन रूपं निष्पद्यते। प्रकृतिः प्रातिपदिकं वा+ सुप्प्रत्ययः=पदम्, यथा राम+ सु= रामः। धातुः+तिङ्प्रत्ययः= पदं क्रियापदं वेति। यथा क्रीड्+ति= क्रीडति। 'कृत्तद्धितसमासाश्च' इति सूत्रेणापि पाणिनिना प्रातिपदिकं तथा पदत्वं निर्दिष्टम्। धातुः+कृत्प्रत्ययः+ सुप्प्रत्ययः = कृदन्तशब्दः। यथा- कृ+तव्य+सु= कर्तव्यः। धातुः+तद्धितप्रत्ययः= तद्धितशब्दः। यथा- दशरथ+इ= दाशरथि। समस्तपदम्+ सुप्प्रत्ययः= समासशब्दः। यथा-

---

[1] पुण्यराजटीकायाम्-२-५७

[2] यथा पदे विभज्यन्ते प्रकृति-प्रत्ययादयः।
अपोद्धारस्तथा वाक्ये पदानामुपवर्ण्यते।।- वा.प. २.१०

राजपुरुष+सु= राजपुरुषः। पदविज्ञानतत्त्वे अर्थतत्त्वं सम्बन्धतत्त्वञ्चेति अपरिहार्यमिति। बालकः पठति, बालक अपठत्, बालकः पठिष्यति, अत्र 'बालकः पठ्' चेति अर्थतत्त्वं तिष्ठति। लट्-लङ्-लृट् चेति सम्बन्धतत्त्वेन अर्थभेदः दृष्टः। प्रायः सर्वभाषाविश्लेषणेन सम्बन्धतत्त्वे नवधा प्रकाराः दृश्यन्ते। ते सर्वे संस्कृते सन्ति एव। (१) शून्यतत्त्वम् (२) स्वतन्त्रशब्दः (३) पदक्रमः (४) द्विरुक्तिः (५) आगमः (६) आन्तरिकपरिवर्तनम् (७) आदेशः (८) ध्वनिवियोजनम् (९) स्वराघातः चेति।

**(१) शून्यतत्त्वम्**

आचार्येण सर्वपदेष्वेव सुप्प्रत्ययः निर्दिष्टः, परन्तु अव्ययशब्दात् परमागतस्य सुप्प्रत्ययस्य 'अव्ययादाप्सुपः' इति सूत्रेण लोपे सति अव्यये शून्यं सम्बन्धतत्त्वं विद्यते। यथा- च, इति, वा, सहसा, सम्यकादय, इतोऽपि बालिका, नद्यादिष्वित्यत्र सुप्प्रत्ययलोपे शून्यं सम्बन्धतत्त्वं दृश्यते। भाषाविज्ञाने तत्त्वमिदं उपयोगीति। यतो ह्यत्र शब्दः स्वस्य रूपे स्थित्वा सम्बन्धतत्त्वं प्रकटितम्। अंग्रेजीभाषायां Fish, Aircraft, Deer चेत्यत्र एकवचनबहुवचने समानरूपं विद्यते। I go, We go, You go चेत्यत्र 'go' इति क्रियया सह सम्बन्धतत्त्वाभावे इदं शून्यतत्त्वम्। अपरञ्च He goes, He plays चेत्यत्र es, s सम्बन्धतत्त्वमिति। फ्रेंच-भाषायां Pierre Frappe Paul (Pierre beats Paul), इत्यत्र Frappe इत्यस्य मूलरूपत्वात् शून्यतत्त्वम्।

**(२) स्वतन्त्रशब्दः**

विश्वे बहुभाषासु स्वतन्त्रशब्दाः सम्बन्धतत्त्वस्य प्रकाशकाः। संस्कृते इति, च, वा, कृते चादयः। पठनस्य कृते पठनार्थमित्यत्र 'कृते' इति उद्देश्यं बोधयति। हिन्दीभाषायां ने, को, से, का, पर चेत्यादयः। यथा- राम ने कहा। अंग्रेजीभाषायां To, From, In, On चेत्यादयः। यथा- I go to school. जर्मानभाषायां zu (अम्), Mit (ङसि)। लैटिन-ग्रीक-आरबी-भाषायामपि एतादृशं दृष्टम्।

**(३) पदक्रमः**

व्याकरणे पदक्रमेणापि सम्बन्धतत्त्वं परिलक्ष्यते। प्रायः सर्वभाषासु पदक्रमः निर्धारितः। संस्कृते तथा हिन्दीभाषायां पदक्रमः- कर्ता कर्म क्रिया चेति। अंग्रेजीचीनीभाषायां तु कर्ता क्रिया कर्म चेति। यथा-

| | | |
|---|---|---|
| १.संस्कृतभाषायाम् | नरः सिंह इव | सिंहः नर इव |
| २.हिन्दीभाषायाम् | विद्यालय स्थापित हुआ है | मैं विद्यालय जा रहा हूँ |
| ३.अंग्रेजीभाषायाम् | Ram said to Sita | Sita said to Ram |
| ४.चीनीभाषायाम् | वो त नि (वो-मैं, त-मारता हूँ, नि-तुमको) | नि त वो (तु मुझे मारता है) |

संस्कृतभाषायां स्थानपरिवर्तने उपमानोपमेययोः भेदः दृष्टः। हिन्दीभाषायाम् आदौ वाक्ये विद्यालयः भवति कर्ता, अपरस्मिन् च वाक्ये स कर्म भवति। अंग्रेजीभाषायां सम्पूर्णार्थः परिवर्तते। चीनीभाषायामपि तथैव स्यात्। संस्कृते तथा हिन्दीभाषायां समासयुक्तपदेषु शब्दानां स्थानं सम्बन्धतत्त्वं प्रकाशते। तत्र स्थानभेदे अर्थभेदोऽपि दृष्टः। यथा- राजगृहम् (राज्ञः गृहम्), गृहराजः (गृहस्य राजा) इति।

**(४) द्विरुक्तिः**

कासु भाषासु सम्पूर्णतया शब्दस्य अथवा शब्दस्य अङ्गस्य द्विरुक्तिद्वारा सम्बन्धतत्त्वं परिलक्ष्यते। संस्कृते धातुषु आदेः द्विरुक्ति अभ्यास इत्युच्यते। अत्र लिट् लकारे द्विरुक्तिः मुख्यतया दृश्यते। यथा- पठ्(पढ़ना)>पपाठ(पढ़ा), दृश्>ददर्श(देखना)। सन् यङ् च प्रत्ययेऽपि द्वित्वं दृष्टम्- पठ्>पिपठिषति(पढ़ना चाहता है), भू>बोभूयते(बार-बार होता है)। द्विरुक्त्यां सति अर्थः परिवर्तते।

**(५) आगमः**

शब्देषु धातुषु च पूर्वे मध्ये अन्ते च सम्बन्धतत्त्वं युज्यते, ते आगमा

उच्यन्ते। आगमाः त्रिधा वर्तन्ते- पूर्वसर्गः मध्यसर्ग अन्तसर्गश्चेति। अंग्रेजीभाषायां एतत् Affix इति उच्यते। पूर्वसर्गस्योदाहरणमुपसर्गाः। उपसर्गेण धात्वर्थो बलपूर्वकेण भिन्नार्थे पूरितः। यथा- प्रहारः विहारः संहारः परिहारः चेत्यादयः। अंग्रेजीभाषायां Re, Per, Un, Ex, De चेत्यादयः Prefix इति। यथा- Receive, Export चेति। मध्यसर्गः विकरणं वा- भू इति धातौ आगताः शप्, श्यन्, अयादिः। यथा- पठ्>पठति, युध्>युध्यते। कर्मवाच्ये तथा भाववाच्ये यक्प्रत्ययः- गम्>गम्यते, सेव्>सेव्यते। प्रेरणार्थके णिच्प्रत्यये यथा- पठ्> पाठयति। धातोः मध्येऽपि युज्यते- भुज्>भुङ्क्ते। हिन्दीभाषायां करना>करवाना, लिखना>लिखवाना इत्येवं प्रेरणार्थकशब्दे मध्यसर्गः दृश्यते। अन्तसर्गे सुप्तिङादयः प्रत्ययाः, यथा- राम>रामः, रामौ, रामाः तथा च भू>भवति, भवतः भवन्ति। कृत्तद्धितस्त्रीप्रत्ययादिष्वपि अन्तसर्गःदृश्यते- पठ्> पठितव्यः, भूत>भौतिकः, इन्द्र>इन्द्राणी। अंग्रेजीभाषायां बहुवचनसूचकं S भूतकालसूचकं Es निरन्तरताद्योतकं Ing चेति अन्तसर्गाः। Boy>Boys, Change>Changed, Go>Going. हिन्दीभाषायां कारकचचिह्नानि ने, को, पर आदयः, तथा च कालबोधकचिह्नानि ता, गा, आ आदयः। यथा- राम>राम से, राम ने। उ है, पढ़ेगा आदयः।

**(६) आन्तरिकपरिवर्तनम्**

शब्दधातूनामाभ्यन्तरीणपरिवर्तने सति अर्थान्तरः दृश्यते। एते त्रिधा वर्तन्ते- स्वरपरिवर्तनम्, व्यञ्जनपरिवर्तनम्, स्वर- व्यञ्जनपरिवर्तनञ्चेति। संस्कृते स्वरपरिवर्तने पुत्रादि अर्थः भवति। यथा- दशरथ>दाशरथि, वसुदेव>वासुदेव इति। हिन्दीभाषायां भूतकाल-प्रेरणादय अर्थाः भवन्ति। उठ्>उठा, पढ़ना>पढ़ाना। अंग्रेजीभाषायां Sing>Sang, Come>Came एवंरूपेण बहुवचनं भवति। व्यञ्जनपरिवर्तने अर्थभेदः, यथा- भोज्य(भक्ष्य)>भोग्य(उपभोगयोग्य)। अंग्रेजीभाषायां Send(प्रेषयतु)>Sent(प्रेषितम्)। स्वर- व्यञ्जनपरिवर्तनेऽपि अर्थभेदः,

यथा- पच्(पचति)>अपाक्षीत्(लुङ्)-अपक्त(आत्मनेपदम्)।

**(७) आदेशः**

मूलशब्दस्थाने भिन्नशब्दस्य प्रयोग आदेशः। यथा- दृश्> पश्य-पश्यति, अस्>भू-भवति। भाषाविज्ञानदृष्ट्यां न च सम्भवति सम्पूर्णतया धातुपरिवर्तनम्। आंशिकरूपेण ध्वनिपरिवर्तनं च सम्भवति। अतः भाषाविदां मते दृश्> पश्य, अस्>भू, ब्रू> वच् आदयः धातवः प्राचीनकाले प्रचलिता आसन्। कालक्रमेण लडादौ धातौ पश्य एवावशिष्यते, अन्यत्र दृशिति। तथैव अस् लिडादौ अवलुप्यते , अन्यत्र भू तिष्ठति। हिन्दीभाषायां जा>गया, धातुद्वये संस्कृते 'या' धातोः 'जा' अभवत्, तथा च गम्+क्त>गतः अर्थात् 'गया' अभवत्। अंग्रेजीभाषायामपि Go>Went(गया) इत्यत्र Wen+t इत्येवं रूपेण वेन् धातोः भूतकालिकं 't' भवतीत्यस्ति भाषाशास्त्रीमतम्। तथैव Be इत्यस्मात् Is, are, am, was, were चेत्येतानि रूपाणि आदेशाः भवन्ति। एते अपि प्राचीनरूपाणामवशेषाः।

**(८) ध्वनिवियोजनं न्यूनत्वं वा**

अत्र कांश्चन ध्वनीन् निर्गम्य व्यवहृतः भवति। यथा- गम्+क्त>गतः, कुरु+मः> कुर्मः। फ्रेंचभाषायामित्यस्य बहुदृष्टान्तं प्राप्तम्। पुंलिङ्गे शब्दः मूलरूपे तिष्ठति तथा च अन्तिमस्य हलः लोपो भवति। स्त्रीलिङ्गे अन्तिमे 'E' युज्यते। पुंलिङ्गे शब्दन्यूनता दृश्यते।

| पुंलिङ्गम् | उच्चारणम् | स्त्रीलिङ्गम् | उच्चारणम् | अर्थः |
|---|---|---|---|---|
| Gentil | जाँति | Gentille | जाँतिय | सज्जन |
| Bon | बों | Bonne | बोंन | अच्छा |
| Long | लों | Longe | लोंग | लम्बा |
| Petit | पति | Petit | पतित | छोटा |

**(९) स्वराघातः लयः च**

स्वराघातः लयश्च सम्बन्धतत्त्वं प्रकाशेते। अनेन अर्थभेदः दृश्यते। यथा- 'इन्द्रशत्रु' इति। अन्तिमः ध्वनिः 'त्रु' इत्यत्र उदात्ते सति अर्थः भवति- इन्द्रस्य शत्रुः(वृत्रः), आदि वर्णः 'इ' इत्यत्र उदात्ते सति अर्थः – इन्द्र भवति शत्रुः यस्य (नाशकः)। अत 'इन्द्रशत्रुर्वर्धस्व' इत्यत्र तत्पुरुषे भवति वृत्रस्य विजयार्थं प्रार्थयते। बहुव्रीहिसमासे च इन्द्र भवति वृत्रस्य नाशकः। तद्धितप्रत्ययेऽपि स्वरभेदः दृश्यते।। यथा- ऋषि>आषेय, पुरुष>पुरुषता। हिन्दीभाषायां उठा>उठाऔ। अंग्रेजीभाषायां बलाघातः भेदको भवति। एकैव शब्दः संज्ञार्थे तथा क्रियार्थे व्यवह्रियते। संज्ञायां प्रथमस्वरे बलाघातः, क्रियायां अन्तिमे च भवति। यथा- Im'port(संज्ञा)>Import'(क्रिया), Con'tact(संज्ञा)> Contact'(क्रिया)।

हिन्दीभाषायां सम्बन्धतत्त्वस्य नवप्रकारेषु आन्तरिकपरिवर्तनं विहाय सर्वं प्राप्यते। संस्कृते अर्थतत्त्ववेन सह सम्बन्धतत्त्वस्य संयोगः पूर्णापूर्णरूपेण च दृश्यते। पूर्णसंयोगे अर्थतत्त्वात् सम्बन्धतत्त्वं न पृथक् भवति। यथा- भूत> भौतिक, नारी> नार्यः। अपूर्णे च पद+त्वम्> पदत्वम्, बुद्धि+मान्> बुद्धिमान्।

**निष्कर्षः**

व्याकरणशास्त्रस्य अपरं नाम पदशास्त्रमिति। इदमेवाधारीकृत्य सर्वशास्त्रं व्यवह्रियते। पदज्ञानं विना शब्दः सम्यक् न ज्ञायते। यजुर्वेदे- 'अर्थः पदम्, अर्थात् ज्ञायते अर्थो येनेति, व्युत्पत्त्या धञ् प्रत्यये संज्ञापूर्वकत्वादत्र वृद्ध्यभावे पदशब्दस्य सिद्धिर्भवति।' अस्यैव अष्टमाध्याये पदलक्षणम्- 'अक्षरसमुदायः पदम् अक्षरं वा'[1] इति। रामः कृष्णादय अक्षरसमुदयाः, तथा च अ, इ, उ वर्णा अपि स्वतन्त्ररूपेण वाचकाः भवन्ति। यथा अकार वासुदेवस्य, ईकारः लक्ष्म्याः तथा उकारः नीलकण्ठस्य वाचकाः। पुराणे अस्य लक्षणम्-

---

[1] शुक्लयजुर्वेदः ८.४१-४२

**'वर्णैर्वर्णसमूहं हि पदमाहुर्विपश्चितः।**
**वर्णास्तु भुवनैर्व्याप्तास्तेषां तेषूपलम्भनात्।'**[1]

विश्वनाथाचार्यस्य मते- 'वर्णाः पदं प्रयोगार्हानन्वितैकार्थबोधकाः'[2] इति। पाणिनिव्याकरणे 'सुप्तिङन्तं पदम्' इति पदलक्षणम्। सुप्-प्रत्ययाः – 'स्वौजसमौट्छष्टाभ्याम्भिस्ङेभ्याम्भ्यस्ङसिभ्याम्भ्यस्ङसोसाङ्योस्सुप्' इति सूत्रे पाठिताः एकविंशतिः प्रत्ययाः सुप्-प्रत्ययाः नाम्ना ज्ञायन्ते । एते सर्वे प्रत्ययाः प्रातिपदिकेभ्यः विधीयन्ते। तिङ्-प्रत्ययाः- 'तिप्तस्झिसिप्थस्थमिब्वस्मस् तातांझथासाथांध्वमिङ्वहिमहिङ्' इति सूत्रे पाठिताः अष्टादश प्रत्ययाः तिङ्प्रत्ययाः नाम्ना ज्ञायन्ते। एते धातुभ्यः विधीयन्ते। वस्तुतः पदसार्थकत्वं सर्वत्र स्वीकृतम्। पदविभागविषये यास्काचार्येणोक्तम्- 'चत्वारि पदजातानि नामाख्याते चोपसर्गनिपातश्च। भावप्रधानमाख्यातम्। सत्त्वप्रधानानि नामानि।'[3] इत्यत्र 'नामाख्याते' इति पदं यास्काचार्येण एकत्र समस्तपदेनोल्लिखितं तथा च उपसर्गः निपातश्चेति पदद्वयं निरपेक्षतया निगदितमिति। अनेन स्पष्टीभवति पदविभागे नामाख्यातं मुख्यमिति। प्रातिशाख्यादिग्रन्थे मूलत एते चत्वारः विभागाः मन्यन्ते। परन्तु व्याकरणशास्त्राचार्येण पाणिनिना सुबन्तम्(नाम) तथा तिङन्तम्(आख्यातम्) चेति पदद्वयमिति निर्दिष्टम्। आचार्येण भर्तृहरिणा वाक्यपदीये उक्तम्- 'चतुष्ट्वं नास्तीति वार्ताक्षौदुम्बरायणौ'।[4] वार्ताक्षः तथा औदुम्बरायणः चेति प्राचीनाचार्यमते नामाख्यातमेव पदम्, उपसर्गनिपातश्चेति केवलमर्थद्योतकमिति। व्याकरणेऽपि एवं मन्यते। पाणिनिव्याकरणे अस्य अव्ययसंज्ञा विधीयते। उपसर्गनिपातयोः पार्थक्यं केवलं निपातानां च, वा, इवादीनां प्रयोगः स्वतन्त्रतया भवति। पाणिनिना उपसर्गनिपातश्च सुबन्तं

---

[1] श्रीशिवमहापुराणे वायवीयसंहितायां वागर्थकतत्त्ववर्णनम्- १,२९।१३-१४

[2] साहित्यदर्पणः २.१६

[3] निरूक्तम्, अध्यायः १.१

[4] वाक्यपदीयम् २.३४७

मन्यते। तस्मात् 'अव्ययादाप्सुपः' इति सूत्रेण सुप् लुप्यते। प्राचीनमतानामोल्लेखरताचार्येण भर्तृहरिणा उक्तं प्राचीनकाले चत्वारि पञ्च वा पदानि स्वीकृतानि, तत्र कर्मप्रवचनीयरूपेण पञ्चतमं पदं स्वीकृतमासीत्।[1] एते कर्मबोधकाः कर्मप्रवचनीयाः कालक्रमेण उपसर्गरूपेण अवशिष्यते। भाषाशास्त्रदृष्ट्यां पाणिनेः पदविभाजनं सर्वश्रेष्ठमिति। यतो हि संज्ञा तथा क्रिया द्वयमेव मुख्यं भवति। व्यवहारिकसुविधार्थे उपसर्गनिपातश्चेति पृथक् भिद्यते। हिन्दीभाषायाम् अष्ट प्रकाराः पदविभागाः दृश्यन्ते। संज्ञा-सर्वनाम-विशेषण-क्रिया-क्रियाविशेषण-सम्बन्धसूचक-समुच्चयबोधक-विस्मयादिबोधकाः। वस्तुत एते विभागत्रये अन्तर्हितुं शक्यते। नाम- संज्ञासर्वनामविशेषणानि। पाणिनिमते एते सुबन्ताः। आख्यातं तिङन्तं वा- क्रियाशब्दः। अव्ययम्- क्रियाविशेषण-सम्बन्धसूचक-समुच्चयबोधक-विस्मयादिबोधकाः। अंग्रेजीभाषायां पदविभागः लैटिनभाषातः संगृहीतः। United Nations Organization इत्यानुसारेण विश्वस्य ९७ प्रतिशतं भाषाः प्रत्यक्षपरोक्षरूपेण संस्कृतेन सह युक्ता। संस्कृतवर्णेषु माहेश्वरसूत्रेषु एकः तार्किकन्यायः वर्तते, यत् अन्यभाषासु नास्ति। यथा- अंग्रेजीभाषायां वर्णमालायां A इति वर्णतः Z वर्णपर्यन्तं वर्णेषु कथं A इत्यस्मात् वर्णात् परं B इत्येवमस्त्यत्यस्य कोऽपि नियमो नास्ति। परन्तु संस्कृते 'अइउण्' इत्यस्मात् परं 'ऋऌक्' इति सूत्रं तथा च परं 'एओङ्' इत्यादीनां सूत्राणं स्थितिः पाणिनिना वैज्ञानिकदृष्ट्या स्थापिता। यतो हि आदिषु सूत्रचतुष्टयेषु अच् वर्णाः निगदिताः। 'ञमङणनम्' इति सूत्रे अनुनासिकवर्णाः सन्ति। एवं रूपेण सर्वत्र नियम अस्ति। मनुष्येण उच्चारितध्वनिद्वारा महर्षिणा अत्र वर्णाः सञ्जाताः। वर्तमाने विश्वस्य प्रायः सप्तदशाधिकदेशेषु विश्वविद्यालयेषु संस्कृतं पाठयति। इयं भाषा उच्चारणे जिह्वा सम्पूर्णतया व्यवह्रियते, तेन रक्तसञ्चालनं सम्यक्

---

[1] द्विधा कैश्चित् पदं भिन्नं चतुर्धा पञ्चधाऽपि वा।
अपोद्धृत्यैव वाक्येभ्यः प्रकृति-प्रत्ययादिवत्।। वाक्य. ३.१

भवति। सङ्गणके व्यवहृता Algorithms विधिः संस्कृतभाषायामेव जाता। The Times Of India इति पत्रिकायां प्रकाशितम्- 'Such algorithm procedures are commonly found in the earlier Sanskrit texts, covering not only the basic 8 mathematical operations like subtraction, and multiplication, operations, said Chandragupta Warnekar. Many standard Sanskrit algorithms and riders are directly used throughout software developments on digital computers.'[1] अत्र संस्कृतभाषायाः

**परिशीलितग्रन्थसूची:**

१. द्विवेदी, कपिलदेवः, २०१६। भाषाविज्ञान एवं भाषाशास्त्र, वाराणसी : विश्वविद्यालयप्रकाशन।

२. शर्मा, शिवप्रसादः, २००८, वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी (बालमनोरमातत्त्वबोधिनीविभूषिता)। वाराणसी :

---

1 http://timesofindia.indiatimes.com/articleshow/99004444.cms?utm_source=contentofinterest&utm_medium=text&utm_campaign=cppst विशिष्टता वर्णिता। न केवलं वाक्यरूपभाषायाम् अपि तु पदेऽपि इयं विशिष्टता प्रकाशते। यथा- ॐ इति पदम्। पदमात्रेणैव ब्रह्माण्डार्थः प्रकाशते। पदेऽस्मिन् मात्रात्रयमस्ति। अ, उ, म् चेति। एते यथाक्रमेण सत्त्वरजोतमगुणस्य प्रकाशकाः। भाषायामस्यां विशिष्टता अस्ति यत् सर्वाधिकशब्दा अत्रास्ति। परन्तु अन्यभाषापेक्षा अत्र स्वल्पशब्दसंयोजनेन वाक्यं पूर्यते। संस्कृतमिति पदप्रधानभाषा। पदपरिवर्तने सति अर्थपरिवर्तनं न सम्भवति। यथा- 'बालकः विद्यालयं गच्छति' इति वाक्यस्य 'विद्यालयं गच्छति बालकः', 'गच्छति बालकः विद्यालयम्' इत्येवं पदपरिवर्तनेऽपि अर्थबोधे कोऽपि बाधा नास्ति एव। परन्तु अंग्रेजीभाषायां Ram said to Sita इत्यत्र Sita said to Ram इत्येवं पदपरिवर्तने सम्पूर्णार्थः परिवर्तते। संस्कृतस्य एतादृशं माहात्म्यमाधारीकृत्य इयं भाषा 'वैज्ञानिकभाषा' इति रूपेण समादृता।

चौखाम्बाविद्याभवन।

३. मिश्रः, रमाशङ्करः, २०१७, अष्टाध्यायीसूत्रपाठः, दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास।

४. शर्मा, गिरिधरः, २०१९ वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी (बालमनोरमा-तत्त्वबोधिनीसहिता), दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास।

५. मिश्रः, वेदप्रकाशः, कुमारः, कुन्दनः, २०२१, वाक्यपदीयम्, बिहार : स्वारस्वतम् पब्लिकेशन।

६. भट्टाचार्य्यः, विष्णुपदः, २००७, वाक्यपदीयम् ब्रह्मकाण्डम्(प्रथमःद्वितीयः खण्डश्च), कोलकाता : पश्चिमवङ्ग राज्य पुस्तक पर्षत्।

७. शर्मा, शिवदत्तः, २०१४, व्याकरणमहाभाष्यम् (षष्ठखण्डसमन्वितम्) दिल्ली : चौखाम्बा संस्कृत प्रकाशन।

८. बत्रा, नरेशः, २००९, वार्त्तिककारः कात्यायनः, दिल्ली : अभिषेक प्रकाशन।

९. Bloomfield, Leonard. 1957. Language. London: George Allen & Unwin Ltd.

http://timesofindia.indiatimes.com/articleshow/99004444.cms?utm_source=contentofinterest&utm_medium=text&utm_campaign=cppst

# एशियाई देशों पर संस्कृत साहित्य का प्रभाव-रामयण महाकाव्य के संदर्भ में

प्रोफेसर भाग्यश्री सुधीर भलवतकर
संस्कृत विभागाध्यक्ष
मूलजी जेठा स्वायत्त महाविद्यालय, जलगाव
महाराष्ट्र, भारत

**प्रस्तावना**

संस्कृत न केवलं भारत कि अपि तू विश्व कि भाषा है। **'वसुधैव कुटुंबकम्'**, **'सर्वे सुखिनः सन्तु'** यह संकल्पना, नैतिकता हमारे साहित्य में दिखाई देति है। इसलिये विश्व के सभी विश्वविद्यालयमें संस्कृत कि शिक्षा दिलायी जाती है। जिसमें वेद के साथ साथ वाल्मीकि रामायण और व्यास का महाभारत, इन दो महाकाव्यों का प्रभाव केवल भारतदेश में ही नहीं, बल्कि पूरे विश्व पर देखाई देता हैं। एशियाई देशों में जैसे थाईलैंड, कंबोडिया, इंडोनेशिया, चीन, नेपाल आदि देशों पर हज़ारों वर्षों से इन महाकाव्यों का विशेष प्रभाव पड़ा है। वर्तमान में उपलब्ध रामायण के 427 संस्करणों में से वाल्मीकि रामायण सबसे प्राचीन है। भारत में रामायण को कई भाषाओं में लिखा गया, जिसमें तुलसीदास का रामायण विशेष रूप से प्रसिद्ध है। भारत में लगभग सभी भाषाओं में रामायण पर काव्य रचनाएँ की गई हैं। अपभ्रंश भाषा में जैन रामायण लिखी गई। विद्वानों का मत है कि रामायण का कालखंड ई.पू. 300 शतक का होना चाहिए। भारत में रामायण पर 30 टीकाएँ लिखी गई हैं, जिनमें कतक द्वारा लिखी गई टीका सबसे प्राचीन मानी जाती है।[१]

एशियाई देशों में रामायण का गहरा प्रभाव देखने को मिलता है, जिसके चलते हमारे पड़ोसी देशों में भी रामायण की रचनाएँ हुई हैं। नेपाल

के भानुभक्त ने ई.स. 1840 में रामायण की रचना की। वाल्मीकि रामायण के नायक राम की पत्नी सीता, नेपाल के जनकपुरी के जनक की पुत्री थीं, जिससे भारत और नेपाल के सांस्कृतिक और राजनीतिक संबंध भी स्थापित हुए। थाईलैंड में रामायण को **'रामकीयन'** कहा जाता है और इसे थाईलैंड का **राष्ट्रीय ग्रंथ** माना जाता है। थाईलैंड के राजा स्वयं को राम के वंशज मानते हैं। रामायण के विभिन्न नाटकीय संस्करण और रामायण पर आधारित नृत्य प्रस्तुतियाँ थाईलैंड और दक्षिण पूर्व एशियाई देशों जैसे इंडोनेशिया, मलेशिया, कंबोडिया आदि में की जाती हैं। थाईलैंड के हवाई अड्डे पर भी रामायण चित्रित किया गया है। इंडोनेशिया में नववें शतक में कावी भाषा में योगीश्वर का **'रामायण काकावीन'** नामक काव्य लिखा गया। इतना ही नहीं, वहाँ के मंदिरों पर भी रामायण कथा मूर्तियों के माध्यम से साकार की गई है। दक्षिण पूर्व एशिया की सभ्यता और संस्कृति तथा भारतीय सभ्यता का ही योगदान है। रामायण जैसे महाकाव्य के कारण एशियाई देशों के साथ हमारे सांस्कृतिक संबंधों को मजबूत करने में महत्वपूर्ण योगदान रहा है।[२]

**समस्या विशेष-**

वसुधैव कुटूम्बक के लिये साहित्य का जैसे कि,रामायण, महाभारत ये महाकाव्य न केवलं भारत, साहित्यिक, सांस्कृतिक कि विरासत है; बल्की संपूर्ण वैश्विक साहित्य को योगदान प्रस्थापित करता है। साहित्य का अनुशिलन जब करते है तब साहित्य से सीमापार संबंध प्रस्थापित करने का मौका मिलता है। साहित्य धर्म, भाषा, जाती के पार होता है। साहित्य मानवी मन को प्रसन्नता प्राप्त कर देता है। आज वैश्विक संबध दृढ करणे के लिये साहित्य का योगदान अमूल्य है। विश्व के विश्वविद्यालयो में सभि भाषा का साहित्य, तत्वज्ञान, सिखाया जाता है। आशिया खंड में लगभग सभि विश्वविद्यालय में बौध्द दर्शन तथा संस्कृत,

तेलगु, हिंदी, भाषा का साहित्य पढाया जाता है। जैसे कि सोल्प्कॉन विद्यापीठ बँकॉक, ICSES, Department Of Sanskrit and Eastern Studies, University of Kelaniya, Kelaniya, Sri Lanka

यहा भारतीय साहित्य, दर्शन कि पढाई होती है। संगोष्ठी द्वारा विषय का आदान प्रदान किया जाता है। भारत के आशियायी देशो के साथ जो संबंध है उसे दृढ करणे के लिये साहित्य के माध्यम से तत्वज्ञान के माध्यम से सफल प्रयास करणे का यह यत्न है।

आज अनेक देशो में संबंध में वितुष्टी दिखाई देती है; आंतरराष्ट्रीय संबध दृढ बनाने के लिये भारतीय साहित्य उपयुक्त साबित करना हि समस्या का हल है।

**उद्देश-**

१. रामायण माहाकाव्य का एशियायी देशो पर कैसा प्रभाव रहा ? ये परीक्षण करना।
२. रामायण कि प्रेरणा सें आशिया खंड में रामायण सदृश काव्यनिर्मिती का परीक्षण करना।
३. रामायण महाकाव्य से दक्षिण पूर्व एशिया कि सभ्यता और संस्कृति तथा भारतीय सभ्यता का समानता प्रतिपादित करना।
४. दक्षिण पूर्व एशिया देशों के साथ साहित्यिक तथा सांस्कृतिक संबध का योगदान प्रस्थापित करना।
५. रामायण महाकाव्य सें दक्षिण पूर्व एशिया देशों में कलाक्षेत्र, हिंदू सभ्यता का विस्तार कैसा हुवा इसका का परिशीलन करना।

**संशोधन-पद्धति**

१. **तुलनातत्मक पद्धति**- वाल्मिकी रामायण तथा एशिया में स्थित रामयण काव्ये कि तुलना करना।

२. **समीक्षणात्मक पद्धति**:- सभी एशियायी रामायण काव्यों का समीक्षात्मक अध्ययन करणे कि चेष्टा कि जाएगी।

**विषय-प्रतिपादन:**

साहित्य को कोई सीमा नही होती है; वो विश्व के सभि समाज को अभ्यासको कों प्रेरित करता है। रामायण काव्य का यही विशेष राहा है। रामयण एक ऐसि कथा है; जो वाल्मिकी कि **'शोक: श्लोकत्वं**, प्राप्त कर दिया है। इस माह्काव्य का गहरा प्रभाव आशियायी खंड के लगभग साभि देशों पर दिखाई देता है। रामायण कि यह कथा लोकभाषा के माध्यम से राजमहलों में मंदिरो में विव्दानो कि पोथियों से निकलकर सामान्य जन कि कूटियाँ तक पोहच गई। जहाँ तक भारत वर्ष कि बात करते है; तो लगभग सभि भाषा में रामायण का अनुवाद तथा रचना कि गई। इ.स. ११ वि १२ वि शताब्धि में तामिलनाडू में **कम्ब रामायण**, केरल में राम वर्मा लिखित **रामचरित,** तेलगु भाषा में **रंगनाथ रामायण**, कर्नाटक में नागानंद पंप कि **पंप रामायण**, गुजरात में गीरीधर दास कि **गिरधर रामायण** उडीसा में बलराम दास कृत **रामायण**, आसाम में माधव कंदली कि **रामायण**, अवधी में तुलसीदास कृत **तुलसीरामायण**, आदि लिखी गयी, जिनका मुल स्तोत वाल्मिकी रामायण कि रामायण हि है। यह जाणकर बडा आश्चर्य होता है कि, भारत में अपभ्रंश और प्राकृतिक भाषाओ में रचित जैन रामायणो के अतिरिक्त, प्राय: सभि भारतीय लोक भाषाओं कि राम कथाँये कि रचना पूर्व भारत से हजारो मिल दूर इंडोनेशिया में वहा कि रामायण रचना कि जा चुकी थी। उत्तर भारत में रामचरित मानस जो तुलसिदास जी कि रचना है उससे पूर्व लगभग ७०० वर्ष इंडोनेशिया में यह काव्य लिखा जा चूका था। यह एक सुखद आश्चर्य है कि, जब नववी शताब्दी में महाकवी योगीश्वर ने रामयण **काकावीन** कि रचना कि, लगभग उसी काल में इंडोनेशिया के मध्य जावा क्षेत्र में प्राम्बानन स्थित हिंदू मंदिर त्रयो ब्रम्हा-विष्णु- शंकर के एक एक मंदिर का निर्माण हुवा और शंकर और ब्रम्हा के

मंदिरो कि बाह्य भित्तियों पर सम्पूर्ण रामायण कि कथा मुर्तियो के माध्यम से प्रस्तुत कि गयी; जो कि रामायण काकावीन पर हि आधारित है। भारत के बाहर आशियायी देशो में रामायण संस्कृती के प्रचार में महाकवी योगेश्वर के कालातीत योगदान महत्त्वपूर्ण है।

प्रस्तुत शोध निबंध के माध्यम से रामायण महाकाव्य का एशियाई देशों पर प्रभाव और इसके कारण भारत के साथ उनके संबंध कैसे सुदृढ़ हुए हैं, यह बताया जाएगा।[३]

**वाल्मिकी रामायण का एशिया देशो पार प्रभाव:**

राम की कहानी एक राजकुमार और उनके लंबे नायकत्व से भरे सफर की कहानी, दुनिया के महान महाकाव्यों में से एक है। इसकी शुरुआत भारत में हुई और यह एशिया के कई देशों में फैली। यह ग्रंथ लाखों लोगों की संस्कृति, धर्म, इतिहास और साहित्य का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। इसके अध्ययन के माध्यम से शिक्षक यह समझ सकते हैं कि लोग कैसे रहते थे और वे क्या मानते और महत्व देते थे। जब यह कहानी दक्षिण-पूर्व एशिया के देशों की संस्कृति में समाहित हुई, तो प्रत्येक ने अपनी संस्कृति के मूल्यों और विश्वासों को दर्शाने वाले अपने-अपने संस्करण तैयार किए। परिणामस्वरूप, राम की कहानी के सैकड़ों संस्करण एशिया, विशेषकर दक्षिण-पूर्व एशिया में मौजूद हैं।

**इंडोनेशिया का रामायण:**

वाल्मीकी रामायण का प्रभाव साभि एशियायी देशो पर विशेष रूप सें रहा है। इंडोनेशिया में इ. स. नवीं शताब्दी में कावी भाषा में रामयण लिखा गाय उसका नाम रामायण काकाविन है। एस शताब्दी में समुद्र पार करना निषिद्ध समझा जाता था उस जामने में हामारे पूर्वजो ने आशियायी देशो के साथ सांस्कृतिक विनिमय और पारस्परिक संबंध प्रस्थापित किए। महाकवी योगेश्वर लिखित रामायण काकाविन कि रचना या इंडोनेशिया जावाक्षेत्र का अद्भुत काव्य है।[४]

**कंबोडिया का रामायण:**

कंबोडिया में, जहाँ अधिकांश आबादी थेरावाद बौद्ध धर्म का पालन करती है, रीअमकेर पर बौद्ध प्रभाव स्पष्ट है। इसमें राम को "फ्रेआ रीअम" और सीता को "नियांग सेडा" के रूप में जाना जाता है। खमेर पाठ में कुछ अनूठे प्रकरण भी शामिल हैं जो मूल हिंदू ग्रंथों में नहीं हैं। उदाहरण के लिए, हनुमान और मछली कन्या सोवन्न माचा के बीच की मुलाकात। लेकिन मूल हिंदू ग्रंथ से एक प्रमुख अंतर यह है कि अग्नि परीक्षा के बाद, जिसमें सीता सफल होती हैं, वह अपने पति की अविश्वास के कारण नाराज होकर उसके साथ अयोध्या में शासन करने के बजाय ऋषि वाल्मीकि के पास शरण लेने का निर्णय लेती हैं।[५]

**थाईलैंड का रामायण:**

थाईलैंड का राष्ट्रीय महाकाव्य "रामाकियन" है, जिसे राजा राम प्रथम ने संकलित किया। इसे सियाम के भूगोल में समाहित किया गया। यह थाई साहित्य का एक उत्कृष्ट कृति माना जाता है और थाई नृत्य-नाटकों का आधार है।[६]

**जावा, इंडोनेशिया का रामायण:**

इंडोनेशिया, जो दुनिया का सबसे बड़ा मुस्लिम देश है, में रामायण की लोकप्रियता इसके सांस्कृतिक महत्व और सहिष्णुता को दर्शाती है। जावा में, रामायण को अक्सर "वायंग कुलित" (छाया कठपुतली प्रदर्शन) के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है। जावा का पहला भाग मूल संस्कृत संस्करण जैसा है, लेकिन दूसरा भाग इतना भिन्न है कि भारतीय विद्वानों के लिए इसे पहचान पाना मुश्किल है। यहां तक कि इसमें जावानी देवता धयान और उनके पुत्रों, जो "पुनोकावन" कहलाते हैं, का समावेश है।[७]

**अंतर्राष्ट्रीय रामायण महोत्सव:**

रामायण की निरंतर लोकप्रियता के कारण भारतीय सांस्कृतिक

संबंध परिषद ने हाल के वर्षों में अंतर्राष्ट्रीय रामायण महोत्सव का आयोजन शुरू किया, जिसमें रामायण के विभिन्न संस्करणों का प्रदर्शन और उत्सव मनाया जाता है।[८]

**उपसंहार:**

दक्षिण पूर्व एशिया की सभ्यता और संस्कृति तथा भारतीय सभ्यता का ही योगदान रामायण काव्य के माध्यम से रहा है। रामायण जैसे महाकाव्य के कारण एशियाई देशों के साथ हमारे सांस्कृतिक संबंधों को मजबूत करने में महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इसलिये आज भी एशिया देशो में रामायण काव्य रचना, लोककला के मध्यम से आज भी जीवित है।

**संदर्भ:**

१. रामा. काका. पृ ३
२. रामा. काका. पृ ४
३. रामा त्रयी. प्रस्ता.
४. रामा. काका.भू.
५. तत्रैव
६. तत्रैव
७. तत्रैव
८. तत्रैव

**संदर्भ-ग्रंथ-सूची:**

१. रामायण काकावीन- संपा.चंद्रदत्त पालीवाल, प्रकाशक उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ, १९९१
२. रामायण त्रयी- संपा. पु.डॉ. जोशी, प्रदद प्रकाशन, पुणे, १९०७
३. वाल्मीकी रामायण-मराठी अनुवाद, खंड १,२,३,४ संपा. डॉ. प्रा. न. जोशी प्रकाशक, विदर्भ मराठवाडा बुक कंपनी, पुणे आवृत्ती १, १९३६ आ. ८ २०२३

४. भारतीय साहित्याचा ऐतीहास- डॉ. सिंधू डांगे, महाराष्ट्र विद्यापीठ ग्रंथ निर्मिती, मंगल प्रकाशन, नागपूर,१० १९७५
५. वाल्मिकी रामायण परीक्षण- चि. वि. वैद्य, शि. गो. भावे प्रकाशन, चित्रशाला, प्रेस पुणे

## विज्ञान और गणित में संस्कृत का योगदान

आधुनिक युग वैज्ञानिक युग है। जिसमें अनेक आविष्कार तथा अनुसंधान किए जा रहे हैं। वर्तमान समय में वैज्ञानिक प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों के रहस्यों को खोजने के लिए निरन्तर प्रयासरत है क्योंकि वे भली-भाँति जानते हैं कि प्राचीन वैदिक ग्रन्थों में ज्ञान-विज्ञान का अपार भण्डार निहित है।इस सन्दर्भ में एमo मोनियर विलियम्स का कथन है. कि "यूरोप के बहुत से अति प्राचीन राष्ट्रों द्वारा विविध विज्ञानों के परिचय और प्रयोग को पर्याप्त जानने से पहले ही हिन्दू लोगों ने ज्योतिष शास्त्र, बीजगणित,अंकगणित,वनस्पति शास्त्र और चिकित्सा शास्त्र में विशेष उन्नति कर ली थी। सभ्यता और ज्ञान के तत्वों का उद्गम सदा प्राची से हुआ है। उनका प्रसार भी प्राची से प्रतीची की ओर हुआ है, न कि पश्चिम के पूर्व की ओर।"[1]

इस कथन से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि प्राचीन संस्कृत वाङ्मय में ज्ञान-विज्ञान का अमूल्य भण्डार है, जिसमें हमारे प्राचीन ऋषियों द्वारा अपनी प्रखर प्रतिभा के बल पर अनेक वैज्ञानिक तथ्यों का उल्लेख किया गया है।.

यद्यपि प्राचीन संस्कृत ग्रंथों मे विज्ञान तथा गणित से सम्बन्धित अनेक उदाहरण प्राप्त होते हैं तथापि मेरे द्वारा प्रस्तुत शोध पत्र में गणित विषय पर ध्यानाकर्षित करने का प्रयास किया जा रहा है।

गणित शब्द आङ्ग्ल भाषा के Mathematics शब्द का हिन्दी रुपान्तर है। इसकी उत्पति Manthano Learn से हुई है, जिसका शाब्दिक अर्थ है – गणनाएँ सीखना।

गणित एक व्यापक तथा प्राचीन विषय है। समस्त विज्ञान अपनी पूर्णता के लिए गणित पर ही आश्रित है। मानव समाज का आर्थिक ढाँचा गणित पर आधारित है। गणित द्वारा व्यापार में तौल-

भाव, लाभ- हानि, ब्याज, कमीशन साझा, आयकर, आदि की गणना की जाती है ।

ऑक्सफ़ोर्ड शब्दकोष के अनुसार-"गणित संख्या,मात्रा और स्थान का अमूर्त विज्ञान है।[2]

गणित में विज्ञान के समान तथ्यो का सङ्कलन, विश्लेषण तथा तुलना द्वारा निष्कर्ष निकाला जाता है।विद्वानों द्वारा गणित शास्त्र को प्रमुखरूप से तीन भागो में बांटा गया है, (1) अङ्कगणित, (२) रेखागणित (3) बीजगणित ।

यद्यपि संस्कृत वाङ्मय में गणित के तीनों भागों में से सम्बन्धित अनेक तथ्यों का तर्कपूर्ण विश्लेषण प्राप्त होता है तथापि प्रस्तुत शोध पत्र में कुछ महत्त्वपूर्ण तथ्यों का उल्लेख किया जाना समीचीन प्रतीत होता है।

**(1) अङ्कगणित(Arithmetic)**- गणित विज्ञान की वह शाखा जिसमें अङ्को तथा संख्याओं की गणना की जाती है, अङ्कगणित कहलाता है। इसके अन्तर्गत जोड़ , घटाना, गुणा, भाग आदि गणितीय मूलों तथा दाशमिक प्रणाली का अध्ययन किया जाता है।

**(क) सङ्ख्याएँ-** भारत गणित शास्त्र का जन्मदाता रहा है. समग्र विश्व इस बात को सहर्ष स्वीकार करता है, क्योकि प्राचीन ग्रन्यो में 1.2.3.... से लेकर, शून्य (0) तथा अनन्त (∞) तक की समस्त गणितीय चिन्हों का उल्लेख तथा उपयोग अनेक स्थानों पर प्राप्त होता है। इस सन्दर्भ में प्राचीन काल में अड्को को प्रकट करने की दो प्रणालियों प्रचलित थीं- (1) अक्षराङ्क प्रणाली और शब्दाङ्क प्रणाली (२) दाशमिक प्रणाली ।

(i) अक्षराङ्क प्रणाली और शब्दाङ्क प्रणाली -इसमें प्रत्येक अंक के लिए अक्षर नियुक्त थे, जैसे- 1 के लिए 'क' तथा 0 (शून्य) के लिए 'न' अक्षर। आर्यभट्ट के ज्योतिष ग्रन्थ में यह प्रयोग मिलता है। शब्दाङ्क प्रणाली इस प्रणाली के समानान्तर है इसमें कोई पदार्थ अथवा शक्ति

अपनी सङ्ख्या का सूचक हो जाता है। अतः ये पदार्थ अथवा इनके पर्यायवाची शब्द (जिनका कोई भी गुण सङ्ख्या से मेल खाता हो) को गणना हेतु प्रयोग किया जाता था। यथा-

| **सङ्ख्या** | **पर्यायवाची शब्द** |
|---|---|
| 1. | ब्रह्म , सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी |
| 2. | नेत्र, भुज, पक्ष |
| 3. | काल, गुण |
| 4. | वेद, आश्रम, वर्ण, दिशा |

इस तरह अक्षराङ्क तथा शब्दाङ्क प्रणाली का प्रयोग प्राचीन काल में किया जाता था। यद्यपि वैदिक काल में लिपि का ज्ञान भले ही न रहा हो, किन्तु सरलता से अङ्को, संड्केतों का व्यवहार अवश्य होता था। इस सन्दर्भ में ऋग्वेद के प्रथम मण्डल मे एक, द्वि , त्रि, चतुर, पञ्च, षट् , सप्त, अष्ट, नव, दश, शत्, सहस्र आदि सङ्ख्याओं का उल्लेख मिलता है।[3] इसी प्रकार महर्षि वेद व्यास द्वारा महाभारत के वन पर्व में अष्टावक्र और बन्दी के मध्य हुए शास्त्रार्थ में एक से उन्नीस तक की संख्याओं का उल्लेख किया गया है।[4] अतः यह अनुमान लगाया जा सकता है कि अंकों के उपयोग हेतु इस प्रणाली का प्रयोग प्राचीन वैदिक युग से किया जा रहा है। इस सन्दर्भ में यूरोप की सबसे प्राचीन गणित की पुस्तक "कोडेक्स विजिलेनस" मे कथन मिलता है कि **"गणना के चिन्हों से (अङ्को में ) हमें यह अनुभव होता है कि प्राचीन हिन्दुओं की बुद्धि बड़ी पैनी थी तथा अन्य देश गणना व ज्यामिति तथा अन्य विज्ञानों मे उनसे बहुत पीछे थे।यह उनके नौ अंकों से प्रमाणित हो जाता है ,जिनकी सहायता से कोई भी सङ्ख्या लिखी जा सकती है।"**[5] इस कथन से यह स्पष्ट होता है कि विदेशी विद्वान भी भारतीय गणित के विकास को अति प्राचीन मानते हुए सहर्ष स्वीकार करते हैं।

(**ख)शून्य** (Zero)- गणित शास्त्र में शून्य का बहुत अधिक महत्व है। यदि एक से नौ अङ्क के पश्चात् शून्य द्वारा बने अङ्को की रचना न होती तो गणित का विस्तार असम्भव हो जाता। अत: विज्ञान के क्षेत्र में संसार को भारत की यह सबसे बड़ी देन है।शून्य एक ऐसा सङ्केत है जो '**कुछ नहीं**' का प्रतिनिधित्व करता है। '**कुछ नहीं**' का संस्कृत शब्द शून्य है । शून्य का अरेबीय नाम सिफिर (Sifir) है। यह सिफिर मध्यकालीन लेटिनभाषा में "सिफ्रा" (cifra) या जेफर्म (zefirm) बना। इटालियन भाषा में यह जैफर्म शब्द जेफिरो (zefiro)बना, अन्य यूरोपीय भाषाओं में जीरो (zero) बना ।[6] वैदिक काल में शून्य को निम्नलिखित शब्दों द्वारा प्रकट किया जाता था यथा- शून्य, श्व, गगन, अम्बर, आकाश, अभ्र, वियत, व्योम, अन्तरिक्ष, नभ, पूर्ण, रन्ध्र, विष्णुपद इत्यादि। शून्य के आविष्कर्ता भारतीयों ने शून्य को स्थान, संज्ञा, प्रकृति और संकेत प्रदान करने के साथ- साथ इसे उपयोगी शक्ति भी प्रदान किया यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि शून्य का आविष्कार कब हुआ परन्तु इसका सर्वप्रथम प्रयोग पिंगल के छन्द: सूत्र मे मिलता है ऐसा माना जाता है कि शून्य का आविष्कार वैदिक ऋषि 'गृत्समद' ने किया था।[7] प्राचीन संस्कृत वांङ्मय मे अनेक स्थानों पर शून्य का उल्लेख मिलता है। इस सन्दर्भ में ईशावास्योपनिषद् के शान्तिमंत्र में '**शून्य**' को स्पष्ट रूप से परिभाषित करते हुए मन्त्र प्राप्त होता है, यथा-

**ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमदुच्यते।**
**पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥** [8]

उपर्युक्त मन्त्र को गणितीय रूप में देखने पर शून्य की सम्पूर्ण व्याख्या मिलती है, जैसे- पूर्ण में से पूर्ण निकाल देने के बाद भी पूर्ण ही बचा रहता है अर्थात (0-0=0) और पूर्ण में पूर्ण जोड देने पर पूर्ण ही प्राप्त होता है अर्थात् (0+0=0) यहाँ भारतीय ऋषियों ने परमात्मा को पूर्ण माना है, ब्रह्माण्ड भी पूर्ण है और शून्य भी।

इस सन्दर्भ में महाभारत के शान्ति पर्व में महर्षि व्यास द्वारा शुकदेव के प्रति एकाग्रचित योगी के निवास हेतु शून्य स्थान का चयन करना उपयोगी बताया गया है।[9] इस तरह यह अनुमान लगाया जा सकता है कि शून्य का प्रयोग प्राचीन काल से होता आ रहा है।

**(ग)अनन्त** (Infinite)- गणित शास्त्र में शून्य (Zero) और अनन्त (Infinite) का सर्वाधिक महत्व है। अनन्त को परिभाषित करने के लिए शून्य का विशेष महत्त्व है। यह सर्वविदित है कि किसी सङ्ख्या में शून्य जोडने अथवा घटाने से उसमें कोई परिवर्तन नहीं होता। किसी सङ्ख्या को शून्य के गुणा करने पर गुणनफल शून्य हो जाता है। साधारणतया शून्य से भाग अर्थ रहित समझा जाता है, परन्तु यदि किसी सङ्ख्या को शून्य से भाग दिया जाए तो भजनफल अनन्त (बहुत बड़ी सङ्ख्या) प्राप्त होता है।आधुनिक गणितज्ञों ने अनन्त को निम्नलिखित रूप मे व्यक्त किया है-

1÷0 अर्थात् 0)1 (111....

0

1

0

1..... 1/0 = ∞

यदि अनन्त को अनन्त से भाग दिया जाए तो –

∞/ ∞=1/0÷1/0=1/0×0/1=0/0=0=1(एक ही तत्त्व)

प्राचीनकाल से ही भारतीय गणितज्ञों ने अनन्त (Infinite) को परिभाषित करने का प्रयास किया है। इस सन्दर्भ में **भास्कराचार्य कृत लीलावती** पुस्तक में अनन्त को "खहर " संज्ञा से अभिव्यक्त किया गया है।[10] भास्कराचार्य ने स्वरचित पुस्तक **"सिद्धान्त शिरोमणि"** में भी अनन्त को विस्तृत रूप में स्पष्ट किया है।[11] इस संदर्भ मे ऋग्वेद में अनन्त को "अपरिमित"[12] तथा यजुर्वेद मे अनन्त को "असंख्य"[13] शब्द

द्वारा अभिव्यक्त किया गया है। इस कथन से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि प्राचीन गणितज्ञ अनन्त के महत्व से भली भांति परिचित थे ।इस संदर्भ में आङ्गल भाषा के शब्द कोष में भी अनन्त का पर्यायवाची शब्द 'अपरिमित 'तथा 'निःसीम' बताया गया है।[14]

**(घ)दाशमिक प्रणाली-** प्राचीन काल में सङ्ख्याओं के द्वारा गणना करना सामान्य बात थी। वैदिक ऋषियो को शून्य तथा अनन्त आदि गणितीय शब्दों का पूर्ण ज्ञान था। इसलिए प्राचीन गणितज्ञों ने अंकों के बढ़ते हुए क्रम को निम्नलिखित रूप से वर्णित किया है –यथा

दश - 10
शतम् - 100
सहस्र- 1000
अयुत -10000
लक्ष- 100000
प्रयुत- 1000000 .... .. .. .. आदि।

उपर्युक्त वर्णन में अङ्को का स्थानीयमान बताया गया है। इसमें **'अङ्कानां वामतोगतिः'** नामक सिद्धान्त लागू हुआ है। इस सिद्धान्त का प्रयोग भारतीय ज्योतिष ग्रन्थों में किया गया है। इस सिद्धान्त के अनुसार, एक अङ्क के आगे शून्य देने में**, एक (1)को बाये ही लिखने से1** एक का दस गुना और दो शून्यों को बांये लिखने से सौ गुना हो जाता है। इसी प्रकार प्रत्येक दश स्थानीय एक या कोई भी अङ्क वाम होने से उत्तरोत्तर दसगुणित अङ्कमान वृद्धि से **'अनन्त्व'** का बोध होता है। पुरुष स्थानीय अङ्क से वामगतिक स्त्री स्थानीय अङ्क के विन्यास से दशगुणित वृद्धि होती रहती है**, यही सृष्टि का क्रम है।**[15] इस प्रकार दश(10) के गुणन, सौ (100) के गुणन तथा एक हजार (1000) के गुणनक्रम को दाशमिक प्रणाली कहा जाता है।

दाशमिक प्रणाली में दशमलव प्रणाली सम्मिलित है, क्योकि

शून्य की अवधारणा पर ही दशमलव अङ्क पद्धति आधारित है। जिस प्रकार 'दस' को आधार मानकर स्थानमूलक प्रणाली के द्वारा 1,2,3,4,5,6,7,8,9 तथा 0 इन दस अङ्को के प्रयोग से स्थान बदलकर कोई भी एक से बड़ी सङ्ख्या लिखी जा सकती है,उसी प्रकार दशमलव प्रणाली द्वारा दशमलव बिन्दु लगाकर एक से छोटी प्रत्येक सङ्ख्या लिखी जा सकती है। इस संदर्भ में ऋग्वेद के दशम मण्डल मे निम्नलिखित मंत्र मिलता है –

**दशावनिभ्यो दशकक्ष्येभ्यो दशयेक्रेभ्यो दशयोजनेभ्य:।**
**दशाभीशुभ्यो अर्चताजरेभ्यो दश धुरो दशयुक्ता वृहद्भ्य:।।**[16]

उपर्युक्त मंत्र मे दश के अङ्क की प्रतिष्ठा में निम्नलिखित विशेषण प्रयुक्त हुए हैं- यथा

- अवनिभ्यः- रक्षा करने वाला
- काक्ष्येभ्यः- कर्मों को प्रकाशित करने वाला
- योजनेभ्यः- जोड़ना ( दशमलव पद्धति में जोड़ने का संकेत )
- अभीशुभ्यः- गुणा करने की सुविधा
- अजरेभ्यः- विभाजन की सुविधा
- धुरा:युक्तः वृहद्भ्यः- वर्ग या वर्गमूल का संकेत

इस प्रकार दश से गुणित तथा विभाजन करने की दशमलव प्रणाली विश्व को भारत की ही देन है। वर्तमान समय में समस्त विश्व में दाशमिक प्रणाली (दशमलव प्रणाली) का ही प्रयोग किया जा रहा है। ये भारतीय अङ्क 1,2,3,4,5,6,7,8,9 तथा 0 कुल 10 अङ्क माने गये है, जिन्हें "भारतीय अन्तर्राष्ट्रीय अङ्क" के नाम से हमारे भारतीय संविधान में स्थान दिया गया है।[17] **(च) गणितीय मूल-** सामान्यतः हम सभी प्रारम्भिक गणित के मूल के रूप में जोड़, घटाना, गुणा तथा भाग को जानते हैं, परन्तु इनके अतिरिक्त कुछ और विषय भी प्रारम्भिक गणित के मूल के रूप में गिने जाते हैं। इस सन्दर्भ में **श्री**

**गुणाकर** मूले द्वारा स्वरचित पुस्तक **'भास्कराचार्य'** में गणित के आठ मूल स्वीकार किए गये हैं, यथा-

(1) संङ्कलन (जोड) (Addition) +

(२) व्यवकलन (घटाना) (Substraction) -

(3) गुणन (गुणा करना) (Multiplication)

×

(4) भाग (भाग करना) (Division)

÷

(5) वर्ग (वर्ग करना) (Square) $^2$

(6 ) वर्गमूल (वर्गमूल निकालना) (Square root) $\sqrt{}$

(7) घन (घन करना) (Cube) ( )$^3$

(8) घनमूल (घनमूल निकालना) (Cube root) $\sqrt[3]{}$

उपर्युक्त गणितीय क्रियाएँ हजारों वर्षों से प्राचीन ऋषियों द्वारा प्रयोग में प्रचलित रहीं। लेकिन गणितज्ञ भास्कराचार्य द्वारा लीलावती के प्रति कथन मिलता है कि "इन सभी परिकर्मों के मूल मे दो ही मूल परिकर्म हैं। वृद्धि और हास। जोड़ वृद्धि है, घटाना हास है। इन्ही दो मूल क्रियाओं से सम्पूर्ण गणित शास्त्र व्याप्त है।"[18] इस कथन में यह स्पष्ट होता है कि प्राचीन काल में विद्वान लोग गणित के मूलो से भली-भाँति परिचित थे। वर्तमान समय में 'संङ्णक (Computer) द्वारा बड़ी से बड़ी गणना करने में भी वृद्धि (+) कौर हास (-) का ही प्रयोग होता है।

इस संदर्भ में हमारे प्राचीन संस्कृत ग्रंथों मे अनेक उदाहरण मिलते है। यथा- महाभारत के शान्ति पर्व में याज्ञवल्क्य तथा राजा जनक के मध्य काल गणना की चर्चा हुई है, जिसमे याज्ञवल्क्य का कथन है कि बेद और वेदांगों में पारङ्गत ब्रह्मदेव के अनुसार दस हजार कल्पों में से एक चौथाई कम करने जितना शेष रहता है उतना ही उनके

एक दिन का मान है,अर्थात् साढ़े सात हजार कल्पों का उनका एक दिन होता है ।[19] इस कथन को आधुनिक गणित के नियमानुसार निम्न रूप में व्यक्त किया जा सकता है, यथा

(कल्प)10000–10000/4 =1 दिन (ब्रह्मदेव का)

(कल्प) 10000-2500=1 दिन

(कल्प) 7500 = । दिन

अतः इस कथन से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि प्राचीन काल मे गणित के मूलों का प्रयोग काल गणना हेतु किया जाता था। इसी प्रकार प्राचीन गणितज्ञ भास्कराचार्य द्वारा अपनी पुत्री लीलावती से जोड़ तथा घटाने से सम्बन्धित प्रश्न किये जाने का उल्लेख मिलता है।[20] इससे ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीन काल में गणित के नियमों तथा मूलों का प्रयोग सामान्य रूप से किया जाता था ।

(2) रेखागणित(Geometry)- इसकी उत्पत्ति का स्थान भारत को माना जाता है। यहाँ प्राचीन वैदिक काल से ही यज्ञ वेदियों के निर्माण हेतु रेखागणित का प्रयोग किया जाता रहा है। इसके अन्तर्गत रेखा, बिन्दु,कोण क्षेत्रफल, आयतन आदि का अध्ययन किया जाता है।

प्राचीन संस्कृत ग्रंथों मे षड् बेदाङ्गो मे से एक वेदाङ, कल्प वेदाङ माना जाता है। जिसके परिशिष्ट भाग मे क्षेत्रमिति(ज्यामिति) के नियमों का वर्णन मिलता है। इन परिशिष्टों को "शुल्बसूत्र' कहते हैं। शुल्ब का अर्थ है- डोरी या रस्सी। शुल्ब धातु का अर्थ है- मापना या नापना। अतः शुल्ब सूत्रों मे डोरी द्वारा बेदी, अग्निचिंति, मण्डप आदि को मापने की जानकारी मिलती है। वर्तमान समय में 8 शुल्ब सूत्रउपलब्ध है।बौधायन, आपस्तम्ब, सत्याषाद, वाधुल, मानव, मैत्रायणी, वराह तथा कात्यायन । जिनमें से बौधायन शुल्ब सूत्र सबसे बड़ा तथा सबसे प्राचीन है। इनका समय 500 ई.पू. माना जाता है।

रेखागणित (ज्यामिति) के सन्दर्भ में अनेक उदाहरण प्राचीन

संस्कृत ग्रन्थों में प्राप्त होते हैं। किन्तु समय सीमा में निबद्ध होने के कारण उनका विस्तृत उल्लेख कर पाना कठिन है, फिर भी कुछ महत्वपूर्ण तथ्यों का उल्लेख कर रही हूँ ।

**वृत्त (circle)**-रेखा गणित मे नाना प्रकार की ज्यामितिय आकृतियों मे से एक आकृति को वृत्त (circle)तथा गोला (sphere)कहा जाता है ।

गणितज्ञों के अनुसार, किसी एक निश्चित बिन्दु से समान दूरी पर स्थित बिंदुओं का बिन्दुपथ "वृत्त" कहलाता है । यह निश्चित बिन्दु वृत्त का केंद्र होता है तथा केंद्र और वृत्त की परिधि के किसी बिन्दु के बीच की दूरी वृत्त की त्रिज्या कहलाती है । $\pi$=परिधि/व्यास Radius) r = त्रिज्या, (Center of circle) o= वृत्त का केंद्र, (Diameter)d= व्यास, $2\pi r$= वृत्त की परिधि

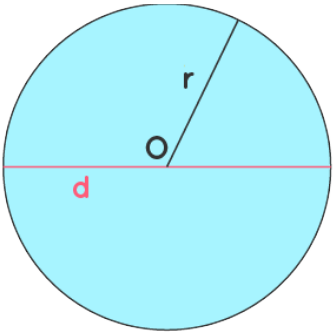


यहाँ **π** एक गणितीय संकेत है। जिसका मान प्राचीन काल के विद्वानों द्वारा भिन्न भिन्न बताया जा रहा है,यथा-

**π के विभिन्न मान[21]**

**प्राचीन बेबीलोन** **π = 3. 25**

**आहमोस पेपीरस,मिश्र (1650 ई.पू.)** **π = 3.1605**

**पुरानी बाइबिल** $\pi = 3$

**बौधायन शुल्व सूत्र (400 ई.पू.)** $\pi=3$ **या** 3.004

**जैन ग्रन्थ (लगभग 300 ई.पू.)** $\pi=\sqrt{10}$ **या** 3

**आर्कमिडीज (287-212 ई. पू.)** $\pi= 3.140845 < \pi < 3.142857$

**सू –झोड्.-झी (429-500 ई.पू )** $\pi= 355/113$

**आर्यभट्ट (जन्म 476 ई.)** $\pi=62832/20000=3.1416$

**ब्राह्मगुप्त (जन्म 598 ई.)** $\pi= \sqrt{10}$ **या** 3

**भास्कराचार्य (जन्म 1114 ई.)** $\pi=3927/1250=3.1416$

$\pi =22/7$ **(सूक्ष्म/मान)**

**माधव (1340-1425ई) केरल** $\pi=3.141592653592.....$

उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट होता है कि प्राचीन काल से ही $\pi$ के मान के संदर्भ में सभी गणितज्ञों का अलग-अलग मत रहा है। किन्तु महाभारत के भीष्म पर्व में संजय द्वारा द्वीपों तथा ग्रहों की विस्तृत चर्चा धृतराष्ट्र के समक्ष की गई है जिसमे राहू,चन्द्रमा, तथा सूर्य की परिधि तथा व्यास का उल्लेख मिलता है।[22] इस कथन को आधुनिक गणित की भाषा में निम्न रूप से समझा जा सकता है-

(1)राहु ग्रह की परिधि = 36000 योजन

राहु ग्रह का व्यास = 12000 योजन

$\pi$ =परिधि/व्यास =36000/12000= 3 ($\therefore \pi=3$)

(2) चन्द्रमा की परिधि= 33000 योजन

चंद्रमा का व्यास = 11000 योजन

$\pi$ =परिधि/व्यास = 33000/11000=3 ($\therefore \pi=3$)

(3) सूर्य की परिधि = 30000 योजन

सूर्य का व्यास = 10000 योजन

**π =परिधि/व्यास** =30000/10000=3 (**∴π**=3)

इस विवरण से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि यद्यपि आधुनिक गणितज्ञों ने π का मान लगभग 3. 1416 बताया है तथापि आज से कई हज़ार वर्षों पूर्व ही महाभारतकार द्वारा **π** का सटीक मान (3) का संकेत दिया गया है।

उपर्युक्त समस्त तथ्यों से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि प्राचीन काल से ही भारतीय मनीषियों द्वारा गणित के नियमों ,सूत्रों का प्रयोग किया जाता रहा है। प्राचीन वैदिक युग मे गणित अपने चरम शिखर पर था।गणित के महत्व के संदर्भ मे वेदाङ्ज्योतिष मे कथन मिलता है,यथा-

**यथा शिखा मयूराणां नागानां मण्यो यथा।**
**तद्वद्वेदांग शास्त्राणां गणित मूर्धनि स्थितम ॥**

-याजुष.वेदांग ज्योतिष-4

**संदर्भ-ग्रंथ-सूची-**

1.सस्कृत इंगलिश डिक्शनरी एम.मोनियर विलियम्स पृ . 21

2.Mathematics is a abstract science of number ,quantity and space -Oxford dictionary(1996) Pg. 548

3. त्वमेतान्जनराज्ञो द्विर्दशाऽबन्धुना सुश्रवसोपजग्मुषः।
षष्टिं सहस्रा नवतिं नव श्रुतो नि चक्रेण रथ्या दुष्पदावृणक्
-ऋ. वे. 1.53 .9

4. एक एवाग्निर्बहुध समिध्यते एकः सूर्यः सर्वमिदं विभाति ।
एको वीरो देवराजोऽरिहन्ता यमः पितृणामीश्वरूचेक एवा ॥

**********

त्रयोदशाहानि ससारकेशी त्रयोदशादीन्यतिच्छन्दांसि चाहुः ॥

-महा.भा.वनपर्व 134.8-20

5. भारत में विज्ञान की उज्ज्वल परम्परा पृ 67-68
6. The cultural Heritage of India. Page no. 18
7. प्राचीन भारत में विज्ञान और शिल्प पृ. 19
8. ईशावास्योपनिषद् शन्तिमंत्र।
9. शून्या गिरिगुहाश्चैव देवतायतनानि च।

शून्यागाराणि चैकाग्रो निवासार्थमुपक्रमेत् ॥

- महा . भा. शन्तिपर्व 240. 28

10. योगे खं क्षेपसमं, वर्गादौ खं, खभाजितो राशिः।

खहरः स्यात् , खगुणः खं खगुणश्चिन्यश्च शेषविधौ।।

शून्ये गुणके जाते खं हारश्चेत् पुनस्तदा राशिः।

अविकृत एव खेयस्तथैव खेनो नितश्च युतः॥

-लीला. श्लो. 1-2,पृ-71

11. अस्मिनविकार: खहरे न राशा वापि प्रविष्टेवपि नि: सृतेषु।

बहुष्वपि स्थाल्लयसृष्टिकाले अनन्तेअच्युते भूतगणेषुयद्वत।।

-वैदिक वाङ्मय में 'विज्ञान 'पृ. 303

12. ऋग्वेद -1.102.7 ,2.19.4
13. असंख्याता सहस्राणि ये रूद्राडअधिभूम्याम्।

तेषां सहस्र योजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥[2]

-यजुर्वेद. 16.54 पेज़ 237

14. Standard illustrated Dictionary - Bhargavas of English Language P. No-414
15. एकादशशतसहस्रायत् लक्ष प्रयुत कोट्यः क्रमशः।

खर्वनिखर्वमहापद्मशङ्कवस्तस्मात् ॥

जलधिश्चान्त्यं मध्यं परार्धमिति दशगुणोत्तराः संज्ञाः।
सङ्ख्यायाः स्थानानां व्यवहारार्थ कृताः पूर्वे :।
-लीला..(अभिन्नपरिकर्माष्टकम्)-2.3

16. ऋ. वे. 10.94.7

17. . भा. संविधान 343 (1)

18. भारत में विज्ञान की उज्ज्वल परम्परा पृ 71

19. एतस्यापि च सङ्ख्यानं बेदवेदाङ्ग पारगैः ।
दशकल्प सहस्राणि पादोनान्य हरुच्यते ॥
- महा.भा. शान्तिपर्व 311. 6

20. अये बाले लीलावति मति मति ब्रूहि सहितान्
द्विपञ्चद्वात्रिंशत्रिनवति शताष्टादश दश ।
शतोपेतानेतानयुतवियुतांश्चापि वद में
यदि व्यक्ते युक्ति व्यवकलन मार्गेडसिकुशला ।
-लीला..(अभिन्नपरिकर्माष्टकम्)श्लो. 1

21. भा.गणि.ज्यो. इति.पेज -124

22. उक्ता दीपा महाराज ग्रहं वै श्रुणु तत्वतः ।
स्वर्भानोः कौरवश्रेष्ठ यावदेव प्रमाणतः ।
श्रूयते परमोदारः पतगोऽसौ विभावसुः।।
- महा . भा. भीष्म पर्व 12.39-45

# संस्कृत साहित्य में ऐतिहासिक काव्य

Kalpanabahen M Sangada
Sgguni Godhra Gujarat

**प्रस्तावना:**

भारतीय इतिहास का आरम्भिक रूप पुराणों में वर्णित है। वहाँ राजवंशों के वर्णन बहुत कम आधुनिक ऐतिहासिक वृत्त के अनुरूप हैं। ये ही भारतीय इतिहास के बीज हैं। बाद में ऐतिहासिक घटनाओं को लेकर काव्य लिखे जाने लगे, जिन्हें ऐतिहासिक काव्य कहते हैं। इनका विवरण काल प्रणेताओं के उल्लेख के माध्यम से प्रस्तुत है। ऐतिहासिक काव्य उन काव्य ग्रन्थों से है, जिनकी कथा-वस्तु इतिहास की पट पर आधारित होती है, किन्तु इतिहास के बारे में ही पाश्चात्य एवं भारतीय विद्वानों अलग-अलग रही है। पाश्चात्य समालोचकों की यह मान्यता है कि संस्कृत साहित्य में वास्तवि इतिहास ग्रन्थों की रचना ही नहीं हुई है, क्योंकि जिन्हें भारतीय परम्परानुसार ऐतिहासिक कहा जाता है उनमें तिथि और घटनाओं के रूप में ठोस ऐतिहासिक सामग्री का अभाव है।

पुराणों में तत्कालीन राजनैतिक, धार्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक स्थिति का विशद विवरण उपलब्ध होता है। बौद्धों और जैनों के ग्रन्थों में भी ऐतिहासिक वृत्त एवं व्यक्तियों का उल्लेख मिलता है। प्राचीन राजाओं की प्रशस्तियों में ऐतिहासिक तथ्य प्राप्त होते हैं। यह बात अलग है कि इनमें अतिरंजनाओं के विस्तार से इनकार नहीं किया जा सकता। इनके अतिरिक्त संस्कृत में अनेक ऐतिहासिक महाकाव्यों की भी रचना हुई, जिनसे भारत के मध्यकांलन इतिहास पर बहुत प्रकाश पड़ता है।

**ऐतिहासिक काव्यों का संक्षिप्त परिचय-**

**अश्वघोष**

संस्कृत के ऐतिहासिक काव्यों में अश्वघोष-रचित **'बुद्धचरित'** का अपना विशिष्ट स्थान है। अनेक प्रमाणों के आधार पर

अश्वघोष को सम्राट् कनिष्क का सभापडित माना गया है। ये प्रसिद्ध बौद्ध दार्शनिक नागार्जुन के पूर्ववर्ती थे। नागार्जुन इनके शिष्य थे और उन्होंने 'श्रद्धोत्पादशास्त्र' के अपने भाष्य में अश्वघोष की चर्चा की है।

**'बुद्धचरित'** महाकाव्य है जिसके नायक गौतम बुद्ध ऐतिहासिक व्यक्ति हैं और उनका निर्वाण- काल भारतीय इतिहास में घटना-क्रम की तिथिगणना में प्रमाण-बिन्दु है। आधुनिक दृष्टिकोण से भारत का व्यवस्थित राजनैतिक इतिहास बुद्ध-काल से ही आरम्भ होता है। **'बुद्धचरित'** में कपिलवस्तु के राजा शुद्धोदन के पुत्र रूप में सिद्धार्थ की उत्पत्ति, उनकी तपस्या और बुद्धत्व-प्राप्ति तथा बौद्धधर्म के प्रचार की घटनाएँ काव्यात्मक रूप में वर्णित होने पर भी ऐतिहासिक तथ्यों पर आधारित हैं।

**अश्वघोष** के दूसरे महाकाव्य **'सौन्दरनन्द'** में भी गौतमबुद्ध द्वारा अपने छोटे भाई नन्द को बौद्धधर्म के उपदेश देने का वर्णन है।

**बाणभट्ट -**

ऐतिहासिक गद्यकाव्य की प्रथम रचना होने का श्रेय महाकवि बाणभट्ट रजित **'हर्षचरित'** को प्राप्त है। इसमें इतिहास-प्रसिद्ध वर्धनवंश के शासक प्रभाकरवर्धन तथा उनके पुत्र राज्यवर्धन और हर्षवर्धन एवं पुत्री राज्यश्री के जीवन-वृत्त वर्णित हैं। हर्षवर्धन का शासनकाल ६०६ ई० से ६४८ ई० पर्यन्त होने से बाण का स्थितिकाल सप्तम शती सिद्ध है।हर्षचरित' का मूल कथानक ऐतिहासिक घटना पर आधारित है। अतः यह रचना सम्ल साहित्य का प्रथम आख्यायिका ग्रन्य है। दूसरी ओर 'हर्षचरित' में जिन 'ऐतिहासिक घटनाओं का वर्णन है. वे प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्वेनसांग के यात्रा विवरण से काफी समान हैं। 'हर्षचरित' का ऐतिहासिक वृत्तान्त तल्लागार आचा इतिहास की अनेक गुत्थियों को सुलझाता है।

संस्कृत साहित्य के इतिहास की दृष्टि से भी **'हर्षचरित'** बहुत महत्त्वपूर्ण है। इसके आरम्भ **'वासवदत्ता'** एवं **'बृहत्कथा'** नामक ग्रन्थों एवं भास, कालिदास, प्रवरसेन, भट्टारहरिचन्द, आद्यराज आदि कवियों की प्रशंसा की गई है। अतः इनके काल निर्धारण में हर्षचरित से बड़ी सहायता मिलती है।

**वाक्पतिराज : गउडवहो -**

'गउडवहो' (गौड़वध) की रचना वाक्पति राज ने महाराष्ट्री प्राकृत में की है। प्राकृत में रचित होने पर भी यह ग्रन्थ संस्कृत महाकाव्यों की ही वर्णन-रीति का अनुसरण करता है। सम्भव है इसकी रचना करने में वाक्पतिराज को प्रवरसेन के प्राकृतकाव्य **'रावणवही'** (सेतुबन्ध) से प्रेरणा मिली हो। वाक्पतिराज कन्नौज के राजा यशोवर्मा के आश्रित और भवभूति के समकालीन थे। इनके पिता का नाम हर्षदेव था। 'गउडवहो' में एक गौड़ देश के राजा पर यशोवर्मा की विजय का वर्णन है। कवि ने उस गौड़ नरेश के नाम का उल्लेख नहीं किया है। बाद में यशोवर्मा कश्मीर के राजा ललितादित्य द्वारा युद्ध में मारे गए। यह घटना ७३६ ई० ३ आसपास की है। यदि 'गउडवहो' को यशोवर्मा की मृत्यु के बाद की कृति माना जाय तो इसका रचनाकाल ७४० ई० के लगभग होना चाहिए।

'गउडवहो' में महत्वपूर्ण ऐतिहासिक तथ्यों का विवरण कम ही है। ग्राम्य-जीवन तथा कालीदेवी के मन्दिर आदि का अत्यन्त विशद एवं सजीव वर्णन इसमें मिलता है।

**पद्मगुप्तपरिमल : नवसाहसांकचरित-**

पद्मगुप्तपरिमल धारानरेश मुञ्ज और उनके पुत्र सिन्धुराज (नवसाहसांक) के राजकवि थे। उन्होंने १००५ ई. के लगभग **'नवसाहसांकचरित'** की रचना की। इसमें नागों के शत्रु वज्रांकुश को पराजित कर नागराज शंखपाल की पुत्री शशिप्रभा के साथ सिन्धुराज के

विवाह का मनोरम वर्णन है।

यद्यपि यह काव्य मुख्य रूप से एक प्रशस्तिमात्र है, फिर भी इसमें तत्कालीन इतिहास के अनेक ऐसे तथ्य उपलब्ध होते हैं जिनकी पुष्टि शिलालेखों से होती है। **'नवसाहसांकचरित'** (१०/१४२) में सिन्धुराज द्वारा विजित जिन राजाओं का उल्लेख हुआ है, उनकी ऐतिहासिकता प्रमाणित है। इसके बारहवें सर्ग में सिन्धुराज से पूर्व के सभी परमारवंशी राजाओं का कालक्रम से वर्णन है, जिसकी पुष्टि शिललेखों से हो चुकी है। इस प्रकार यह काव्य परमारवंश के इतिहास के लिए उपयोगी है।

**बिल्हण : विक्रमांकदेवचरित**

कश्मीरी कवि बिल्हण ने अपने काव्यग्रन्थ **'विक्रमांकदेवचरित'** की रचना १०८५ ई० के लगभग की थी। ये एक महाकाव्य हैअपने इस काव्य के दसवें सर्ग में उन्होंने अपना जीवनवृत्त दिया है। उसके अनुसार बिल्हण का जन्म कश्मीर की तत्कालीन राजधानी प्रवरपुर के निकट खोनपुर गाँव में एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। उनके पिता का नाम ज्येष्ठकलश और माता का नाम नागादेवी था। विद्याध्ययन के बाद वे मथुरा, कन्नौज, काशी, प्रयाग आदि तीर्थों का भ्रमण करते हुए कल्याण के चालुक्य नरेश छठे विक्रमादित्य (१०७६-११२६ ई०) की सभा में पहुँचे। राजा ने इन्हें अपना राजकवि बनाकर 'विद्यापति' की उपाधि प्रदान की।,

इस ऐतिहासिक महाकाव्य का प्रधान रसवीर है। कवि का मुख्य लक्ष्य काव्य सौन्दर्य का चमत्कार उत्पन्न करना प्रतीत होता है, ऐतिहासिक विवेचन गौण है। इसमें घटनाओं की तिथियाँ अंकित नहीं है। कवि ने अपने चरितनायक का अतिरंजित चित्रण किया है, फिर भी कवित्व की दृष्टि से बिल्हण की रचना रमणीय है।

**कल्हण : राजतरंगिणी**

संस्कृत काव्य-परम्परा में इतिहास लेखन के लिए प्रवृत्त

कवियों के मध्य कश्मीरी कल्हण निर्विवाद रूप से सर्वप्रमुख हैं। उनकी रचना **'राजतरङ्गिणी'** संस्कृत साहित्य ऐतिहासिक घटनाओं के क्रमबद्ध इतिहास लेखन का प्रथम और उत्कृष्ट प्रयास है। कल्हण है पिता चणपक आढ्य ब्राह्मण वंश में उत्पन्न हुए थे और तत्कालीन काश्मीरी शासक हदिय (१०८९-११०१) के प्रधानामात्य थे। हर्ष की मृत्यु के बाद सम्भवतः चणपक ने राजनीति सन्यास ले लिया। तत्कालीन राजनैतिक संघर्ष और परिवर्तन के युग में कल्हण अपने को अधिकार पद से अलग रखकर राजदरबारों का वृत्तान्त लिखने में लग गए। उन्होंने एक निष्पक द्रष्टा की भाँति उन घटनाओं को देखा और अपनी रचना में अंकित किया। इन्होंने इसकी रचना राजा सुस्सल के पुत्र जयसिंह (११२७-११५९ ई०) के शासन काल में की है।

**'राजतरङ्गिणी'** में आठ खण्डों (तरङ्गों) में विभक्त ७८२६ पद्यों में आदि काल से लेकर मन ११५० ई० के आरम्भ तक के कश्मीर के प्रत्येक शासक के राज्य-काल की घटनाओं का यथाक्रम विवरण दिया गया है। इसमें सर्वप्रथम निर्दिष्ट तिथि ८१३-१४ ई० है। यहाँ से आरम्भ कर ३३६ वर्षों का इतिहास नितान्त पूर्ण, विशेष प्रामाणिक तथा एकान्त वैज्ञानिक प्रतीत होता है, क्योंकि यह सर्वतः आधुनिक ऐतिहासिक शैली पर निर्मित हुआ है।

कल्हण ने इस आदर्हा का पालन अपने इतिहास में पूर्ण रूप से किया है। इसी कारण राजतरङ्गिणी मानव-हृदय को स्पन्दित करने, अतीत को पूर्ण प्रत्यक्ष बनाने तथा इतिहास की मार्मिक घटनाओं से उपयोगी शिक्षा देने में आज भी एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ-रत्न है। इस प्रकार यह संस्कृत की एक अमूल्य ऐतिहासिक कृति है।

**हेमचन्द्र : कुमारपालचरितम्**

प्रसिद्ध जैनाचार्य हेमचन्द्र (१०८९ ई० ११७३ ई०) ने गुर्जरदेश के अन्तर्गत अणहिलपान के चालुक्यवंशी राजाओं के इतिहास का

वर्णन करने के लिए **'कुमारपालचरित'** की रचना क इस ग्रन्थ को **'द्वयाश्रयकाव्य'** भी कहते हैं, क्योंकि इसके आरम्भ से २० सगों तक संस्कृत तथा शेष ८ सर्ग प्राकृत में निबद्ध है। दूसरी बात यह भी है कि इस काव्य का उद्देश्य ऐतिहासि संकेतन के साथ व्याकरण का ज्ञान कराना भी था। महाकाव्य की दृष्टि से इस ग्रन्थका महत्त्व अधिक नहीं है, किन्तु गुजरात के चालुक्य राजाओं का यह बहुमूल्य प्रामाणिक इतिहास है। हेमचन्द्र इस ग्रन्थ के कथानायक कुमारपाल के गुरु थे। ११४४ ई० में कुमारपाल का राज्यरोहण हुआ और ११५२ ई० में इन्हें हेमचन्द्र ने जैनध में दीक्षित किया। अपने ग्रन्थ के अन्तिम पाँच सर्गों में कवि ने कुमारपाल के जीवनचरित मनोरम वर्णन किया है।

**अन्य ऐतिहासिक काव्य-**

दिल्ली के अन्तिम हिन्दू सम्राट् पृथ्वीराज चौहान के आश्रित कवि जयानक ने **'पृथ्वीराज विजय** (१२०० ई०) की रचना की। इसमें पृथ्वीराज के जीवनचरित के साथ इस चौहान राजा के द्वार शहाबुद्दीन गोरी पर ११९१ ई० में प्राप्त विजय का वर्णन है।

गुजरात के सोमेश्वरदत्त (११७९ १२६२ ई०) ने **'कीर्तिकौमुदी'** नामक काव्य लिखा, जिसमें गुजरात के शासक वीरधवल और चीमकदेव के मन्त्री वस्तुपाठ तेजपाल की कीर्ति का वर्णन है। सोमेश्वरदत्तकी दूसरी रचना **'सुरबीसव'** है। इसमें कविने बाण के समान अपने वंश का भी परिचय दिया है।

वस्तुपाल तेजपाल की तीर्थयात्रा और धार्मिक कृत्य आदि के वर्णन में अरिसिंह ने **'सुकृतसंकीर्तन'** नामक ऐतिहासिक काव्य की रचना ११ सगों में की है।

एक शतक बाद सर्वानन्द ने १२५६-५८ ई० में गुजरातमें की प्रशास्ति में **'जगडूचरित'** का वर्णन किया।

चौदहवीं शतक में नयचन्द्रसुरि ने चौदह सर्गों में रचित

'हम्मीर महाकाव्य' में चौहान इशी राजा हम्मीर के चरित एवं अल्लाउद्दीन खिल्जी के साथ उनके युद्ध का वर्णन किया है।

चौदहवं शतक में ही विजयनगर साम्राज्य के आरम्भिक से सम्बद्ध घटनाओं का वर्णन किया है। अपने काव्य ग्रन्य **'मधुराविजय'** अथवा **'वीरकम्परायचरित'** में किया है वर्णन कवयित्री गंगा में अपने पति कम्पराय की विजयों का सजीव चित्र खींचा है।

कश्मीर के प्रख्यात कवि शम्भु (१२वें शतक का पूर्वाद्ध) ने कश्मीर के राजा हर्षदेव की प्रशस्ति में **'राजेन्द्रकर्णपूर'** नामक काव्य लिखा है।

सन् १९२५ ई० में टी० गणपतिशास्त्री ने **आर्यमञ्जुश्रीकल्प'** नामक एक ऐतिहासिक ग्रन्य को प्राप्त किया। इसकी रचना ८०० ई० के आसपास हुई थी। यह महायान बौद्ध-सम्प्रदाय का ग्रन्थ है। इसमें लगभग ७०० ई० पू० से लगातार ७७० ई० तक के भारतीय इतिहास का वर्णन है।

प्रभाचन्द द्वारा रचित **'प्रभावकरचरित'** (१३वें शतक) में २२ जैन आचार्यों के जीवनचरित निरूपित हैं।

१४वें शतक के मेरुतुंगाचार्य द्वारा रचित **'प्रबन्धचिन्तामणि'** एक अर्ध-ऐतिहासिक चरित-काव्य है।

मैथिल कवि विद्यापति द्वारा लिखित **'कीर्तिलता'** नामक काव्य में मिथिला के तत्कालीन महाराज कीर्ति सिंह और महाराज शिव सिंह के राज्यकाल का इतिहास वर्णित है।

उन्नीसवीं शती के अन्त में प. अम्बिकादत्तव्यास ने मराठा केसरी वीर शिवाजी के चरितवर्णन हेतु **शिवराजविजय'** की रचना १२ निःश्वाक्षों में की।

भारतीय स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद २०वीं शती के नवमें दशक में विद्वन्मूर्धन्य काशी-निवासी आचार्य रेवाप्रसाद द्विवेदी द्वारा रचित

विभिन्न काव्य ग्रन्थों में **'स्वातन्त्र्यसम्भवम्'** ऐतिहासिक काव्य है। इसमें १८५७ ई० से लेकर १९८४ ई० तक अर्थात् झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई से आरम्भकर प्रियदर्शिनी इन्दिरा गाँधी के बलिदान पर्यन्त भारतवर्ष की महत्त्वपूर्ण राजनीतिक घटनाओं का काव्यात्मक वर्णन है।

पटना विश्वविद्यालयके संस्कृतविभागाध्यक्षचर डॉ. काशीनाथमिश्र ने **'कार्णाटराजतरङ्गिणी'** नामक ऐतिहासिक काव्य लिखा, जो १९९४ ई० में प्रकाशित हुआ। इसमें १०९७ ई० से लेकर १३२४ ई० तक मिथिला में शासन करने वाले कार्णाट राजाओं का शासनकाल मुख्य रूप से वर्णित है। यह काव्य कल्हण की **'राजतरङ्गिणी'** का अनुगामी है।

**सन्दर्भ-ग्रन्थ-सुची:-**


१. संस्कृत साहित्य का इतिहास- बलदेव उपाध्याय
२. संस्कृत साहित्य का इतिहास- रामजी उपाध्याय
३. संस्कृत साहित्य का इतिहास- वाचस्पति गैरोला
४. संस्कृत साहित्य का इतिहास- डॉ. ऐ.बि.किथ
५. संस्कृत साहित्य का अभिनव इतिहास- राधावल्लभ त्रिपाठी
६. संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास- रामजी उपाध्याय

# संस्कृत ग्रंथों का अन्य भाषाओं में अनुवाद

डॉ. अवंतिका कुमारी
सहायक प्राध्यापिका 'संस्कृत'
जगत नारायण लाल कॉलेज ,पटना

विश्व की सर्वप्राचीनतम और सुस्पष्ट भाषा के रूप में संस्कृत सर्वप्रमाणित है। सुसंस्कृत व्याकरण और वैज्ञानिक वर्णमाला से सुसज्जित संस्कृत भाषा ज्ञान रत्न का अथाह सागर है। ज्ञान के अपुल भंडार के फलस्वरुप ही संस्कृत ग्रंथ विद्वानों के लिए जिज्ञासा का विषय रहा है। मानव मूल्यों का ऐसा कोई ज्ञान नहीं, जो संस्कृत साहित्य में नहीं है। संस्कृत भाषा देववाणी है, अर्थात् देवताओं से उद्बुध है। संस्कृत वर्णमाला (माहेश्वर सूत्र) भगवान शिव जी के डमरु से निस्तृत है। यह दिव्य भाषा संस्कृत आर्यों की भाषा है। इसके दो रूप हैं, वैदिक एवं लौकिक। वेद, ब्राह्मण ,उपनिषद्, आरण्यक, वेदांग आदि वैदिक संस्कृत के अंतर्गत आते हैं। रामायण, महाभारत,कालिदास दण्डी भास आदि महाकवि की रचना लौकिक संस्कृत के अंतर्गत है।

**बीज शब्द**-संस्कृत ग्रंथ, संस्कृत भाषा का महत्व और अनुवाद।

अनुवादकारों की दृष्टि दोनों प्रकार की विधाओं पर रही है। सबसे प्राचीन ग्रंथ ऋग्वेद है, जिसका अनुवाद प्रायः विश्व के सभी भाषाओं में हुआ है। ऋग्वेद का सर्वप्रथम अनुवाद ब्रिटिश विद्वान होरेस हेमैन विल्सन ने किया था। जो १८५०ईस्वी में छः खण्डों में प्रकाशित हुआ।

ऋग्वेद का जर्मन में अनुवाद मैक्स मूलर ने १८५६ ईस्वी में वैदिक रीडर में किया। मैक्समूलर संस्कृत भाषा के अनुरागी थे। भारतीय संस्कृति के प्रति उनका विशेष लगाव था। उन्होंने अनेक धर्म ग्रंथो का जर्मन भाषा में अनुवाद किया है। १८३० ईस्वी में ऋग्वेद का आंशिक अनुवाद 'फैब्रिक अगस्त रोजन' द्वारा लैटिन भाषा में किया गया।

भारतीय विद्वान महर्षि दयानंद सरस्वती ने ऋग्वेद का हिंदी में अनुवाद किया। किंतु वह पूर्ण ना हो सका, असमय ही वह काल के गर्भ में समा गए। उनका यह अनुवाद उनके मरणोपरांत प्रकाशित हुआ।

' दिव्यप्रबंधन 'नामक पुस्तक में चारों वेदों का तमिल भाषा में संक्षिप्त रूप से अनुवाद किया गया है।

यह यजुर्वेद जो नाम से ही परिभाषित है, पूजा पाठ, यज्ञ-अनुष्ठान, कर्मकांड आदि का विधान करने वाला वेद। इस वेद का अनुवाद अरबी, असमिया, भोजपुरी, गुजराती, कन्नड़, मैथिली, मराठी, नेपाली तथा लौकिक संस्कृत में हुआ है। लाला लीला राम ने महर्षि दयानंद भाष्य का अध्ययन कर संपूर्ण यजुर्वेद के चालीस अध्यायों का उर्दू पद्य में अनुवाद किया। दुर्भाग्य से देश विभाजन के बाद वह उपलब्ध नहीं है।(१)

यजुर्वेद में दो शाखा है, कृष्ण और शुक्ल। कृष्ण यजुर्वेद दक्षिण भारत में प्रचलित है और शुक्ल यजुर्वेद उत्तर भारत में। राल्फ ग्रिफिथ ने शुक्ल यजुर्वेद का संस्कृत मंत्रों के साथ अंग्रेजी में अनुवाद किया था।

१०४० ई में उवत और १५५८ ई में महीधर ने शुक्ल यजुर्वेद पर भाष्य लिखे थे। के बापतशास्त्री ने ऋग्वेद यजुर्वेद और सामवेद का मराठी भाषा में अनुवाद किया, जो गजानंद बुक डिपो से प्रकाशित हुआ। तिलक प्रसाद लुइटेल ने वैदिक संस्कृति एवं संस्कृत साहित्य में यजुर्वेद का नेपाली भाषा में अनुवाद किया है ।'यजुर्वेद' नामक इस पुस्तक का प्रकाशक विद्यार्थी पुस्तक भंडार है।

दौलत राम गौड ने यजुर्वेद का बृहद् श्री शुक्ल यजुर्वेद संहिता नामक पुस्तक में हिंदी अनुवाद किया है। जो २००६ ईस्वी में श्री ठाकुर प्रसाद पुस्तक भंडार से प्रकाशित हुआ है ।एक हजार बाईस(१०२२) पेज का यह पुस्तक यजुर्वेद के वृहद रूप पर प्रकाश डालता है।

इस वर्ष जनवरी २४ मैं लक्ष्मी प्रकाशन से चारों वेदों का हिंदी अनुवाद प्रकाशित हुआ है।

फिलिप फोर्टुनाटोब सामवेद का रूसी भाषा में अनुवाद किया, जो १८८५ ईस्वी में प्रकाशित हुआ।

राल्फ ग्रिफिथ ने सामवेद का अंग्रेजी में अनुवाद किया,जो १८९३ ईस्वी मैं प्रकाशित हुआ।

साउथ एशिया बुक्स प्रकाशन के द्वारा १९८१ में चांद देवी ने 'द् सामवेद संस्कृत टेस्ट विथ इंग्लिश ट्रांसलेशन' नामक पुस्तक प्रकाशित किया

मृदुल कीर्ति द्वारा' सामवेद का हिंदी पठनुवाद 'नामक पुस्तक वर्तमान में प्रकाशित हुई है। जिसमें सामवेद का सरल बोधगम्य शब्दों में अनुवाद किया गया है। डॉ. तुलसीराम ने भी सामवेद का अंग्रेजी भाषा में अनुवाद किया है।

पंडित श्रीपाद ने वेदों को सरल सुगम हिंदी भाषा में 'संस्कृत में स्वयं शिक्षक पुस्तक माला 'का लेखन किया। इस लेखन के लिए उन्हें १९६८ ईस्वी में पद्म भूषण से सम्मानित किया गया है।(२)

मुगल काल में अकबर के शासन काल में इब्राहिम सरहिंदी द्वारा अथर्ववेद का फारसी में अनुवाद किया गया।

अकबर के शासनकाल में अनेक संस्कृत ग का फारसी में अनुवाद किया गया था।' रज्मनामा 'महाभारत का फारसी अनुवाद है। जिसका अर्थ होता है युद्ध का किताब।

१५७४ ईस्वी में अकबर ने फतेहपुर सीकरी में रामायण, महाभारत, राजतरंगिणी आदि संस्कृत ग्रंथों को फारसी में अनुवाद करने का आदेश दिया। संस्कृत धर्म ग्रंथो में रूचि के कारण फतेहपुर सीकरी में अनुवाद घर की स्थापना की।

इसके अलावा बदायूंनी ने रामायण का फारसी में गद्य और पद्य में अनुवाद किया। बदायूंनी का पूरा नाम मुल्ला अब्द-उल कादिर बदायूंनी था। उसका यह अनुवाद अकबर को इतना पसंद आया कि उसने अथर्ववेद

का भी अनुवाद करने का आदेश दिया।

इन ग्रंथो के अनुवाद ने ज्ञान- पिपासा और तीव्र कर दी। शाहजहां के पुत्र दाराशिकोह ने बनारसी पंडितों के सहयोग से ५२ उपनिषदों का फारसी में अनुवाद करवाया था उपनिषदों का फारसी अनुवाद 'सिर ए अकबर' में संकलित है।

'डायने डी सेल्सियस को'स्वयं लेखक संपादक और प्रकाशक थे। उन्होंने रामायण का फ्रेंच भाषा में अनुवाद किया। इस कार्य में उन्हें दस(१०) वर्ष लग गए। इस पुस्तक को उन्होंने छह सौ साठ (६६०) से अधिक लघु चित्रों से सुसज्जित किया है।

राजा राममोहन राय ने १८२० ईस्वी में ब्रह्म समाज की स्थापना की उन्होंने वेदों और उपनिषदों का बंगला भाषा में अनुवाद किया।

कुमारजीव नामक चीनी बौद्ध भिक्षुक एक महान अनुवादक थे। जो विशेष तौर पर बौद्ध ग्रंथों का चीनी भाषा में अनुवाद करने के लिए नियुक्त किए गए थे।

आज सारा संसार संस्कृत भाषा की महानताओं पर मोहित हैऔर यद्यपि अपनी जन्मभूमि भारत में ही उसको आज मृतभाषा के रूप में देखा जा रहा है ,तथापि एक महान भाषा का स्वामी होने के कारण विदेशों में भारत के सम्मान बढ़ता जा रहा है।(३)

चिन्मयानंद हिंदू धर्म और संस्कृति के महान् प्रशंसक थे। उन्होंने भागवत गीता, उपनिषद, वेदांत, दर्शन का हिंदी और अंग्रेजी में अनुवाद कर लोगों को इसमें छुपे गुढ़ रहस्ययों से अवगत कराया। उन्होंने देश-विदेश में वैदिक संस्कृति की अपूर्व गाथा का गुणगान किया।

छान्दोग्योनिषद का अंग्रेज़ी अनुवाद स्वामी लोकेश्वर आनंद ने साप्ताहिक प्रवचनों के माध्यम से किया। डॉ. मृदुल कीर्ति द्वारा उपनिषदों का हिंदी काव्य में रूपांतरण किया गया है।

मुनीन्द्र मिश्र ने भी उपनिषदों का अंग्रेजी भाषा में अनुवाद किया

था। उनके द्वारा अनुवादित उपनिषद पुस्तकों का नाम है-नारायण उपनिषद ,ह्यग्रीव उपनिषद ,जाबाल उपनिषद , देतरेय नृसिम्हा, पूर्व तैतरीय उपनिषद्, नृसिम्हा उत्तर तपनीय उपनिषद्, कौशिकी ब्राह्मण उपनिषद्, कुण्डिका उपनिषद् ,त्रिपुरा उपनिषद्, कौशितकी उपनिषद् आदि। यह सभी उपनिषद् किंडल प्रकाशन से प्रकाशित है।

आदि शंकराचार्य के मतानुसार उपनिषद् वेद का शोध ग्रंथ है। यह भारतीय आध्यात्मिकता का सबसे सुंदरतम पुष्प और परिपुष्ट फल है। भारतीय दर्शन का आधार उपनिषद् ही है। यह वैदिक साहित्य का वह भाग है जिसे आधुनिक युग में सर्वाधिक अध्ययन किया जाता है यही कारण है कि संस्कृत ग्रंथों में सर्वाधिक अनुवाद भी उपनिषद् ग्रंथों का ही हुआ है इसका ज्वलंत उदाहरण है-

112 UPANISHADS,(Sanskrit text English translation,An Exhaustive Introduction and Index of Verses) translate by board of scholar edited and revised by K.L Joshi ,O.N Bimali,Bindiya Trivedi.

इस महाग्रंथ के वर्तमान संस्करण में एक सौ बारह (११२) महत्वपूर्ण उपनिषदों का अनुवाद प्रतिष्ठित विद्वान् मंडल द्वारा अंग्रेजी में किया गया है। इस अनुवाद संकलन की मुख्य विशेषता यह है कि इसमें उपनिषद् श्लोकों की संपूर्ण सूची का विश्लेषण है। ईशावास्योपनिषद्, कठोपनिषद् सहित सभी उपनिषदों का इसमें अनुवाद है।

अनुवाद के इस क्रम में जब महाकाव्य की ओर बढ़ते हैं तो सर्वप्रथम आदि महाकाव्य रामायण और महाभारत की चर्चा होती है। वाल्मीकि रचित रामायण की लोकप्रियता और प्रसिद्धि उसकी रचनाकाल से ही चरम शिखर पर पहुंच गई थी। इसे आधार मानकर अनेक नाटक और महाकाव्य लिखे गए। मध्य युग के आते-आते रामायण प्रादेशिक तथा विदेशी भाषाओं के माध्यम से जन-जन तक पहुंच गया। तुलसीदास द्वारा

अवधि में रामचरितमानस लिखे जाने के उपरांत तो इसकी चौपाइयां घर-घर गूंजने लगी। भारतीय भाषाओं में हिंदी ,मराठी ,बांग्ला ,तमिल, तेलुगू, उड़िआ,सरल संस्कृत, गुजराती,मलयालम,कन्नड़ असमिया उर्दू अरबी फारसी आदि भाषाओं में रामायण का अनुवाद किया गया है।

विदेशी भाषाओं में तिब्बती तुर्किस्तान, इंडोनेशिया ,जावा बर्मा, थाईलैंड आदि देशों में, रामायण का प्रादेशिक भाषा में अनुवाद किया गया है। राम एक संप्रदाय विशेष के लिए नहीं अपितु समस्त मानव जाति के लिए एक आदर्श युग पुरुष है। राम समस्त आदर्शों के पर्याय हैं। विश्व के हर कोने में उनके चरित्रों का अपनी-अपनी भाषाओं में गुणगान होता रहा है।

महाभारत महर्षि व्यास की रचना है ।अपनी लोकप्रियता के कारण अनेक भाषाओं में रूपांतरित हो चुका है। किसारी मोहन गांगुली द्वारा महाभारत का अंग्रेजी भाषा में अनुवाद किया गया, जो १८८३ ईस्वी और १८५६ईस्वी के बीच कोलकाता प्रिंटिंग प्रेस से प्रकाशित हुआ। इस पुस्तक का नाम है- 'Mahabharata of Krishna Dwaipayan Vyasa.'

२१ वीं सदी में विवेक देवराय के द्वारा संपूर्ण महाभारत का अंग्रेजी में प्रथम बार अनुवाद किया गया। अमेरिका स्थित 'क्ले संस्कृत पुस्तकालय 'भी महाभारत की लोकप्रियता के फलस्वरूप अनुवाद कार्य में संलग्न है। ऑक्सफोर्ड क्लासिक ने भी महाभारत का अंग्रेज़ी अनुवाद किया, जो काफी प्रसिद्ध हुआ।

काशी रामदास ने १९वीं सदी में महाभारत का बंगला भाषा में प्रथम अनुवाद किया था। महाभारत का हिंदी अनुवाद गीता प्रेस द्वारा प्रकाशित किया गया है।

प्रसिद्ध संस्कृत विद्वान 'कोंडुल्लूर कुञ्जिक्कुट्टन् तम्पुरान्' ने महाभारत का मलयालम भाषा में अनुवाद किया। रामानुजाचार्य ने बीसवीं

सदी में महाभारत को तमिल भाषा में प्रकाशन किया था। इसके अलावा चीनी, रूसी और फारसी भाषा में भी महाभारत ग्रंथ का अनुवाद किया गया।

महाभारत का ही एक अंश'गीता' भारत ही नहीं संपूर्ण विश्व में सर्वाधिक प्रेरणादायक संस्कृत ग्रंथ है। जिससे सभी धर्म के अनुयायी प्रेरणा लेते हैं। संस्कृत ग्रंथों में सबसे अधिक पढ़ा जाने वाला ग्रंथ है प्रत्येक हिंदू घरों में यह अनिवार्य रूप से पाया जाता है।'ईस्ट इंडिया कंपनी के कोर्ट आफ डायरेक्टर्स के' आदेश पर चार्ल्स विल्किस द्वारा अंग्रेजी में रूपांतरित गीता १७८५ ईस्वी में प्रकाशित हुआ।

आर आर वर्मा द्वारा अंग्रेजी में लिखी गई,' द भागवत गीता' काफी प्रसिद्ध पुस्तक है।

१८९८ ईस्वी में पंडित जानकीनाथ नाथ मदन देहलवी ने गीता का उर्दू में अनुवाद किया। विश्व भर में गीता का पचहत्तर भाषा से अधिक भाषाओं में अनुवाद हो चुका है। अकेले गीता प्रेस में इसके पंद्रह भाषाओं में अनुवाद प्रकाशित हो चुके हैं।

अहमदाबाद के निवासी आशीष बारोट सत्ताइस भाषाओं में गीता का अनुवाद कर देश और राज्यों में वितरण कर चुके हैं। अमेरिका के सेटन हॉल विश्वविद्यालय में अनिवार्य पाठ्यक्रम के रूप में ,'गीता' पढ़ाया जाता है।

कालिदास का प्रसिद्ध नाटक 'अभिज्ञान शाकुंतलम्' न सिर्फ भारत वर्ष में अमर नाटक है ,अपितु संपूर्ण विश्व में इसकी ख्याति है। सर विलियम जॉन्स ने वर्ष १७८९ ईस्वी में इस नाटक का अंग्रेजी में अनुवाद किया। इस पुस्तक का नाम है-' Sacotala, the fatel Ring And Indian Drama.'

इसके अतिरिक्त जर्मन, फ्रेंच डेनिश और इटालियन भाषा में भी इस नाटक का अनुवाद किया गया।

ऋतु संहार का सर्वप्रथम अंग्रेजी में अनुवाद सत्यम् जयंती ने किया। जिसका प्रकाशन लंदन में विलियम एंड नोर्गेट प्रकाशन के द्वारा १८६७ ईस्वी में किया गया।

कालिदास की कृति मेघदूत भी विश्वप्रसिद्ध गीतिकाव्य है। जो साहित्य प्रेमियों को अपनी ओर सहसा आकर्षित करता है। विभिन्न संस्कृतविद्वानों के द्वारा इसका हिंदी टीका सहित प्रकाशन होता रहा है। विरही यक्ष की संदेश कथा इतनी लोकप्रिय रही है, कि इस काव्य पर सर्वाधिक टीका लिखी गई है।(४)

इसके अतिरिक्त अंग्रेजी गढ़वाली ,भोजपुरी ,मराठी आदि भारतीय भाषाओं में मेघदूत का अनुवाद किया गया है। प्रसिद्ध जर्मन कवि जोहन बोल्फ गांग फोन गोथे ने जर्मन भाषा में मेघदूत का पद्य में अनुवाद किया इस पुस्तक का नाम है' Meghaduta, Orderder Wolkenbole'।

संस्कृत काव्यों का अन्य भाषा में अनुवाद का मुख्य कारण है, संस्कृत भाषा संपूर्ण विश्व में सर्वाधिक सम्माननीय एवं प्राचीनतम है। ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में सर्वदा अग्रणी रहा है। ज्ञान-विज्ञान, चिकित्सा एवं मनोरंजन का अद्भुत संगम है। संस्कृत ग्रंथ नव रसों का आस्वादन कराता है। वेद के साथ-साथ लौकिक संस्कृत ग्रंथ भी साहित्य प्रेमियों के लिए कौतूहल का विषय है।

कालिदास विश्व प्रसिद्ध कवि हैं तो महाकवि भास की कृति भी पाठकों को आह्लादित करती है। भास के तेरहों नाटक का अंग्रेज़ी अनुवाद एक पुस्तक में है पुस्तक का नाम है 'Thirteen play of Bhasa'. इस पुस्तक के लेखक है ए सी वूलनर और लक्ष्मणस्वरूप। यह पुस्तक मोतीलाल बनारसी दास प्रकाशन से २०१५ ईस्वी में प्रकाशित हुई है।

सेतु प्रकाशन समूह द्वारा 'भास नाट्य समग्र नामक पुस्तक में 'भारत रत्न भार्गव' का अनुवाद प्रकाशित किया गया। जो भास के समस्त

नाटकों का संकलन है।

भारत को विश्व गुरु के आसन पर विराजमान करने का श्रेय' संस्कृत भाषा' को ही है। आज पुनः उस गौरव को प्राप्त करने में संस्कृत ग्रंथ ही सहायक है। भारतीय ज्ञान परंपरा में संस्कृत भाषा एक विशाल स्तंभ है। जिस पर भारतीय संस्कृति का गौरव स्थिर है। भारतीय संस्कृति की गौरव से आकर्षित होकर ही पाश्चात्य विद्वान संस्कृत ग्रंथों का निरंतर अध्ययन कर रहे हैं। सभी वैदिक धर्मग्रंथ, उपनिषद्, पुराण,नीतिशास्त्र,अर्थशास्त्र,दर्शनशास्त्रआदि षोडश विधाओं की रचना संस्कृत भाषा में ही है।

संस्कृत भाषा से ही प्राकृत, पाली, हिंदी, बांग्ला, मराठी, सिंधी, पंजाबी, नेपाली आदि आधुनिक भारतीय भाषाओं का विकास हुआ है। विभिन्न पत्रिकाओं में संस्कृत रचनाओं का अनुवाद प्रकाशित होता रहा है।

इस प्रसंग में अति विचारणीय तथ्य है कि संस्कृत धर्म ग्रंथो का यथा रामायण आदि का अन्य भाषाओं में अनुवाद किया गया, किंतु तथ्यों को मरोड़ कर। रूपांतरण काव्य में वह मौलिकता प्राप्त नहीं होती, जो मूल संस्कृत ग्रंथों में है। कहीं-कहीं काल्पनिक तथ्यों को जोड़कर भारतीय संस्कृति पर प्रहार किया गया है। सर्वविदित है भारत माता शतकों वर्ष गुलामी की जंजीरों में कराहती रही। मुगलों और ईसाइयों के कुसंस्कृतियों से शोषित हुई। उस अवथि में जिन धर्मग्रंथो का अनुवाद हुआ उसमें अनेक और असामाजिक तथ्यों का प्रवेश किया गया। भारतीय संस्कृति को खोखला करने के लिए एक षड्यंत्र रचा गया। मैक्समूलर की एक पुस्तक है,,' इंडिया व्हाट कैन आई टीच अस' इस पुस्तक में उन्होंने अपनी पत्नी जॉर्जिया से कहा है- भारत के विरुद्ध लिखने के लिए उन्हें विवश किया जाता था।

अपनी दूषित मस्तिष्क की छाप उन्होंने भारतीय संस्कृति पर छोड़ने का असफल प्रयास किया। किंतु भारतीय संस्कृति की जड़ें हिला ना

पाया। संस्कृत संस्कारों की भाषा के रूप में प्रतिष्ठित रही ।ज्ञान विज्ञान के क्षेत्र में अपने स्थान पर अडिग रही हैं।

संस्कृत ग्रंथों की अनुवाद की गतिमयता निरंतर गतिमान है। संस्कृत भाषा ग्रंथों का महासमुद्र है। जिसमें अनेक रत्न रूपी ग्रंथ बिखरे पड़े हैं। संस्कृत ग्रंथों की अनुवाद सूचीमाला अगणनीय है। जिसे सीमित पृष्ठों पर अंकित करना दुर्लभ ही नहीं महा दुर्लभतम है। मेरा प्रयास मात्र मुष्टी भर रत्न तक ही सीमित रह गया।

**संदर्भ-ग्रंथ-सूची-**

१. मनुस्मृति मेघा तिथि टीका
२. मैक्स मूलर: इंडिया व्हाट कैन इट टीच अस
३. डॉ भागवत शरण उपाध्याय: प्राचीन भारत का इतिहास
४. संस्कृत साहित्य का इतिहास: वाचस्पति गैरोला
५. जयचंद्र विद्यालंकार- भारतीय इतिहास की रूपरेखा
६. पंडित भगवत दत्त : वैदिक वाङ्मय का इतिहास
७. कामिल बुल्के: राम कथा
८. बाल गंगाधर तिलक: गीता रहस्य
९ रामनारायण बेनी प्रसाद: अभिज्ञान शकुंतलम्

**पाद टिप्पणी :**

१. संस्मरण और श्रद्धांजलि विद्या भीमसेन शास्त्री भैमी प्रकाशन
२. दैनिक जागरण 19/ 9/ 24 अंक (अंतिम पृष्ठ)
३. संस्कृत साहित्य का इतिहास चौखंबा प्रकाशन
४. पूर्व मेघदूत एक मूल्यांकन : डॉ. बच्चन देव एवं छवी नाथ मिश्रा

# Indian Philosophy and its Influence on World Peace

Mulye Vishvesha Vidyadhar[a], Dr.Kalyani Kale[b]
[a]Research scholar, VNIT, Nagpur, India

**Abstract-**

In 2022, we witnessed the Russia-Ukraine war, which some have suggested marks the beginning of World War 3. Following that, we experienced the Israel-Hamas conflict in 2023, resulting in the deaths of 21,978 people, with over 2000 fatalities in Israel. It is crucial to contemplate how these wars can be prevented and what kind of conduct should be avoided to maintain peace. Everyone should adhere to the guidelines established for world peace. However, rules alone cannot bring about a change; the desire to uphold peace must come from within individuals. The solution can be found in our philosophical texts, which advocate against resorting to war. Ordinary people aspire for a happy and peaceful life and it is not too late to achieve that. In this research paper, I will present Indian philosophical principles that inadvertently promote the message of world peace, principles which our saints and sages adhered to and spread to encourage peace. In this, I have highlighted the message of peace that can be attained through philosophical principles such as self-knowledge, karma, liberation etc. And if we embrace the Indian philosophical principles, it won't take long for this Earth to become heaven. The methodology used for this research paper is normative approach.

## Introduction-

When the Sustainable Development Goals (SDG) were implemented after the end of the Millennium Development Goals (MDG) era, its goals were expanded. The 16th goal of the SDG is very important, focusing on

peace, justice, and strong institutions, with a target to reduce violence. The SDG was initiated in 2015. Despite the presence of SDGs, conflicts such as Israel-Hamas and Russia-Ukraine have continued to occur, leading to ongoing tensions. This indicates that having goals or targets alone will not end wars. The current situation suggests that the risk of a Third World War is imminent. To avoid this, internal peace is essential as external peace. Every person should desire to end conflicts, otherwise, situations like those in India will arise, where anyone can come, rule, and leave, and no one will be left to resist in the name of non-violence. In this context, I am proud of the people of Ukraine for standing up for their country, using whatever strength they had to defend their motherland.

World War II is known as the deadliest war in human history. The primary reasons for this war were to acquire land from other countries or to establish dominance over them. We all know that the United States dropped two atomic bombs on Japan, which caused immense suffering for the country for many years. Sadly, similar situations persist today, showing that people have not changed since World War II. In 2022, there was a war between Russia and Ukraine, followed by the Hamas war. The Russia-Ukraine war began because Ukraine wanted to join NATO, but Russia opposed this idea and subsequently attacked Ukraine. It's essential to consider that no single party is solely at fault in these conflicts; rather, everyone involved has contributed in some way. Additionally, European countries have also played a role in these wars. The root causes of these conflicts are often attributed to ego, greed, and selfishness.

India has rich philosophical tradition. That is why some concepts from philosophy can be useful for world peace. If everyone understands them, there will be no delay in spreading peace in the world. We know very well that

our Vedas and religious scriptures talk about peace. "Live yourself and let others live"—this is what our culture has been based on until today. Lord Krishna says in the Bhagavad Gita —

**yasmānnodvijate loko lokānnodvijate ca ya:|**
**harṣāmarṣabhayodvegairmukto ya: sa ca me priya:||**

I am here to present some elements of those philosophies that provide us with a message of world peace. By internalizing these teachings, not only will every individual's life be filled with happiness, but it will also create an atmosphere of peace in the world.

**Philosophy**

Indian philosophy (Darshan) aims to understand the world we live in and at the heart of this understanding lies the concept of tattva, also known as darshan. The word tattva is derived from the root "दृश्", which means "the one through which it is seen". It represents the idea that "tad" (it) means " tvaṃ " (you), signifying that the world and the soul are separate, and the soul belongs elsewhere. In other words, the ultimate goal of human life is to understand and assimilate the principle of tattva, which can lead to salvation. We find many subjects of philosophy in Vedas, Puranas, Upanishads, Vedangas and literature. That is why we can say that this philosophy is very ancient.

Indian philosophy is divided into two main categories: theistic and atheistic. Although they may not accept the Vedas, their ultimate goal remains the same: liberation (mokṣa). The theistic philosophies include Yoga, Samkhya, Nyaya, Vaisheshika, Vedanta and Purva Mimamsa. The atheistic philosophies encompass the Cārvāka, Buddhiṣṭa, and Jain traditions. Everyone has described the philosophy of principles (tattvamīmāṃsā), the philosophy of knowledge (jñānamīmāṃsā), and the philosophy of conduct (ācāramīmāṃsā) in their own way. In all of these, we observe both differences and similarities.

Since they are based on spirituality, there is a tendency towards the complete eradication of actions (karma). And, as a result of the eradication of karma, liberation from rebirth is achieved. Based on this principle, everyone has presented their own views, leading to the development of various distinctions. The main idea of philosophies is to recognize the self (ātman). The self is pure and unaffected by everything else. It never lets you stray. However, when you identify with other things and become entangled in them, you cannot achieve true happiness. All branches of philosophy aim to convey this message. In this context, apart from brahman, prakṛti, and the atom, other elements involved in creation attract humans. Philosophy teaches us how to distance ourselves from these distractions. The common teaching across all philosophies is to learn to distinguish between the two: the self (ātman) and the non-self (anātman). The self is separate from the non-self.

**Steps follow to attain Liberation-**

When a person is born, they are pure, innocent, and untainted. However, as they engage with the world, they begin to be influenced and corrupted by it. Their intellect, mind, and senses start to wander. This is why the Sāṃkhya philosophy states that when Puruṣa (consciousness) and prakṛti (nature) unite, the creation of the universe takes place. When you recognize Puruṣa (the soul) and prakṛti (nature), only then will you be freed from the three types of suffering. But how will you recognize this Puruṣa, the soul, since it cannot be seen through direct evidence? For this, the technique described by Śaṃkarācārya is very effective. In the text ātmanātmaviveka he explains that what you perceive as the soul—such as the senses, mind, intellect, and ego—is not the true soul. The soul is distinct from these, and when you recognize it, suffering will not arise. The Naiyāyika (followers of the Nyaya philosophy) say

that you should learn to interpret things correctly and recognize the true nature of objects. By doing so, you will attain "niśreyasa" (ultimate bliss), and as a result, suffering will not come near you.

Yoga and Vedanta philosophy have outlined steps for us to reach this state, which we can follow one by one to achieve our higher state. Patanjali tells us about the eight limbs of yoga, which guide us from Yama to Samādhi. The Yamas mentioned here help in the development of humanity within a person. After that, we must follow certain rules (niśreyasa). In this way, gradually, we must master each limb. Only by properly following all these limbs can we reach the state of Samādhi. Before starting this journey, the Vedantists motivated us through the concept of śamādī ṣaṭ explaining how we first need to focus and stabilize the mind so it doesn't wander. Once the mind is controlled, it becomes easier to control the senses. Although we can hold this control for a short time, to maintain it permanently, continuous practice is essential. This is why the practices of 'Śravaṇa' (listening), 'Manana' (reflection), and Nididhyāsana (meditation) are emphasized. However, while following this path, life brings many ups and downs, and we may feel defeated or want to give up. For this reason, the quality of "Titīkṣā" (endurance or forbearance) is taught to help us persevere. And then, when the mind becomes fully stable in what we aim to achieve, and we experience happiness from that state, it is called Samādhāna (concentration or contentment). For this, our faith (Shraddhā) is essential; otherwise, the mind may wander.

**Reasons of conflict-**

Russia feels that NATO is trying to encircle its country. And Ukraine does not want to remain aligned with Russia, which is why it has been trying hard to join NATO

nations. This did not sit well with the Russian President, and he initiated attacks. Russia is afraid here. It's concerned that all these forces might come together and weaken it. There's already a conflict between European countries and Russia. Everyone wants to dominate the world. We can't blame anyone for this, but we can definitely say that if the world embraces Indian philosophy, people won't get trapped in the material world. It is because they get trapped in it that they have to face greed, hatred, attachment, and envy. Consciously or unconsciously, Indian philosophy gives us a message of peace and shows everyone the way to live happily. But it is essential for everyone to internalize this. Only then will an atmosphere of peace be created. Otherwise, one nation will take advantage of another nation's weaknesses, and once again, the people will have to face hard times. For this, the entire world must embrace the concept 'The whole world is my home,' as taught by Saint Dnyaneshwar.

**Conclusion-**

In the Indian thought systems, the goal of knowledge is not exercise of power over others but power over one self.[1] 'mokṣaprāpti', libration of the self from it's own limitations or constraints. If we apply this to our lives, then recognizing ourselves would take a lifetime. As a result, we wouldn't be able to focus on other things, which would prevent situations of conflict, disputes and war from arising. In Indian philosophy, only if you set aside your ego can you reach the soul. And only when you recognize who the soul is can you truly be happy and distance yourself from the material world. The main purpose of Indian philosophy is to avoid getting trapped in this material world. The more you get entangled in it, the more suffering you will have to endure. If every person in the world

[1] Indian Knowledge System- Introduction & Prospects

internalizes this, they would be able to prevent their senses from wandering. This would curb the ego, hatred, and envy that arise as a result. Which would lead to the creation of peace. A feeling of love towards one another would arise, and the situation of war would never occur.

## References-

1) Bhagavatgītā
2) Ātmanātmaviveka - Śrīmad Śaṃkarācārya
3) Sāṃkhyakārikā - īśvarakṛṣṇa
4) Dixit, Shrinivas (2015), Bharatiya Tattvagyana (Kolhapur : Fadake Publication)
5) Pandit Gaund, Jwala Prasad, (2004) Sankhyatatva kaumudi (Varanasi : Choukhamba Surbharati Prakashan)
6) Dr. Mishra, Aadyaaprasad (1999), Sadanand pranit Vedantsar (Ilahabad : Akshayvat prakashan)
7) Dr. Pandey, devendranath, Shri Ishvarkrishna virachit Sankhyakarika ( Jaipur : Jagdish Sanskrit Pustakalay)
8) Aayyangar, B.K.S., Patanjali Yog Sutra (Delhi : Prabhat Prakashan)
9) Kurhekar Shreyas (2024) Indian Knowledge System- Introduction & Prospects (Maharashtra : H.V.P. Mandal)
10) Apte, V.S. (1997), Sanskrit – Hindi Dictionary (Delhi : Motilal Banarsidass)

**Web Sources-**

https://sanskritdictionary.com
https://en.wikipedia.org/wiki/Moksha
Russo-Ukrainian War - Wikipedia

# आयुर्वेद और पारम्परिक चिकित्सा में संस्कृत

Dr. Jaysuryaben B. Sodha
Assistant Professor, Department of Sanskrit
N.S. Patel Arts (Autonomous) College, Anand
Gujarat, India

**आयुर्वेद शब्द का अर्थ एवं परिभाषा-**

शरीर, इन्द्रियम, मन और आत्मा के संयोग को 'आयु' कहते है।[1] विकारात्मक एवं आत्मा के भोगायतन को शरीर कहते हैं। श्रोत्र-त्वचा-नेत्र-जिह्वा और ध्राण ये ज्ञानेन्द्रिया कहलाती है, वाणी- हाथ- पैर- मलद्वार और मूत्रमार्ग ये पञ्च कर्मेन्द्रिया है। ज्ञान एवं कर्म दोंनो होने के कारण मन उभयात्मक इन्द्रिय कहलाता है। ज्ञान का अधिकरण तथा ज्ञान का प्रतिसन्धाता आत्मा होता है। इन शरीर, इन्द्रिय, मन, एवं-आत्मा का अद्‌ष्टवश (भाग्यवश) जो संयोग होता है, वही संयुक्त स्वरुप आयु का स्वरुप है। चैतन्य की स्थिति को आयु कहते है- **'चैतेन्यानुर्वतन-मायुः।'** जीवितकाल को आयु कहा जाता है- **'आयुजीर्वितकालः' (अमरकोष २/८/१२०)** आयु के पर्याय : आयु, धारि, जीवित, नित्यग और अनुबन्ध ये आयु के पर्याय है। समान अर्थ बतानेवाले शब्दों को पर्याय कहते है।

वेद शब्द का अर्थ है- ज्ञान। संस्कृत के विद् धातु से वेद शब्द बना है। विद् धातु का प्रयोग चार अर्थो में किया जाता है[2]-

1) **सता (अस्तित्व) , 2) ज्ञान 3) विचार और 4) प्राप्ति**

अर्थात्

१) जिससे असितत्व का बोध हो (विधते अस्ति)

२) जिससे जाना जाये ( वेत्ति ज्ञायते )

---

[1] च.सू – १/४२

[2] सतायां विधते, ज्ञाने वेति, विन्ते विचारणे।

३) जिससे आयु के विषय में विचार किया जाये (विन्ते विचार्यते)

४) जिससे आयु को प्राप्त किया जाये ( विन्दते, विन्दति लभ्यते)

इन चार अर्थो में विद् धातु प्रयुक्त होता है। इस प्रकार, आयुर्वेद का अर्थ बुद्धिगम्य होता है कि, जिस शास्त्र में आयु का अस्तित्व हो , जिससे आयु का ज्ञान हो, जिसमे आयु समबन्धी विचार हो, जिससे आयु की प्राप्ति हों, उस शास्त्र को आयुर्वेद कहते है।

- आयुर्वेद, शाखा, विधा, सूत्र, ज्ञान, शास्त्र, लक्षण और तन्त्र ये शब्द एक अर्थ के बोधक है।

**'तत्र आयुर्वेदः शाखा, विधा, सूत्रं, ज्ञानं, शास्त्रं, लक्षणं तन्त्रमित्यनर्थान्तरम्'- च.सू. ३०/३१**

विन्दते विन्दति प्राप्तो , रयन्-रनम्-शेष्विद् क्रमात् ॥

**परिभाषा-**

जिस शास्त्र में (1) हितायु (2) अहितायु (3) सुखायु (4) दुःखायु इन चार प्रकार की आयुओं का वर्णन, आयु के लिए हितकर तथा अहितकर द्रव्य, गुण एवं कर्म का वर्णन, आयु के प्रमाण का विवेचन और आयु के स्वरुप का वर्णन किया जाता है, उसे आयुर्वेद कहते है।[1] आयुर्वेद शास्त्र आयु की व्याख्या करता है, दीर्घ और आरोग्यमय आयु की प्राप्ति का मार्ग निर्दिष्ट करता है। आयु की स्थिरता और स्वास्थ्य- संरक्षण एवं व्याधि-परिमोक्षण का यह शास्त्र है।

**आयुर्वेद का प्रयोजन-**

'प्रयोजनं चास्य स्वस्थस्य स्वास्थ्यरक्षणम्, आतुरस्य विकार प्रशमनं च।

-च.सू ३०/२६

---

[1] च.सू– १/४१ तथा च.सू ३०/२३

**'इह खल्वायु र्वेदप्रयोजनं व्याध्युपसृष्टानां व्याधि-परिमोक्षः स्वस्थस्य रक्षणं च। -च.सू १/१४**

आयुर्वेद के दो प्रयोजन हैं- 1) स्वस्थ व्यकित के स्वास्थ्य की रक्षा करना और 2) रोगी व्यकित के रोग को दूर करना। प्रथम उदेश्य की पूर्ति हेतु दिनचर्या, रात्रिचर्या, ऋतुचर्या सद्वृतं तथा त्रिविध उपस्तमों का उल्लेख स्वस्थवृत के माध्यम से आयुर्वेद में पदे- पदे किया गया है। महर्षियो की मान्यता है कि उपर्युक्त उपायो द्वारा क्षेत्रे-रुपी मानव शरीर को बीजरुपी व्याधि-उत्पादक जीवाणुओं से सुरक्षित किया जा सकता है। रोग से ग्रस्त होने पर रोगी के कष्ट का निवारण संशोधन तथा संशमन चिकित्सा द्वारा आयुर्वेद शास्त्र का द्रितीय प्रयोजन है।

**आयुर्वेदावतरण-**

चरक ने आयुर्वेद को अनादि एवं शाश्वत कहा है क्योंकि जब से 'आयु' (जीवन) का प्रारम्भ हुआ और जब से जीव को ज्ञान हुआ तभी से आयुर्वेद की सता प्रारम्भ होती है।[1] सुश्रुत ने यहाँ तक कहा है कि ब्रह्मा ने सृष्टि के पूर्व हो आयुर्वेद की रचना की[2] जिसमे प्रजा उत्पन्न होने पर इसका उपयोग कर सके। इससे भी आयुर्वेद का अनादित्व सिद्ध् होता है। सभी संहिताकारों ने ब्रह्मा से आयुर्वेद का प्रादुर्भाव बताया है तथा यह भी कहा गया है कि ब्रह्मा ने आयुर्वेद की लक्षश्लोकमयी संहिता का निर्माण किया। यह सब भी सृष्टिकाल से ही आयुर्वेद के अस्तित्व की सूचना देते हैं।

चरक के कथानुसार ब्रह्मा से आयुर्वेद का ज्ञान दक्ष प्रजापति ने प्राप्त किया, प्रजापति से अश्विनी कुमारो ने और उनसे इन्द्र ने उस ज्ञान को ग्रहण किया[3] इन्द्र ने भरद्धवाज को सूत्ररूप में ब्रह्म- परम्परा से प्रवाहित शाश्वत, त्रिसूत्र तथा स्वस्थानुरपरायण आयुर्वेद का उपदेश दिया। भरद्धवाज

---

[1] च.सू – ३०/२६

[2] सु.सू – १/३

[3] च.सू – १/४-५

ने यह ज्ञान आत्रेय आदि महर्षियों को दिया। आत्रेय ने पुनः अपने छः शिष्यों- अग्निवेश, भेल, जतुकर्ण, पराशर, हारीत, क्षारपाणि को दिया। जिन्हों ने अपनी-अपनी संहितायें बनाई। इनमें अग्निवेश- संहिता सर्वप्रथम। ये संहिताये ऋषि- परिषद् द्वारा अनुमोदित होने पर लोक में प्रचलित हुई।[1]

सुश्रुतसंहिता में भी आयुर्वेदावतरण का ऐसा ही क्रम वर्णित है केवल आत्रेय के स्थान पर धन्वन्तरि का नाम आया है। इन्द्र से धन्वन्तरित ने आयुर्वेद का ज्ञान प्राप्त कर अपने शिष्यों सुश्रुत प्रभृति को इसमें शिक्षित किया।[2]

चरकसंहिता तथा सुश्रुतसंहिता में वर्णित आयुर्वेदावतरण के क्रम क्रमशः आत्रेय संप्रदाय तथा धन्वन्तर- संप्रदाय कहलाते है। ब्रहमवैवतपुराण (अ.१६) में एक और संप्रदाय का उल्लेख है जिसे भास्कर- संप्रदाय कह सकते है। इसके अनुसार प्रजापति ने चारो वेदों को देखकर आयुर्वेद का पञ्चम वेद बनाया और उसे भास्कर को दिया। भास्कर ने उस आधार पर अपनी स्वतन्त्र- संहिता (भास्कर संहिता) का निर्माण किया और आयुर्वेद का ज्ञान अपने १६ शिष्यों में वितरित किया जिन्हो ने पुनः अपनी-अपनी संहितायें बनाईं। इन शिष्यों तथा उनकी रचनाओ का विवरण इस प्रकार हैं-

1) धन्वन्तरि- चिकित्सातत्वविज्ञान
2) दिवोदास- चिकित्सादर्पण
3) काशिराज- चिकित्साकौमुद्दी
4) अश्विनीकुमार- चिकित्सासारतंत्र
5) नकुल- वैधकसर्वस्व
6) सहदेव- व्याधिसिंधुविर्मदन
7) यम- ज्ञानार्णव

---

[1] च.सू – १/४/३

[2] सु.सू – १/२;१६

8) च्यवन- जीवदान
9) जनक- वैधसन्देहभंजन
10) बुध- सर्वसार
11) जाबाल- तन्त्रसार
12) जाजलि- वेदांगसार
13) पैल- निदान
14) कवध- सर्वधर
15) अगस्त्य- द्वैधनिर्णय

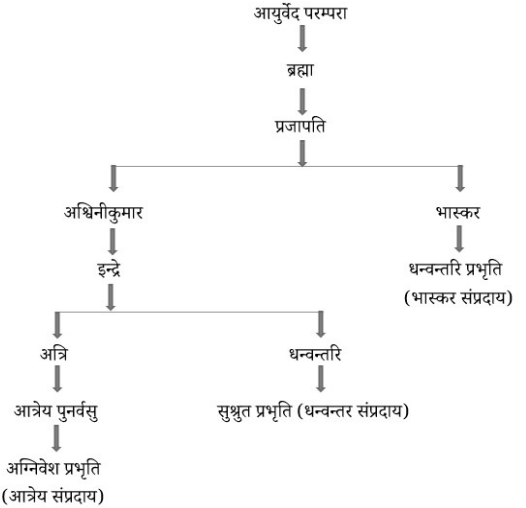


**आयुर्वेद का वैशिष्ट्य-**

संस्कृत और आयुर्वेद का सम्बन्ध अतूट है, अर्थात् आयुर्वेद को जानने के लिए संस्कृत का ज्ञान आवश्यक ही है। बिना संस्कृतभाषा के आयुर्वेद और पारम्परिक चिकित्सा सिद्धान्त को पढ़ना और समजना नामूमकिन है। और हा, संस्कुत वाङ्मय में आप जहाँ भी देखोगे वहाँ पर आयुर्वेद के दृष्टांत आपको निश्रितरूप से दिखाई देंगे।

आयुर्वेद ऐहलौकिक और पारलौकिक उभयविध श्रेय का साधक

शास्त्र है- **'अत्रायतमैहिकमामुष्मिकञ्च श्रेयः'(सु.सू-१)** अर्थात् आयुर्वेद पंचविशति तत्वात्मक पुरुष की सर्वाङ्गीण चिकित्सा का उपदेष्टा है। आयुर्वेद की सीमा का रेखाङ्कन नहीं किया जा सकता, क्योकि यह सृष्टि के सर्वोत्कृष्ट प्राणी मानव के हित का प्रवर्तक विज्ञान है, इनमें सभी प्रकार के धर्म, दर्शन, कला, संस्कृति, शिल्प, स्थापत्य, एवं समस्त ज्ञान-विज्ञान का समावेश है, यह असीम है। **' न चैव ह्यस्ति सुतरामायुर्वेदस्य पारम्'- च.वि. ८** त्रिकालज्ञ आर्ष महर्षियों ने आयुर्वेद की अनेक शाखा- प्रशाखाओं का विस्तार किया। आयुर्वेद, मानवार्वेद, वृक्षार्वेद और पश्वायुर्वेद आदि अनेक शाखाओं में विस्तीर्ण है, जिन सबका मूल्यांकन एक स्वतन्त्र विषय है। अपरिमित अगाध ज्ञान- निधि के रूप में आयुर्वेद की जीवनदायिनी धारा का स्त्रोत सृष्टि के आदि से ही प्रवाहित है, जिसके शीतल, स्निग्ध, अमृतनिष्यन्द में अवागहन (स्नान) कर आजीवन आरोग्य और सुन्दर स्वास्थ का वरदान प्राप्त किया जा सकता है। आरोग्यमय रोगमुक्त जीवन की उपलब्धि के लिए ये श्लोक ज्ञेय हैं-

**1) 'मतिर्वचः कर्म सुखानुबन्धं सत्वं विधेयं विशदा च बुद्धिः।**
**ज्ञानं तपस्तत्परता च योगे यस्तास्ति तं नानुपतन्ति रोगाः॥ ' च.शा. २/४७**

**2) 'तत्र अहिंसा प्राणिनां प्राणवर्धनानाम् उत्कृष्टतमं,**
**वीर्य बलवर्धनानां विधाबृंहणानाम्, इद्धियजयो नन्दनानां,**
**तत्वावबोधो हर्षणानां ब्रहमचर्यम् अयनाम् इति एवं आयुर्वेदविदो मन्यन्ते। च.सू. ३०/१५**

**उपसंहार-**

आयुर्वेद में धर्म, कला, विज्ञान एवं साहित्य आदि समस्त ज्ञान समाहित है। आयुर्वेद स्वयमेव वेद है। जीवन-सुख की उपलब्धि, आयु के हित, शरीर-इन्द्रिय-सत्व-आत्म संयोगरूपी जीवन के सौन्दर्य भव्यता, और ऐश्वर्य के लिए प्रस्तुत ज्ञानराशि आयुर्वेद है। यह ज्ञान का अगाध पयोधि है, यह आकाश की तरह सुविशाल है, यह अनादि और अनन्त है। यह

जीवन का शास्त्र है, इसकी ज्ञानगङ्गा शास्वत रूप से प्रवाहित होती रही है। इसलिए चिकित्सा- जगत् कै चैतन्तन ज्ञान-भण्डार को, विश्व में प्रचलित नूतन रमणीय जीवनोपयोगी ज्ञान से नीर- क्षीर विवेक बुद्धि का प्रयोग कर, सात्मीकरण- प्रकिया से समृद्ध करना चाहिए।

**संदर्भ-ग्रन्थ-सूची-**

1) आयुर्वेद का इतिहास एवं परिचय, डॉ. विधाधर शुक्ल & डॉ. रविदत त्रिपाठी, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, १९९७
2) आयुर्वेद का वैज्ञानिक इतिहास, आचार्य प्रियव्रत शर्मा, चौखम्बा ओरियन्लिया, वाराणसी, १९७५

# संस्कृतसाहित्ये वैज्ञानिकसिद्धान्तविमर्शः

Dr. HARDIK G. JOSHI
Assistant Professor (Sanskrit)
Government Arts & Commerce college Babra
Dist. Amreli, Gujarat, India

अयि भोः संस्कृतानुरागिणः, विगतमत्सराः, सारज्ञाः विद्वांसः सर्वेभ्यो नमो नमः।

**"संस्कृतसाहित्ये वैज्ञानिकसिद्धान्तविमर्शः।"**इतीमम् विषयं अवलम्ब्य यथामति कालानुगुणं वक्तुकामोस्मि।

भासि रतिः भारती तन्नामको देशः भारतम्। सनातनम् आर्षज्ञानमेव भारतीयानाम् अमूल्यं संपदस्ति। तच्च ज्ञानं संस्कृतभाषायां निबद्धमस्तीति संस्कृतं विना भारतीयसंस्कृतेः परिरक्षणं शून्यं भवेत्। किमर्थं चेत्।

**प्रास्ताविकम्-**

संस्कृतभाषा सर्वासामपि भाषाणां जननी अस्ति। अस्माकं ज्ञानज्योतिः पुञ्जपावनप्रदीपो वेदः संस्कृतभाषायामेव संशोभते। अतः अस्याः आदिभाषात्त्वं स्वत एव सिद्धम्। संस्कृतभाषा तान् सर्वान् अपि गुणान् बिभर्ति ये हि कस्याश्चन भाषायाः सर्वजीवनत्वाय सार्वभौमत्वाय च काम्यन्ते ।

संस्कृतभाषा भारतीयानां अनुपमम् अक्षयं पैतृकंधनम् । यावदेतद् धनं भारतमधिकरोति न कोऽपि देशस्तावत् देशमिमं ज्ञानेऽधरीकर्तुं प्रभविष्णुः । अस्याः भाषायाः शब्दसौष्ठवम् अर्थगाम्भीर्यञ्च जगति उत्तमं विद्यते । संस्कृतभाषायाः सम्यग् ज्ञानं **वेदोपनिषद्दर्शनगीता-रामायण-श्रीमद्भागवतादिभ्यो** ग्रन्थनिर्झरिभ्यो अतीव सूक्षतया प्रतिपादितमस्ति ।

**संस्कृतवाङ्मये विज्ञानम्-**

न केवलं लौकिकेषु, तात्त्विकेषु क्षेत्रेषु च अस्मद् पूर्वजाः बहुयत्नं

कृतवन्तः अपितु विज्ञानक्षेत्रेऽपि बहुचिन्तनं कृतवन्तः। अन्यत्र संस्कृतेः बीजावापः अपि यदा न जातः तदा भारते संस्कृतिः सुविकसिता। संस्कृतवाङ्मये
कपिलमुनिः,आर्यभट्टः,धनवन्तरिः,विश्वकर्मा,सुश्रुतः,नागार्जुनः,भास्कराचार्यः, वराहमिहिरः, पिप्पलादः, पुलत्स्यः, कणादमहर्षिः, वामदेवाख्याः नैके ऋषयः,महर्षयः,सिद्धाः सर्वोत्कृष्टाः वैज्ञानिकाः समभवन्।

**प्रथमे द्वितीये च क्रिस्तशके भारते रसायन-भौतिक-खगोल-गणित-कृषि-जीव-वायुयान-ज्यौतिषभूगर्भाद्यनेकानि** शास्त्राणि विकासं गतानि आसन् एव।

सङ्गणकयन्त्रस्य मूलं भगवान् पाणिनिः सर्वप्रथमं पाणिनिमहर्षिणा आद्या संस्कृतवर्णमाला निर्मिता। (NATURAL LANGUAGE PROCESSING- NLP) एतन्निर्माणादेव भाषाणाम् उत्पत्तिः सुयोग्या अभवत्। सांप्रतकाले वयं ANESTHESIOLOGY शस्त्रक्रिया (SERGORY) ब्रूमः तत् सर्वप्रथमम् अस्माकं सुश्रुताचार्यः स्वग्रन्थे सुश्रुतसंहितायां मर्मविद्यारूपेण उदाजहार ।

**संस्कृतसाहित्ये गाणितिकं विज्ञानम्-**
(Mathematics in Sanskrit)

गणितविषये महात्मना **आर्यभट्टेन** बहुयत्नं कृत्वा शून्यतत्तवस्य प्रदानं कृतम्। तर्हि विश्वस्मिन् **Zero** इति नाम्ना व्यवह्रीयमाणः वास्तविकरूपेण शून्यः इति।

अतः अङ्कगणितस्य उत्पत्तिस्थानम् अस्माकं भारतम् एव। वैदिकं **ज्यामितिः** संप्रति **Geometry** एवं च **त्रिकोणमितिः** संप्रति **Trigonometry** इति आधुनिक नाम्ना व्यवह्रीयते।

**संस्कृतसाहित्ये कालगणना-**
(Time calculation in Sanskrit)

सर्वेषामपि विज्ञानानां मूलाधारत्वेन परिगणितस्य

खगोलशास्त्रस्यापि बहवः विषयाः अस्माकं ग्रन्थेषु सन्त्येव। तेष्वन्यतमः अस्ति **"कालगणना"**। Galileo इदं प्रथमतया Second इत्येतेन रुपेण कालविभागं कृतवान् इति पाश्चात्याः विद्वांसः अभिप्रयन्ति । परंतु तदेव अस्माकं **महाभारतस्य शान्तिपर्वणि** उक्तं यत्-

**काष्ठा निमेषा दश पञ्च चैव त्रिंशत्तु काष्ठा गणयेत् कलां ताम् ।**
**त्रिशत् कलाश्चापि भवेन्मुहूर्तो भागः कला या दशमश्च यः स्यात्।।**[1]

अनेन श्लोकेन अस्माकं संस्कृते कालनिर्णयः सम्यक् कृतः।

**संस्कृतसाहित्ये भौतिकविज्ञानम्-**

**(Physics in Sanskrit)**

तत्रापि **अक्षि-निमेष-काष्ठा-कला-मुहूर्त-अहोरात्र-पक्ष-मास-ऋतु-अयन-संवत्सर-युग-कल्प-प्रलय-महाप्रलयादिनां** व्यवहाराणां निरूपणं संस्कृते वर्तते। एतस्य शकस्यरम्भे वैज्ञानिकैः आधुनिक Radio–active विधानेन पृथिव्याः या कालगणना कृता तदा वैज्ञानिकैः निश्चितं यत् भारतीयानां कालगणनायां वास्तविकता वर्तते इति। भौतिकशास्त्रे वर्णितस्य उर्जापिण्डस्य आनुपतिकमस्ति $E = MC^2$ इति Einstein महोदयस्य दर्शनमिति वादः श्रूयते सः वादः सापेक्षवादः इति नाम्ना व्यवह्रीयते। परंतु **"त्वष्टृयन्त्रभ्रमिभ्रान्तमार्तण्डज्योतिरुज्ज्वलः"** इति भवभूतेः प्रयोगं पश्यन्तु भवन्तः। विस्तारभयात् विषयोऽयं न विस्तार्यते।

**संस्कृतसाहित्ये गतिनियमस्य रहस्यम्-**

**(Law of motion in Sanskrit)**

गतिनियमसंशोधकरूपेण वयं न्युटनमहोदयं स्वीकुर्मः परन्तु तत्पूर्वमपि गतिनियमाः महर्षिणा कणादेन स्वीये वैशेषिकदर्शने प्रणीताः तदर्थं वास्तवीकरीत्या **गतिनियमस्य पिता कणादः** श्रेष्ठायते।

**गतिनियमः १. कणादः- वेगः निमित्तविशेषात् कर्मणो जायते।**

**1st Law of Motion Newton-** The change of motion is

---

[1] महाभारते-शान्तिपर्व।

due to impressed force.

**गतिनियमः २. कणादः- वेगः निमित्तापेक्षतः कर्मणो जायते - नित्यादिकक्रियानिबन्धनहेतुत्वात् ।**

**2nd Law of Motion Newton –** The change of motion is proportional to the motive force impressed and is made in the direction of the right line in which the force is impressed.

**गतिनियमः ३. कणादः- वेगः संयोगविशेषाविरोधी।**

**3rd Law of Motion Newton-** To every action there is always an equal opposite reaction.

**संस्कृतसाहित्ये वैमानिकरहस्यानि-**

**(Aeronautical Science in Sanskrit)**

वायुप्रवाहतः उत्पन्नम् ऊर्जं, सौरोर्जम् इतरेन्धनोर्जञ्च उपयुज्य सञ्चार्यमाणानि **विमानानि** अस्माकं ग्रन्थेषु सन्त्येव। महर्षेः **भारद्वाजस्य यन्त्रसर्वस्वं, शाकटायनस्य व्योमयानतन्त्रं, नारायणस्य विमानचन्द्रिका इत्यादयः अनेके ग्रन्थाः विमानशास्त्रसंबद्धाः एव**। विमानस्य अवरोहणकाले, भूस्पर्शकाले च अपघातस्य सम्भावना अधिकेति महर्षिः भारद्वाजः कथयति। अद्यापि समस्ति खलु सा एव स्थितिः। इतोप्यधिकं पश्यन्तु महाराजा भोजविरचितं समराङ्गणसूत्रधाराख्यो ग्रन्थः। उक्तञ्च तत्र-

**लघुदारुमयं महाविहंगं दृढसुश्लिष्टतनुं विधाय तस्य**
**उदरे रसयन्त्रमादधीत ज्वलनाधारमधोऽस्य चातिपूर्णमम्।।** [1]

तथा च- विमानयन्त्रनिमितं युक्तिकल्पतरौवपि प्रोक्तं-

**व्योमयानं विमानं वा पूर्वमासीन्महीभुजम्।** [2]

**संस्कृतसाहित्ये खगोलीयं विज्ञानम्-**

---

[1] समराङ्गणसूत्रधारे- अध्यायः ३१. श्लोकः ९५

[2] युक्तिकल्पतरौ- यानप्रकरणे- ५० ।

## (Astronomy in Sanskrit)

**"वस्तूनाम् अन्यसापेक्ष चलनम्"** इत्येषः विचारः भौतिकशास्त्रेऽतीव प्रसिद्धः। भूमिं परितः सूर्यः परिभ्रमति अतः दिवा रात्रिश्च भवतः इति प्राचीनानां कल्पना आसीत् । परन्तु तत् असाधु । वस्तुतः सूर्यं परितः भूमिः परिभ्रमति इति पञ्चदशे शतके **कोपर्निक्सः** निरुपितवान् । अयं सिद्धान्तः अस्माकं **कृष्णयजुर्वेदस्य तैत्तरीय संहितायामेव** निरुपितमस्ति तद्यथा- **" मित्रो दाधार पृथ्वीमुतद्याम्। मित्रः कृष्टीः।"**[1] इति।

**पृथ्व्याः परिभ्रमणम्-**

**अहस्ता यदपदी वर्धत क्षाः शचीभिर्वेद्यानाम्। शुष्णं परि प्रदक्षिणिद्विश्वायवे नि शिश्नथः।।** [2]

सम्पूर्णेयं पृथ्वी हस्त-पादादिरहितेऽपि देवकार्यसिध्यर्थम् इन्द्रेण पृथ्व्याः परिभ्रमणं कृत्वा शुष्णाख्यस्य असुरस्य संहारः कृतः।

**सविता यन्त्रैः पृथिवीमरम्णादस्कम्भने सविता द्यामदंहत्। अश्वमिवाधुक्षद्धुनिमन्तरिक्षमतूर्ते बद्धं सविता समुद्रम्।**[3] परमात्मा वा सूर्यः स्वसामर्थ्यात् पृथ्व्याः नियन्त्रणं निरालम्बाकाशे कृतवान्।

अधुना वैज्ञानिकैः संशोधितं यत् **मंगलस्योपरि जीवनं शक्यम्,** परन्तु अस्माकं ऋषिभिः कथितञ्चत् मंगलस्यापरं नाम भूमिसुतः। अर्थात् तत्र जनन्याःसाट्टशं भवेदेव। अतः तत्र पृथ्व्याः साट्टशं किमर्थं न स्यात्?

**गुरूत्वाकर्षणबलम्-**

सर्वे ग्रहाः आकाशे सुस्थिराः वर्तन्ते तत्र कारणं- ते आकर्षणबलात् सूर्यसमीपं आगच्छन्ति तेन च तेषां ग्रहाणां वेगादिकं न्यूनाधिक्यं भवति।

**यदा ते हर्यता हरी वावृधाते दिवेदिवे। आदित्ते विश्वा भुवनानि येमिरे।।** [4]

---

[1] कृष्णयजुर्वेदे – तैत्तरीयसंहिता।

[2] ऋग्वेदे - १०.२२. १४।

[3] ऋग्वेदे - १०.१४९.१ ।

[4] ऋग्वेदे - ८.१२. २८ ।

सूर्यस्य भ्रमणं तथा भ्रमणकक्षा-

**हिरण्यपाणिः सविता विचर्षणिरुभे द्यावापृथिवी अन्तरीयते।**
**अपामीवां बाधते वेति सूर्यमभि कृष्णेन रजसा द्यामृणोति।।[1]**
**पञ्चारे चक्रे परिवर्तमाने तस्मिन्ना तस्थुर्भुवनानि विश्वा।**
**तस्य नाक्षस्तप्यते भूरिभारः सनादेव न शीर्यते सनाभिः।।[2]**

**संस्कृतसाहित्ये तारयन्त्रविज्ञानम्-**

**(Telegraphy in Sanskrit)**

**युवं पेदवे पुरुवारमश्विना स्पृधां श्वेतं तरुतारं दुवस्यथः।**
**शयैरभिद्युं पृतनासु दुष्टरं चर्कृत्यमिन्द्रमिव चर्षणीसहम्।। [3]**

यदि वयं अयोमणेः (मेग्नेट इत्यस्य ) द्विधृवीयं बलं ताम्रतारैः योजयामः तदा विद्युतनिर्माणात् तारयन्त्रस्य निर्माणं जायते।

**संस्कृतसाहित्ये वैद्युतं विज्ञानम्-**

**(Electricity in Sanskrit)**

अगत्स्यसंहितायाः श्लोकद्वयं विद्युत् निर्माणाय उपयुक्तम्। संस्थाप्य मृण्मये पात्रे ताम्रपत्रं सुसंस्कृतम्। छादयेच्छिखिग्रीवेन चार्दाभिः काष्ठापांसुभिः।।

दस्तालोष्टो निधात्वयः पारदाच्छादितस्ततः। संयोगाज्जायते तेजो मित्रावरुणसंज्ञितम्।।

**संस्कृतसाहित्यम्-सर्वसिद्धान्तानां ज्ञानराशिः-**

संस्कृतवाङ्मये वैज्ञानिकांशानामवलोकानन्तरम् शास्त्रीयसाहित्येऽपि द्रष्टिपातं कुर्मश्चेत्-

---

[1] ऋग्वेदे – १.३५.९ ।

[2] ऋग्वेदे – १.१६४.१३ ।

[3] ऋग्वेदे- १.११९.१०

**अस्माकंमेघदूतोत्तररामचरितगीतगोविन्दकिरातार्जुनीयकादम्बरीशाकुन्तलनैषधीयच-रितवासवदत्ताबुद्धचरितसत्या-ग्रहगीतादि**नैके ग्रन्थाः संस्कृतभाषायाः यशः कीर्तिञ्च जगति प्रसारयन्ति।

अस्माकं ज्ञानविज्ञानयोः आकरः ऋग्यजुस्सामाथर्वाभिदाः चत्वारः वेदाः, शिक्षाव्याकरणकल्पनिरुक्तज्योतिषछन्दाख्यानि षड् वेदाङ्गानि, पुनः आयुर्वेदधनुर्वेद गान्धर्ववेद अर्थशास्त्रञ्चेति उपवेदाः, न्यायवैशिषिकसाङ्ख्ययोगपूर्वोत्तरमीमांसेति षड् दर्शनानि, याज्ञावल्क्यगौतमपाराशर स्मृतयः एवमत्यन्तमपारमगाधञ्च शास्त्रीयसाहित्यं संस्कृते निहितमस्ति।

अतः प्रसिद्ध इतिहासकारेण **मोक्षमूलरेणापि** कथितञ्यत् **"Sanskrit is the greatest and the most perfect language in the world."** एवञ्च उक्तं च श्री के.एम. मुनशी महाभागेन यत् **"Without Sanskrit India would we nothing but a bundle of linguistic groups."**

वस्तुतः सकलमपि विश्वं यावत् संस्कृतमातरं शरणं न प्रपत्स्यते न तावदत्र विश्वस्मिन् शान्तिः, सरलता, सदाचारः, सुखं, हितञ्च सम्भवम्। अत एवोक्तं अभियुक्तैः **"संस्कृतवाङ्मये विज्ञानं शास्त्रीयञ्चेति दृढो निश्चयः"**।

अत्यन्तसमालोचनेन इदं मे भाति यत् न केवलं भारतीयसमाजस्य अपितु वैश्विकसमाजस्यापि अस्याः संस्कृतभाषायाः महत्तमा आवश्यकता वर्तते इति। अन्ते च-

**देवी हि भारतिरियं हितदं समाजे इत्येवमाग्रहवता भणितं भवत्सु।**
**दोषाः कथञ्चिदनिवार्यतया प्रवृत्ताः सह्याः कृपार्द्रमनसा तव <u>हार्दिकोक्ताः</u> ।।**

# संस्कृत साहित्य में पर्यावरण संरक्षण तथा सामाजिक व मानवीय मूल्यों की, संभावनाएँ

**डॉ. मुकेश कुमार शर्मा**
सहायक आचार्य
शिक्षा विभाग
जगन्नाथ विश्वविद्यालय, जयपुर,
(राजस्थान)

**श्रीमती रूकमणी शर्मा सहायक**
आचार्य व शोधार्थी
शिक्षा विभाग
जगन्नाथ विश्वविद्यालय, जयपुर,
(राजस्थान)



**सारांश-**

भाषा मानव की प्रगति में सहायता प्रदान करती है। हमारे पूर्वजों के अनुभव हमें भाषा के माध्यम से ही प्राप्त हुए है। हमारे सभी शास्त्र और उनसे प्राप्त होने वाला ज्ञान भाषा का ही परिणाम है। साहित्य शब्द व अर्थ के सामंजस्य का प्रतीक है। कहा गया है कि-'सहितस्य भावः साहित्यम्। 'वस्तुतः यह कहना उपयुक्त है कि साहित्य ही किसी देश की संस्कृति रूपी कमर को कसने वाली कसौटी है। साहित्य समाज का दर्पण है। इस बात में कोई दो राय नहीं है कि संस्कृत भाषा ही हमारी संस्कृति एवं सभ्यता का मूल स्रोत्र है। संस्कृत भाषा का साहित्य भारत ही नहीं सम्पूर्ण विश्व का प्राचीनतम् साहित्य है। संस्कृत साहित्य की व्यापकता इतनी अधिक है कि इसमें निहित सामाजिक व मानवीय मूल्यों की पवित्र नदियाँ प्राचिन काल

से आधुनिक काल तक अविरल गति से प्रवाहित हो रही है। संस्कृत साहित्य ने मानव को न केवल सामाजिक व मानवीय मूल्यों से ही सींचा है, बल्कि पर्यावरण संरक्षण के समुचित व सर्व कालिक प्रबन्धन को भी प्रस्तुत किया है। नई शिक्षा नीति-2020 में भारतीय भाषाओं को विशेष महत्त्व प्रदान किया गया है, जिसमें संस्कृत भाषा एक प्रमुख भाषा है क्योंकि संस्कृत ही संस्कारों का उद्गम है। प्रस्तुत लेख में संस्कृत भाषा में रचित विभिन्न ग्रन्थों व साहित्यों में छीपे हुए पर्यावरण संरक्षण तथा सामाजिक व मानवीय मूल्यों पर आधारित प्राचीन भारतीय ज्ञान परम्परा के उपयोगी ज्ञान की आधुनिक काल में प्रासंगिकता को प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। यह लेख वर्तमान में संस्कृत साहित्य में पर्यावरण संरक्षण तथा सामाजिक व मानवीय मूल्यों की अपार संभावनाओं को प्रस्तुत करता है।

मुख्य शब्दावली- संस्कृत साहित्य, पर्यावरण संरक्षण, सामाजिक व मानवीय मूल्य।

**परिचय-**

संस्कृत साहित्य का संस्कार से घनिष्ठ सम्बन्ध है, जिसमें न केवल सामाजिक व मानवीय मूल्य संनिहित है, अपितु पर्यावरण संरक्षण के अनन्य उदाहरण भी कूट-कूटकर भरे पड़े है। संस्कृत साहित्य भारतीय संस्कृति के तत्त्वज्ञान तथा आध्यात्मिक भावना का रूचिर दर्पण है। भारत के धार्मिक, आध्यात्मिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक एवं राजनैतिक जीवन की सम्पूर्ण व्याख्या संस्कृत साहित्य में समाविष्ट है। संस्कृत साहित्य व्यापकता की दृष्टि से विश्व के समस्त सभ्य साहित्यों में श्रेष्ठतम है। संस्कृत साहित्य लौकिक तथा अलौकिक भेद से दो प्रकार का है। अलौकिक संस्कृत साहित्य का तात्पर्य वेदों से है जबकि लौकिक साहित्य का अभिप्राय दृश्य व श्रव्य काव्य से है। दोनों ही काव्य रमणीयता और रसास्वादन की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

आधुनिक संस्कृत साहित्य की कहानी तत्संबंधी काल के अन्य भारतीय साहित्य से बिल्कुल मेल नहीं खाती, लेकिन दोनों के बीच एक निःसंदेह संबंध है। प्रारंभ में, साहित्य के लिए भारतीय माहौल अंग्रेजी साहित्य और पश्चिमी विचारों के प्रभाव से काफी हद तक निर्धारित था। कुछ बुद्धिजीवी, जो संख्या में कम थे, लेकिन अपनी प्रतिभा और मौलिक शक्ति से बहुत शक्तिशाली थे, वें व्यावहारिक रूप से हमारी पुरानी संस्कृति के पाश्चात्य दृष्टिकोण को केवल अर्ध सभ्यता के रूप में स्वीकार करते थे। गुजरते कालखण्ड़ के साथ सभी प्रकार के ज्ञान के लिए, मानव मन की आलोचनात्मक क्षमता और संपूर्ण अवलोकन के जुनून को बुद्धि के एक आवश्यक उपकरण के रूप में अधिक सामान्यीकृत किया जाने लगा। आधुनिक विचार हमारे दृष्टिकोण के समक्ष इस तरह स्थापित हो गए, कि हम उन पर विचार करने और उनसे मौलिक ढंग से निपटने के लिए बाध्य हो गए। अंततः, हम अपने अतीत को नई आँखों से देखने के लिए बाध्य हुए और हमने प्राचीन ज्ञान से एक नई रोशनी और उसकी सृजन व विकास की नई क्षमता को सामने लाना शुरू किया।

पाश्चात्य संस्कृति के वर्तमान दौर में नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 ने संस्कृत और अन्य भारतीय भाषाओं में निहित प्राचीन विचारों की ओर जनमानस का ध्यान आकर्षित किया और भारतीय शिक्षाविदों को अधिक से अधिक उनकी मूल भारतीय ज्ञान परम्परा की भावना से रंग दिया। परिवर्तन के काल में, इस प्रेरक तत्व की बाढ़ आ गई और विचार तथा आत्मा विशिष्ट रूप से भारतीय बन गए। इस बात का प्रबल प्रमाण आधुनिक रूप से बंकिम चंद्र चटर्जी तथा रवीन्द्र नाथ टैगोर की रचनाएँ प्रस्तुत करती हैं। वर्तमान में भारतीय ज्ञान परम्परा की पुष्टि और पुनः स्वीकृति की धारा प्रवाहित हो रही है। इस धारा ने अधिक सूक्ष्म रूप से आत्मसातीकरण और संलयन की शुरुआत को चिह्नित किया है। पुष्टिकरण की प्रक्रिया के लिए हमारी पुरानी मानसिकता तथा नए, पारंपरिक और

आलोचनात्मक मस्तिष्क को किसी प्रकार के संश्लेषण की आवश्यकता होती है, जिसके परिणामस्वरूप, प्राचीन संस्कृति की भावना तक पहुंचने की कोशिश की जा रही है।

अब जनमानस में नए सिरे से ढालने, घिसे-पिटे को अस्वीकार करने और जो भी नए उद्देश्य पुरानी आध्यात्मिकता के अनुरूप प्रतीत होते हैं, उन्हें स्वीकार करने की तत्परता बढ़ रही है। आधुनिक संस्कृत साहित्यों ने भारतीय भावना को बड़े और प्रगतिशील विकास के लिए अधिक स्वतंत्रता प्रदान की। इस संबंध में हम उल्लेख कर सकते हैं कि स्वामी विवेकानन्द जी अतीत व वर्तमान के साथ स्वतंत्र व्यवहार व पुनर्निर्माण द्वारा संरक्षण के अग्रणी उदाहरण और सबसे शक्तिशाली प्रतिपादक थे। कई संस्कृत विद्वानों और लेखकों ने स्व-विकसित परिवर्तन व विशालतम पुरजोर पुनर्जागरण के लिए उपलब्ध अवसर का उपयोग करने के लिए स्वयं को प्रोत्साहित महसूस किया। साहित्य में उपन्यास, लघु कहानी, आलोचनात्मक निबंध और कई अन्य रूपों को अपनाने व आत्मसात्करण करने की नई भावना की गवाही देता है। वर्तमान में अब यह स्पष्ट हो गया कि पुराने आध्यात्मिक ज्ञान और अनुभव को उसके सभी वैभव, गहराई और ऊंचाई में पुनः प्राप्त करना भारतीय पुनर्जागरण का सबसे आवश्यक कार्य है। आध्यात्मिकता को दर्शन, साहित्य, कला, विज्ञान और आलोचनात्मक ज्ञान के नए रूपों में प्रवाहित होना चाहिए। आधुनिक समस्याओं का समाधान भारतीय भावना के आलोक में किया जाना चाहिए तथा आध्यात्मिक समाज के निर्माण का साहसिक प्रयास किया जाना चाहिए। पुनर्जागरण के इन तीन तत्वों के संबंध में संस्कृत साहित्य में पर्यावरण संरक्षण व सामाजिक व मानवीय मूल्यों की अपार सम्भावनाओं को जनमानस के दृष्टि पटल पर रखने के प्रयास किया जाना चाहिए।

**संस्कृत साहित्य में पर्यावरण संरक्षण तथा सामाजिक व मानवीय मूल्य-**

बाह्य प्रकृति का सूक्ष्म निरीक्षण संस्कृत साहित्य में प्राचीन वेदो में

प्राप्त होता है। संस्कृत में प्रत्येक कवि ने अपने कृतियों मे पर्यावरण के महत्त्व को प्रतिपादित किया है। प्रत्येक जीव अपने पर्यावरण की ही उपज होता है। प्राणी को जैसा पर्यावरण प्राप्त होगा उसका रहन-सहन तथा उसका स्वभाव भी वैसा ही होगा। पर्यावरण शब्द अति व्यापक है। संस्कृत में परि+आ+वृ+ल्युट् से पर्यावरण शब्द निश्पन्न हुआ है। पर्यावरण में परि का शाब्दिक अर्थ है- 'चारो ओर से' तथा आवरण का अर्थ है- 'ढ़का हुआ'होना। इस प्रकार पर्यावरण का सामान्य अर्थ उस भौतिक परिवेश से लिया जाता है जो पृथ्वी के जैव-जग को घेरे हुए है तथा जिसके प्रभाव से जीवन संचालित होता है। पर्यावरण के अन्तर्गत जैविक, अजैविक तत्त्व एवं मानव की अन्तः प्रक्रियाओं के फलस्वरूप स्थानिक, कालिक रूप से घटित तत्त्व भी आते हैं। मानव एक सामाजिक प्राणी है, जिसे समाज में अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिए उसे पर्यावरण चेतना तथा सामाजिक व मानवीय मूल्यों की आवश्यकता होती है। पर्यावरण चेतना का तात्पर्य मनुष्य का पृथ्वी पर विद्यमान अग्नि, जल, मृदा, वायु, जीवधारियों के प्रति चिन्तन बोध एवं जागृति से है।

वर्तमान सन्दर्भ में पर्यावरणीय समस्याओं के कारण पर्यावरण-संरक्षण सम्बन्धित ज्ञान जनमानस के लिए आवश्यक है। संस्कृत-साहित्य में आदि कवि वाल्मीकि तथा व्यास कालिदास तथा भवभूति, बाणभट्ट एवं दण्डी आदि ने पाठको के हृदय को मोहित करने वाले अपनी मनोरम काव्य में पर्यावरण के महत्त्व को बहुत ही मनोहर रूप से प्रस्तुत किया है। महाकवि कालिदास संस्कृत साहित्य के सर्वश्रेष्ठ कवि एवं निपुण नाटककार है। कालिदास ने अपनी सभी रचनाओं में पर्यावरण के प्रत्येक पक्ष का सुन्दर एवं मनोहारी निरूपण किया है। उन्होने अपने रूपकों मे पर्यावरण के प्राकृतिक एवं सामाजिक-सांस्कृतिक तत्त्वां के महत्त्व का वर्णन किया है। महाकवि कालिदास ने अपने विश्व प्रसिद्ध नाटक ''अभिज्ञानशाकुन्तलम्'' में पर्यावरण के प्रत्येक पक्ष को सूक्ष्मता एवं हृदयग्राही रूप से वर्णन किया

है। कालिदास ने नाटक के आरम्भ में मंगलाचरण में पर्यावरण के के प्रत्येक प्राकृतिक तत्त्वो का निरूपण किया है-

**या सृष्टिः स्रष्टुराद्या, वहति विधिहुतं या हविर्या च होत्री,**
**ये द्वे कालं विधत्तः श्रुतिविशयगुणाः या स्थिता व्याप्य विश्वम्।**
**यामाहुः सर्वबीज प्रकृतिरिति यया प्राणिनः प्राणवन्तः**
**प्रत्यक्षाभिः प्रपन्नस्तनुभिरवतु वस्ताभिरष्टाभिरीशः।।**

पर्यावरण का सन्तुलन बनाए रखने के लिए वृक्षारोपण ही नहीं, बल्कि उनका पोषण भी आवश्यक है। अभिज्ञानशाकुन्तलम् के तृतीय अंक मे सन्ध्या समय यज्ञ करने का द्रष्टान्त मिलता है जो यह स्पष्ट करता है कि यज्ञ प्रदूषण निवारक तो है ही, साथ ही साथ ऋषिगणों के लिए आवश्यक कर्म-विधान भी है। यज्ञ पर्यावरण संरक्षण का प्रतीक है। नाटक के चतुर्थ अंक मे शकुन्तला की विदाई के समय वन वृक्षों द्वारा आभूषण प्रदान किये जाते है। यहाँ भरत पर्यावरण संरक्षक के रूप में अवतरित हुए है। अतः वर्तमान सन्दर्भो में भी मानव को भरत के समान ही वनां, वृक्षों, लताओं, पशु-पक्षियों व वन्यजीवों की रक्षा का संकल्प लेना चाहिए। महाकवि कालिदास ने अपने इस अमर कृति में जनमानस को पर्यावरण संरक्षण का अनुपम संदेश प्रदान किया है।

आश्चर्य की बात है कि संस्कृत साहित्य के हमारे पहले अभिलेख में उत्तम काव्य और उदात्त सामग्री शामिल है। यह विश्व के किसी भी अन्य साहित्य से भिन्न है। संस्कृत साहित्य का प्रतिनिधित्व दो महाकाव्यों, महाभारत और रामायण द्वारा किया जाता है। उनमें मौजूद वीरतापूर्ण कहानियों के अलावा, वे अत्यधिक विकसित बौद्धिक, नैतिक और सामाजिक संस्कृति के काल को दर्शाते हैं। ये न केवल महान काव्य हैं, बल्कि धर्मशास्त्र भी हैं। महाभारत एक विशाल राष्ट्रीय मंदिर की तरह बनाया गया है और यह भारतीय जीवन और संस्कृति के केंद्रीय विचारों और आदर्शों का प्रतिनिधि है। वैदिक परंपराओं और उपनिषदों और महान्

दर्शनों के विचारों को गीता की तरह लाया जाता है, तथा उन्हें महाकाव्य कथा में जोड़ा जाता है। रामायण महाभारत के समान ही आवश्यक प्रकार की कृति है। लेकिन यह कम दार्शनिक, अधिक काव्यात्मक, अधिक कलात्मक है। भारत का नैतिक और सौंदर्यवादी मन रामायण में एक सामंजस्यपूर्ण एकता पाता है और यह आत्म-अभिव्यक्ति की एक अद्वितीय शुद्ध व्यापकता और सुंदरता तक पहुँच गया है। जबकि महाभारत की शब्दावली अपनी सादगी और प्रत्यक्षता में सहज और लगभग तपस्वी है। रामायण को अधिक आकर्षक सांचे में ढ़ाला गया है, जिसमें मिठास और ताकत का चमत्कार, गर्म जोशी और अनुग्रह की स्पष्टता है। ये दोनों महाकाव्य न केवल अद्भुत हैं, बल्कि उनकी काव्यात्मक गुणवत्ता के साथ-साथ महाकाव्यात्मक भव्यता को भी प्रदर्शित करते है। भारतीय वैदिक साहित्य पर्यावरण संरक्षण के अमूल्य व अनुपम स्रोत है।

भारतीय साहित्य और संस्कृति आचरणात्मक एवं आदर्शपूर्ण मानव मूल्यों के लिये एक अनुपम वैश्विक धरोहर हैं, जो शताब्दियों से सामाजिक जीवन में अपनी असीम गरिमा और अनन्त प्रासंगिकता को सिद्ध करते आ रहे हैं। भारतीय धरातल पर प्रणीत वेद वाङ्मय ही धरती पर मानव मूल्यों की सुदृढ आधारशिला रख चुके है, जिसके आधार पर हमारी भव्य संस्कृति की अट्टालिका अपनी पूर्ण गरिमा के साथ खड़ी है। मानव को कदाचित जब अपनी अस्मिता का बोध हुआ होगा, तब से ही उसने सामाजिक व मानवीय मूल्यों की परिकल्पना और उनका आचरण आरंभ कर दिया होगा। वेद और उपनिषद मानव को अपने गंतव्य की ओर इस तत्परता के साथ अग्रसर होने की प्रेरणा देते हैं कि उससे कहीं भी कोई त्रुटि न हो। वेद वाङ्मय ने मानव के लिये आचरणात्मक और अनाचरणीय जैसे सभी तत्त्वों का विस्तार से वर्णन किया है, जिन्हें हम आज मूल्यों की संज्ञा से अभिहित कर रहे हैं। संस्कृत साहित्य में सामाजिक व मानवीय जीवन मूल्य कूट-कूट कर भरे पड़े। समाजिक व मानवीय मूल्यों की

स्थापना तथा जीवनचर्या में आचरण इस लिये आवश्यक हो जाते है, क्योंकि ये मानव-जीवन को सुखमय, रसमय व आनन्दमय बनाते हैं तथा समाज में व्याप्त भय को दूर करते हैं। अतः समाज को इनकी सतत् आवश्यकता है। उत्तर रामचरित नाटक में राम दया को मानव का उत्तम गुण मानते हैं, किन्तु वे लोक आराधना हेतु उसे भी छोड़ने में दुःख का अनुभव नहीं करते।

**स्नेहं दयां च सौख्यं च यदि वा जानकीमपि।**
**आराधनाय लोकस्य मुञ्चतोनास्ति मे व्यथा।।**

अर्थात् परोपकार मानवीय गुण समाज के लिए शांति एवं सुख देता है। परोपकार में त्याग की भावना विद्यमान रहती है। इस गुण के कारण मनुष्य अपना संचित धन, अपना समय, दूसरों की सेवा-सुश्रुषा तथा सहायता में लगाता है। उपकृत व्यक्ति उपकारी का ऋणी हो जाता है। वह भी उपकार करता है किसी अन्य का। इस प्रकार इस गुण से समाज में सभी व्यक्ति अपना-अपना कार्य सुगमता से पूरा कर लेते हैं। असहाय अवस्था में पड़े नहीं रहते हैं। परोपकार से न केवल व्यक्ति का भला होता है, अपितु निरर्थक प्रतिद्वन्द्विता, ईष्यादि से छुटकारा मिलता है तथा पारस्परिक सौहार्द्र बढ़ता है। परस्पर स्नेही लोग जीवन की सरसता का अनुभव करते हैं।

**परोपकारः कर्त्तव्यः प्राणैरपि धनैरपि।**
**परोपकारजं पुण्यं स्यात्क्रतुशातैरपि।।**

सभी प्राणी अपने-अपने जीवन में कुछ न कुछ संचय करते हैं। अपने संचित में से दूसरे को देना त्याग है। परार्थ अपने अधिकार को निर्मूल्य रूप में समर्पित करना त्याग ही है। भारतीय संस्कृति में त्याग की अनेक गाथाएं सुनी जाती हैं। भगवान श्रीराम ने पिता द्वारा प्रदत्त राज्य को त्याग गर वनवास ले लिया था। अशांति एवं पारस्परिक कलह को दूर करने का सबसे अच्छा माध्यम त्याग है। त्याग से स्वार्थपरता एवं कमी

आती है। आत्मा में संतोष व पारस्परिक स्नेह बढ़ता है। दूसरे का क्रोध भी शांत होता है। त्याग-भावना से समाज में दुःख कारक अन्याय-अत्याचार रह की नहीं सकते। इसलिए त्याग को एक मानव-मूल्य के रूप में संस्कृत साहित्य में स्वीकार किया जाता है।

सत्य नामक गुण की संसार में अति प्रतिष्ठा है, क्योंकि सत्य से समाज में विश्वास बढ़ता है। नीतिग्रन्थों में कहा गया है- "सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्। पुराणकाल में सत्य का अजीवन पालन करने वाले अनेक पूर्वज हैं। अपनी वचन-रक्षा के लिए अपने प्राण तक त्याग दिए। सत्यवादी हरिश्चन्द्र का कीर्तिमान तो सारे संसार में ही प्रसिद्ध है। महाराज युधिष्ठिर भी सत्यवादी थे। पूर्वकालीन ऋषि महात्मा तो सर्वदा सत्य-भाषण ही करते थे। आज भी समाज में सत्य की प्रतिष्ठापना से बड़ा लाभ भी मिल सकता है। चारों ओर मिथ्या भाषण, मिथ्या प्रचार से जनता भ्रमित हो रही है। न्याय मंदिरों में असत्य का ही सहारा लिया जाता है, जिससे समाज में चारों ओर असन्तोष व्याप्त है। मानव का मानव के ऊपर से विश्वास उठ गया है। यदि हम सत्य का पालन करें, तो न न्याय की आवश्यकता पड़े और न रक्षा-कर्मियों की। समाज में शांति भी रहे और वह निश्चिन्त होकर पुरुषार्थ सिद्धि कर सकें। क्षमा एक ऐसा गुण है, जो मानव द्वारा की गई भूल को सुधारने का अवसर देता है। क्षमा के बिना पश्चात्ताप और भूल-सुधार करने का तो प्रयत्न होना ही संभव नहीं है। लोभ होने से व्यक्ति दूसरे द्वारा ठगा जाता है। इसलिए निर्लोभता मानव के लिए सदा हितकारी है। विनयी जन सर्वत्र यशसिद्धि प्राप्त करते हैं। विद्यावान में विनम्रता की भावना की अनिवार्यता इसीलिए स्वीकार की गई है। वृक्ष भी फलवान् होकर झुक जाते हैं। विवेक नामक गुण व्यक्ति में अत्यावश्यक है। इसके द्वारा ही वह किसी पर सर्वांगीण विचार कर पाता है। विवेकशीलता ही मानव की पूंजी है। उदारता नामक गुण व्यक्ति में वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना भरता है।

वर्तमान में भारतीय प्रजा का एक बहुत बड़ा भाग भारतीय संस्कृति में निहित सामाजिक व मानवीय मूल्यों से अनभिज्ञ होता जा रहा है, अतः वर्तमान में शिक्षा-प्रणाली के निर्माताओं का परम कर्त्तव्य यह है कि वे संस्कृत भाषा के अध्ययन को महाविद्यालय स्तर तक अनिवार्य करने का प्रयास करें। हमारी प्राचीन वैदिक संस्कृति के सामाजिक व मानवीय मूल्यों को जो कि संस्कृत में प्रणीत हमारे संपूर्ण वेदों, उपनिषदों, रामायण, महाभारत, भागवत, भगवद्गीता आदि के रूप में विद्यमान है तथा जिनमें हमारे जीवन को सार्थक बनाने के सभी उपक्रमों का उल्लेख विस्तार से निहित है, हमें संस्कृत साहित्य से ही सुलभ हो सकते है। हमारी संस्कृति में परोपकार को सेवा माना गया है। यथा- 'परोपकाराय फलन्ति वृक्षाः परोपकाराय वहन्ति नद्यः परोपकाराय दुहन्ति गावः परोपकारार्थमिदम् शरीरम्।' उपरोक्त श्लोक से हमें स्वतः ही अपने कर्तव्य का बोध हो जाता है। मानव सेवा को नारायण सेवा मानने की विशेषता हमारी संस्कृति में है। यहाँ संस्कृत साहित्य में पर्यावरण संरक्षण तथा सामाजिक व मानवीय मूल्यों के मात्र कुछ ही अंशों का बखान किया गया है। संस्कृत साहित्य में पर्यावरण संरक्षण तथा सामाजिक व मानवीय मूल्यों की अपार संभावनाएँ भरी हुई है। आवश्यकता इस बात की है कि हमें वृद्धि और विकास हेतु संस्कृत साहित्य को महत्त्वपूर्ण दृष्टि से देखना होगा। व्यास, वाल्मिकी और कालिदास हमारे तीन महानतम राष्ट्रीय कवि हैं, जिन्होंने भारत की आंतरिक आत्मा की वायु और वातावरण को संस्कृत से परिचित कराया है। संस्कृत के माध्यम से भारत की आत्मा में निहित आंतरिक एकता अनायास और अनिवार्य रूप से व्यक्त होने लगती है। यह भी महत्त्वपूर्ण है कि अन्य भारतीय भाषाओं के लेखकों की बढ़ती संख्या संस्कृत को अपनाए और इसके विकास में योगदान दे। अंततः यह कार्य रचनात्मक और सोच-समझकर दोनों तरह से किया जाना चाहिए।

उपसंहार-

पर्यावरण संरक्षण तथा सामाजिक व मानवीय मूल्यों को दृष्टि में रखते हुये प्रस्तुत आलेख में संस्कृत साहित्य में इनकी विहंगम संभावनाओं पर मात्र दृष्टिपात किया गया है। वेद वाङ्मय में प्रयुक्त आचरणीय सामाजिक व मानवीय जीवन मूल्यों का लक्ष्य मानव को पूर्ण शान्ति प्रदान करना ही है, क्योंकि भारतीय जीवन-दर्शन संतुष्टि और मानसिक शान्ति में ही परमानन्द को निहित मानता आ रहा है। संप्रति अर्वाचीन जीवन में व्यक्ति समस्त संपदाओं व सुविधाओं के भोग करते हुये भी जिस शून्यता को महसूस कर रहा है, वह यदि उससे मुक्त होना चाहे तो भी उसके लिये सामाजिक व मानवीय जीवन मूल्यों को पूर्ण निष्ठा के साथ अपनाने के अतिरिक्त कोई अन्य विकल्प नहीं है। इन मूल्यों का पोषण समुचित पर्यावरण के बिना संभव नहीं है। वर्तमान युवा पीढी जब तक विज्ञान के आकर्षक भ्रमजाल और तथाकथित पश्चिम की सभ्यता से स्वयं को मुक्त नहीं कर पायेगी, तब तक उसके लिये शान्ति मृगतृष्णा ही बनी रहेगी। कहा जा सकता है कि संस्कृत साहित्य किसी एक पुरातन भाषा का इतिहास हीं नहीं है, अपितु भारतीय मनीषा का संचित कोष है। संस्कृत साहित्य में न केवल सामाजिक व मानवीय जीवन मूल्यों का समावेश देखने को मिलता है, अपितु पर्यावरण संरक्षण के एक से बढ़कर एक उदाहरण व शुद्ध जीवन का ज्ञान सागर समाहित है। इसमें कहीं ऋषियों के उद्गार हैं तो कहीं यज्ञीय पूर्ण आस्था, कहीं काव्य की मधुर अभिव्यक्ति है तो कहीं अनन्त के सूक्ष्म के अवधारण की जिज्ञासा, कहीं प्राचीन आचार्यों की तार्किक मेधा की अन्वेषणा है तो कहीं विज्ञान के विविध पक्षों का बखान। हमें आज आवश्यकता इस बात की है, कि हम अपनी धरोहर को वैज्ञानिक सोच के साथ अंगीकार करके पर्यावरण के साथ समन्वय स्थापित करने वाले जीवन मूल्यों को धारण करें । हम पृथ्वी तल पर पाये जाने वाले प्रत्येक जीव के प्रति भगवद्गीता के सर्वात्मवाद के सिद्धान्त को भी ध्यान में रखकर भौतिक सुखों का उपभोग करेंगे तो अवश्य ही हमारे

पर्यावरण व मानव में पूर्ववत् सन्तुलन स्थापित होगा और यह भावना चरितार्थ होगी-

**सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।**
**सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद दुःख भाग्भवेत्।।**

**सन्दर्भ-**


- अभिज्ञानशाकुन्तलम्
- वाल्मीकि रामायण
- ऋग्वेद, यजुर्वेद व अथर्ववेद
- उपनिषद्
- पुराण
- नीतिशतकम्
- पाणिग्राही, श्रीमती निर्मला (2009): ''पर्यावरण शिक्षा", ओजस्वी प्रकाशन, भुवनेश्वर
- शर्मा, डॉ. कौशलेश (2015): ''पर्यावरण शिक्षा", तीरतरम प्रकाशन, भुवनेश्वर
- http://www.socialresearchfoundation.com
- https://scert.cg.gov.in

# वैदिकवाङ्मयस्य महत्त्वम्

डॉ. दीया लक्ष्मी बन्धन, हिंदी प्रवक्ता
जॉन केनेडी कॉलेज, बो बासें, मॉरीशस

**शोधसारः-**

चतुर्ष्वपि वेदेषु सर्वं निहितमिति सर्वजनसम्मतम्। वैदिकग्रन्थाः विपुला च संस्कृतिः अस्माकं जगतः सर्वदैव उपकरोति समृद्धं च करोति। वैदिक ज्ञानादृते नास्ति अस्माकं कुत्रापि गतिः यतोहि। अतः मदीयः चितो विषयः **वैदिकवाङ्मयस्य महत्त्वम्** अस्मिन् शोधपत्रे अयं विषय अभिनव विषयत्वेन वैज्ञानिकी पद्धत्या च आलोडनं कृत्वा मयाऽत्र प्रस्तोस्यन्ते। वैदिकपरम्परायाम् अनेके आचार्याः श्रमं विधाय निगूढवेदार्थमस्माकं समक्षे उपस्थासिरे। इदानीम् अस्मदीयङ्कर्तव्यं यत् वेदनिहितविषयाणां प्रचारप्रसारो भवेत् इयं प्राचचारयिषा अस्मासु स्यादेव। वयममंस्महि यत् इदं शोधपत्रं ज्ञानाय अबुभूषिष्यत् इत्याशासिष्यामहि।

वेदः समस्तज्ञानराशीनां अक्षयनिधिः वर्तते। एवं भारतस्य भारतीयानाञ्च सभ्यता, संस्कृतिः, एवं धर्मस्य आधारभूतं शास्त्रमस्ति। अनेन कारणेन सम्पूर्णे विश्वे अयं वेदः समादरणीय ग्रन्थत्वेन वरीवर्ति।वयं जानीमो यत् वेदानां दुरुहता अर्थानां विविधतायाः कारणात् वेदा अनन्तेति व्यपदिष्यन्ते उक्तञ्च-**अनन्ता वै वेदाः।**[1] वेद विषये भगवान् मनोः वचनं सार्गर्भितं प्रतिभाति-

**यः कश्चित्कस्यचिद्धर्मो मनुना परिकीर्तितः।**
**स सर्वोऽभिहितो वेदे सर्वज्ञानमयो हि सः।।**[2]

भारतीयमान्यतानुसारं वेदः श्रृष्टिक्रमस्य प्रथमा वाणी

---

[1] तैत्तिरीयब्राह्मणम् 3.10.11

[2] मनुस्मृतिः 2.7

विद्यते ।उक्तञ्च श्वेताश्वेतरोपनिषदि-

**यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं**
**यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै ।**
**तं ह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं**
**मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये ॥**[1]

यः परमात्मा पूर्वं ब्रह्माणं विदधाति, यश्च ततः तस्मै सर्वान् वेदान् प्रहिणोति, यश्च मुमुक्षुबुद्धिं प्रकाशयति, तं परमेश्वरम् अहं शरणं प्रपद्ये। वस्तुतः अस्य ब्रह्माण्डस्य कारणीभूतः एका चिन्मयी शक्तिः विद्यते एवं तस्याः चिन्मयी शक्तेः वयं अंशास्स्मः। एतदर्थं वेदानां यद् महावाक्यमस्ति- **तत्त्वमसि**[2] तत् त्वम् असि,**अहं ब्रह्मास्मि** [3]अहं ब्रह्म अस्मि, **अयमात्मा ब्रह्म**[4] अयं य आत्मास्ति ब्रह्मैवास्ति,**प्रज्ञानं ब्रह्म**[5]

वेदे सर्वविधज्ञानं निहितमस्ति इति कारणादुच्यते मनुना **सर्वज्ञानमयो हि सः**[6] इति। अत्र सः पदेन वेदः गृह्यते। सर्वेषामपि ज्ञानानां मूलतत्वं वेद एवेति निश्चप्रचम् **साक्षात्कृद्धर्माणःऋषयो बभुवुः। ते अवरेभ्यः असाक्षात्कृद्धर्मेभ्य उपदेशेन मन्त्रान् सम्प्रादुः**[7]।"करपात्रीस्वामिनः वेदविषये वाचयामासुः **"एकश्चवेदशब्द आद्युदात्तः शब्दराशेर्बोधकः, अपरश्च अन्तोदात्तः कुशमुष्ट्यादेर्बोधकः" वेदं कृत्वा वेदिं करोति"** [8]इति।

वेदः स्वरूपभेदात् त्रिविधः- ऋग्वेदः, यजुर्वेदः सामवेदश्चेति। यत्रार्थवशेन पादव्यवस्थाऽस्ति तेषां छन्दोबद्धानां मन्त्राणां नाम 'ऋक्' इति

---

[1] श्वेताश्वतरोपनिषत् 6.18

[2] छान्दोग्य उपनिषद् 6.8.7

[3] बृहदारण्यकोपनिषद् 1.4.10

[4] माण्डूक्योपनिषद् 1.2

[5] ऐतरेयोपनिषद् 3.1.3

[6] मनुः, मनुस्मृतिः 2.7

[7] यास्कः, निरुक्तम् 1.5

[8] वेदस्वरुपविमर्शः पृष्ट सं.20

वेद्यम्। ऋचां समूह एव 'ऋग्वेद' इति पदेन व्यवह्रियते। यजुः इत्येतत्पदं यज् धातोः उसि प्रत्यये कृते निष्पद्यते। यस्मिन् वेदे यज्ञयागादिक्रियाकलापानुरोधेन मन्त्राणां सन्निवेशोऽस्ति स 'यजुःवेद' इति निगद्यते। यत्र गीतिरूपा मन्त्राः विद्यन्ते स उपासनाकाण्डपरो वेदः 'सामवेद' इति गीयते। मन्त्राणां त्रिविधत्वात् वेदाः 'त्रयी' इति नाम्ना प्रसिद्धाः सन्ति। मन्त्राणां समूहः 'संहिता' इत्येतेन व्यपदेशेन व्यपदिश्यते। यज्ञानुष्ठानं दृष्टौ निधाय विभिन्नर्त्विजां कृते संहितानां सङ्कलनं वेदव्यासश्चकार। मन्त्रसंहितानां सङ्कलनं चतुविधतया कृतं, तस्मात् संहिताः सन्ति चतस्रः - ऋक्संहिता, यजुःसंहिता, सामसंहिता, अथर्वसंहिताश्चेति। अत एव वेदाश्चत्वारः स्मृताः।

एकैवासीद् यजुरवेदः चतुर्धाः व्यभजत् पुनः- गरुडपुराण, संरचनागत स्वरुपेण वेदाः त्रयीति शब्देन कथ्यते वेदत्रयी-ऋक्सामयजुरेव च येतन्मण्डलं तपति .....स ऋचां लोकः .....तानि सामानि स साम्नां लोकः.....स यजुषां लोकः इति शतपथे मण्डलब्राह्मणे, एकैकस्यापि संहिता, ब्राह्मणम्, आरण्यकम्, उपनिषत् इत्येवं विभागाः सन्ति। वेदाः उत्कृष्टाः साहित्यकृतयः भवन्ति। तानि च सूक्तानि प्रतिभावतां ऋषीणां योगदानानि भवन्ति। एकैकस्यापि सूक्तस्य ऋषिः, छन्दः, देवता इति त्रितयमस्ति। संस्कृतसाहित्ये वेदानां स्थानं सर्वोपरि वर्त्तते। भारते धर्मव्यवस्था वेदायत्तैव। वेदो धर्मनिरूपणे स्वतन्त्रभावनप्रमाणम्, स्मृत्यादयस्तु तन्मूलकतया। श्रुतिस्मृत्योर्विरोधे तु श्रुतिरेव गरीयसी। न केवलं धर्ममूलतयैव वेदाः समादृताः, अपि तु विश्वस्मिन् सर्वप्राचीनग्रन्थतयाऽपि। प्राचीनानि धर्मसमाज- व्यवहारप्रभृतीनि वस्तुजातानि बोधयितुं श्रुतय एव क्षमन्ते। मन्त्रश्च ब्राह्मणश्चैव द्वावेतौ वेदसंज्ञकौ। कण्ठं भित्वाविनिर्यातौब्रह्मण उत्तमांगतः।। इति। प्रधानतया वेदो द्विविधः मन्त्ररूपो ब्राह्मणरूपश्च। मन्त्रसमुदाय एव संहिताशब्देन व्यवहृतः। ब्राह्मणरूपो वेदभागस्तु संहिताभागस्य व्याख्यारूप एव। स चायं ब्राह्मणभागो यागस्वरूप बोधकतया वैदिकविधिप्रयोगविवरणया च प्रथितः। ब्राह्मणग्रन्थोऽपि त्रिधा

विभक्तो भवति- ब्राह्मणम्, आरण्यकम् उपनिषदश्च। यज्ञस्वरूपप्रतिपादको ब्राह्मणभागः। अरण्ये पठिताः यज्ञस्याध्यात्मिकं रूपं विवेचयन्तो वेदभाग आरण्यकानि। उपनिषदो ब्रह्मबोधिकाः मोक्षसाधनानि, अयमेव भागो वेदस्यान्तरूपतया वेदान्त इत्युच्यते। संहिताभागः ब्रह्मचारिणामुपयोगी, ब्राह्मणभागो गृहस्थानामुपयोगी, आरण्यकभागो वानप्रस्थमाश्रितानाम्, उपनिषद्भागश्च संन्यस्तानामुपयोगीत्यपि कथयितुं शक्यते। अनादिनिधनाः वेदाः ब्रह्मणः चतुर्भ्य मुखेभ्यः निःस्सृता इति प्राक्तनैः निरूपितम्। अकारात् भूः ऋक्, उकारात् भुवः यजुः,मकाराच्च स्वः सामः ,इति च। त्रयीं तिस्रो वृत्तिः त्रिभुवनमथो त्रीनपि सुरानकाराद्यैः वर्णै .....इति पुष्पन्ताचार्यै ओंकारवर्णनप्रसंगे।

**विषयवस्तु-**

चत्वारोऽपि वेदाः साधारण्येन मन्त्रब्राह्मणयोर्द्वयोर्भागयोविभक्ताः। वेदपदवाच्याः संहितारूपा एव वेदा इत्यपि नास्ति भारतीयपरम्परानुरूपी न्याय्यश्च विचारः। तत्र ऋग्वेदस्य, सामवेदस्य, शुक्लयजुर्वेदस्य, अथर्वणश्च मन्त्रभागाः संहितापदवाच्याः, किन्तु कृष्णे यजुर्वेदे संहितायामथवा ब्राह्मणे मन्त्राः ब्राह्मणानि इत्येतौ उवुभावपि सम्मिलितौ वर्तते।

**ऋग्वेदः-**

वेदेषु आदिमः ऋग्वेदः हिन्दुधर्मस्य मूलग्रन्थः अस्ति। ऋग्वेदः ४५०० वर्षेभ्यः प्राक् संग्रथितः इति मन्यन्ते। अस्य १०१७ सूक्तानि सन्ति। तस्य श्लोकाः विविधदेवानां सम्बद्धाः- यथा इन्द्रः, अग्निः, वायुः इत्यादयः। ऋग्वेदस्य १०५८९ संहिताः, १०२८ सूक्तानि च १० मण्डलैः विभाजिताः सन्ति। महामुनेः व्यासस्य निर्देशे पैलः ऋग्वेदस्य संहितानां निर्माणम् अकरोत्।

**यजुर्वेदः-**

आर्याणां कुरुषु अधिनिवेशकाले संग्रथितो यजुर्वेदः इति अभिप्रायः। यजुर्वेदस्य अध्वरवेद इति नामान्तरमस्ति। यजुषः एकोत्तरशतं

शाखाः सन्ति इति पतञ्जलिः प्रपञ्चहृदयकारः च प्रस्तौति। वाजसनेयापरनामा कृष्णयजुवेदः गद्यपद्यात्मकः। यदीया रचना विश्ववश्या देदीप्यते।

**सामवेदः-**

साम- सान्त्वेन इति धातोः निष्पन्नं सामपदम्। सा इति ऋक्सूचकतया अम इति गानम्। हराबिव्यञ्जकतया च व्याख्यां केचिद् वदन्ति। सामवेदस्य एकसहस्रं शाखा असन् किल। प्रपञ्चहृदयकारस्यकाले द्वादशशाखाभ्यः अन्याः नष्टाः इदानीन्तु केवलं तिस्रः शाखाः समुपलभ्यन्ते। सङ्गीतस्य उद्भवः सामगानात् इति विचक्षणा आचक्षते। सामगानेऽ पि सप्तस्वराः एव भवन्ति। ते आधुनिकशास्त्रीयसङ्गीतसंविधानात् आरोहावरोहणक्रमे किञ्चिदिव व्यत्यस्ताः दृश्यन्ते। खरहरप्रियारागतुल्याः सामगानस्वराः कुष्ठं (प्रथमं), द्वितीयं, तृतीयं (मध्यमम्), चतुर्थं, मन्द्रं (पञ्चमम्), अतिस्वार्यं(षष्ठम्), अतिस्वरम् (अन्यं) एते सप्तस्वराः ।सामगानालापने गायकैः हस्ताङ्गुलिभिः मुद्राः अभिनीयन्ते एताभ्यः मुद्राभ्यः स्वरस्थानानि मात्राश्च प्रतीयन्ते।

**अथर्ववेदः-**

ब्रह्मपुत्रेण अथर्वेण समाहृतम् इति अथर्ववेदः। अथर्वाङ्गिराः, ब्रह्मवेदः इत्येते नामान्तरे। आथर्वसंहितायाः द्वे शाखे स्तः। शौनकीयशाखा, पैप्पलादशाखा चेति। भूर्जपत्रेषु शारदालिप्यां लिखितस्य अथर्ववेदस्य पुरातनं पुस्तकं काश्मीरेभ्यः सम्पादितम्। तद् अधुना ट्यूबिङ्गन् सर्वकलाशालायाः ग्रन्थशेखरे अस्ति।

वेदः स्वरूपभेदात् त्रिविधः- ऋग्वेदः, यजुर्वेदः सामवेदश्चेति। यत्रार्थवशेन पादव्यवस्थाऽस्ति तेषां छन्दोबद्धानां मन्त्राणां नाम 'ऋक्' इति वेद्यम्। ऋचां समूह एव 'ऋग्वेद' इति पदेन व्यवह्रियते। यजुः इत्येतत्पदं यज् धातोः उसि प्रत्यये कृते निष्पद्यते। यस्मिन् वेदे यज्ञयागादिक्रियाकलापानुरोधेन मन्त्राणां सन्निवेशोऽस्ति स 'यजुःवेद' इति

निगद्यते। यत्र गीतिरूपा मन्त्राः विद्यन्ते स उपासनाकाण्डपरो वेदः 'सामवेद' इति गीयते। मन्त्राणां त्रिविधत्वात् वेदाः 'त्रयी' इति नाम्ना प्रसिद्धाः सन्ति। मन्त्राणां समूहः 'संहिता' इत्येतेन व्यपदेशेन व्यपदिश्यते। यज्ञानुष्ठानं दृष्टौ निधाय विभिन्नर्त्विजां कृते संहितानां सङ्कलनं वेदव्यासश्चकार। मन्त्रसंहितानां सङ्कलनं चतुविधतया कृतं, तस्मात् संहिताः सन्ति चतस्रः- ऋक्संहिता, यजुःसंहिता, सामसंहिता, अथर्वसंहिताश्चेति। अत एव वेदाश्चत्वारः स्मृताः। एकैवासीद् यजुरवेदः चतुर्धाः व्यभजत् पुनः- गरुडपुराण संरचनागत स्वरुपेण वेदाः त्रयीति शब्देन कथ्यते। वेदत्रयी-ऋक्सामयजुरेव च। येतन्मण्डलं तपति .....स ऋचां लोकः .....तानि सामानि स साम्नां लोकः। .....स यजुषां लोकः। इति शतपथे मण्डलब्राह्मणे चत्वारः वेदाः भवन्ति। ऋग्वेदः, यजुर्वेदः, सामवेदः, अथर्ववेदश्चेति। एकैकस्यापि संहिता, ब्राह्मणम्, आरण्यकम्, उपनिषत् इत्येवं विभागाः सन्ति। वेदाः उत्कृष्टाः साहित्यकृतयः भवन्ति। तानि च सूक्तानि प्रतिभावतां ऋषीणां योगदानानि भवन्ति। एकैकस्यापि सूक्तस्य ऋषिः, छन्दः, देवता इति त्रितयमस्ति। संस्कृतसाहित्ये वेदानां स्थानं सर्वोपरि वर्त्तते। भारते धर्मव्यवस्था वेदायत्तैव। वेदो धर्मनिरूपणे स्वतन्त्रभावनप्रमाणम्, स्मृत्यादयस्तु तन्मूलकतया। श्रुतिस्मृत्योर्विरोधे तु श्रुतिरेव गरीयसी। न केवलं धर्ममूलतयैव वेदाः समादृताः, अपि तु विश्वस्मिन् सर्वप्राचीनग्रन्थतयाऽपि। प्राचीनानि धर्मसमाज- व्यवहारप्रभृतीनि वस्तुजातानि बोधयितुं श्रुतय एव क्षमन्ते। मन्त्रश्च ब्राह्मणश्चैव द्वावेतौ वेदसंज्ञकौ कण्ठं भित्वाविनिर्यातौब्रह्मण उत्तमांगतः। इति। प्रधानतया वेदो द्विविधः मन्त्ररूपो ब्राह्मणरूपश्च। मन्त्रसमुदाय एव संहिताशब्देन व्यवहृतः। ब्राह्मणरूपो वेदभागस्तु संहिताभागस्य व्याख्यारूप एव। स चायं ब्राह्मणभागो यागस्वरूप बोधकतया वैदिकविधिप्रयोगविवरणया च प्रथितः। ब्राह्मणग्रन्थोऽपि त्रिधा विभक्तो भवति- ब्राह्मणम्, आरण्यकम् उपनिषदश्च ।यज्ञस्वरूपप्रतिपादको ब्राह्मणभागः। अरण्ये पठिताः यज्ञस्याध्यात्मिकं रूपं विवेचयन्तो वेदभाग

आरण्यकानि। उपनिषदो ब्रह्मबोधिकाः मोक्षसाधनानि, अयमेव भागो वेदस्यान्तरूपतया वेदान्त इत्युच्यते। संहिताभागः ब्रह्मचारिणामुपयोगी, ब्राह्मणभागो गृहस्थानामुपयोगी, आरण्यकभागो वानप्रस्थमाश्रितानाम्, उपनिषद्भागश्च संन्यस्तानामुपयोगीत्यपि कथयितुं शक्यते। अनादिनिधनाः वेदाः ब्रह्मणः चतुर्भ्य मुखेभ्यः निःस्सृता इति प्राक्तनैः निरूपितम्। अकारात् भूः ऋक्, उकारात् भुवः यजुः,मकाराच्च स्वः सामः ,इति च त्रयीं तिस्रो वृत्तिः त्रिभुवनमथो त्रीनपि सुरानकाराद्यैः वर्णै .....इति पुष्पन्ताचार्यै ओंकारवर्णनप्रसंगे।

**सन्दर्भ-ग्रंथ-सूची-**


1. पतञ्जलिः महाभाष्यम् 1(पस्पशाह्निक),रमण कुमार शर्मा, इष्टर्न बुक लिंकर्स देहली- 1998
2. सिद्धान्तकौमुदी भट्टोजिदीक्षितः, व्याख्याकारः गोविन्दाचार्यः, चौखम्बासुरभारतीप्रकाशन वाराणसी- 2020
3. मनुस्मृतिः आचार्यमनु, व्याख्याकारःपं हरगोविंद शास्त्री, चौखम्बा संस्कृत संस्थान वाराणसी- 1995
4. History of inidian literature by Maurice winternitz 1980
5. निरुक्तम् आचार्य याष्क, व्याख्याकारः, छज्जूरामशास्त्री, मेहरचन्द लक्षमणदास पब्लिकेशन दिल्ली- 2016
6. ऋगवेदः, सायणभाष्यम्, सम्पादकः श्रीरामशर्मा, ब्रह्मवर्चस शान्तिकुञ्ज हरिद्वार उत्तरप्रदेशः 2002
7. शुक्लयजुर्वेदः, महीधरभाष्यम्, सम्पादकः रामकृष्णशास्त्री, चौखम्बासुरभारतीप्रकाशन वाराणसी- 2001
8. बृहदारण्यकोपनिषद् शाङ्करभाष्यम् गीताप्रेस गोरखपुर- 2010
9. व्याकरणमहाभाष्यम् पतञ्जलिः, व्याख्याकारः युधिष्ठिरमीमांसकः चौखम्बासुरभारतीप्रकाशन वाराणसी- 2005
10. ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका दयानन्दसरस्वति, डॉ. रामप्रकाश वर्णी, आर्यसाहित्यप्रचारट्रष्ट दिल्ली- 2008
11. शतपथब्राह्मणम्, सायणाचार्य वेदार्थप्रकाशः, प्रो.युगलकिशोरमिश्रः, सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालयः 2017
12. अग्निपुराण अनुवादकः तारिणीश झा एवं घनस्याम त्रिपाठी ,हिन्दी साहित्य सम्मेलन

प्रयाग- 2018

13. वाराहमिहिरः बृहत्संहिता श्री अच्युतानन्द झा चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी 2002
14. बृहदारण्यकोपनिषद् शाङ्करभाष्यम् गीताप्रेस गोरखपुर 2010
15. अथर्ववेदः ,सायणाचार्यभाष्य ,सम्पादकः श्रीरामशर्मा ,ब्रह्मवर्चस शान्तिकुञ्ज हरिद्वार उत्तरप्रदेशः 2002
16. साधारण भाषा टीका सहित श्रीमद्भगवत् गीता, गीता प्रेस गोरखपुर 2000

# वेदेषु शिल्पविज्ञानम्

श्री रविकरणशुक्लः, प्रधानाचार्यः
श्रीभागवतदेशिकसंस्कृतउत्तरमाध्यमिकविद्यालय
नृसिंहमन्दिरम् दारागंजः प्रयागराजः

**शोधसारः-**

मया कृतस्य सर्वेक्षणस्य "**वेदेषु शिल्पविज्ञानम्**" अयं विषय अभिनवविषयत्वेन सम्भाव्यते। अत्र दिव्यास्त्राणि,मानवीय अस्त्रणि शस्त्राणि च,शत्रुनाशक शस्त्राणि,वास्तुशास्त्रम्,विविध शस्त्राणि अस्त्राणि चोल्लिखितानि सन्ति। वेदेषु सर्वं निहितस्तीति सर्वलोकप्रसिद्धम् निश्चप्रचञ्च। वैदिक संस्कृतिः विविधाःग्रन्थाः च अस्माकं लोकस्य सर्वदैव उपकरोति समृद्धं च करोति। वैदिक ज्ञानं विना नास्ति अस्माङ्कं कुत्रापि गति उक्तञ्च पतञ्जलिना-ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मः षडङ्गोवेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च। शोधपत्रेस्मिन् चतुर्षु वेदेषु यत्र यत्र शिल्पविज्ञानस्य विषये चर्चा दरिट्टश्यन्त ते सर्वेऽपि विषयाः वयमत्र अलिलिखिषिष्म।वयं मीमंसामहे यदनेन शोधपत्रेण वेदेषु सर्वमस्तीति लोके ज्ञानाय अबुभूषिष्यन् इत्यमिमंसिष्यन्त।

**कुञ्जीशब्दाः-**

वेदः, शिल्पम्, शस्त्रम्,पु रुषार्थः, धर्मः, निष्कारणः, हेतिः, अग्निः, वायुः, रुद्रः, तोकः, अघः, वज्रः, सैन्यः, वज्रिवः, वृत्रहन्ता, कृपणः

**प्रास्ताविकम्-**

विद्-धातोर्घञ्ा वेद शब्दो निषपद्यते।विद् ज्ञाने,विद् विचारणे,विद्लृ-लाभे विद् सत्तायाम् "इत्यादिधातुभ्यो ज्ञानं सत्ता लाभश्चेति" त्रयोऽप्यर्थाः सिद्ध्यन्ति। लाभशब्देन जीवनरुपा स्थितिरपि ग्रहितुं शक्यते,सत्तापदेनचोत्पत्तिः। तेन उत्पत्तिः स्थितिश्चेत्युभयमपि विद्धातोरर्थोऽन्तर्भवति। घञ् प्रत्ययश्चापि भावे अकर्तरि च कारके विधीयते इति ज्ञानम्, ज्ञानसाधनम्, ज्ञानकर्म, ज्ञानाधिकरणम्, सत्ता, सत्तासाधनम्,

सत्ताकर्म, सत्ताधिकरणम्, स्थिति, स्थितिसाधनम्, स्थितिकर्म, स्थित्यधिकरणञ्चेति सर्वं वेदशब्दार्थतया व्याख्यातुं शक्यम्। तत्र ग्रन्थात्मकेषु वेदेषु शब्दज्ञानसाधनत्वमेव समन्वावयन्ति प्रायेण विद्वांशः विदुश्यश्च। अन्वेषण प्रक्रियया परिशील्यमाने तु सर्वविधज्ञानसाधनत्वम्,ज्ञानरुपत्वम् चेत्याद्यपि वेदशब्दार्थे समन्वितं भवति। विष्णुमित्रो वदति यथा-**विद्यन्ते ज्ञायन्ते लभन्ते एभिर्धर्मादि-पुरुषार्था इति वेदाः**[1]। मनुना वेदविषये उक्तं यथा- **वेदोऽखिलो धर्ममूलम्**।[2] वेदे अखिलधर्म तत्तवस्य मूलमस्तीति निश्चयेन वक्तुं शक्यते।**विन्टरनित्स महोदयः** स्वस्मिन् ग्रन्थे उक्तवान्- **As the oldest Indian and also the oldest indo-germanic literary monument the veda deserves an outstanding place in the history of world literature**[3] वेद एव समेषां ज्ञनानां मूलं विद्यते। अयं हि ब्राह्मणानां निष्कारणो धर्मेति कथयन्ति महाभाष्यकाराः- **ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मः षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च**।[4] वेद शास्त्रेण इष्टस्य प्राप्ति अनिष्टस्य परिहार अलौकिकेन उपायेन निर्देशः भवति यत् सायणः- **इष्टप्राप्त्यनिष्ट-परिहारयोरलौकिकमुपायं यो ग्रन्थो वेदयति स वेदः**।[5] चत्वारः वेदाः जगति प्रसिद्धाः वर्तन्ते। ऋग्वेदः यजुर्वेदःसामवेदः अथर्ववेदः वेदेषु शिल्प विषयिणी चर्चा बहूत्र श्रूयमाणो भवति। वेदेषु सर्वं

---

[1] तै.सं.भा.भू.पृ 18, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका दयानन्दसरस्वति, डॉ. रामप्रकाश वर्णी, आर्यसाहित्यप्रचारट्रष्ट दिल्ली 2008

[2] आचार्य मनुः मनुस्मृति 2.6 , व्याख्याकारःपं हरगोविंद शास्त्री, चौखम्बा संस्कृत संस्थान वाराणसी 1995

[3] History of inidian literature page 47/48 by Maurice winternitz

[4] पतञ्जलिः महाभाष्यम् 1(पस्पशाह्निक),रमण कुमार शर्मा, इष्टर्न बुक लिंकर्स देहली 1998

[5] ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका पृ.7 दयानन्दसरस्वति, डॉ. रामप्रकाश वर्णी, आर्यसाहित्यप्रचारट्रष्ट दिल्ली 2000

निहितमस्ति इति दृश्यते। उक्तञ्च मनुना-**सर्वज्ञानमयो हि सः।**[1] सर्वेषामपि ज्ञानानां मूलतत्वं वेद एवेति निश्चप्रचम्। मनुनाऽपि एकस्मिन् स्थाने वाचयाम्बभूव-यत् **सर्वेषां तु स नामानि कर्माणि च पृथक् पृथक्। वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक् संस्थाश्च निर्ममे।।**[2]

**दिव्यास्त्राणि-**

चतुर्ष्वऽपि वेदेषु शिल्प विषयकाः मन्त्राः बहूत्र दरिदृश्यन्ते। अहमत्र अस्मिन् शोधपत्रे दिव्यास्त्राणि, मानवीया अस्त्रणि शस्त्राणि च,शत्रुनाशक शस्त्राणि, वास्तुशास्त्रम्, विविध शस्त्राणि अस्त्राणि चोल्लिखितानि सन्ति। वेदे अस्त्रस्य (Missile) कृते हेति शब्दः तथा मेनि शब्दश्च प्रयुज्यते। दिव्यास्त्राणाम् असाधारण प्रभावः प्रकृति जन्यो भवति।विद्युत्, अग्नि, वायु, तथा ऋषिर्प्रदत्त अस्त्राणि भवन्ति। यजुर्वेदे पाशुपतास्त्र विषये चर्चा दृश्यते एतस्य अपरन्नाम रुद्रास्त्रमिति-उक्तञ्च-**परिनो रुद्रस्य हेतिर्वृणक्तु**[3]

रुद्रस्य शिवस्य हेतिरायुधं नोऽस्मान् परिवृणक्तु परितो वर्जयतु। अस्मान्मा हन्त्वित्यर्थः। त्वेषस्य क्रुद्धस्य अघायोः द्रोग्धुर्दुर्मतिर्दुष्टमतिर्द्रोहबुद्धिश्चास्मान्परिवृणक्तु। त्वेषति क्रोधेन ज्वलति त्वेषस्तस्य पचाद्यच्। अघं पापं परस्येच्छति अघा मेहति सिञ्चतीति मीढ्वान् हे मीढ्वः कामाभिवर्षुक, स्थिरा स्थिराणि दृढानि धनूंषि त्वमवतनुष्व अवतारय ज्यारहितानि कुरु। किमर्थं। मघवद्भ्यः। मघमिति धननाम। मघं हविर्लक्षणं धनं विद्यते येषां ते मघवन्तो यजमानास्तदर्थम्। यजमानानां भयनिवृत्तये इत्यर्थः । किंच तोकाय पुत्राय तनयाय पौत्राय च मृड पुत्रं पौत्रं च सुखय ।

---

[1] आचार्य मनुः मनुस्मृति 2.6, व्याख्याकारः पं हरगोविंद शास्त्री, चौखम्बा संस्कृत संस्थान वाराणसी 1995

[2] आचार्य मनुः मनुस्मृति 1,121, व्याख्याकारःपं हरगोविंद शास्त्री , चौखम्बा संस्कृत संस्थान वाराणसी 1995

[3] शुक्ल.यजु. 16.50

ऋग्वेदे अपि उक्तञ्च-**परि णो रुद्रस्यवृज्याः**[1] रुद्रस्य महादेवस्य हेतिरायुधं नोऽस्मान्परिवृज्याः। परिवर्जयतु तथा त्वेषस्य दीप्तस्य रुद्रस्य मही महती दुर्मतिर्दुःखकारिणी बुद्धिश्च परिगात्। अस्मान्वर्जयित्वान्यत्र गच्छतु। हे मीढ्वः सेचनसमर्थ रुद्र स्थिरा स्थिराणि त्वदीयानि धनूंषि मघवद्भ्यो हविर्लक्षणधनयुक्तेभ्यो यजमानेभ्योऽवतनुष्व। अवततज्यानि कुरु। तथा तोकायास्मत्पुत्राय तनयाय तत्पुत्राय च मृळ। सुखं कुरु।**ब्रह्मणो हेते तपशश्च हेते मेन्या मेनिरसि** [2]।

अत्र अथर्वण अस्त्र विषये अथर्वणः ऋषिर्वदति अस्य अस्त्रविशेषस्य प्रयोगः हिंसक पशूनां कृते भवति ।अस्य अस्त्रस्य पशुसंयमनार्थमपि भवति। उक्तञ्च यथा-**न संयमो न वियमो आथर्वणमसि व्याघ्रजम्भनम्**[3]। अस्मिन्नेववेदे वरुणास्त्र (वरुण पाश) नाम्नः अस्त्रविशेषस्योल्लेखः वर्तते। शस्त्रस्यास्य प्रयोगः दुष्टानां शत्रूणाञ्च वधार्थं प्रयोगाय कल्पते। **अभ्येनं वज्र आयसः सहस्रभृष्टिः।**[4] वज्रविशेषस्य अस्त्रस्य युद्धे प्रयोगाय ऋग्वेदे बहुत्र दरिदृश्यते। **ये ते पाशा वरुण सप्त सप्त**[5]। सम्मोहनास्त्र-अस्य अस्त्र विशेषस्य प्रयोगः शत्रूणां सम्मोहनाय मारणाय भवति। यथा-**अग्निः स सेनां मोहयतु परेषां निर्हस्ताञ्च कृणवत्** [6]।

चतुर्ष्वपि वेदेषु तामस अस्त्रविशेषस्य प्रयोगः भवति ।अस्य नामान्तरं लोके (Tear Gas) इत्युच्यते। उक्तञ्च यथा- **तां विध्यत तमसापव्रतेन, यथैषामन्यो अन्यं न जानात्**[7]। अथर्ववेदे आवश्यकतानुसारं प्रकोष्ठद्वयात्मकप्रभृतिः दशप्रकोष्ठात्मकस्य गृहस्य निर्देशः दृश्यते। **या द्विपक्षा**

---

[1] ऋग्वेदः 2.33.14

[2] अथर्ववेद 5.6.9

[3] अथर्ववेद 4.3.7

[4] ऋग्वेदः 1.80.12

[5] अथर्ववेद 4.16.6

[6] अथर्ववेद 6.1.1

[7] अथर्ववेदः 3.2.6

**, चतुष्पक्षा अष्टपक्षां दशपक्षां शालाम्** ।तथापि आदर्शगृहे निम्लिखिताः प्रकोष्ठाः भवेयुः।

**हविर्धानमग्निशालं पत्नीनां सदनं सदः। सदो देवानामसि देवि शाले।।**

**इन्द्र त्रिधातु शरणं त्रिरुथं स्वस्तिमत् छदिर्यच्छ मघवद्भ्यः।**[1]

अथर्ववेदे च लौहनिर्मित नगरस्य वर्णनं वर्तते।

**परःकृणुध्वम् आयसीरधृष्टाः**[2]। उपमितां प्रतिमितामथो परिमितामुत शालाया विश्ववाराया नद्धानि विवृतामसि । उपमानस्य निर्माणं विदुषा एवं कुर्यात्।

अग्निपुराणेऽपि उक्तं विद्यते-

**यत्रमुक्तं पाणिमुक्तं मुक्तसंधारितं तथा।**

**अमुक्तं बाहुयुद्धं च पञ्चधा तत् प्रकीर्तितम्।।**[3]

**ब्रह्मणा शालां निर्मितां कविभिर्निर्मितां मिताम्।**[4]

अथर्ववेदस्य शालासूक्ते गृहनिर्माणं प्रकोष्ठनिर्माणं द्वाराणां निर्माणं वातायनञ्च उत्कृष्टरुपेण कृतमस्ति। प्रासादस्यान्तः व्यवस्था वैदिसंहितासु नैकस्थलेषु भवनस्य अन्तर्व्यवस्थायाः सज्जायाश्च संकेताः समुपलभ्यन्ते।

धनुर्विषये यजुर्वेदे उक्तञ्च यथा-

**तपसे कौलालं मायायै कर्मारं रुपाय मणिकारं**[5]। तपसे कौलालं कुलालापत्यम् मायायै कर्मारं लोहकारम्, रूपाक्रमणिकारं रत्नकर्तारम्, शुभे शुभाय वपं बीजवप्तारम्, शरव्यायै इषुकारं बाणकर्तारम्, हेत्यै धनुष्कारं चापकारिणम्, कर्मणे ज्याकारं प्रत्यञ्चनकर्तारम्, दिष्टाय रज्जुसर्जं रज्जोः

---

[1] अथर्ववेदेः19.58.4

[2] अथर्ववेद 19.58.5

[3] अग्निपुराण 248, 2 अनुवादकः तारिणीश झा एवं घनस्याम त्रिपाठी ,हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग 2018

[4] अथर्ववेद

[5] शुक्ल.यजु. 30.7

स्रष्टारं निर्मातारम्, मृत्यवे मृगयुं मृगग्राहम् ,अन्तकाय श्वनिनं शुनो नेतारम्। यः धनुर्निर्माणं करोति तस्य कृते धनुर्कारः शब्दस्य प्रयोगः क्रियते।यः इषुन्निर्माति तस्य कृते इषुकारः तथा यः प्रत्यञ्चा निर्माति तस्य कृते ज्याकारः।

ऋग्वेदे कृपणनामकमस्त्र विषये वर्णनम् अस्ति तस्मिन् समये इन्द्रः स्व सैन्याय इदमस्त्रविशेषम् अददत्। **चोदयो नृन् कार्पाणे शूर वज्रिवः।**[1] वज्रिवः वज्रधर शूर इन्द्र त्वं कार्पाणे। असिः कृपाणः। तेन साध्यं युद्धं कार्पाणम्। तस्मिन् वृत्रहत्ये शत्रुहननार्थं नृन् नरान् तान् प्रसिद्धान् मरुद्गणान् चोदयः चोदयसि प्रेरयसि। यदि यदा त्वं कवीनां मेधाविनां नक्षत्रशवसां देवान् प्रतिगच्छत्स्तोतृबलानां विशां स्तोतृजनानां संबन्धीनि गुहा गूढानि गुणैः संवृतानि स्तोत्राणि श्रृणोषीति शेषः।

अथर्ववेदे ब्रह्मनामकस्य आसन्दिकायाःउल्लेखो विद्यते सा अत्यन्त सुखदायिनि आसीत्। वधू श्रान्त्यनन्तरं तस्या उपयोगः करोतिस्म।शूल्ब सूत्राणां प्रमुख विषयः एवास्ति वेदिनिर्माणं तत्रापि भवन निर्माणस्य वैदिककालीन शिल्पविज्ञानस्य च उत्कृष्टता विद्यते।

ऋग्वेदे-**वज्रेण खानि अतृणन् नदीनाम्**[2]**।** अस्मिन् मन्त्रे वज्रविशेषस्य अस्त्रस्य केन कया कदा च प्रयोक्तव्याः इति निर्दिष्टमस्ति। सद्येव यथा यज्ञगृहान्मानैः षट्त्रिंशत्प्रक्रमप्राचीत्येवंरूपैः परिमाणैः प्राक्प्रवणान् कुर्वन्वति तद्वत सिंधून लोकान्वानृजून्वा मानैः परिमाणैः प्राचः प्राङ्मुखान्विमिमाय। इंद्रो विशेषेण निर्मितवान्। तथा नदीनां खानि निर्गमनद्वाराणि वज्रेण चातृणत्।

**वास्तुशात्रम्-(Architecture)-** ऋग्वेदे अथर्ववेदे स्थापत्यकलायाः सम्बद्धान् केचन मन्त्रा विद्यन्ते। येषु तस्मिन् कालिकान् शिल्पव्यवस्थायाः ज्ञानं वरिवर्ति। ऋग्वेदे वर्णितम् मित्रवरुणयोः राजद्वारे

---

[1] ऋग्वेद 10.22.10

[2] ऋग्वेद 2.15.3

सहस्र स्तम्भा आसन्- **राजानावनभिद्रुहा ध्रुवे सदस्युत्तमे। सहस्रस्थूण आसाते।।**[1] राजानौ ईश्वरौ दीप्यमानौ वा अनभिद्रुहा अनभिद्रोग्धारौ यौ मित्रावरुणौ ध्रुवे स्थिरे उत्तमे उत्कृष्टे सहस्रस्थूणे बहुस्तंभे सदसिस्थाने आसाते उपविशतः तावागच्छतमितिशेषः।

बृहत्संहितायामुक्तम् वज्रस्य कृते-

**गोमहिषा जविषाणैः खररोम्णा महिषचर्म गव्यैश्च।**
**निम्बक पित्थरसैः सह वज्रतलो नाम कोल्कोन्यः।।**[2]

**उपसंहारः-**

अत्र कथयामः वयं यत् चतुर्ष्वपि वेदेषु शिल्पविज्ञानस्य चर्चा प्रामुख्येन स्वस्थानं भजते। वेदेष्वपि वहव्यः शिल्पकलायाः वर्णनं मिलति ।आधुनिक युगे शिल्पकला वेदादेव समागतोस्ति ।

**यो विज्ञाने तिष्ठन् विज्ञानादन्तरो यं विज्ञानं न वेद।**
**यस्य विज्ञानं शरीरं यो विज्ञानमन्तरो यमत्येष आत्मान्तर्याम्यमृतः।।**[3]

**सहायकग्रन्थाः-**


1. पतञ्जलिः महाभाष्यम् 1(पस्पशाह्निक),रमण कुमार शर्मा, इष्टर्न बुक लिंकर्स देहली 1998
2. सिद्धान्तकौमुदी भट्टोजिदीक्षितः, व्याख्याकारः गोविन्दाचार्यः, चौखम्बासुरभारतीप्रकाशन वाराणसी 2020
3. मनुस्मृतिः आचार्यमनु, व्याख्याकारः पं. हरगोविंद शास्त्री, चौखम्बा संस्कृत संस्थान वाराणसी 1995
4. History of inidian literature by Maurice winternitz 1980
5. निरुक्तम् आचार्य याष्क, व्याख्याकारः, छज्जूरामशास्त्री, मेहरचन्द लक्षमणदास


---

[1] ऋग्वेदः 2.41.5

[2]वाराहमिहिरः बृहत्संहिता 6.श्री अच्युतानन्द झा चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी 2002

[3] बृहदारण्यकोपनिषद् 2.26 शाङ्करभाष्यम् गीताप्रेस गोरखपुर 2010

पब्लिकेशन दिल्ली 2016

6. ऋगवेदः, सायणभाष्यम्, सम्पादकः श्रीरामशर्मा, ब्रह्मवर्चस शान्तिकुञ्ज हरिद्वार उत्तरप्रदेशः 2002

7.शुक्लयजुर्वेदः, महीधरभाष्यम्, सम्पादकः रामकृष्णशास्त्री, चौखम्बासुरभारतीप्रकाशन वाराणसी 2001

8.बृहदारण्यकोपनिषद् शाङ्करभाष्यम् गीताप्रेस गोरखपुर 2010

9.व्याकरणमहाभाष्यम् पतञ्जलिः, व्याख्याकारः युधिष्ठिरमीमांसकः चौखम्बासुरभारतीप्रकाशन वाराणसी 2005

10.ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका दयानन्दसरस्वति, डॉ. रामप्रकाश वर्णी, आर्यसाहित्यप्रचारट्रष्ट दिल्ली 2008

11. शतपथब्राह्मणम्, सायणाचार्य वेदार्थप्रकाशः, प्रो.युगलकिशोरमिश्रः, सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालयः 2017

12. अग्निपुराण अनुवादकः तारिणीश झा एवं घनस्याम त्रिपाठी, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग 2018

13.वाराहमिहिरः बृहत्संहिता श्री अच्युतानन्द झा चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी 2002

14.बृहदारण्यकोपनिषद् शाङ्करभाष्यम् गीताप्रेस गोरखपुर 2010

15. अथर्ववेदः, सायणाचार्यभाष्य, सम्पादकः श्रीरामशर्मा, ब्रह्मवर्चस शान्तिकुञ्ज हरिद्वार उत्तरप्रदेशः 2002

# Contribution of Vedic literature to the field of Science and Mathematics

Ms. Bini Saikia
Asstt. Professor, DHSK College, Dibrugarh Assam

**Introduction:**

The nucleus of the Vedas is pregnant with various types of knowledge. Though the Vedas are primarily religious in content, but they embody a large number of references related to scientific elements. It is said that Ṛgveda is the most ancient literary evidence of all Indo-European languages. Atharvaveda is considered as the grass root of medical science which is known as Ayurveda in India. In the Vedic age the requirement of mathematics is associated with the Vedic ceremonies and the construction of sacrificial alters. Thus the Vedas contain both material and religious knowledge. Among the material type of knowledge it has the concept of astronomy, medical science, mathematics, physical science, chemical science etc.

**Contribution of Vedic literature in the field of Science:**

**Physical science in Vedas:**

Physics is a study of the areas like matter and its motion, energy and force. From the time immemorial it is known to Indian people as Vedic sages discovered a large number of laws related to physical sciences.

According to Yajurveda the rays of the sun illuminates the moon.[1] The sun has seven kinds of rays. According to it the seven colour rays of the sun give seven types of energy. Furthermore, the importance of seven rays of the sun is revealed in the Ṛgveda.[2] It is also believed that the sun is the source of cosmic energy and destroys illness like jaundice and heart diseases.[3]

According to Aitareya brāhmaṇa and Gopatha

brāhmaṇa the sun neither rise and nor set. [4] When day ends then it is called sun set and when night ends then it is called sun rise. As stated in the Ṛgveda it is said that the earth moves round the sun. It is also clearly mentioned in the Yajurveda.[5] According to Atharvaveda there are seven solar system and they are existing all together. The centre of the solar system is known as Kasyapa. [6] Taittīrya Āraṇyaka mentions the names of these seven solar system as- Ārogaḥ, Bhrājaḥ, Patarah, Pataṅgaḥ, Svarṇāraḥ, Jyotishiman, Vibhasaḥ.[7] Thus there is a reference of strong gases covered surroundings of the sun found in the Ṛgveda.[8] According to Yajurveda, the energy is immortal and undestroyable because it has vayas i.e. the potential energy.[9]

Different sources of energy have been mentioned in the Vedas. These are water, stone, plants, underground fire, sun, ocean, whirl pools, water streams, air, water falls etc. According to Vedic literature sage Atharvan has discovered three types of energy i.e. fire which are as wooden fire,[10] hydroelectric[11] and oil and natural gas. Both Ṛgveda and Yajurveda have mentioned that Sage Atharvan discovered underground fire i.e. gas and bring it out by digging it. [12] This underground fire is called in Vedas as Puriṣya agni. Atarvaveda has stated that underground fire is being activated in all the time as radio activity power. This fire produces heat in the inside of earth. There are so many active radiations in the different layer of the earth. This is the primary cause of plutonic energy. It is stated in the Atharvaveda that for the underground fire earth has motion and vibration in it. [13]

According to Ṛgveda there is a magnetic power on Marut i.e. air from which creates energy radiation. The word ayodaṅstrā is used to denote the magnetic energy in Ṛgveda. [14]

One has got the concept of ozone layer in Ṛgveda

and Atharvaveda. In Ṛgveda the word mahat ulbam is used to denote ozone layer which is told as static and fat. Regarding this Atharvaveda says that this layer is golden. This layer is existed for the protection of the earth as like a pregnant woman has membrane to protect the baby inside the womb.[15]

We have many references stating the concept of physical sciences in the Vedas. For example:

i) All the celestial bodies are moving in elliptical orbits. Sun with his attracting force is holding this earth and the earth celestial bodies.
ii) Moon being the sub planet of earth, is revolving around its motherly planet earth and earth is revolving around its fatherly planet sun.
iii) The sun has tied earth and other planets through attraction and moves them around itself as if a trainer moves newly trained horses around itself holding their reins.
iv) The gravitational effect of solar system makes the earth stable.
v) The sun and the entire universe are connected in a string and it is vayu.

**Chemistry in Vedas:**

In the Vedic literature Chemistry is called as Rasāyana śāstra. There were many references in the Vedas related to chemical science. Among them one has got the formula for generating water, qualities of water, different types of water, different types of metals and their combination, use of salt-water and gems as a medicine etc. are discussed in the Vedas.

In the Ṛgveda there is a reference where it is stated that water is a combination of Mitra and Varuna. Here it says that sage accepted pure energetic Mitra and destroyer of dirtiness Varuna to get water.[17] Thus these Mantras

reveal the formula of generating water with the combination of Mitra and Varuṇa representing mitra as oxyzen and Varuṇa as hydrozen.. In this context sage also urges the importance of electricity in this process of generating water. Yajuveda and Śathapatha brāhmaṇa mention the process of producing clouds and rain.[18]

**Qualities of water:**

There is a reference in the Ṛgveda where it is said that in waters there is healing balm to cure the fatal diseases. Furthermore it is mentioned that the waters hold all medicines. The fire i.e. the digestive power is there in the waters, which is for the good of all. Therefore, water is praised by the seers to teem with medicine as to keep the body safe from harm.[19] The same fact also mentioned in RV.X.9. It is also mentioned that if anyone drinks water mixed with soma rasa then he has longevity.[20] There is another reference in the Ṛgveda where it is mentioned that Aśvini duo treated Atri by using ice or cold waters 'himena' to normalize the body temperature[21]. Regarding this fact of medicinal value of water Atharvaveda has mentioned that the water coming from the Himalaya is beneficial especially for the treatment of heart disease.[22] Atharvaveda also has mentioned that running water is pure and full of good quality. This running water gives to human being energy and motion.[23]

**Physical chemistry:**

In physical chemistry it is described the concept of the creation of world. Regarding this theory there are many hymns called as philosophical hymns. For example, nāsadīya sūkta, puruṣa sūkta, hiranyagarbha sūkta etc.[24]

**Inorganic chemistry:**

Atharvaveda and Yajurveda has many references regarding the knowledge of gold, silver, copper, iron etc. which are used by the physicians as the prominent component of medicine. Śukla Yajurveda mentioned about

tin and lead also. Ṛgveda also mentioned the matels like gold, copper, silver and bronze. It is said in the Ṛgveda that Indra had used Vajra with thousand blades made by Tvasta in golden matal.[25] Yajurveda and Atharvaveda has said that if anyone wear a pure golden chain then he go longevity and became strong.[26] Atharvaveda has mentioned the use of bronze to make bullet for killing enemies.[27] Moreover there is a reference of using cosmetics and scented perfumes in the Strīsūkta of the Ṛgveda.

**Organic chemistry:**

In the Vedas the word soma is used to denote as a drink, a plant and a deity. The ninth maṇḍala of the Ṛgveda is attributed to the God soma. According to Ṛgveda juice of soma produces immortality.[28]

**Some other concepts of science in Vedas:**

Furthermore, the Vedas also provide some vague pictures of modern concept of test tube babies.[29] Ṛgveda mentions that Agastya and Vaśiṣṭha were born out of an urn which is called as puṣkara from the semen of Mita-Varuṇa. The word puṣ means to nourish and kara means to do. Thus the urn, which nourishes or a vessel which has nourishing nutrient matter, is puṣkara. From such a container Agastya and Vaśiṣṭha were born.

**The concept of tridoṣa**

The root of the concept of tridoṣa can be traced to Ṛgveda. In-spite-of the word tridoṣa Ṛgveda used a collective name tridhātu.[30]

**Mathematics in the Vedas:**

Though the Vedic Samhitas are not on the text of Mathematics but there are several mathematical concepts in it. Mathematical concepts in the Vedic literature are thus come down to us as indicators which are in later period developed and explained by the mathematicians and by the scholars of that field.

The science of rules of geometry was first used by the

sages for the constructions of sacrificial alters as alters are of different shapes for different sacrifice. In the Ṛgveda there is a reference dealing with the formation of the universe which indicates the idea of the circumference of a circle. Here in this context the words of geometrical terms such as pramā, pratimā, nidanam, ajyam, paridhiḥ etc. are used.[31]

In the Rigveda, an area of a circle is calculated which is approximating to be equal to 22/7. This idea of calculating the area of a circle indicates that Vedic sages knew the concept of Pi.[32] The purusha sukta of Ṛgveda mentions the words indicating fractions. We have also references of fractions in the Atharvaveda and Śathapatha brāhmaṇa The Maitrāyaṇī Saṁhitā also used the terms like kalā, kuṣṭha, pāda, śaphas etc. to denote fractions.

In the Vedic literature we have the words indicating numbers. For example- eka, dasha, shata, sahasra, ayut, niyut, prayut, arbud, nyarbud, samudra, madhya, anta, parārdha. Yajurveda has mentioned the definitions of numbers from one to parārdha.[33] Similar type of reference also has been found in the Atharvaveda.[34] Yajurveda has also mentioned the numbers 1,3,5,7,9,11,13,15,17,19,21,23,25,27,29,31,33.[35] In the Atarvaveda there is a reference where the consecutivity of numbers from 1-10 has been mentioned.[36] In the Vedas there are words like anya, ubha, ekaika, ekaikashah, etavat, puru, kati, kiyat, bahu,, asamkhyeya, asamkhyāta etc. which are indicating a figure. In Taittrīya Saṁhitā there are words like once, twice, thrice, ten times, hundred times, thousand times etc for offering oblations to Agni.

The concept of one and its mathematical properties of multiplication and division are also seen in the Vedas as well. Atharvaveda has stated the fact that $1x1=1$ and $1\div1=1$[37] Examples of multiplication and division are also found in the Śathapatha brāhmaṇa.[38] Yajurveda has

mentioned the multiplications of 1x3=3, 3x5=15, 5x7=35 etc.[39] Concept of infinity also is known to the Vedic sages. They used the words like ananta, purṇam, asamkhyāta are some examples for denoting infinity.

The structure of Vedic metres are composed in a certain manner which is on the basis mathematics. For example:

**Gayatri 8 8 8=24 syllables in a verse**
**Anustubh 8 8 8 8=32 syllables in a verse**
**Tristubh 11 11 11 11=44 syllables in a verse**
**Jagati 12 12 12 12=48 syllables in a verse**

Chariots are commonly used in the Vedic society. There are so many references in the Ṛgveda where chariots are described.[40] In the making of chariots one has to have the knowledge of geometry. The fixing of spokes of odd or even numbers require knowledge of dividing the area of a circle into the desired numbers of small parts of equal area by drawing diameters.

Thus there are so many references in the Vedas where one has found the different mathematical concepts.

**Astronomy in Vedas:**

In ancient time Astronomy was known as Nakṣatra-vidyā. It has observed the motion of planets, stars, sun, moon etc. and helps to determine date and time. Thus it was become important for sacrificial act which has a definite time for a particular sacrifice. The book on astronomy comes down to us as Vedāṅga jyotiṣa of Lagadha. It has two recensions- one is known as Ārca jyotiṣ and another is Yājuṣ Jyotiṣ related with Ṛgveda and Yajurveda respectively. Ārca jyotiṣ has 36 verses and Yājuṣ Jyotiṣ has 43 verses. Ṛgveda mentions 12 Rashis in different context. Details of divisions of time have described in the Vedic literature.

**Medical science in Vedas:**

There are so many references in the Vedas where

we have found the concept of medical science. In the hymn RV.ii.33 there are fifteen mantras and most of them are related to the physician or ayurveda. There Rudra is praised as the most effective remover of diseases.[41] He is said there as the best of all physicians.[42] Similarly soma-latā has been recognized as one of the best medicine because of which a healthy life is possible on this earth.[43] In the hymn RV.X.163 there are six verses in which physician has given assurance to the patients that from the eyes, from the two nostrils, the ears, from the mouth, from the brain, neck, head, tongue and from all other different parts or systems of body he removes fully the detected diseases.

**Concept of Botanical science in Vedas:**

In the Atharvaveda there are references regarding the concept of chlorophyll. Here avi element referred as the cause of greenness in trees. In Atharvaveda it is said that the deity avi is there in trees followed by the instruction of ṛta, the certain law of earth.[44] It has also mentioned in the Atharvaveda that the earth provides surface for vegetation which controls the heat build up on it. An entire hymn of RV.X.97 is a prayer of the healing herb or oṣadhi.

**Conclusion:**

The foregoing discussion shows that the Vedic poets and deities are associated with the sciences such as physics, chemistry, botany, mathematics etc. However, it has been not found in the Vedas the level of scientific knowledge attained by the time of modern age. Many of the sciences found in the Vedas are in seed forms which have gradually grown.

Thus the Vedic scriptures are not just religious books but they contain many true scientific elements.

**References:**

1. YV., 18.40
2. RV., viii.72.17

3. ibid., i.50.11
4. A.Br., 3.44; G.Br., 2.4.10
5. RV., 10.22.14; YV., 3.6, 2.23
6. kasyapa…yasmin surya arpitah sapta sakam AV.,13.3.10
7. TA., 1.7.1
8. RV., 1.164
9. YV., 12.25, 12.24
10. ibid., 11.32; RV., iii.29.2
11. ibid.,vi.16.13; YV.,11.32
12. ibid.,11.32,29,28
13. AV., 12.1.37
14. RV., 1.88.5
15. ibid.,x.51.1; AV.,4.2.8
16. RV., 7.33.10-13
17. YV., 2.16, SB.1.8.3.12
18. RV.,i.23.19-23
19. RV., 1.23.23
20. himenāgniṁ ghraṁsamavārayethāṁ pitumatīmūrjamasmā adhattam/
ṛbīse atrimaśvināvanītamunninyathuḥ sarvagaṇam svasti// ibid., i.116.8
21. AV., 6.24.1.
22. ibid.,1.5.4.
23. RV., x.90;.121;129
24. ibid.,i.85.9
25. YV., 34.50-52, AV., 1.35.1-3
26. AV., 1.16
27. RV., 8.48.3
28. RV.,vii.33.13
29. trirno aśvinā divyāni bheṣajā triḥ pārthivāni triru dattamadbhdyaḥ/
omānaṁ śaṁyormamakāya sunave tridhātu śarma vahataṁ śubhaspatī//ibid.,i.34.6
30. RV., 10.130.3
31. RV., 1.05.17
32. YV., 17.2
33. AV.,8.8.7
34. YV.,14.28-31; 18.24-26.
35. AV., 8.4.16-18
36. AV.,14.3.12
37. S.Br. 2.3.4.19,20.
38. YV.,18.24

39. RV., i.102.3; i.53.9;i.55.7;i.141.8;ii.12.8
40. ibid., ii.33.2
41. mā tvā rudra cukrudhāmā namobhirmā duṣṭutī vṛṣabha mā sahūtī/
unno vīrāṅ arpaya bheṣajebhirbhiṣaktamaṁ tvā bhiṣajāṁ śṛṇomi//ibid., ii.33.4
42. ibid.,x.85.2
43. AV., 10.8.31

# बुद्ध तथा हिन्दू (वैदिक) दर्शने पुनर्जन्म-कर्म-सिद्धान्त-विचारः

डॉ. अखिलेश अ. शर्मा, संस्कृतविभागः
मूलजी जेठा (स्वायत्त ) महाविद्यालय, जलगाँव,महाराष्ट्र

भारतीया संस्कृतिः प्राचीना सर्वश्रेष्ठा सर्वोत्तमा च इति सर्वे पाश्चात्या पौर्वत्याश्च वदन्ति। भारतस्य प्राचीनं दर्शनं वैदिकदर्शनम्, किन्तु पश्चात् आर्वाचीनकाले तस्यैव नाम हिन्दुदर्शनमितिसंजातम्। तथैव भरतभूमौ एव प्रायः २५०० वर्षेभ्यः प्राक् सुप्रसिद्धं यद्यपि प्राचीनं पुनरपि लोकदृष्ट्या नूतनंदर्शनं भगवान् बुद्धरूपेण प्रस्फुटितम्। वैदिकबुद्धयोः तथा बहुत्राभेदः बहुत्र भेदाश्च। यथा बुध्दर्शने कर्मकाण्डानां हिंसायुक्तानां यज्ञादिनां विरोधः परन्तु अहिंसा-सत्य-अस्तेय-ब्रह्मचर्य अपरिग्रहादिनां मध्ये तु एकत्वमेव । यथा योगदर्शने "अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहाः यमाः।"१ परमद्यत्वे केचन जनाः बुद्धवैदिकदर्शनयोः भेदान् एव दर्शयन्ति। मम उद्देश्यं तु अभेददर्शनमेव। भगवान् बुद्धस्य कर्मसंकल्पना तथा च पुनर्जन्म संकल्पना यथा तथैव वैदिकहिन्दूदर्शनेपि दृश्यते।

**बुद्धतथावैदिकदर्शने पुनर्जन्मसिद्धांतः-**

मम चिन्तनं तु एतत् यत् पुनर्जन्मसिद्धान्तस्तु बुद्धदर्शनस्यमूलम्। एकदा भगवानवादीत् वत्सगोत्रोत्पन्नं परिव्राजकम् **"वत्स! यदा अहमिच्छामि तदा अनेकेषां पूर्वजन्मानां दर्शनं कर्तुं शक्नोमि ।"२** बुद्धस्य नैकेषां शिष्याणां भिक्षुणीऋषिदासी, सारिपुत्र इत्यादिनामपि पुनर्जन्मविषये तथैव विचाराः। एकदा पुनर्जन्मविषयकं उदाहरणं दत्वा भगवान् भणति- "रे भिक्षुकाः। क्रोधं ताजन्तु, लोभं त्यजन्तु, द्वेषं त्यजन्तु, अहमेतद् वदामि यत् जन्ममृत्युतः भवन्तः मुक्ताः भविष्यन्ति।"३ एकदा स्थविरनागसेनं महाराजं मिलिन्दः पृष्टवान् **"भंते नागसेन। कः जायते? किं सः पृथक् भवति अथवा स एव भवति? यो उप्पज्जति हो एव सो उदाहु अंञ्ञोति"**।४ भदन्त नागसेनः उत्तरति **"नामरूपं सो महाराज परिसंदहतीति ।"५** अर्थात् हे महाराज।

नामरुपेण एव जन्मः भवति। महात्मनः बुद्धस्य सर्वापि जातक कथाः तु पुनर्जन्ममेव उद्घोषयन्ति। वैदिक दर्शनेऽपि वेदाः पुनर्जन्मविषये घोषयन्ति **"अव सृज पुनरग्ने पितृभ्यो यस्त आहुतश्चरत्ति...."६** संत्रार्थ एतदेव यत् मृत्युरनन्तरं यदा शरीरः पंचतत्वेषु विलीनः जायते तदा जीवात्मा एवं अवशिष्टः भवति। तदा स जीवात्मा अन्यं शरीरं धारयति। अन्यत्राऽपि **"अंतर्गर्भश्चरति देवता स्वाभूतो भूतः स उ जायते पुनः।"७** अत्र जायते पुनः इति उद्घोष स्पष्टमेव पुनर्जन्मं ख्यापयति। कठोपनिषदि अपि लिखितमस्ति- **"सस्यमिव मर्त्यः पच्यते सस्यमिव जायते पुनः"**।८ धान्यवत् एष जीवात्मा मृत्युं प्राप्नोति पुनश्च जीवति। अतः वयं वक्तुं शक्नुमः यत् उभयत्र पुनर्जन्म सिद्धांत एकैव वर्तते।

**बुद्धहिंदूदर्शने कर्मसिद्धान्तः -**

कर्म सिद्धान्तं तु बुद्धदर्शनस्य मूलमेव। कर्म सिद्धांत मध्यमेन एव अस्माभिः पुनर्जन्मस्य सिद्धान्तस्याऽपि पुष्टिः कर्तुं शक्यते। बुद्धदर्शने कर्मसिद्धांतएव **'कम्म'** इति नाम्ना सुप्रसिद्धः ईश्वरवादी दर्शनेषु यत् स्थानं ईश्वरविषयकम्, तदेव स्थानं बुद्ध दर्शने कर्मस्य वर्तते। परमतत्व विषये ते मौनं स्वीकुर्वन्ति। तेषां दर्शने केवलं कर्ममेव प्रधानः सर्वेऽपि प्राणिनः स्व स्व कर्मानुसारमेव सुखदुःख फलानि प्राप्नुवन्ति। यथाकर्म तथाफलम्। एकदा शुभनामकमाणवक भगवन्तं पृच्छति **"हे गौतम। किं करणमिदं येन मनुष्येषु विषमता, हीनता उत्तमता च दरी दृश्यते? केचन अल्पायुः तु केचन दिर्घयुः, बहुरोगिणः अल्परोगिणश्च, सुरुपाकुरुपाश्च, समर्थासमर्थाश्च दृश्यन्ते"**।९

तदा भगवान् उक्तवान् **"कम्मस्सका माणव सत्ता कम्मदायादा कम्मयोनि सम्मबंधू कम्मपटि सरणा...।"१०** कर्मणैव सर्वेषु प्राणिषु हीनता उत्तमताश्च आयाति। तर्षामपि विषमतानां मूलं कर्ममेव। **"सुगति दुर्गातिश्च कर्मणां शुभाशुभ माध्यमेनैव जायते"**।११ अग्रे पुनः ते वदन्ति- **"कम्मा विपाका**

**वत्तन्ति विपाको कम्म सम्भवो कम्मा पुनब्भवो होति एवं लोकोपवत्ततीति।१२** कर्मद्वारा एव विपाकाः प्रवर्तिता भवन्ति। विपाकाश्च कर्मसम्भवाः। कर्मद्वारा एव पुनर्जन्म संभवति संसारश्च प्रवर्तते।

अधुना वैदिकहिंदूदर्शनेऽपि कर्ममहत्वं तथैव विशिष्टरुपेण व्याख्यातमस्ति। बह्मवैवर्तपुराणे लिखितं **"अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्"।**१३ वयं यत्किमपि कुर्मः तस्य फलं अस्माभिः अवश्यमेव प्राप्तव्यं कर्मानुसारमेव पापपुण्यफलानि प्राप्नुवन्ति जनाः। महाभारतेऽपि **"नाधर्मः कारणापेक्षी कर्तारमभिमुंचति....."**१४ अधर्मः कदापि धर्मः न भवति। काले अधर्मस्य फलं मिलिष्यत्येव अत्र न संशयः। रामायणेऽपि **"अवश्यमेव लभते फलं पापस्य कर्मणः"।**१५ कोऽपि मनुष्य = बनदानकर्ता तपस्वी वा स्यात् पुण्यनदीषु वा स्नानं कुर्यात् परं शुभाशुभ कर्मणां तु प्राप्यति एव। सहस्रेष्वपि गोषु यथा गोवत्सः मातरं चिन्हयति तथैव कर्म कर्तारं शोधयित्वा फलं ददाति ।

एवं यदि वयं पश्यामः चेत् ज्ञायते यत् बुद्धवैदिकदर्शने तात्विकः अभेदः। यदि मिलित्वा चलामः चेत् विश्वस्य उन्नतये महत्वपूर्णयोगदानं दातुं शक्यते।

## संदर्भ-ग्रन्थ-सूचिः

1. योगदर्शनं- पाद-१ सूत्र ३०
2. तेविज्जवच्छगोतसुत- मज्झिम १/३/१
3. बौद्ध दर्शन तथा अन्य भारतीय दर्शन- भरतसिंह उपाध्याय पृ.४७६
4. बौद्ध दर्शन तथा अन्य भारतीय दर्शन- भरतसिंह उपाध्याय पृ.४८२
5. बौद्ध दर्शन तथा अन्य भारतीय दर्शन- भरतसिंह उपाध्याय पृ.४८२
6. ऋग्वेद- १०-१६-०५
7. अथर्ववेद- ११-०४-२०
8. कठोपनिषद- ०१-०१-०६
9. चूलकम्मविभंग सुत्तंत- मज्झिम ०३/०४/०५
10. चूलकम्मविभंग सुत्तंत- मज्झिम ०३/०४/०५

11. महाकम्मविभंग सुत्तंत- मज्झिम ०३/०४/०६
12. बौद्ध दर्शन तथा अन्य भारतीय दर्शन- भरतसिंह उपाध्याय पृ.४७८
13. ब्रह्मवैवर्तपुराणम्- १७-०१-२१
14. महाभारत- शांतिपर्व अ.२९८
15. वाल्मिकि रामायण- युद्ध कांड सर्ग -१११

# Vedic Concept of Ṛta and Its Relevance in Contemporary world

Dr. Mauchumi Hazarika
Assistant Professor, Dept. of Philosophy
DHSK College, Dibrugarh, Assam.

**Abstract:**

The concept of Ṛta holds a pivotal place in the Vedic tradition, representing the cosmic order that underlies and sustains the Universe. Ṛta encompasses the principles of natural law, morality and the proper order of the cosmos, binding the divine, the natural world and the human beings into a harmonious whole. It is an underlying principle that ensures harmony and balance within the cosmos, human society and individual behavior. This seminar paper will explore the multifaceted nature of Ṛta, tracing its origin in the Vedas and its evolution through various texts, such as Rigveda and the Upanishads. The analysis will delve into how Ṛta serves as the foundation for dharma (moral duty) and its significance in maintaining the balance between chaos and order. The paper also delves into the relationship between Ṛta Dharma and the Satya (truth) and how these concepts evolved in later Philosophical traditions. Furthermore, the seminar paper will examine the role of Ṛta in the ritualistic practices and the ethical conduct prescribed in the Vedic Society, demonstrating its enduring influence on Indian Philosophy and religion. In this paper a modest attempt has also been made to find out the contemporary relevance of Ṛta drawing parallels between ancient Vedic Thought and modern societal challenges and global issues such as environmental sustainability, social justice and ethical governance.

**Key Words:** Ṛta, Rigveda, Morality, Dharma, Relevance

etc.

**Introduction:**

The concept of Ṛta is one of the most fundamental and profound ideas in the Vedic tradition, representing the cosmic order and moral law governing the universe. Ṛta is derived from the root "ṛ" which means "to move" or "to fit". It encompasses both physical and moral dimensions, signifying the natural order of the universe as well as the ethical principles that sustain it. The earliest references to Ṛta are found in the Rigveda, the oldest of the four Vedas, where Ṛta is depicted as the foundation of the cosmos. It is described as the principle that governs the movement of the celestial bodies, the cycle of seasons, the harmony of natural elements. Everything in the cosmos, from the stars to the rivers, follows the path of Ṛta . For instance, in Rigveda Ṛta is linked to the Sun's movement, reflecting the order and regularity in the natural world. However, Ṛta is not merely a natural law. It also refers to the moral law that governs human actions. It is seen as the guiding principle for righteous behavior, truth and justice. To quote I.C. Sharma " Ritam represent the basic truth, harmony, system or eternal moral order of the entire Universe. That which is universally true is Ritam and that which is the opposite or false is termed Anritam It has been the firm belief of the Indian sages that ultimately truth id victorious because it is the basic principle"[1] The Vedic deities, particularly Varuna, are closely associated with Ṛta serving as its guardians and enforcers. Varuna, in his role as the God of cosmic laws, ensures that both nature and human beings. This paper explores the philosophical significance of Ṛta in the Vedic tradition and its relevance in contemporary discussions in law, morality and cosmic order.

**Objective of the paper:**

1. To analyse the Vedic Concept of Ṛta a from cosmological, ethical and social perspective.
2. To find out the philosophical significance of the Vedic Concept of Ṛta
3. To find out the Relevance of the concept of Ṛta in Contemporary world.

**Methodology:**

As the present study is descriptive and analytical in nature, so mainly descriptive and analytical method is used in this study. Mainly secondary data are used in present study.

**Discussion:**

The term Ṛta appears frequently in the Vedic texts, particularly in the Rigveda, where it is associated with the natural order of the cosmos and the moral order of society. Ṛta is described as the principle that governs the cycle of seasons, the rising and setting of the sun, and the flow of rivers. It is also seen as the foundation of dharma (moral duty) and satya (truth).The deities of the Vedic Pantheon, especially Varuna, are often depicted as guardians of Ṛta, ensuring that the cosmic and moral order is upheld.

Ṛta is not merely a metaphysical concept but also a guiding principle for human behavior. The Vedic sages emphasized the importance of living in accordance with Ṛta which involves adherence of truth, justice and moral rectitude. The disruption of,whether through dishonesty, injustice or environmental destruction, is believed to lead to chaos and disorder both in the cosmos and in society.

**The Cosmological aspect of Ṛta:**

At the cosmological level, Ṛta refers to the order that maintains the Universe. The Rigveda describes Ṛta as

the force that regulates the cycles of nature including the movement of the Sun, moon and Stars, the folw of rivers, the changes of seasons and other natural phenomena. "Rta is antecedent to all the objects of the universe and the external universe is its manifestation. Universe is changeable. Rta is unchangeable and eternal. It fathers all the objects of the Universe. Heaven and hell owe their present existence to it."[2] It is viwed as the cosmic law that ensures the harmony of the Universe. The Gods themselves , including the Varuna are seen as guardians of Rta. Varuna's role is especially significant in maintain Rta by overseeing moral and cosmic order.

The sun (Surya) often described as moving along the path of the Rta, symbolizes this cosmic rhythm and stability. The proper performance of rituals and sacrifices (Yajnas) is also tied to maintaining the cosmic order, as human actions were believed to be in sync with the universal laws when conducted in accordance with Rta. Thus Rta in Vedic cosmology implies a Unified law that sustains the Universe and the individual life.

**Ethical aspects of Ṛta:**

In addition to its cosmological significance, Ṛta also holds a strong ethical dimension. The moral world according to Vedas, is a part of the cosmos. Goodness is involve in nature. The world and human society in it have an ingrained principle of harmony and integrity. Therefore , Rigveda enjoins " A man should think on wealth, and strive to win it by adoration of the path of order and counsel himself with his own mental insight and grasp still nobler vigour with his spirit."[3] The Vedic text also speaks to living in harmony with Ṛta as essential to dharma, which means righteous living. The concept of dharma is closely related to dharma, which in later Indian Philosophy becomes the central principle of ethical conduct. Dharma can be

understood as the application of Ṛta in moral and social sphere. While Ṛta represents the cosmic order, dharma is the code of conduct that aligns human actions with this order. In this sense living in accordance with dharma is a way of maintaining Ṛta in human realm.

The relationship between Ṛta and Dharma underscores the ethical dimension of the Vedic worldview. It suggests that moral actions are not orbitrary but are grounded in the fundamental structure of the Universe. This has significant implications for how we understand justice, responsibility and the role of individuals in society. In the Vedic tradition, justice is not merely a human construct but is rooted in the cosmic order of Ṛta.

Ṛta is closely associated with Satya (Truth). Following Ṛta is essentially living with truth, both in thought and action.[4] In this sense, Ṛta embodies a metaphysical and moral truth that governs the universe. Upholding truth was seen as adhering to Ṛta, which leads to the flourishing of life and cosmic balance.

**Social aspects of Ṛta :**

In the Vedic Social context, Ṛta also played an essential role in regulating human institutions. It was believed that Social order including the division of responsibilities in Society , governance and social relationship , should follow the principle of Ṛta. Kings and rulers were seen as enforcers for this cosmic law and their legitimacy depended on their ability to uphold dharma, which was rooted in Ṛta. The concept of Ṛta also represent justice. The God , especially Varuna , are seen as the guardians of Ṛta ensuring the wrong doers are punished and the social harmony is maintained. The divine justice ensures that action are in accordance with cosmic law, reinforcing the social justice in the society.

The ritual aspect of Ṛta, as seen in the Yajnas, was

equally important in reinforcing social harmony. The vedic rituals were not merely religious ceremonies, they were acts of re-establishing cosmic and social order, creating a bridge between the human and divine realms. Failure to observe these rituals was believed to disrupt Ṛta, leading to both cosmic and social disarray.

**Philosophical Significance of Ṛta:**

Philosophically Ṛta reflects an early metaphysical understanding of the Universe as a structured and ordered entity. It implies that order is intrinsic to existence itself. This understanding of Reality as ordered and interconnected became a key feature of later Indian Philosophical systems such as Vedanta and Samkhya where the notion of interconnectedness and the moral law of cause and effect grounded on the concept of Ṛta .The concept of Ṛta also laid the groundwork for later Philosophical ideas in Indian thought, especially in Upanishads and Vedanta. The shift from Ṛta to Dharma in later text reflects the ongoing evolution of the philosophical understanding of cosmic law, morality and ethics. The concept of Brahman (the Ultimate reality) and the relationship between the individual and the cosmos in Indian Philosophy can be traced back to the principle underlying Ṛta. The notion of Ṛta can also be philosophically significant in contemporary discussions about environmental Ethics, sustainability and the interconnectedness of all life forms. The idea of maintain balance and harmony in nature aligns with modern concerns about ecological stability and the human role in preserving the environment.

**Relevance of Ṛta in Contemporary World** :

One of the most relevant aspect of Ṛta in today's world is its emphasis on ecological balance. The Vedic texts frequently associate Rta with the natural world,

highlighting the interconnectedness of all life forms and the importance of maintaining harmony with nature. This ecological perspective is particularly significant in the context of modern environmental challenges such a climate change, deforestation, and pollution.

The concept of Ṛta encourages a view of the environment as a sacred entity that must be respected and preserved. This stands in stark contrast to the exploitative attitude towards nature that has contributed to the current ecological crisis. By reinterpreting Ṛta in the context of contemporary environmental ethics, we can develop a more sustainable and harmonious relationship with the natural world.

In today's world where issues such as environmental degradation, social inequality and ethical corruption are increasingly prevalent, the concept of Rta offers a valuable framework for addressing these challenges. By grounding our actions in the principles of cosmic order, truth and moral responsibility, we can work towards creating a more justice and harmonious society. The ecological dimension of Rta can inform modern approaches to environmental conservation, emphasizing the need to live in harmony with nature and to respect interconnectedness of all life forms. The ethical implications of Rta highlight the importance of justice, fairness and equity in social relations. This can inspire efforts to address social inequalities and to create systems that promote the well being of all individuals. The political dimension of Rta underscores the importance of truth, transparency and accountability in governance. This is particularly relevant in the context of contemporary issues such as political corruption and the erosion of public trust in institutions.

**Conclusion:**

The Vedic concept of Ṛta, a principle of cosmic order and truth, forms the foundation of ancient Indian Philosophy and spiritual thought. Ṛta governs the laws of nature, human conduct and societal norms, ensuring harmony and balance in the universe. It embodies the principle that the universe functions through a balance of forces, where everything follows a certain pattern and righteousness, thus ensuring continuity and stability. The concept of Ṛta, with its emphasis on cosmic order, truth and moral responsibility, remains profoundly relevant in modern world. Rta encourages individual and collective responsibility for maintaining order and ethical living.It reminds us that our actions impact the larger world urging accountability and moral behavior which are essential in addressing contemporary issues like inequality, corruption and social justice. On a personal level, Rta foster the pursuit of truth and alignment with one's higher self, resonating with modern spiritual practices and existential quest for meaning.[5] It encourages individuals to live alignment with universal principles of truth and righteousness. As we face increasingly complex global challenges, the principle of Ṛta can provide a timeless and holistic framework for promoting environmental sustainability, social justice and ethical governance. Thus, the vedic concept of Rta continues to hold deep philosophical and practical relevance today. By re-engaging this ancient wisdom, we can work towards creating a more balanced and harmonious society, one that is aligned with the deeper truths of the universe.

**Notes and References:**

1. Sharma. I.C., Ethical Philosophy of India, p.71
2. Dasgupta. S., A history of Indian Philosophy, p.9
3. Rigveda. X.XXX1.2.
4. Radhakrishnan, S., Indian Philosophy Vol-I, p. 24
5. Sharma. R. N., Indian Ethics, P.17

# वैदिक शिक्षा पद्धति की वैज्ञानिकता की वर्तमान में उपादेयता- एक समीक्षा

डॉ. मंजुला जे. वीरडिया
एसोसियेट प्रोफेसर, संस्कृत विभागाध्यक्षा,
श्रीमती ए.पी.पटेल आर्ट्स एवं स्व.श्री एन. पी. पटेल कॉमर्स कॉलेज,
नरोडा, अहमदाबाद

**शेधसारांश:**

**"न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिहं विद्यते।"[1]**

इस संसार में ज्ञान के समान पवित्र करने वाला कुछ भी नहीं है। श्रीमद्भगवद्गीता में कृष्ण का यह वाक्यांश भारतीय ज्ञान परंपरा के महत्त्व को स्थापित करता है। किसी भी देश या जाति का आधार शिक्षा होती है, जिस देश की शिक्षा अपने में जितना ऊंचे आदर्श रखती है, वह देश को उतनी ही उन्नति के शिखर पर ले जाती है। भारत की प्राचीन शिक्षा प्रणाली इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है। आदर्श शिक्षा परंपरा के कारण ही भारत विश्व गुरु माना जाता था। व्यक्ति का सर्वाङ्गीण विकास करना ही वैदिक शिक्षा पद्धति की आधारशीला है। बालक को माता-पिता के कुल से हटाकर गुरुकुल में रखा जाता था जहाँ गुरु व्यक्तिगत रूप से शिष्य से परिचित रहता था। शिष्य की दिनचर्या के साथ-साथ वह शिष्य के मानसिक स्तर से भी परिचित होता था और इस प्रकार वह शिष्य भी गुरु – गृह में वास करके अपनी शारीरिक- मानसिक और आध्यात्मिक पूर्णता को प्राप्त करता था। प्रस्तुत शोधपत्र में वैदिक शिक्षा पद्धति की वैज्ञानिकता की वर्तमान में उपादेयता- एक समीक्षा विषय पर समीक्षा प्रस्तुत कि

[1] श्रीमद्भगवद्गीता 4-38

जायेगी।

**कूटशब्द:** वैदिक शिक्षा, वैज्ञानिकता, गुरुकुल परंपरा, संस्कार, अपराविद्या, पराविद्या

**भूमिका:**

आनो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतः।3 (ऋग्वेदः- 1-89-1) "सभी दिशाओं से शुभ एवं अच्छे विचार प्राप्त हों।" प्राचीन भारत के ऋषि-मुनियों की यही प्रार्थना थी। जिस देश में एक ऋषि इतने उत्कृष्ट विचार के साथ रहता हो, उस देश की शिक्षा व्यवस्था को बार-बार प्रणाम करने का मन होना स्वाभाविक है। 'व्यक्ति के पूर्ण विकास' का विचार प्राचीन भारत की शिक्षा परंपरा और गतिविधि की नींव में था।

बालक की शिक्षा में संस्कारो का बहुत महत्त्व हैं। जिनमें कुछ संस्कार प्रसव पूर्व के हैं तथा कुछ प्रसव के बाद के हैं। प्रसव पूर्व संस्कारो में गर्भदान, पुंसवन और सीमन्तोन्नयन प्रमुख हैं तथा प्रसोवोत्तर संस्कारो में अन्नप्राशन, निष्क्रमण और कर्णवेध हैं। सिग्मन फ्रॉयड मानते है कि जब बच्चा माँ की गोद में अँगूठा चूस रहा होता है तभी से उस पर वे संस्कार पड रहे होते हैं जो उसके भावी जीवन का निर्माण करते हैं।

प्राचीन भारत के शिक्षण केन्द्रों में 'व्यक्ति के पूर्ण विकास' की झलक देखी जा सकती है। विद्याकेंद्रों की यह प्रवृत्ति बाद में आश्रमों, गुरुकुलों, सुनियोजित विद्यापीठों, मंदिर-मठ विहारों और छोटे ग्रामविद्यापीठों में विकसित हुई। समय के अनुरूप परिवर्तन के साथ शैक्षणिक गतिविधियाँ विकसित हुईं और विदेशी विद्वानों को भी आकर्षित करने में सक्षम रहीं। काशी, उज्जैन, कांची, कनोज, पैठण आदि अनेक नगर विभिन्न पाठ्य विषय के केंद्र थे। प्राचीन शिक्षा पद्धति से भारत ने न केवल सैंकडों वर्षों तक मौखिक परंपरा द्वारा विशाल वाङ्मय को सुरक्षित रखा, किन्तु प्रत्येक युग में दर्शन, न्याय, गणित, ज्योतिष, वैद्यक, रसायण

आदि शास्त्रों में एसे मौलिक विचारक, विद्वान उत्पन्न किये जिनसे भारत का मस्तक आज भी ऊँचा है।

वैदिक भारत की शिक्षा के पाठ्य-विषय भी अतिव्यापक थे। छान्दोग्य उपनिषद् (१०, १, २) में जिन शिक्षाओं का वर्णन है, उनमें मनुष्यशास्त्र, (Anthropology) गणित, (Mathematics) उत्पातविद्या, (Physical geography) निधि विद्या, (Minerology) वाकोवाक्य विद्या,(Logic) एकायनविद्या, (Ethics) भूतविद्या (Zoology, Anatomy) क्षत्रविद्या, ज्योतिष, सर्पदेवजनविद्यादि प्रमुख हैं, जिनका अध्ययन नारदजी ने किया था।

सायण ने महाप्रज्ञ, मध्यमप्रज्ञ तथा आत्मप्रज्ञ के रूप में तीन प्रकार के विद्यार्थियो का उल्लेख किया हैं। प्राचीन शिक्षा पद्धति में चरित्र तथा धारणा शक्ति का महत्त्व था, जबकि आज की शिक्षा पुस्तकालयों में बन्द है और सिर्फ मेरीट के मीटर से ही चल रही हैं नैतिक मूल्यों से नहीं। प्राचीन कालिक पण्डित स्वयं एक पुस्तकालय या विश्वकोष हुआ करता था।

वैदिक शिक्षाशास्त्री शिक्षा के सम्बन्ध में छः बातो का ध्यान रखते थे-

(1) पर्यावरणःइसके तीन स्तर हे- (क) भौतिक पर्यावरण (ख) मानसिक पर्यावरण (ग) सामाजिक पर्यावरण

(2) चरित्र की शिक्षा (3) तप की शिक्षा

(4) अध्यापन पद्धति (क) आगमन पद्धति (ख) निगमन पद्धति

(5) वृद्धो की सेवा करने की शिक्षा (6) सबको पठन का समान अधिकार

**पर्यावरणः**

प्रथम तो शिक्षा संस्थाओं को प्रकृति के शुद्ध वातावरण में रखा जाना चाहिए-नगर या शहर की भीड-भाड में शिक्षा-संस्थाओं के चलने से बच्चों के मस्तिष्क को शहरों के गन्दे संस्कारों से बचाना मुश्किल होगा।

गुरुकुलीय शिक्षा पद्धति से बालक एक प्रकार से सामाजिक परिवार में पलकर राष्ट्र की धरोहर बनता है तथा उसमें 'सह नाववतु सह नौ भुनक्तु' की भवना का विकास होता हैं। आचार्य बालक को उपनयनोपरान्त अपने गर्भ में माता की तरह धारण करके उसकी बुरे संस्कारो से रक्षा करता है-

**आचार्यो उपनयनो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्तः।**
**तं रात्रीस्तिस्त्र उदरे बिभर्ति तं जातं द्रष्टुमभिसंयन्ति देवाः।।[1]**

इस तरह शिक्षा संस्थाओं को प्रकृति के शुद्ध वातावरण में स्थापिक करना भौतिक पर्यावरण हैं। बालक की बुरे संस्कारों से रक्षा करना मानसिक पर्यावरण हैं, और बालक में सह नाववतु सह नौ भुनक्तु की भावना का विकास करना सामाजिक पर्यावरण हैं। इन तीनों प्रकार के शुद्ध पर्यावरण से बालक में सात्त्विक गुणों की वृद्धि होती हैं। जब कि प्रवर्तमान समय में बालक का भौतिक पर्यावरण, मानसिक पर्यावरण, सामाजिक पर्यावरण दूषित हो रहा हैं। अतः उसका मन अती दूषित हो गया है, परिणाम रूप छोटी कम उमर में ही गुनाहित प्रवृत्ति मे जूड जाते हैं।अतः हमें पुनः हमारी प्राचीन शिक्षा प्रणालि को स्वीकारने का वक्त आ गया हैं। प्रवर्तमान नई शिक्षा नीति 2020 में भारतीय ज्ञान प्रणाली और जीनवमूल्यों जैसे विषय को स्थापित करके हमारी प्राचीन शिक्षा पद्धति की उपादयता सिद्ध कि हैं।

**चरित्र की शिक्षा:**

गुरु को इसीलिए आचार्य कहते थे क्योंकि वह शिष्य को सदाचार शिखलाते थे- 'आचारं ग्राह्यतीति आचार्यः।' प्राचीन शिक्षा में बालक को चारित्र निर्माण की सुंदर शिक्षा दी जाती थी। दीक्षान्त भाषण के समय उससे यह आशा की जाती थी कि जो कुछ उसने पढा है,उस पर वह अमल भी करेगा-

'सत्यं वद। धर्मंचर। स्वाध्यायान्मा प्रमादः। सत्यान्न

---

[1] अथर्व.११.५.३

प्रमदितव्यम्।धर्मान्न प्रमदितव्यम्। कुशलान्न प्रमदितव्यम्। स्वाध्यायप्रवचनाभ्याम प्रमदितव्यम्। मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव।अतिथिदेवो भव-एषः आदेशः, एषः उपदेशः, आषा वेदोपनिषद्, एतदनुशासनम्' ।[1]

मनु कहतें हैं कि ऐसे विनीत, शिक्षित ब्रह्मचारियों द्वारा मानवों को अपने अपने चरित्र की भी शिक्षा लेनी चाहिए-

**ऐतद्देशप्रसूतस्य सकाशादप्रजन्मनः।**
**स्वं स्वं चरित्र शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः।।[2]**

आज पश्चिमी संस्कृति के प्रभाव से प्रभावित शिक्षक और छात्र को यह नैतिकता के सूत्रों को आत्मसात करने में बडी कठीनाई हो रही हैं। समाज मे प्रवर्तित भ्रष्टाचार के प्रभाव से वह सत्त्वहीन हो रहा हैं। तब हमारी वैदिक शिक्षा पद्धति की उपादयता बनती हैं।

**तप की शिक्षा:**

प्राचीन शिक्षा में ब्रह्मचारी के लिए 'तप' पहली शिक्षा है। उसे उपदेश दिया जाता है 'कर्म कुरु' कर्म कर, 'दिवा मा स्वाप्सीः', दिन में न सोयें "क्रोधानृते वर्जय" क्रोध और असत्य का त्याग करना इत्यादि तप के सूत्रों को आत्मसात करके बालक भी तप से जीवन की साधना करता हैं।-

**स आचार्य तपसा पिपर्ति।[3]**
**ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत।[4]**

शिष्यको "अन्तेवासी" कहा है, मानो वह गुरु के भीतर बसता है। वहाँ( गुरुकुल में) वह अपराविद्या या अविद्या(Scientific knowledge) तथा पराविद्या(Spiritual Knowledge) दोनों को

---

[1] तैत्ति.७.११.१, २,३,४

[2] मनु. २.२०

[3] अथर्व.११.५.१

[4] अथर्व. ब्रह्मचर्य सूक्त ११.५.१९.

सीखकर लोक- परलोक में आनन्द करता है-

**विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयं सह।**
**अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते।।[1]**

विद्या और तप से प्राणियों की आत्मा शुद्ध होती है तथा वाणी का संयम भी प्राप्त होता है-

**विद्यातपोभ्यां भुतात्मा, बुद्धिज्ञार्नेन शुध्यति।**
**वाण्येका समलङ्करोति पुरुषं या संस्कृता धार्यते।।[2]**

**अध्यापन पद्धतिः**

वैदिक अध्यापन पद्धति में आगमन पद्धति(Inductive Method)तथा निगमन पद्धति(Deductive Method) का भली भाँति प्रयोग किया गया है। गोपालन भी शिक्षा का एक अंग था। "तत्त्वमसि" यह आगमन पद्धति का तथा "सदेवेदमय आसीत्" यह निगमन पद्धति का दृष्टान्त है। प्राचीन परंपरा मे बालक को सभी प्रकार की शिक्षा दी जाती थी। वेद ने शिक्षा के लिए दर्शन एवं श्रवण शक्ति को बहुत अधिक महत्त्व दिया है - 'प्रज्ञानाय नक्षत्रदर्शनम्।' इस प्रकार दर्शन, श्रवण, प्रश्न, मननादि की शिक्षा से ज्ञान की पूर्णता और परिपक्वता होती है। वर्तमान शिक्षा केवल लोकिक है। पद- प्रतिष्ठा और भौतिक वस्तुओं की उपलब्धि ही एक मात्र ध्येय बन गया है। अतः आज की शिक्षा में वैदिक शिक्षा की वैज्ञानिकता का संपूर्ण अभाव दिखता है। आज हमें पुनः अपनी प्राचीन परंपरा का स्वीकार करके आगे बढना होगा। नई शिक्षा नीति का निर्माण और अमल तो हो गया है, पर उसकी पूर्णता के लिए सरकार श्री, अध्यापक, आचार्य और छात्रवृंद एवं माता, पिता, और समाज को सम्मिलित होकर प्रयत्न करना पडेगा। वस्तुतः मनुष्य को लौकिक और पारलौकिक दोंनो शिक्षाओं की महती आवश्यकता हैं।

---

[1] ईशो. ११

[2] नीतिशतक, १५

**अन्धतमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते ।[1]**

**अविद्या मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते।[2]**

वैदिक शिक्षा का प्रथम पाठ यही है कि संसार परमात्मा से ओत-प्रोत है और हम त्यागपूर्वक ही सब चीजों का उपभग करें।

**ईशावास्यमिदं सर्वं यत् किञ्च जगत्यां जगत्।**

**तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः मा गृधः कस्यस्वद् धनम्।।[3]**

वैदिक शिक्षा का द्तीय पाठ है कर्म-

**कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेत् शतं समाः।[4]**

वेद में प्रश्नोत्तर शैली द्वारा शिक्षण का प्रकार दर्शाया गया है। यथा-

**आ शिक्षायै प्रश्लिलम् उपशिक्षायै अभिप्रश्निनम्।[5]**

**कस्त्वा युनक्ति- स त्वा युनक्ति कस्मै त्वा युनक्ति- तस्मै त्वा युनक्ति।[6]**

**कोऽसि- कतमोऽसि- कस्याऽसि को नामाऽसि।[7]**

इस प्रकार प्रश्न मननादि की शिक्षा से ज्ञान की पूर्णता ऐर परिपक्वता होती है।

**वृद्धो की सेवा करने की शिक्षाः**

वैदिक परंपरा में शिष्य को वृद्धों की सेवा करने की शिक्षा भी दी जाती थी जिससे इनकी विद्या, मनोबल,आयु और यश में पर्याप्त वृद्धि होती थी-

**अभावादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।**

**चत्वारि तस्य वर्द्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम्।।[1]**

---

[1] यजु.४.१२

[2] यजु. ४.१४

[3] यजु.४०.१

[4] यजु.४०.२

[5] यजु. ३०.१०

[6] यजु.१.६

[7] यजु.७.२९

आज प्रवर्तमान में बच्चों को इस तरह की शिक्षा देंनें की अति आवश्यकता है। आज दिन प्रतिदिन वृद्धाश्रम की संख्या मे सतत बडोती हो रहीं है। अतः हमें मूल्यनिष्ठ शिक्षा प्रदान करने की बहुत जरुरी हैं।

**सब को पढने का अधिकार-**

वैदिक शिक्षा प्रणाली मे स्त्री- शूद्र सब को पढने का समान अधिकार था। मन्त्र द्रश्टव्य है-

**यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः।**
**ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय।।**[2]
**ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विदन्ते पतिम्।**[3]

आज भी हम सब को समान पढने का अधिकार प्राप्य है और शिक्षा मन्त्रालय द्वारा सब को शिक्षा प्राप्त करवा ने हेतु विविध स्कॉलरशीप योजनाएँ भी चल रही है। सर्वशिक्षा अभियान जैसे कार्यक्रम भी चल रहे हैं। जो सब को शिक्षा का अधिकार बता रहा हैं।

फलितार्थ रूप से हम कह सक्ते है कि आज की शिज्ञा पद्धति में अर्थ एवं काम विषयक विषयो का ही समावेश है ऐर उनका ही अध्ययन होता है। धर्म तथा मोक्ष इन दो विषयों का शिक्षण नही होता है। मोक्ष का सम्बन्ध मनुष्य की आत्मा के साथ है तथा धर्म का सम्बन्ध बुद्धि से है। अर्थ से शरीर की आवश्यकता की पूर्ति एवं अर्थ से उपार्जित काम से मन की तृप्ति तक ही गति हो पाती है। फलतः शिक्षा में धर्म और अर्थ दोंनों का समावेश होने से उनके फल स्वरूप काम और मोक्ष सहज ही प्राप्त हो सकते है और मनुष्य की परम उन्नति भी हो सकती है। वैदिक शिक्षा का अन्तिम लक्ष्य आत्मतत्त्व का सम्बोध ही हैं।" इह चेदवेदीत् अथ सत्यमस्ति, न चेदवेदीत् महती विनष्टिः।" मैत्रेयी ने याज्ञवल्क्य से लौकिक-सम्पति न

---

[1] मनु. २.१२१

[2] यजु. २६.२

[3] अथर्व.३.२४. ११. १८

माँगकर आध्यात्मिक सम्पति माँगी थी, "यन्नु म इयं सर्वा पृथिवी वित्तेन पूर्णा स्यात् स्यामहं तेनामृता।"

**"तब याज्ञल्क्य ने मैक्षेयी को द्वे विद्ये वेदितव्ये पर च अपरा च"** की शिक्षा दी थी। वस्तुतः आत्मतत्त्व वेत्ता के आगे भौतिक जगत हाथ जोडकर नतमस्तक हो जाता है। इस प्रेयमार्ग और श्रेयमार्ग में से सुधीजन श्रेयमार्ग का ही वरण करते है-

**नाल्पे सुखमस्ति भूमा वै सुखम्।**[1]

अतः वर्तमान में प्रवृत्त नई शिक्षा प्रणाली 2020 में हमारी भारतीय ज्ञान परंपरा का महत्त्व रखा गया है और जीस में संपूर्ण व्यक्तित्व विकाश के सभी पासे रखे गये है। भारतीय ज्ञानपरंपरा का पुनः स्थापन होगा और हमारी प्राचीन ज्ञान परंपरा का प्रतिपाद भी होगा। अब भारत को पुनः विश्वगुरु बनने से कोई नही रोक सक्ता। अतः हमारा मत है कि वैदिक शिक्षा पद्धति की वैज्ञानिकता की वर्तमान में उपादेयता बनी रहेंगी।

।।अस्तु।।

**संदर्भ-ग्रन्थ-सूची:**


1. डॉ. धर्मेन्द्रकुमार, ऋग्वेदसंहिता, दिल्ली संस्कृत अकादमी, प्रथम संस्करण, 2013
2. डॉ. धर्मेन्द्रकुमार, सामवेदसंहिता,दिल्ली संस्कृत अकादमी, प्रथम संस्करण, 2013
3. डॉ. धर्मेन्द्रकुमार, यजुर्वेदसंहिता, दिल्ली संस्कृत अकादमी, प्रथम संस्करण, 2013
4. डॉ. धर्मेन्द्रकुमार, अथर्ववेदसंहिता, दिल्ली संस्कृत अकादमी, प्रथम संस्करण, 2013
5. પાટીદાર,એન.આર.. ઈશાવાસ્યોપનિષદ્ . પાર્શ્વ પબ્લિકેશન, અમદાવાદ,પ્રથમ આવૃત્તિ,1998
6. श्रीमद्भगवद्गीताः- गीताप्रेस गोरखपुर,
7. मनुस्मृतिः- हिन्दी- संस्कृत व्याख्या सहित- संपादक- पंडित गोपालशास्त्री नेने, चौखम्भा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, द्वितीय आवृत्ति
8. छान्दोग्योपनिषद्- गीताप्रस, गोरखपुर
9. शास्त्री, रामनारायणदत्त. वेदव्यासकृत महाभारत- गीताप्रस गोरखपुर, द्वितीय संस्करण संवत- 2021


[1] छा. ७.२३.१

# रामायण में उपेक्षीत महिला पात्र

प्रा. सौ. गौरी मंगेश दुद्दलवार
मातोश्री प्रशासकीय सेवा महाविद्यालय, उमरेड

**प्रस्तावना:**

भारतीय समाज जीवन पध्दति में स्त्री को भगवान की सर्वोत्कृष्ट कृति के रूप में स्वीकार किया गया है। इसका कारण यह नही की वह शारीरिक, चारित्रिक या मानसिक अथवा सुंदरता की दृष्टि से अधिक आकर्षक होती है। स्त्री को सृष्टि की सर्वोत्तम कृति होने के कारण उसमें मातृत्व है, जो उसे महिमा प्रदान करता है। अतः एक भारतीय अथवा वैदिक हिंदू परंपरा में स्त्री के मातृत्व के गुण को सर्वोच्च स्थान दिया गया है, जो सृष्टी के निर्माता है और मानवीय गुणों की व्याख्याता और प्रदाता है।

भारतीय जीवन मूल्यों तथा भारतीय वाङःमय में श्रीराम और श्रीकृष्ण आदर्श चरित्र का सर्वोच्च अधिष्ठान है। श्रीराम को मर्यादा पुरूषोत्तम कहा गया है। वही श्रीकृष्ण को लीला पुरूषोत्तम माना गया है। हिंदू परिवारों में आज भी श्री रामायण और श्रीमदभागवत के चरित्रों की कथा सुनाकर माताएं अपने बच्चों को अपनी सनातन संस्कृति और संस्कारों से शिक्षीत करती है।

महर्षि वाल्मीकि ने श्रीराम, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न के चरित्रों का जो आदर्श उदात्त और उत्तुंग वर्णन किया है जो वह उनकी वंदनीय माता कौशल्या, सुमित्रा तथा कैकयी के व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व का परिणाम है। कौशल्या के व्दारा दिए गये संस्कारों काही परिणाम था की श्रीराम जिन्हे अयोध्या का चक्रवती साम्राज्य प्राप्त हो गया था। वे बिना किसी विषाद या दुःख के 14 वर्ष के लिए वनवास जाने को तत्काल तैयार हो गये थे।

**शान्ता:**

अयोध्या नरेश दशरथ की तीन पत्नियाँ कौशल्या, सुमित्रा और कैकयी में से कौशल्याने श्रीराम को जन्म देने से पहले ही एक पुत्री को जन्म दिया था। जिसका नाम शान्ता था। वह अंत्यत सुदंर और सुशील कन्या थी। इसकें अलावा वह वेद कला, तथा शिल्प में पारंगत थी।

राणी कौशल्या की बहन राणी वर्षिणी संतानहीन थी और इस बात से वह दुःखी रहती थी। एक बार राणी वर्षिणी और उनके पति रोमपद जो अंगदेश के राजा थे वे अयोध्या आए। राजा दशरथ और राणी कौशल्या से वर्षिणी से और रोमपद का दुःख देखा न गया और उन्होने निर्णय लिया की वह शान्ता को उन्हे गोद दे देंगे। दशरथ के इस फैसले से रोमपद और वर्षिणी की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। कहते है कि उन्होने शान्ता की देखभाल बहुत अच्छे तरीके से की और अपनी संतान से भी ज्यादा स्नेह और मान दिया। इस प्रकार शान्ता अंगदेश कि राजकुमारी बन गयी।

पुराणों के अनुसार शान्ता प्रत्येंक कार्यो में दक्ष थी। और बुध्दीमान होने साथ साथ अनेक कार्यो में निपूण थी। शान्ता का विवाह ऋषी श्रृंग से हुआ था। ऋषि श्रृंग और शान्ता के विवाह अनेक कथाएँ प्रचलित है। शान्ता कें पति ऋषि श्रृंग ने ही राजा दशरथ के यहाँ पुत्रेष्टियज्ञ किया था, जिसके फलस्वरूप राजा दशरथ के चार पुत्रों का जन्म हुआ था।

**कैकयी:**

राणी कैकयी हिन्दू पौराणिक कथा रामायण की पात्र थी। रामायण की कथा में उनका पात्र उपेक्षित था। ऐसा भी कहा जाता है की यदि राणी कैकयी ने भगवान श्रीराम को वनवास न भेजा होता तो उस कहानी का कोई अस्तित्व नहीं होता। राणी कैकयी बचपन से ही बहुत बहादुर, होशियार और खुबसुरत थी एवं ये सौंदर्य की धनी होने के साथ साथ युध्द कौशल की धनी थी। जिससे अयोध्या के राजा दशरथ उनसे

बहुत प्रभावित हुए। वे राजा दशरथ की दुसरी पत्नी थी और भरत कि मा थी किन्तु वे सबसे अधिक पे्रम राम से किया करती थी।

उन्होने अपने जीवन में सबसे बडी गलती यह की कि मंथरा नाम की अपनी दासी के बहकावें में आकर अपने पती पर अनावश्यक दबाव बनाया। जिससे अपने पुत्र भरत को राजसिंहासन तथा राम को 14 वर्ष का वनवास दिलवा दिया। इस एक घटना ने ही कैकयी जैसी गंभीर राणी की सारे जीवन की साधना को भंग कर दिया। इसके उपरान्त उन्होने अपने किये पर पश्चाताप भी किया। पंरतु तब तक समय उनके हाथ से निकल चुका था। राणी कैकयी व्दारा की गई इस गलती के परिणाम से ही आज की नारी को यह शिक्षा लेनी चाहीए की मन्थरा की भुमिका निभाने वाली किसी भी अपनी दासी, पडोसन, मित्र या सगी सबधी के बात में आकर अपने परिवार को नरक न बनायें। अपने परिवार को अपने ढंग से चलाने में ही अपनी भलाई समजनी चाहीए।

**सुमित्रा:**

रामायण की महागााथा में सुमित्रा का चरित्र उपेक्षित रह गया है। सुमित्रा दशरथ की तीन राणीयों में से एक है। कौशल्या को राजा दशरथ की मान्यता मिली थी और कैकयी को उनका अनुराग, किंतु सुमित्रा को क्या मिला उनके दोनों पुत्र उनके पास नहीं रहे।

कौशल्या की अपेक्षा सुमित्रा प्रखर प्रभावी एवं संघर्षमय रमणी है। कैकयी के वचनों का पालन एवं श्रीराम प्रभु के साथ जब लक्ष्मण अपनी माता से वन जाने की आज्ञा चाहते है तो वह कहती है कि जहाँ श्रीरामजी का निवास हो वही अयोध्या है। जहाँ सूर्य का प्रकाश हो वही दिन है। यदि निश्चय ही सीता राम वन को जाते है तो अयोध्या में तुम्हारा कुछ भी काम नहीं है।

सुमित्रा ने सदैव अपने पुत्र को विवेकपूर्ण कार्य करने को प्रेरित किया। राग, व्देष, ईष्र्या, मद से दूर रहने का आचरण सिखाया और मन

वचन कर्म से अपने भाई की सेवा में लीन रहने का उपदेश दिया। सुमित्रा जी महारानी कौसल्या से सन्निकट रहना तथा उनकी सेवा करना अपना धर्म समझती थी।

इस प्रकार सुमित्रा इतिहास की पुनरावृती नही, बल्कि नविन चेतना से सुसंपन्न नारी है। वे एक आदर्श माँ के रूप में राम लक्ष्मण को करणीय के लिए प्ररित करती है।

**उर्मिला:**

हिंदू महाकाव्य रामायण में एक चरित्र है। वह जनकपूर के राजा जनक की दुसरी बेटी थी और उनकी माता राणी सुनयना थी। वह लक्ष्मण की पत्नी थी। उर्मिला को नागलक्ष्मी या क्षीरसागर का अंशावतार माना जाता है। माता उर्मिला को रामायण के मूक पात्रों में से एक माना जाता है। उर्मिला पतिव्रत धर्म की प्रतिक है। एक पत्नी का पति के धर्म संकट में कैसे साथ निभाना चाहीए, पत्नी का क्या धर्म होता है, उर्मिलाजी के साक्षात इसका प्रमाण है। उर्मिलाजी ने 14 वर्ष तक अयोध्या में रहकर माता सुमित्रा की सेवा की थी और माता सुमित्रा को अपने पुत्र लक्ष्मण की कमी महसूस नहीं होने दी थी।

रामायण को आज तक हमने अपने और इस समाज ने श्रीराम को देखा, लक्ष्मण को देखा, देवी सीता को जाना, हनुमान के भक्ति भाव को जाना, रावण के ज्ञान को पहचाना, लेकिन कभी यह नहीं ध्यान दिया की इस रामायण में अगर कोई सबसे अधिक उपेक्षित और अनदेखा पात्र था तो वह लक्ष्मण की पत्नी और जनकनदिंनी सीता की अनुजा उर्मिला जब राम सीता वनवास जाने लगे और बडे आग्रह पर लक्ष्मण को भी साथ जाने की आज्ञा हुई तो पत्नी उर्मिला ने भी उनके साथ जाने का प्रस्ताव रखा परन्तु लक्ष्मण ने उन्हे यह कहकर मना कर दिया कि अयोध्या के राज्यों को और माताओं को उनकी आवश्यकता है।

यह उर्मिला का अखंड पतिव्रत धर्म था, यह उर्मिला की

अवर्णित, अघोषित, अचर्चित महानता थी, उर्मिला के महान चरित्र, अंखड पतिव्रत स्नेह और त्याग की चर्चा रामायण में उपेक्षित थी पर वह न हो सका। सबसे विकट क्षणों में भी उर्मिला आसू न बहा सकी क्योंकी उनके पति लक्ष्मण ने उनसे एक और वचन लिया था कि वह कभी आंसू न बहाएगी। क्योंकि वह अगर अपने दुःख में डुबी रहेगी तो परिजनों का ख्याल नहिं रख पाएगी।

उर्मिला ने पति के लिए पिता को इन्कार किया महाराज जनक अपनी पुत्री को मायके मिथिला ले जाना चाहते थे ताकि माँ और सखियों के सानिध्य में उर्मिला का पती वियोग का दुःख कुछ कम हो सके। परन्तु उर्मिला ने मिथिला जाने से सादर इन्कार कर दिया यह कहते हुए कि अब पती के परिजनों के साथ रहना और दुःख में उनका साथ न छोडना ही अब उसका धर्म है।

उर्मिला ने जो सहा शायद ही आज की कोई स्त्री कर पाए। इसलिए वर्तमान की दृष्टि से देखे तो उर्मिला रामायण की सबसे अतुलनीय और पवित्र पत्नि के साथ साथ त्याग बलिदान और समर्पण की देवी है। आज की पीढी के लिए उर्मिला का व्यक्तित्व सबसे ज्यादा सन्माननीय और पुजनिय होना चाहिए।

**मांडवी रू.:**

मांडवी रामायण की एक उपेक्षित पात्र थी। वो भरत की पत्नि और दशरथ की बहु थी। उसका त्याग उर्मिला कौशल्या से कीसी भी तरह से कम नहि था। उसके पास सभी सुख सुविधाएँ ऐश्वर्य था लेकीन फिर भी उसे एक साध्वी जैसा जीवन जीना पडा। मैने अपनी बहनो के दुख को अपना माना लेकीन फिर उसके त्याग, उसका सहयोग, इतिहास में कही पर भी दर्ज नही है। यह 14 वर्ष का वनवास सिर्फ राम और सीता को ही नहीं मिला बल्कि हम सभी बहनों को मिला। सीता राम के साथ, उर्मिला अपने पति की नींद लेकर बिस्तर पर लेटी रहती थी, श्रुतकीर्ति ससुराल

की देखभाल करने के साथ शत्रुघ्न के साथ थी। लेकीन वह एक अलग ही चक्रव्युह में फस गयी थी। क्योंकि उसके लिए भरत ने कोई भी मार्ग नहि छोडा था। राम के वनवास के बाद भरत के राज्य के बाहर कुटिया में निवास करने लगे। उन्हे अपने अग्रज भक्ती से बडा और कोई धर्म नहीं दिखा। अपने अग्रज की भक्ति में वह यह भुल गये थे की अपनी पत्नी के प्रति भी उनका कोई कर्तव्य बनता था। उन्होने सीधे कह दिया की मुझे राम भैया की भांति कुटिया में रहना स्विकार है। मुझे भोग विलास नहीं चाहीए और नाही तुम चाहीए उस समय आपका यह याद नही रहा की उसके भाई भी अपनी पत्नी सीता को अपने साथ लेकर गये और वह क्या कदाचित यह बातें भरत के लिए सरमान्य नहीं होगी लेकिन मेरे लिए यह हमेशा सामान्य थी। वह भरत के सुख दुख के भागीदारी थी। उसने अपने पति परायणता, सेवा, भावना और त्याग पूरीनिष्ठा से की। कभी पीछे नहीं हटी। लेकीन मैने संयोगिनी होकर भी वियोगिनी का जीवन जीया। मै मर्यादा में रहकर कार्य करती रही। भरत से वह एकनिष्ठ और समर्पण भाव से प्रेम करती रही उसके अतिरीक्त और क्या कर सकती थी। परंतु उसके विरह, वेदना को किसी ने नही समझा। उसके हृदय पीडा को कोई नही समझ पाया। उसने पत्नि के सारे धर्म निभाये। फिर भी उसको अपने पति का साथ नही मिला और सम्मान भी नही मिला। भरत ने अयोध्या का राज्यभार सभाल लिया पर केवल राम के प्रतिनिधी के रूप में भरत ने अयोध्या में ही वनवासी जैसा जीवन व्यथीत किया और उसके चलते मै मेरे लिए काई मार्ग नही था। भरत राज्य के बाहर कुटिया निवास करने लगे। अपने बडे भाई राम की भक्ति में उन्हे कोई और धर्म याद ही नही रहता और उसे परीवार की देखभाल करने को कहा।

**अहिल्या:**

अहिल्या रामकथा की एक महत्वपूर्ण लेकिन उपेक्षित पात्र रही है। अहिल्या ऋर्षि मुदगल और स्वर्ग की अप्सरा मेनका की पूत्री थी।

जिनका विवाह ऋर्षि गौतम से हुआ था। अहिल्या अप्रतिम सौदंर्य से युक्त थी उनके सौदंर्य पर मंत्रमुग्ध हो इंद्र, ऋषि गौतम का छदमवेष धारण करके उनका सतीत्व नष्ट करते है। जिसकी वजह से ऋषि गौतम अहिल्या का पत्थर होना का श्राप देते है। अहिल्या निर्दोष और पति के प्रति निष्ठामयी होती है। अहिल्या निर्दोष और पति के प्रति निष्ठावान है इसलिए यह कहती है कि विवाह के पूर्व ही मैने यह निर्णय लिया था कि अपने संगी साथियों, गुरूजनों यहाँ तक की माँ से भी उपर अपने पति की इच्छाओं पर अधिक ध्यान दुंगी। अपने पति के प्रति निष्ठामयी होने के बावजूद भी वे उनके व्दारा शापित होती है। जब श्रीराम अहिल्या को शाप से मुक्त करते हुए कहते है। माँ आप कब से सोई है। उठिए! हमें आशीष दिजीए।

हिन्दू परम्परा में इन्हे सृष्टी की पवित्रतम पाँच पंचकन्याओं में एक गिना जाता है और इन्हे प्रातः स्मरणीय माना जाता है। मान्यता के अनुसार प्रातः काल इन पंचकन्याओं का नामस्मरण सभी पापोका विनाश करता है।

**मंदोदरी:**

मंदोदरी असुरों के राजा मायासुर और अप्सरा हेमा की बेटी थी। मंदोदरी उस समय की सबसे सुंदर और गुणवती स्त्री थी। इसी वजह से लंकापती रावण ने उनसे विवाह किया और वह लंका कि पटटराणी बनी। मंदोदरी रामायण के पात्र पंचकन्याओं में से एक है। जिन्हे चिरकुमारी कहा गया है। उसका चरित्र गुणवान, धर्मपालक व शिक्षाप्रद था तभी इसे हिंदु धर्म की सर्वोच्च सम्मान प्राप्त पांच में स्थान दिया गया है जिन्हे हम पंचकन्या के नाम से जानते है। उसने सीता हरण के बाद से लेकर रावण वध तक हमेशा सीता को लौटा देने और अपने पति को सही मार्ग पर लाने की चेष्टा की थी लेकिन असफल रही। वह हमेशा रावण को नीती विरूध्द कार्यो को करने से रोकती थी। लेकिन हठी रावण कभी उसकी बात नही मानता।

हम सभी ने बचपन से भगवान राम, सीता, उनके संघर्ष, भगवान राम और रावण का युध्द, हनुमान व्दारा लंका दहन, अयोध्या नगरी और रामायण के पात्रों और घटनाओं से जुडी ढेरों कहानियाँ सुनी है। लेकिन बहुत ही कम लोग जानते है कि रावण के जीवन में मंदोदरी ने कितने दुःख झेले। वह एक कर्तव्य परायण और धर्म के रास्ते पर चलनेवाली स्त्री के तौर पर किया गया है।

रावण के दोषों के बावजूद मंदोदरी उससे प्रेम करती है और उसके ताकद पर गर्व करती है। वह स्त्रियों के प्रति रावण के कमजोरी से परिचीत है। एक धर्मात्मा महिला मंदोदरी रावण को धर्म की ओर ले जानी की कोशिश करती है। लेकिन रावण हमेशा उसकी सलाह को नजर अंदाज कर देता है। वह उसे सलाह देती है कि वह नवग्रह, नौ दिव्या प्राणियों जो किसी के भाग्य को नियंत्रित करते है। वह उसे वश न करे और वेदवती को बहकाएँ नहीं। जो सीता के रूप में पुर्नजन्म लेगी और रावण के विनाश का कारण बनेगी। मंदोदरी से रावण के तीन पुत्र उत्पन्न हुए मेघनाद, अतिकाय और अक्षयकुमार

मंदोदरी राजनीती में विशारद और राजकाज की सहायिका थी। उसने नगरवासियों के विचारों को जानने के लिए दूतियों तक कों नियुक्त कर रखा था। समय की प्रतिकूलता को जानकर ही उसने रावण को समझाने का प्रयास किया था। पर रावण कि हठ के कारण वह असफल रहीं।

**तारा:**

तारा हिंदू महाकाव्य रामायण में वानरराज वाली की पत्नी है। तारा की बुध्दीमत्ता, प्रत्युत्पन्नमतित्वता, साहस तथा अपने पति के प्रति कर्तव्यनिष्ठा को सभी पौराणिक ग्रंथोमें सराहा गया है। अपने पति बाली के मृत्यु के बाद तारा ने जीवन ब्रम्हचर्य से बिताया था। ऐसा वाल्मीकि रामायण में स्पष्ट वर्णन किया गया है। देवगुरू बृहस्पति कि पौत्री तारा को

हिंदू धर्म ने पंचकन्याओं में से एक माना है।

हाला कि तारा को मुख्य भुमिका में वाल्मीकि रामायण में केवल तीन जगह ही दर्शाया गया है। लेकिन उसके चरित्र ने रामायण कथा को समझने वालों के मन में एक अमिट छाप छोड दी है। जिन तीन जगह तारा का चरित्र मुख्य भूमिका में है, वह उसप्रकार है-

१. सुग्रीव वालि के व्दितीय व्दंव्द से पहले तारा की बालि को चेतावनी।

२. बालि के वध के पश्चात तारा का विलाप

३. सुग्रीव की राजमाता बनने के पश्चात क्रोधित लक्ष्मण को शांत करना।

रामकथा में तारा का एक महत्वपूर्ण स्थान रहा है, वह राजनीती की कसौटी है। उसकी बुध्दिमत्ता समय समय पर अपने शक्तिशाली विचारों दवारा अभिव्यक्त हुई है, जैसे अपना पति धर्म निभाते हुए महत्वपूर्ण समय वाली को अच्छी सलाह देती है और उसे सावधान करती है वह जानती है कि सुग्रीव राम के साथ गठबंधन कर चुके है और वह राम की शक्तियों से भली भाँति परिचित थी। लेकिन बाली उनकी बातों पर कोई विशेष ध्यान नही देता और अंत में उसको परिणाम भुगतना पडता है। तारा को राजनीति और कूटनीति का अच्छा ज्ञान था। तारा जीवन के हर मोड पर बहुत सोच समझकर फैसले लेती है। अपने पति बाली के मृत्यु के बाद वह सुग्रीव के संरक्षण में आती है और उसे भी समय समय पर सही सलाह देकर और लक्ष्मण के गुस्से से उसको बचाकर अपनी सुझबुझ का परिचय देती है।

पति के मृत्यु के बाद वह और मजबूती के साथ खडी होती है और अपनी सुझबुझ से अपने बेटे अंगद को राजगादी का उत्तराधिकारी बनाती है। लक्ष्मण व्दारा शूर्पणखा की नाक काटने और बदले में रावण के व्दारा सीता का अपहरण होने पर तारा पुरूषार्थ पर सवाल उठाती है और

बोलती है, यह कौनसा पुरूषार्थ है जिसमें निजी शत्रूता की भेट महिलाए चढती है।

अतः तारा का चरित्र अपने संपूर्ण गुण दोषो से परिपूर्ण एक ऐसी नारी का चरित्र है जो जटिल एवं विसंगतियों से पूर्ण आधूनिक युग में भारतीय महिलाओं का प्रतिनिधीत्व करती है।

**त्रिजटा:**

त्रिजटा रावण की राजधानी लंका में रहने वाली राक्षसी थी। यह बुहुत ही आदर्श विचारों की महीला थी। जिसकी बुध्दी बडी न्यायपारक थी। वह रावण की ओर से सीताजी की देखभाल करने के लिए नियुक्त की गई थी। वह जानती थी की सीताजी का चरित्र कितना आदर्श और पवित्र है? इतना भी नहीं की वह यह भी जानती थी की रावण के व्दारा सीता जी का अपहरण कीया जाना किसी भी दृष्टिकोन से उचित और नैतिक नहीं माना जा सकता। ऐसे में त्रिजटा का यह आचरण बहुत ही उत्तम माना जाएगा कि उसने रावण की और से सीता की देखभाल करने के लिए अपनी नियुक्ती होने के उपरांत भी सीता को कभी निराश नहीं होने दिया। वह हर समय उनका मनोबल बढाती रही कि एक न एक दिन रामचंद्र जी को आप की जानकारी हो जाएगी। त्रिजटा माता की तरह सीता का मनोबल बढाती थी। त्रिजटा का यह आचरण हमें बताता है कि अपने बौध्दिक विवेक और न्यायसंगत आचरण को कभी भी व्यक्ति को छोडना नहीं चाहीए। उसी से वह समाज में सम्मान पाता है।

**निष्कर्ष:**

प्राचीन काल से ही भारतीय संस्कृती में नारी का स्थान उच्च रहा है। नारी की गरिमा और उसके तेजस्विता के कारण भारत में उसका स्थान सदैव पूजनीय रहा है। नारी को परिवार का केन्द्र बिन्दु तथा समाज का आधार माना जाता है। सनातन वैदिक साहित्य के अनेक उदाहरण इस

बात की पुष्टि करते है कि भारतीय समाज ने पुरातन काल से ही नारी की स्थिती महत्वपूर्ण थी। नारी ही वह मुख्य आधार है जिस पर समाज और संस्कृती की अवधारण टिकी है। इस प्रकार हमें नारी के गुणों की विशेषता दिखाई देती है। नारी में स्वामीभक्ती, निष्ठा, कर्तव्यनिष्ठा, कुटिलता, दृढसंकल्प, राजनैतिक, दूरदर्शिता जैसे गुणों से युक्त है।

रामकथा भारत की आदि कथा है। जिसे भारतीय संस्कृती का रूपक कह दिया जाये तो भी कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। रामकथा के सभी पात्र भारतीय सांस्कृतिक मुल्यों का महिमा प्रदान करते दिखाई देते है। संम्पूर्ण कथानक को आदर्श मंडित करने नारी पात्र की विशेष भुमिका रही है। ये नारी पात्र इतने भव्य रूप में चित्रीत हुए है कि पुरूष भी उन्ही के पथ का अनुसरण करते है। जीवन निर्माण की यह विविधता महाकाव्य की विभिन्न महिला पात्रों के विविध आयाम है।

## संदर्भ ग्रंथ सूची:


1. वाल्मीकि, वाल्मीकि रामायण 1923, गीता प्रेस गोरखपूर
2. महर्षि कम्बन, रामायण 1980, परिमल प्रकाशन, राजकोट
3. अध्यात्म रामायण, महर्षि व्यास, गीता प्रेस
4. महर्षि वाल्मिकि, आंनद रामायण, चैखम्बा प्रकाशन, वाराणसी
5. गोस्वामी तुलसीदास, रामचरितमानस, 1631 गीताप्रेस प्रकाशन
6. श्री. एकनाथ महाराज, भावार्थ रामायण 1595 ते 1599, यशवंत प्रकाशन
7. पाठक विनायक, तुलसी रामायण 1633, अनघा प्रकाशन, वाराणसी
8. भास कवि, प्रतिमा नाटक, प्रसाद प्रकाशन, वाराणसी
9. भवभूती, महावीरचरितम्, चैखम्बा प्रकाशन, वाराणसी

# ॐ शब्द का आध्यात्मिक परिचय, उच्चारण का वैज्ञानिक आधार तथा वर्तमान समय में उपयोगिता

चयनिका गोगोई, डॉ. बी.आर. अंबेडकर सामाजिक विज्ञान विश्वविद्यालय (BRAUSS), महू

**"ओम"(Aum)** भारतीय धार्मिक परंपराओं में एक अत्यंत महत्वपूर्ण और पवित्र ध्वनि है। इसका गहरा आध्यात्मिक और दार्शनिक महत्व है। "ओम" एक गहरा और सर्वांगीण प्रतीक है जो न केवल धार्मिक और आध्यात्मिक दृष्टीकोण से महत्वपूर्ण है, बल्कि यह व्यक्तिगत मानसिक शांति और समग्रता प्राप्त करने का भी एक महत्वपूर्ण साधन है।

ओउ्म तीन अक्षरों 'अ' 'उ' 'म' से मिलकर बना है जो त्रिदेव ब्रह्मा, विष्णु और महेश तथा त्रिलोक भूर्भुवः स्वः भूलोक भुवः लोक तथा स्वर्ग लोक का प्रतीक है।

बिग बैंग सिद्धांत के अनुसार, ओम ब्रह्मांडीय ध्वनि है जिसने ब्रह्मांड के निर्माण की शुरुआत की। यह पवित्र शब्दांश केवल एक ध्वनि नहीं है, यह वास्तव में तीन हैं। 'प्रणव'(शक्ति) मंत्र में तीन शब्दांश शामिल हैं: 'अ', 'उ', 'म', जो अतीत, वर्तमान और भविष्य की निरंतरता को दर्शाता है। और भारतीय ब्रह्मांड विज्ञान की प्रसिद्ध त्रिमूर्ति, निर्माता(ब्रह्मा), पालनकर्ता(विष्णु) और संहारक(शिव) का संकेत देता है।

"ओम" का उच्चारण तीन मुख्य ध्वनियों 'अ', 'उ', और 'म' से होता है। ये ध्वनियाँ ब्रह्मा(सृजन), विष्णु(पालन), और शिव(संहार) की शक्तियों को दर्शाती हैं। ये तीनों शक्तियाँ मिलकर सृष्टि के चक्र का प्रतिनिधित्व करती हैं, और इस प्रकार "ओम" आध्यात्मिक एकता और संपूर्णता को दर्शाता है।

माण्डुक्य उपनिषद में ॐ का वर्णन उपनिषद, पृथ्वी के दायरे से परे का ज्ञान रखने वाली गुप्त शिक्षाएँ हैं और प्राचीन काल के महान

ऋषियों द्वारा वास्तविकता की प्रकृति के बारे में प्रकट की गई घोषणाएँ हैं। उपनिषदों में, माण्डूक्य को सबसे महत्वपूर्ण माना जा सकता है, और यह सटीक रूप से कहा गया है, माण्डूक्यं एकं एवं अलं मुमुक्षुणां विमुक्तये- मुमुक्षु या साधक की मुक्ति के लिए माण्डूक्य ही पर्याप्त है; और यदि आप इस एक उपनिषद का सही अर्थ समझने में सक्षम हैं, तो किसी अन्य उपनिषद का अध्ययन करने की आवश्यकता नहीं होगी।

माण्डूक्य उपनिषद में ऊँ की चार मात्राएँ अ, उ, म तथा 'तत्व रहित' का भव्य वर्णन मिलता है। चौथी मात्रा शाश्वत और निर्विकार अवस्था का प्रतिनिधित्व करती है।

**ओमित्येतदक्षरमिदः सर्वं तस्योपव्याख्यानं भूतं भवद्भविष्यदिति सर्वमोङ्कार एव। यच्चान्यत् त्रिकालातीतं तदप्योङ्कार एव ॥१॥**

ॐ इति एतत्=ओं ऐसा यह; अक्षरम्=अक्षर(अविनाशी परमात्मा) है; इदम्=यह; सर्वम्=सम्पूर्ण जगत्; तस्य=उसका ही; उपव्याख्यानम्=उपव्याख्यान अर्थात् उसीकी निकटतम महिमाका लक्ष्य करानेवाला है; भूतम्=भूत (जो हो चुका); भवत्=वर्तमान (और); भविष्यत्=भविष्यत्(जो होनेवाला है); इति=यह; सर्वम्=सब-का-सब जगत्; ओंकारः एव=ओंकार ही है; च=तथा; यत्=जो; त्रिकालातीतम्=ऊपर कहे हुए तीनों कालोंसे अतीत; अन्यत्=दूसरा (कोई तत्त्व है); तत्=वह; अपि=भी; ओंकारः=ओंकार; एव=ही है॥

प्रणवकी अ, उ और म्-इन तीन मात्राओंके साथ और मात्रारहित उसके अव्यक्तरूपके साथ परब्रह्म परमात्माके एक-एक पादकी समता दिखलायी गयी है। इस प्रकार इस मन्त्रमें परब्रह्म परमात्माका नाम जो ओंकार है, उसको समग्र पुरुषोत्तमसे अभिन्न मानकर यह कहा गया है कि 'ओम्' यह अक्षर ही पूर्णब्रह्म अविनाशी परमात्मा है। जो स्थूल और सूक्ष्म जगत् पहले उत्पन्न होकर उनमें विलीन हो चुका है और जो इस समय वर्तमान है तथा जो उनसे उत्पन्न होनेवाला है-वह सब-का-सब ओंकार ही

है अर्थात् परब्रह्म परमात्मा ही है। तथा जो तीनों कालोंसे अतीत इससे भिन्न है, वह भी ओंकार ही है।

**एष सर्वेश्वर एष सर्वज्ञ एषोऽन्तर्याम्येष योनिः सर्वस्य**
**प्रभावप्ययौ हि भूतानाम्।।६।।**

एषः=यह; सर्वेश्वरः=सबका ईश्वर है; एषः=यह; सर्वज्ञः=सर्वज्ञ है; एषः=यह; अन्तर्यामी=सबका अन्तर्यामी है; एषः=यह; सर्वस्य=सम्पूर्ण जगत्का; योनिः=कारण है; हि=क्योंकि; भूतानाम्=समस्त प्राणियोंका; प्रभवाप्ययौ=उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयका स्थान यही है।

ॐ की तीन मात्राएँ अ, उ, एवं म, प्रकृति की उत्पत्ति स्थिति और प्रलय का रूप है। ओम की तीन मात्राएं अकार, उकार, और मकार जो प्रकृति के तीन गुणों को बताती है। अकार सतोगुण को, उकार रजोगुण को तथा मकार तमोगुण की प्रतीक है। ॐ के ऊपर बिंदी तीनों गुणों से परे इन सब का स्वामी, परमात्मा है। सृष्टि की तीन शक्तियां सभी अभिव्यक्तियाँ निर्मित होती हैं, कुछ समय तक निर्मित अवस्था में संरक्षित रहती हैं, फिर अंततः नष्ट हो जाती हैं। इसलिए ओम में सृजन, संरक्षण और विनाश के लिए आवश्यक तीन कंपन ऊर्जाएँ समाहित हैं, और इनमें से प्रत्येक ऊर्जा एक अलग आवृत्ति पर कंपन करती है।

**ॐ उच्चारण का वैज्ञानिक आधार:**

ब्रह्माण्ड में ॐ की ध्वनि निरंतर गुंजयमान रहती है। जब ध्वनियों की आपस में फ्रीक्वेंसी(frequency)मिलती है तो अधिक से अधिक रेजोनेंस(resonance) उत्पन्न होता है जिससे अधिक से अधिक ऊर्जा उत्पन्न होती है। उदाहरण के लिए युद्ध के समय सैनिकों को ब्रिज पर एक साथ एक सा कदमताल करने के लिए मना किया जाता है क्योंकि एक सी ध्वनि उत्पन्न होने से रेजोनेंस बढ़ने से ब्रिज टूटने का खतरा हो जाता है। इस प्रकार जब ओम का उच्चारण व्यक्तिगत रूप से या समूह में किया जाता है तो ओम के उच्चारण से उत्पन्न होने वाली फ्रीक्वेंसी और ब्रह्मांड की

ध्वनि की फ्रीक्वेंसी मेल खाती है। जिससे ऊर्जा प्राप्त होती है और कई लाभ प्राप्त होते हैं।

**ॐ(ओम) के उच्चारण का वैज्ञानिक आधार एवं लाभ:**

ॐ, जिसे "प्रणव मंत्र" भी कहा जाता है, का उच्चारण करने से न केवल आध्यात्मिक, बल्कि वैज्ञानिक दृष्टिकोण से भी कई लाभ होते हैं। इसके पीछे की वैज्ञानिक वजहें निम्नलिखित हैं-

**ध्वनि तरंगों का प्रभाव:**

ॐ का उच्चारण एक विशेष प्रकार की ध्वनि तरंगों का निर्माण करता है। जब आप "ॐ" का उच्चारण करते हैं, तो यह "आ", "उ" और "म" से मिलकर बनता है। इस ध्वनि का कंपन शरीर और मन दोनों पर सकारात्मक प्रभाव डालता है। यह कंपन मस्तिष्क में थैलेमस और कॉर्टेक्स के बीच के संचार को बेहतर बनाता है, जिससे मस्तिष्क को आराम मिलता है और मानसिक शांति मिलती है।

**तनाव में कमी:**

ॐ का उच्चारण करने से शरीर में एड्रेनालिन हार्मोन का स्तर कम होता है, जिससे तनाव और चिंता में कमी आती है। इसके अलावा, ॐ का उच्चारण दिल की धड़कन और रक्तचाप को नियंत्रित करने में भी मदद करता है।

**स्वांस पर नियंत्रण:**

ॐ का उच्चारण एक प्रकार का प्राणायाम है, जो श्वास की गति को नियंत्रित करता है। श्वास की गति में संतुलन आने से ऑक्सीजन की आपूर्ति बेहतर होती है, जिससे शरीर और मस्तिष्क को ऊर्जा मिलती है।

**सकारात्मक ऊर्जा:**

ॐ का नियमित उच्चारण शरीर के चारों ओर सकारात्मक ऊर्जा का निर्माण करता है। इससे मन में सकारात्मक विचारों का संचार होता है

और नकारात्मकता दूर होती है।

**ध्यान में सहायता:**

ॐ का उच्चारण ध्यान की प्रक्रिया को गहराई तक ले जाने में सहायक होता है। यह मन को एकाग्र करता है और ध्यान की गहराई बढ़ाता है, जिससे आत्म-जागरूकता और आध्यात्मिक विकास में वृद्धि होती है।

**मस्तिष्क की तरंगों पर प्रभाव:**

ॐ का उच्चारण मस्तिष्क की अल्फा तरंगों को सक्रिय करता है, जो कि गहरे विश्राम और ध्यान की स्थिति में पाई जाती हैं। यह स्थिति मस्तिष्क को शांत करती है, जिससे व्यक्ति को बेहतर एकाग्रता और मानसिक स्थिरता प्राप्त होती है।

**नसों पर प्रभाव:**

जब ॐ का उच्चारण किया जाता है, तो "म" ध्वनि के कंपन से नासिका और मस्तिष्क में एक विशेष प्रकार की ध्वनि तरंग उत्पन्न होती है, जो मस्तिष्क और स्नायुतंत्र को शांत करती है। इससे मानसिक थकान और तनाव में राहत मिलती है।

**इम्यून सिस्टम पर सकारात्मक प्रभाव:**

ॐ का नियमित उच्चारण शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता को भी बढ़ाता है। शारीरिक और मानसिक तनाव को कम करने से इम्यून सिस्टम बेहतर तरीके से काम करता है, जिससे बीमारियों से बचाव में मदद मिलती है।

**आंतरिक अंगों पर प्रभाव:**

ॐ का उच्चारण करने से शरीर के आंतरिक अंगों पर भी सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। "आ" ध्वनि का कंपन पेट और छाती पर असर डालता है, "उ" ध्वनि का कंपन गले और हृदय पर, और "म" ध्वनि का कंपन सिर और मस्तिष्क पर असर डालता है। इस प्रकार, ॐ का उच्चारण शरीर के प्रमुख अंगों की कार्यक्षमता को सुधारने में मदद

करता है।

**शरीर में संतुलन:**

ॐ के उच्चारण से शरीर के चक्र(चक्र) संतुलित होते हैं, जो मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य के लिए महत्वपूर्ण होते हैं। इन चक्रों के संतुलन से व्यक्ति की ऊर्जा प्रणाली में सुधार होता है, जिससे समग्र स्वास्थ्य में लाभ होता है।

**कार्डियोवैस्कुलर सिस्टम पर प्रभाव:**

ॐ का उच्चारण करने से हृदय की धड़कन की दर धीमी होती है और रक्तचाप नियंत्रित रहता है। यह कार्डियोवैस्कुलर स्वास्थ्य को बनाए रखने में सहायक होता है और दिल के दौरे जैसी समस्याओं के जोखिम को कम करता है।

**मस्तिष्क के दोनो हिस्सों का संतुलन:**

ॐ का उच्चारण मस्तिष्क के दोनों गोलार्धों (हैमिस्फियर्स) के बीच संतुलन को बढ़ावा देता है। इसके कारण तार्किक(Logical) और रचनात्मक(Creative) सोच के बीच तालमेल बैठता है, जिससे संपूर्ण मस्तिष्क का उपयोग अधिक प्रभावी ढंग से हो पाता है।

**वातावरण की शुद्धि:**

ॐ का उच्चारण न केवल हमारे शरीर और मन पर असर डालता है, बल्कि इसके कंपन से वातावरण भी शुद्ध होता है। ध्वनि की लहरें आसपास के क्षेत्र में सकारात्मक ऊर्जा का संचार करती हैं, जिससे आसपास के वातावरण की नकारात्मकता कम होती है।

**पीनियल ग्रंथि पर प्रभाव:**

ॐ के उच्चारण से मस्तिष्क में स्थित पीनियल ग्रंथि(Pineal Gland) सक्रिय होती है, जो मेलाटोनिन हार्मोन का स्राव करती है। यह हार्मोन नींद की गुणवत्ता को बेहतर बनाने में सहायक होता है और तनाव को कम करता है।

**रक्त में ऑक्सीजन का स्तर:**

ॐ के उच्चारण के दौरान गहरी और नियंत्रित श्वास लेने से शरीर में ऑक्सीजन का स्तर बढ़ता है। इससे कोशिकाओं को अधिक ऑक्सीजन प्राप्त होती है, जो उन्हें स्वस्थ और सक्रिय रखती है।

**सर्कैडियन रिदम (Circadian Rhythm) का संतुलन:**

ॐ का उच्चारण शरीर के सर्कैडियन रिदम, यानी जैविक घड़ी को संतुलित करता है। इसके परिणामस्वरूप, नींद की समस्याओं में कमी आती है और शरीर की दिनचर्या सुधरती है।

**भावनात्मक स्थिरता:**

ॐ का उच्चारण भावनाओं को नियंत्रित करने में मदद करता है। यह व्यक्ति के अंदर की नकारात्मक भावनाओं को शांत करता है और भावनात्मक स्थिरता प्रदान करता है।

**बायोइलेक्ट्रिक फील्ड पर असर:**

ॐ के उच्चारण से शरीर के चारों ओर का बायोइलेक्ट्रिक फील्ड या "आभा" मजबूत होती है। यह फील्ड व्यक्ति को नकारात्मक ऊर्जा और बीमारियों से बचाने में मदद करती है।

**स्पाइन पर प्रभाव:**

ॐ का उच्चारण करने पर जो ध्वनि उत्पन्न होती है, वह स्पाइन(रीढ़ की हड्डी) को सीधा और संतुलित रखती है। इससे नर्वस सिस्टम में सुधार होता है और स्पाइन संबंधित समस्याओं में राहत मिलती है।

**शरीर के क्षारीय स्तर का सुधार:**

ॐ का उच्चारण शरीर के pH स्तर को संतुलित करता है, जिससे शरीर के अंदर का वातावरण अधिक क्षारीय(Alkaline) होता है। यह स्थिति बीमारियों के लिए प्रतिकूल होती है और शरीर को स्वस्थ बनाए रखने में मदद करती है।

ॐ(ओम) के उच्चारण के पीछे गहराई से जुड़े वैज्ञानिक और

आध्यात्मिक पहलुओं को समझने के बाद, यह स्पष्ट होता है कि ॐ केवल एक धार्मिक प्रतीक नहीं है, बल्कि यह एक सार्वभौमिक ध्वनि है जो मन, शरीर, और आत्मा को एक साथ जोड़ने की शक्ति रखती है। इसके नियमित उच्चारण से मानसिक शांति, भावनात्मक स्थिरता और प्राण ऊर्जा से लेकर मोक्ष तक की प्राप्ती होती है। और शारीरिक स्वास्थ्य में भी सुधार होता है।

ॐ का उच्चारण मस्तिष्क की तरंगों से लेकर श्वसन तंत्र, रक्त संचार, और आंतरिक अंगों तक, शरीर के हर हिस्से पर सकारात्मक प्रभाव डालता है। इसके प्रभाव से तनाव में कमी, इम्यून सिस्टम की मजबूती, और नींद की गुणवत्ता में सुधार होता है। साथ ही, यह व्यक्ति को आत्म-जागरूकता और आंतरिक शांति की ओर ले जाता है।

इस प्रकार, ॐ का उच्चारण न केवल एक आध्यात्मिक प्रतीक मात्र है, बल्कि यह एक वैज्ञानिक रूप से सिद्ध तकनीक है, जो समग्र कल्याण, जीवन की गुणवत्ता और आध्यात्मिक कल्याण को बढ़ाने में सहायक है। नियमित रूप से ॐ का उच्चारण करके, हम न केवल अपने शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य को सुधार सकते हैं, बल्कि आत्मिक शांति और संतुलन की भी प्राप्ति कर सकते हैं।

**सन्दर्भ-ग्रंथ-सूची:**

1. शंकराचार्य स्वामी, 1965, "मांडूक्य उपनिषद और ॐ" पुणे: गीता प्रेस।
2. विवेकानंद स्वामी, 1900, "मांडूक्य उपनिषद: तात्त्विक दृष्टिकोण", कलकत्ता: अद्वैत आश्रम।
3. ठाकुर डॉ. रवींद्रनाथ , 1988, "मांडूक्य उपनिषद में ॐ का स्थान", भारतीय दार्शनिक पत्रिका, खंड 12, अंक 3
4. सरस्वती स्वामी दयानंद, 1983, "ॐ और मांडूक्य उपनिषद: एक विश्लेषण". आध्यात्मिक विमर्श, अंक 8
5. कविराज गोपीनाथ, 1973 "ॐ मंत्र का महत्व और साधना", भारतीय संस्कृति(Indian Culture), खंड 17, अंक 4

# भासकृत-प्रतिमानाटके राजनैतिकस्थितिः

गोहिल अविरत प्रविणभाई, शोधछात्रः श्रीसोमनाथसंस्कृतयुनिवर्सिटी,
वेरावल, गुजरात

**प्रस्तावनाः**

विधातुः सृष्ट्यां विष्टः मनुष्यः मनुष्यस्य वाङ्मयसृष्टिः वाङ्मयस्य काव्यं काव्यस्य दृश्यकाव्यं दृश्यकाव्यकलाकुशलानां च सुरभारतीसाहित्ये निपुणः महाकविभासस्य त्रयोदशनाटकेषु रामायणाधारिते प्रतिमानाटके का राजनैतिकस्थितिः इति चिन्तनीयविषयः।

नाटक अथवा नाट्य इति नाम्ना अपि प्रसिद्धानि संस्कृतनाटकानि शताब्दशः भारतस्य साहित्यिक-सांस्कृतिकविरासतानां समृद्धः प्रभावशालिनः च भागः अस्ति। एतानि नाटकीयकृतयः न केवलं प्रेक्षकाणां मनोरञ्जनं कृतवन्तः अपितु विविधानां सामाजिक-राजनैतिकाणां विषयाणां अन्वेषणस्य माध्यमरूपेण अपि कार्यं कृतवन्तः।

सामाजिक-राजनैतिकसन्दर्भः संस्कृतनाटकेषु विशेषतः साहित्येषु तत्कालिन शासनस्य शक्तिगतिशीलतायाः सामाजिकमान्यतानां च सूक्ष्मजटिलतां प्रतिबिम्बयन् दर्पणरूपेण कार्यं करोति। कालिदासभासशूद्रकादिभिः यशस्विभिः नाटककारैः रचितानि एतानि नाटकानि न केवलं मनोरञ्जनं कुर्वन्ति अपितु प्राचीनभारतस्य राजनैतिकपरिदृश्यस्य गहनं अन्वेषणं अपि ददति।

संस्कृतनाट्येषु अन्वेषितेषु प्रमुखेषु विषयेषु एका शासकानां प्रजानां च अन्तरक्रिया अस्ति। राज्यस्य चित्रणं प्रायः राजपुत्रात् अपेक्षितान् धर्म-प्रज्ञा-करुणादीन् आदर्शगुणान् प्रकाशयन्ति। भासस्य ग्रन्थे राम-भरतादिनि आदर्शाणि पात्राणि एतान् गुणान् मूर्तरूपं वर्णयन्ति। येषु शासकस्य न्यायपालनं स्वजनस्य रक्षणं च कर्तव्यम् इत्यादिनां प्रदर्शनं प्रभवति।

अस्मिन् प्रतिमानाटके वयं राजनैतिककथानां संस्कृतनाटकानां च

जटिलसम्बन्धं गहनतया संक्षेपेण च ज्ञास्यामः। एताः प्राचीननाट्यकृतयः राजनैतिकविचाराः कथं प्रसारयन्ति स्म शासकानाम् आलोचनं कुर्वन्ति स्म स्वसमयस्य सामाजिकराजनैतिकं परिदृश्य कथं प्रतिबिम्बयन्ति स्म इति ईक्षामहे।

**१) राष्ट्रम्**

राष्ट्रस्य सुखं समृद्धिं च अक्षुण्णं स्थापयितुं राज्ञः पवित्रम् उदात्तं च कर्त्तव्यम् आसीत्। राज्ञा मन्त्रिपरिषदः साहाय्येन स्वराष्ट्रस्य सम्यक् शासनं निर्वाहयितव्यम् आसीत्। अमात्यः राजपुरोहितः च राष्ट्रहिताय काले काले राज्ञे उपदेशं ददाति स्म। राष्ट्ररक्षणमपि राज्ञः मुख्यं कर्त्तव्यम् आसीत्। जनसुखं राजसुखस्य परमं सूचकम् आसीत्। नीत्यनुसारं राज्यस्य सर्वेषाम् अङ्गानाम् उत्पत्तिः राष्ट्रात् एव इति उक्तम् -

**राज्याङ्गानान्तु सर्वेषां राष्ट्राद्भवति सम्भवः।**
**तस्मात्सर्वप्रयत्नेन राजा राष्ट्रं प्रसाधयेत्।।**[1]

प्राचीनराजनैतिकविज्ञाने उन्नतराष्ट्रस्य कृते अनेकानि वस्तूनि आवश्यकानि आसन्। यस्मिन् राष्ट्रे धनम्, अन्नम्, पशवः, जलम्, सद्जनाः, वनानि, गजाः, मार्गाः, व्यापारिणः इत्यादयः विविधानि वस्तूनि यस्मिन् आसन् तादृशं राष्ट्रं विलासपूर्णं समृद्धं च मन्यते स्म -

**रम्या सकुञ्जरचना वारिस्थलपथान्विता।**
**अदेवमातृका चेति शस्यते भूर्विभूतये।।**[2]

मनुमते समृद्धे राष्ट्रे सुशिष्टानां जनानां निवासः भवेत्-

**जाङ्गलं सस्यसम्पन्नमार्यप्रायमनार्विम्।**
**रम्यमानतसामन्तं स्वाजीव्यं देशमावसेत्।।**[1]

---

[1] कामन्दकीयनीतिसारः, ज्वालाप्रसादजी मिश्रः, श्रीवैंकटेश्वर मुंबई वि.सं.- 1961, पृ.- 65, श्लोक- 6.3

[2] कामन्दकीयनीतिसारः, ज्वालाप्रसादजी मिश्रः, श्रीवैंकटेश्वर मुंबई 1961, पृ.- 41, श्लोक- 4.52

प्राचीनभारतीयराजनेतारः राज्यशब्दार्थस्य विचारं कृतवन्तः। एवं भासः प्रतिमानाटके राष्ट्रशब्दस्य प्रयोगं कृतवान्। राज्यराष्ट्रे उभौ समानार्थकौ-

**परस्यैवोपकारीदं सप्ताङ्गं राज्यमुच्यते।**
**अमात्रराष्ट्रदुर्गाणि कोषो दण्डश्च पञ्चमः।।**[2]

भरतः स्वमातृगृहात् आगत्य देवकुलिकां मिलति तथा च सः स्वस्य सर्वेषां पूर्वजानां मूर्तिनां दर्शनं कुर्वन् आसीत्, तदा देवकुलिकः वदति-

येन प्राणाश्च राज्यं च स्त्रीशुल्कार्थे विसर्जिताः।
इमां दशरथस्य त्वं प्रतिमां किं न पृच्छसे।।[3]

**२) राजा**

मन्वनुसारं ईश्वरः इन्द्र-वायु-सूर्य-अग्नि-वरुण-चन्द्र-कुबेरसारं **गृहीत्वा**

**पूर्णसुरक्षाशासनयुक्तं राज्ञः सृष्टिं निर्मितवान्।**[4]
**याज्ञवल्क्यस्मृत्याम् अपि राजधर्मस्य चर्चा कृता।**[5]

कामन्दकीयनीत्यनुसारं जगतः उत्पत्तिवृद्धेः एकमात्रं कारणं राजा एव -

**राजाऽस्य जगतो हेतुर्वृद्धेर्वृद्धाभिसम्मतः।**
**नयनानन्दजननः शशाङ्क इव तोयधेः।।**[1]

---

[1] विशुद्धमनुस्मृतिः, डो सुरेन्द्रकुमार, आर्षसाहित्य प्रचार ट्रस्ट दिल्ली 2017, पृ.- 354, श्लोक- 7.69

[2] शब्दरत्नावली- https://www.sanskrit-lexicon.uni-koeln.de/scans/csl-apidev/servepdf.php?dict=skd&page=4-130-c

[3] प्रतिमानाटकम्, श्रीधरानन्दशास्त्री, मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली पञ्चम पुनर्मुद्रण दिल्ली 2016, पृ.- 99, शलोक- 3.8

[4] विशुद्धमनुस्मृतिः, डो सुरेन्द्रकुमार, आर्षसाहित्य प्रचार ट्रस्ट दिल्ली 2017, पृ.-333-336, श्लोक- 7.3 तः 7.9

[5] याज्ञवल्क्यस्मृतिः, डो उमेशचन्द्र पाण्डे, चौखम्बा संस्कृत सीरीज ओफिस वाराणसी-1 प्रथम संस्कण 1967, पृ. 139, श्लोक- 309 तः 311

यथा समुद्रः चन्द्राय प्रीतिं ददाति तथा राजा प्रजायै आनन्दं ददाति। प्रतिमा नाटकस्य राजा रामः। उदारता त्यागः सहिष्णुता प्रेम भ्रातृत्वं दयालुता वीरता इत्यादयः गुणाः तस्मिन् समाविष्टाः सन्ति। जनानां राज्यस्य च प्रति तस्य कर्तव्यबोधः अत्यन्तम् उच्चः अस्ति। राज्याभिषेकानन्तरं राजा रामः स्वपूर्वजान् सम्बोधयन् स्वर्गे सुखं प्राप्य दुःखानि विस्मरेत् इति वदति। अधुना अहं भूमौ गुणभारं वहन् राजा अभवम्। न्यायेन जनानां परिचर्यायाः दायित्वं मया स्वीकृतम्-

**स्वर्गेऽपि तुष्टिमुपगच्छ विमुञ्च दैन्यं**
**कर्म त्वयाभिलषितं मयि यत् तदेतत्।**
**राजा किलास्मि भुवि सत्कृतभारवाही**
**धर्मेण लोकपरिरक्षणमभ्युपेतम्।।**[2]

अनेन रामस्य महत्त्वं स्वतः स्पष्टं भवति।

**३) राज्याभिषेकः**

यथा राजपुत्रस्य युवराजपदस्य स्थापनार्थं राज्याभिषेकः क्रियते। तथैव अभिषेकस्य अवसरे राज्याभिषेकः कृतः। राजा वृद्धावस्थां प्राप्य प्रायः पुत्रस्य मुकुटं कृत्वा राजपरिवारस्य उत्तरदायित्वं तस्मै समर्प्य तपं कर्तुं वनं गच्छति स्म-

**राज्ये त्वामभिषिच्य सन्नरपतेर्लाभात् कृतार्थाः प्रजाः**
**कृत्वा त्वत्सहजान् समानविभवान् कुर्वात्मनः सन्ततम्।**
**इत्यादिश्य च ते तपोवनमितो गन्तव्यमित्येतया**
**कैकय्या हि तदन्यथा कृतमहो निःशेषमेकक्षणे।।**[1]

---

[1] कामन्दकीयनीतिसारः, ज्वालाप्रसादजी मिश्रः, श्रीवैंकटेश्वर मुंबई 1961, पृ- 2, श्लोक- 1.9

[2] प्रतिमानाटकम्, श्रीधरानन्दशास्त्री, मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली पञ्चम पुनर्मुद्रण दिल्ली 2016, पृ.- 205,206, श्लोक- 7.11

सर्वप्रथमं राज्ञः सन्निधौ अनुष्ठानं भवति स्म। उपाध्यायः आचार्यः प्रजा च यस्मिन् सः युवराजपदे उपविश्य स्नेहेन राज्यं स्वीकरोति स्म। तस्मिन् समये माता कथयति स्म- पुत्र! राज्यस्य एतत् उत्तरदायित्वं स्वीकुरु इति।

**शत्रुघ्नलक्ष्मणगृहीतघटेऽभिषेके**
**छत्रे स्वयं नृपतिना रुदता गृहीते ।**
**सम्भ्रान्तया किमपि मन्थरया च कर्णे**
**राज्ञः शनैरभिहितं च न चास्मि राजा ।।**[2]

युवराजस्य मौनस्वीकारे राजा स्वयं चर्मवस्त्रं छत्रं परिपालितवान्। अन्येषां राजपर्वणां अनुष्ठानानां च इव राज्याभिषेकस्य आयोजनं केवलं मनोरञ्जनाय एव न भवति स्म। अपितु राज्ञः प्रजानां च सम्बन्धस्य शुद्ध्यर्थं भवति स्म। अस्मिन् पदवैभवेन सह राजानः पूजायाः महत् दायित्वमपि वहितुं प्रवृत्तः आसीत्। सिंहासनस्य प्राप्यनन्तरम् अपि यावत् राजा सम्यक् पूजां न करोति तावत् सः यथार्थतया "राजा" इति न मन्यते स्म। यथा सूर्यः रथं निरन्तरं पश्यन् निरन्तरं प्रवहति तथैव रात्रौ राजा निरन्तरतया जनरक्षणेन स्वजीवनं सार्थकं कृतवान्।

**4) राजमहिषी**

नाटककारस्य भासस्य राजपरिवारैः सह निकटसम्बन्धः आसीत्। तेन राजकुलानाम् अतीव सजीवं चित्रणं कृतम् अस्ति। राजकुलानाम् अन्तःवृत्तस्य सूक्ष्मं जीवनरूपं चित्रणं च न अनुभवहीनम्।

भासः प्रतिमानाटके सीतां राजराज्ञीम् इति वर्णितवान् अस्ति। प्रतिमायाः सीता एतावता गौरवपूर्णा गम्भीरा च अस्ति यत् रामस्य अभिषेके

---

[1] प्रतिमानाटकम्, श्रीधरानन्दशास्त्री, मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली पञ्चम पुनर्मुद्रण दिल्ली 2016, पृ.- 77, श्लोक- 2.19

[2] प्रतिमानाटकम्, श्रीधरानन्दशास्त्री, मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली पञ्चम पुनर्मुद्रण दिल्ली 2016, पृ.- 26, श्लोक-1.7

न बहु प्रसन्ना भवति न च तस्याः निर्वासनस्य विषये श्रुत्वा हृदये दुःखं अनुभवति। सीता रामस्य कृते उक्तवती यत् - "महाराज एव महाराज।"[1]

महाकविः भासः सर्वहृदयकोमलवतीं सीतां सृष्टवान्। रामस्य निर्वासनकाले सीता "ननु सहधर्मचारिणी खल्वहम्"[2] इति वदति। सीता रामस्य प्रेरणारूपेण पूज्या अस्ति।

**५) अमात्यः**

अर्थशास्त्रानुसारम् अमात्यः आर्यः, दोषरहितः, ललितकलाज्ञः, अर्थशास्त्रज्ञः, बुद्धिमान्, सुस्मृतियुक्तः, वाक्पटुः, प्रतीकात्मकः, उत्साही, प्रभावशाली, सहिष्णुः, योग्यः इति मन्यते। पुण्यमैत्रः, सुहृदः, सुशीलः, समर्थः, स्वस्थः, धैर्यवान्, निःस्वार्थः च एकचक्रेण तथैव राज्यं सुचारुरूपेण चालयितुं राजानम् अपि सचिवरूपस्य द्वितीयचक्रस्य आवश्यकता भवति यथा चाणक्यः वदति-

**सहायसाध्यं राजत्वं चक्रमेकं न वर्तते।**
**कुर्वीत सचिवास्तस्मात्तेषां च श्रृणुयान्मतम्।।**[3]

तथा मनुः मनुस्मृत्यां राजनैतिकवर्णनसमये अमात्यस्य विषये कथयति यत्-

**मौलान् शस्त्रविदः शूरान् लब्धलक्ष्यान्कुलोद्गतान्।**
**सचिवान् सप्त चाष्टौ वा कुर्वीत सुपरीक्षितान्।।**[4]

अमात्यपदस्य महत्त्वम् अन्येषु शास्त्रेषु अपि उल्लिखितम् अस्ति।

---

[1] प्रतिमानाटकम्, श्रीधरानन्दशास्त्री, मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली पञ्चम पुनर्मुद्रण दिल्ली 2016, पृ.- 22

[2] प्रतिमानाटकम्, श्रीधरानन्दशास्त्री, मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली पञ्चम पुनर्मुद्रण दिल्ली 2016, पृ.- 47

[3] कौटिलीय अर्थशास्त्रम्, वाचस्पति गौरेला, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी, तृतीय संस्करण 1984, पृ.- 19, श्लोक- 1.6.1

[4] विशुद्धमनुस्मृतिः, डो सुरेन्द्रकुमार, आर्षसाहित्य प्रचार ट्रस्ट दिल्ली 2017, पृ.-349, श्लोक- 7.54

भासविरचिते प्रतिमानाटके अमात्यः मन्त्री वा वर्णितः। अत्र मन्त्री तथा अमात्यः अनयोर्मध्ये अभेदः वर्तते यथा अमरकोषे- "मन्त्री धीसचिवोऽमात्योऽन्ये कर्मसचिवास्ततः" ।[1]

अभिषेकावसरे सुमन्त्रः दृश्यते। यः अस्य नाटकस्य घटनानां परिणामान् अतीव तीव्रतया अनुभवति। घटनाक्रमेण निपीडितः स एव इक्ष्वाकुवंशस्य प्रतिद्वन्द्वीनां सान्त्वनाय अङ्गुल्या उद्विग्नः पलायितः भवति - यथा गोपालकं विना गावः नश्यन्ति तथैव राजानं विना जनाः नश्यन्ति।

**गोपहीना यथा गावो विलयं यान्त्यपालिताः।**
**एवं नृपतिहीना हि विलयं यान्ति वै प्रजाः।।[2]**

**६) पुरोहितः**

कोटिल्यस्य मते पुरोहितः प्रस्तावितेभ्यः शास्त्रेभ्यः उन्नतः कुलशीलः भविष्यवाणी-विषये अत्यन्तं निपुणः स्यात्। अर्थशास्त्रे उल्लिखितानां उपायानां उपयोगेन मनुष्याणां समस्यानां समाधानं कर्तुं समर्थः च भवेत् यत् पश्यामः अर्थशास्त्रे- "पुरोहितमुदितोदितकुलशीलं....चानुवर्तते।"[3]

भासस्य प्रतिमानाटके पुरोहितस्य स्थानस्य महत्त्वम् आसीत्। कैकेयी रामं याचते यत् एते आदरणीयाः पुरोहिताः, काण्डुकी इत्यादयः मम पुत्राय आशीर्वादं ददति अभिनन्दनं च कुर्वन्ति इति। अस्मिन् समये कैकेय्याः वचनं यथा- "एते पुरोहिताः कञ्चुकिनः पुत्रकस्य मे विजयघोषे

---

[1] अमरकोशः,श्री. पं. हरगोविन्दशास्त्री, चौखम्बासंस्कृत सीरीज आफिस वाराणसी-1 1968,पृ- 264, श्लोक- 2.8.4

[2] प्रतिमानाटकम्, श्रीधरानन्दशास्त्री, मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली पञ्चम पुनर्मुद्रण दिल्ली 2016, पृ.- 113, श्लोक- 3.23

[3] कौटिलीय अर्थशास्त्रम्, वाचस्पति गौरेला, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी, तृतीय संस्करण 1984, पृ.- 24, गद्य क्र.-1.8.2

वर्धयन्त आशीर्भिः पूजयन्ति।"[1]

अतः भाससमये पुरोहितस्य महत्त्वं निःसंदेहम् आसीत्।

**७) युद्धव्यवस्था**

भासः युद्धसम्बद्धे प्रतिमानाटके प्राचीनव्यवस्थाम् अनुसरति इति भासते। नाटके प्रतिहारी कञ्चुकीं कथयति यत् देवासुरयुद्धे विजयी राजा दशरथः राजकुमाररामस्य शासने सूचकराज्यस्य सर्वाणि सामग्रीनि शीघ्रमेव उपस्थापयितुम् आदेशं दत्तवान्। अतः देवयुद्धः जातः इति भासकाले वर्णितम्। रामः लक्ष्मणं वदति यत् एते वल्कलतपयुक्ताः गजयुद्धे इन्द्रियाणां नियन्त्रणे लज्जारूपेण कार्यं कुर्वन्ति, अतः तान् स्वीकुर्वन्तु। रामः लक्ष्मणाय ब्रवीति-

**तपः संग्रामकवचं नियमद्विरदाङ्कुशः।**
**खलीनमिन्द्रियाश्वानां गृह्यतां धर्मसारथिः।।**[2]

अत्र तपयुद्धस्य उल्लेखः, यदा रावणेन सीतायाः अपहरणं कृतम् इति ज्ञात्वा जटायुः सीतयाः साहाय्यार्थं युद्धं करोति। रावणः जटायुं प्रति तीक्ष्णेन खड्गेन आक्रमयति। अतः भारतकाले खड्गैः अपि युद्धः भवति स्म।

**८) सेना**

राजानः शत्रुभ्यः राज्यस्य रक्षणार्थं अक्षौहिणीसेनाम् अधारयन्। महती सेनाबलेन राजा शत्रून् पराजयति स्म। प्रतिमानाटके रावणः सीतां वदति यत् त्वं किमर्थं वृथा शोचसि। इतः परं आत्मनः स्थाने मां विचारयतु। सर्वदेवैः सह असीमितसैन्येन अपि रामः मया सह युद्धं कर्तुं असमर्थः।

**विलपसि किमिदं विशालनेत्रे!**
**विगणय मां च यथा तवार्यपुत्रम्।**

---

[1] प्रतिमानाटकम्, श्रीधरानन्दशास्त्री, मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली पञ्चम पुनर्मुद्रण दिल्ली 2016, पृ.- 204

[2] प्रतिमानाटकम्, श्रीधरानन्दशास्त्री, मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली पञ्चम पुनर्मुद्रण दिल्ली 2016, पृ.- 52, श्लोक- 1.28

**विपुलबलयुतो ममैष योद्धं**
**ससुरगणोऽप्यसमर्थ एव रामः।।**[1]

भरतः सुमन्त्रात् राजा दशरथस्य शापं श्रुत्वा रामस्य सहाय्यार्थं सैन्यं ग्रहीतुं कैकेय्याः अनुमतिं याचते। आर्यस्य सहाय्यार्थं मया अद्यैव सम्पूर्णं राज्यं एकीकृतम्। इदानीं मम मत्तगजैः सह समुद्रतीरं अन्धकारवत् करिष्यामि। यदि मम सेना समुद्रं लङ्घयति तर्हि रावणेन सह एव समुद्रस्य अपि नाशं करिष्यति। उपर्युक्तवर्णनात् स्पष्टं भवति यत् भासकाले अक्षौहिणीसेना अपि आसीत्।

**उपसंहार-**

संस्कृतनाट्येषु सामाजिकः एवं राजनैतिकसन्दर्भः प्राचीनभारते शासनस्य शक्तिगतिशीलतायाः सामाजिकमान्यतानां च जटिलतां प्रकाशयति इति विषयाणां आख्यानानां च समृद्धं वर्णनम् अस्ति। साहित्यस्य चक्षुषा कालिदासः भासः शूद्रकः इत्यादयः नाटककाराः राजत्वस्य गुणानां तथा च राजनीतेः षड्यंत्राणां व्यक्तिभिः सम्मुखीकृतानां व्यापकसामाजिकस्य तथा नैतिकानां विधानानां च अन्वेषणं कृत्वा ददति। एतानि नाटकानि अद्यत्वे अपि समुपयोगिनः सन्ति। येन तेषां विषयाणां स्थायिसन्दर्भिकता तथा च तेषां मानवस्वभावस्य गहनबोधस्य च स्मरणं भवति इति।

संस्कृतनाटकानि स्वसमयस्य राजनैतिककथानां चिन्तनानां च बहुमूल्यं वर्णयन्ति। संस्कृतनाटकाकाराः न केवलं मनोरञ्जककथाभिः पात्रैः प्रेक्षकाणां मनोरञ्जनं कृतवन्तः अपितु सामाजिकभाष्यस्य राजनैतिकसमीक्षायाः नैतिकचिन्तनस्य च साधनरूपेण कार्यं कृतवन्तः। एताः कालातीतसाहित्यकृतयः निरन्तरं प्रासंगिकाः भवन्ति तथा च शासनस्य नीतिशास्त्रस्य सत्तागतिशीलतायाः जटिलतानां च अन्वेषणं प्रददति पुनः शताब्दशः मानवसमाजेषु राजनैतिकविषयाणां स्थायिसान्दर्भिकतायाः स्मरणं

---

[1] प्रतिमानाटकम्, श्रीधरानन्दशास्त्री, मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली पञ्चम पुनर्मुद्रण दिल्ली 2016, पृ.-165-166, श्लोक- 5.19

च कुर्वन्ति।

# "The Therapeutic Impact of Sanskrit Mantras on Meditation, Mindfulness and Disease Healing"

Pranav Sulakshya Trivedi
MSc (Yoga therapy)
Swami Vivekananda Yoga Anusandhana Samsthana,
Bangalore

## 1. Introduction:

Sanskrit mantras have long been recognized in spiritual and traditional healing practices for their profound influence on mental, emotional, and physical well-being. As the world faces a growing mental health crisis, integrative medicine has increasingly turned towards ancient wisdom to address these challenges holistically. This paper explores the therapeutic potential of Sanskrit mantras, particularly in enhancing mindfulness, deepening meditation, and supporting the healing of various diseases through physiological and psychological mechanisms.

Drawing from both ancient texts and modern scientific literature, this study highlights the efficacy of specific mantras such as Shanti mantras and Aumkara. The research investigates how the vibrational qualities of mantras influence the autonomic nervous system (ANS), stress response, and heart rate variability (HRV). A control group of 24 participants was observed over eight weeks. The results suggest that mantra chanting facilitates psychological resilience and fosters a balanced physiological state.

Furthermore, The distinctive characteristics of Sanskrit phonetics including its precise articulation and rhythmic structure enhance the impact of mantras. Sanskrit Mantras are said to be Apourusheya, that is they are the sounds perceived by yogis in the state of Ritambara pragna

where sound-form connection is existentially realised. Each sound or syllable of a Sanskrit mantra produces optimal resonance, allowing practitioners to access deeper states of consciousness and heightened awareness. This unique quality makes Sanskrit a powerful medium for spiritual and therapeutic practices, bridging the ancient and contemporary realms of healing.

**2. Ancient Literature Review:**

Mantras have been a cornerstone of spiritual practice in Hinduism, Buddhism, and other ancient traditions. The term mantra is derived from the Sanskrit words "manas" (mind) and "tra" (tool or instrument), suggesting that mantras are tools for controlling and focusing the mind. Mantras serve as keys to various spiritual, psychological, and physical dimensions when chanted or meditated upon.As noted in the Shiksha Vedanga, mantras are defined by six essential components that contribute to their effectiveness:

**Right Pronunciation of Letters (Varna):** Accurate articulation of each letter ensures the integrity of the mantra's sound vibration.

**Intonation (Swara):** The modulation of pitch and tone during chanting enhances the mantra's vibrational quality.

**Emphasis (Bala):** The use of Alpa Prana (soft breathing) and Maha Prana (strong breathing) affects the intensity and energy of the sound produced.

**Duration (Matra):** The length of each syllable influences the flow and rhythm of the mantra, contributing to its overall impact.

**Uniformity in Poetic Meter (Sama):** Adhering to a consistent poetic structure (Chhanda) creates a harmonious resonance within the mantra.

**Specific Pauses (Santana):** Intentional pauses

placed at specific intervals allow the listener to absorb the sound vibrations and enhance meditative focus.

These elements together create a potent vibrational force that resonates with different levels of consciousness, thus affecting the mind and body.

**Different Types of Mantras:**

**Beeja Mantras-** 'Seedlike' monosyllabic sounds

**Shanti Mantras-** Mantras for Peace

**Moksha Mantras-** Mantras for Liberation

**Maha Mantras-** Mantras for significant transformation

**Guru Mantras-** Personalised sadhana mantra offered by Guru to a disciple

**Shaabar Mantras-** Activated mantras for general wellbeing

Mantras for specific Gods- Every God represents a distinct aspect of the universe etc.

In the context of disease healing, particularly on the psychological level, we have used Aumkara chanting and Shanti mantras. These practices are recognized in yogic culture for their ability to balance energy and stabilise mental activity, offering a grounding effect that enhances meditation and awareness. Moreover, the historical significance of mantras in ancient scriptures such as the Vedas and Upanishads showcases their pivotal role in spiritual enlightenment and healing practices. The Vedas contain numerous mantras aimed at invoking divine energies for prosperity, health, and wellbeing. These ancient yet timeless texts emphasise the idea that sound vibrations can influence the cosmos, as well as an individual's inner state.

**3. Scientific Literature Review**

The systematic review and meta-analysis conducted by Yolanda Alvarez Perez (March 2022), published in the International Journal of Environmental Research and Public

Health, explored the effectiveness of mantra-based meditation on mental health. The study utilised randomized controlled trials and found moderate reductions in mental health symptoms; however, it was limited by the lack of psychiatric samples.

A study by Anne Malaktaris and Sheetal Mallavarapu (June 2022), published in the European Journal of Psychotraumatology, examined the clinical benefits of mantra repetition among U.S. veterans with PTSD. Using a mixed-method design, including pre- and post-treatment measures and mantra japa practice, the study reported significant reductions in PTSD symptoms and enhanced mental and spiritual well-being, although long-term follow-up data was lacking.

The third study, by Frederick Travis, Theresa Olson, Thomas Egenes, and Hemant K. Gupta (July 2001), published in the International Journal of Neuroscience, compared physiological patterns during the Transcendental Meditation technique with patterns while reading Sanskrit and a modern language. Measurements such as EEG, breath rate, heart rate, and skin conductance were used. The results indicated a decrease in skin conductance during both Sanskrit reading and Transcendental Meditation, with higher alpha power noted during Sanskrit reading. The study, however, was limited by the absence of comparison with non-phonetic languages.

Additionally, other studies have suggested that mantra-based practices can lead to changes in brain wave patterns, promoting relaxation and reducing anxiety. Functional MRI scans have shown that regular mantra meditation can increase the size of the hippocampus and decrease the size of the amygdala, indicating potential long-term benefits on emotional regulation and memory. The incorporation of Sanskrit mantras in various therapeutic settings is gaining traction. Many psychologists

and therapists now integrate sound therapy including mantras into their practice to enhance the therapeutic experience. The resonant frequencies produced during chanting have been shown to influence the body's electromagnetic field, promoting a state of calm and facilitating deeper emotional regulation.

**4. Methodology:**

This method was implemented as a mixed-method study involving both quantitative and qualitative approaches. The quantitative variables included heart rate variability (HRV) measurements, stress scores, and continuous concentration tests. The qualitative aspect consisted of participants engaging in Swadhyaya, or self-reflection, by maintaining journals to document their experiences and perceived changes in well-being. Additional supportive activities included consuming Sattvik and Pranic food, fasting on Ekadashi, keeping a gratitude journal, observing Sakshibhava (conscious karma), using integrated relaxation techniques (IRT) between hectic schedules, and visiting powerful temples or consecrated spaces. Moreover, the selection criteria for participants included individuals with varying degrees of stress ranging from students to working individuals, allowing for a more comprehensive understanding of the effects of mantra chanting. Participants were instructed on proper chanting techniques and provided with resources to aid their practice. The study also emphasised the importance of creating a conducive environment for chanting, including the use of specific sounds, aromas, and visual aids that enhance the overall experience.

In the data collection process, participants were encouraged to reflect on their feelings and experiences throughout the study, offering rich qualitative insights that complement the quantitative findings. The combination of subjective and objective data provides a holistic view of the

impact of mantra chanting on well-being, enabling a nuanced understanding of its effects.

**5. Results:**

The study yielded significant results. The readings were taken before and after chanting over a period of 8 weeks.

**HRV Readings-** Participants exhibited a notable improvement in Heart Rate Variability (HRV) readings, suggesting a better balance within the autonomic nervous system. This finding indicates that mantra chanting facilitates physiological relaxation and effectively reduces stress.

**Stress Scores-** A substantial decrease in stress scores was reported by participants, many of whom experienced an enhanced sense of inner calm and emotional stability throughout the day after chanting.

**Concentration Tests-** The continuous concentration tests demonstrated improved focus and mindfulness among participants. This enhancement is likely attributed to the rhythmic repetition and mental engagement inherent in the chanting practice.

Collectively the data derived from HRV readings, stress scores, and concentration tests consistently support the hypothesis that mantra chanting positively influences both physiological and psychological well-being. Additionally, participant feedback revealed a newfound appreciation for the practice with many expressing a desire to continue incorporating mantra chanting into their daily routines. Some reported that their relationships improved, citing better emotional regulation and communication as direct benefits of their practice.

**6. Conclusion:**

**Validation of Hypothesis-** The results confirm that Sanskrit mantra chanting has a profound therapeutic impact

on both psychological and physiological health, validating the initial hypothesis ($H_1$). The data consistently demonstrated that mantra resonance improves heart rate variability, reduces stress, and enhances concentration.

**Implications for Integrative Medicine-** These findings support the integration of Sanskrit mantras into therapeutic practices for treating psychological and psychosomatic disorders, offering a promising addition to modern healing modalities. The potential for mantra-based interventions in clinical settings provides a unique opportunity to merge ancient practices with contemporary psychological frameworks, creating a more holistic approach to mental health.

**Limitations-** Further research should include larger sample sizes and control for confounding variables to isolate the specific effects of mantra chanting. Longitudinal studies could also provide insights into the sustainability of the benefits observed, as well as the potential for long-term positive changes in mental health outcomes.

**Future Research-** This study lays the groundwork for future research into the specific mechanisms through which mantra resonance exerts its healing effects, with the potential for more targeted therapeutic applications. Investigating different types of mantras and their specific impacts on various populations could enrich our understanding of the therapeutic landscape. Furthermore, exploring the neurological basis of mantra chanting may reveal new avenues for enhancing mental health interventions.

## 10. References:

1) Effectiveness of Mantra-Based Meditation on Mental Health: A Systematic Review and Meta-Analysis by Yolanda Alvarez Perez published in International Journal of Environmental Research and Public Health, Mar 2022.
2) Higher frequency of mantra repetition practice is associated with enhanced clinical benefits among US Veterans with

post-traumatic stress disorder- by Anne Malaktaris and Sheetal Mallavarapu published in European Journal of Psychotraumatology, June 2022.

3) Physiological patterns during practice of the Transcendental Meditation technique compared with patterns while reading Sanskrit and a modern language - by Frederick Travis, Theresa Olson, Thomas Egenes, Hemant K. Gupta published in International Journal of Neuroscience, July 2001

4) Continuous Concentration Test- testyourbrain.org

5) www.researchgate.net

6) Shrimad Bhagwad Gita, Upanishads, Shukla Yajurveda.

# वैश्विक कल्याण की पुरोधा संस्कृत

प्रो. ओमप्रकाश पारीक
आचार्य, संस्कृत विभाग
राजकीयमहाविद्यालय, जयपुर, राजस्थान

आदिकाल से मानव अपनी व्यवस्थाओं के निर्माण समस्याओं के समाधानऔर जीवन निर्वाहके लिए भावनाओं का परस्पर संप्रेषण करता रहा है इन सभी के लिए भाषा एक सशक्त माध्यम बनती हैभाषा की दृष्टि से हम देखें तो वैदिक संस्कृत सबसे प्राचीन भाषा है तथा वेद हमारा सबसे प्राचीन साहित्य है ।वैदिक तथा लौकिक संस्कृत दोनों में ही रचित साहित्य अपने विचारों मान्यताओं के कारण विश्व का मार्गदर्शन करता रहा है अतः भारतविश्व गुरु के सम्मान से भी विभूषित होता है।

वस्तुत: संस्कृत भाषा और उसमें निबद्ध साहित्य केवल व्यक्तिगत हित की बात न कर व्यष्टि से समष्टि के कल्याण और परमेष्ठी तक मानव का दिग्दर्शन करता हुआ एक श्रेयस्कर मार्ग की ओर उसे उन्मुख करता है जैसे कि हम संपूर्ण पृथ्वी को कुटुंब मानकर उसके कल्याण के लिए प्रतिबद्ध हैं-

**"अयं निज: परो वेति गणना लघुचेतसाम्।**
**उदारचरितानान्तु वसुधैव कुटुम्बकम्।।"**[1]

यह मेरा है यह पराया है यह सब छोटे हृदय वालों की बातें हैं लेकिन उदार चरित्र अर्थात बड़े दिल वालों के लिए तो पूरी पृथ्वी ही कुटुंब है "यत्र विश्वं भवत्येकनीडं" जहां पूरा विश्व एक घोसले की भांति है इस प्रकार के विचारों से ओत-प्रोत संस्कृत भाषा और साहित्य संपूर्ण विश्व के सर्वाधिक कल्याण के लिए सर्वदैव प्रतिबद्ध दिखाई देती है।

---

[1] पञ्चतंत्र 5/3/37

वस्तुत: संस्कृत भाषा एवं साहित्य में निबद्ध जीवन दर्शन जीवन की एक समझ प्रदान करता है जो कि अत्यंत उपयोगी है-

**“ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः”**[1]

ईश्वर ही सत्य है और यह संसार मिथ्या है जीव ईश्वर ही है उससे अलग नहीं है।आदि शंकराचार्य का दिया हुआ यह अद्वैत मत जहां संपूर्ण विश्व के जीवों की ईश्वर से तादात्म्य स्थापित करता है वहीं जीव जीव को भी एक आत्मीयता में आबद्ध करता है भगवान श्री कृष्ण ने गीता में इसी बात को जीव मात्र को अपना अंश मानते हुए प्रकट किया है-

**"ममैवांशो जीवलोके जीवभूत: सनातन:"**[2]

इस प्रकार के विचार वैश्विक कल्याण की आधार भूमि का कार्य करते हैं यह संपूर्ण चराचर जगत् ईश्वर से व्याप्त है इसलिए सभी को बांटकर फिर स्वयं भोग करें एवं दूसरे के हक पर लालच नहीं करें-

**“ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्याञ्जगत्।**
**तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृध:कस्यस्विद्धनम्।।”**[3]

"केवलाघो भवति केवलादि" जो केवल स्वयं खाता हैदूसरे को नहीं देता वह पाप को ही खाता है इस प्रकार का हमारा जीवन दर्शन ऐसे शाश्वत दार्शनिक विचारों पर आधारित है जहां से संपूर्ण विश्व का मंगल प्रशस्त होता है।

हमारा सनातन विचार संपूर्ण सृष्टि को अपनी आत्मीयता में आबद्ध करता है वैदिक क्रांतदृष्टा ऋषियों के द्वारा देखा गया अनुभव किया गया ज्ञान जो चारों वेदों में निबद्ध है वह संपूर्ण ब्रह्मांड को आलोकित करता है भगवान मनु ने भी स्पष्ट लिखा है-

**“य: कश्चित् कस्यचिद् धर्मो मनुना परिकीर्तितः।**

---

[1] अद्वैतवेदान्त

[2] गीता 15/7

[3] ईशोपनिषद्- 1

**स सर्वोऽभिहितो वेदे सर्वज्ञानमयो हि स:।।"[1]**

अर्थात् मनु ने जिस किसी का कोई भी धर्म बताया है वह सब वेद में उल्लिखित है क्योंकि वेद सभी ज्ञान से युक्त है मानव को सबके कल्याण के लिए कार्य करना चाहिए जैसे सूर्य और चंद्रमा निरंतर सबके कल्याण के लिए चलते रहते हैं।

**"स्वस्ति पन्थामनुचरेम सूर्चन्द्रमसाविव।**
**पुनर्ददताऽघ्नता जानता संगमेमहि।।"[2]**

इस प्रकार हम देने वाले, जानने वाले और अहिंसक होकर एक दूसरे से मिलें। संपूर्ण समाज के सभी व्यक्ति मिलजुल कर रहें सोहार्दपूर्ण एवं सामंजस्य से रहें और एक दूसरे की सहायता करें ऐसे विचार संपूर्ण विश्व में आत्मीयता का संचार करते हैं -

**"मित्रस्याहं चक्षुसा सर्वाणि भूतानि समीक्षे ।**
**मित्रस्य चक्षुसा समीक्षामहे।।"[3]**

वैश्विक कल्याण हेतु संस्कृत भाषा एवं साहित्य आर्थिक ,राजनैतिक, धार्मिक,आध्यात्मिक आदि सभी पक्षों में मार्गदर्शन कर समाधान प्रस्तुत करती है।

सामाजिक दृष्टि से संस्कृत भाषा एवं साहित्य समाज में संगठन कर कार्य करने का श्रेयस्कर मार्ग दिखाते हैं-

**"संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।**
**देवा भागं यथापूर्वे सञ्जानाना उपासते।।"[4]**

हम साथ चलें, संवाद करें, एक दूसरे के मनों को समझें, यहां उत्तम सामाजिक भावना की झलक प्राप्त हो रही है। राजनैतिक दृष्टि से जब हम

---

[1] मनुस्मृति- 2/7

[2] ऋग्वेद- 5/51/15

[3] यजुर्वेद- 36/18

[4] ऋग्वेद-10/191/2

विचार करते हैं तो राजा अथवा शासन को राजनीति में कैसा व्यवहार करना चाहिए इस प्रसंग में यजुर्वेद का यह मंत्र उद्धृत करने योग्य है-

**"क्षत्रेणाग्ने स्वायु: संरभस्व मित्रेणाग्ने मित्रधेये यतस्व ।**
**सजातानां मध्यमस्था एधि राज्ञामग्ने विहव्यो दीदिहीह।।"[1]**

अग्नि के समान तेजस्वी राजा अथवा शासकअपने स्वास्थ्य नियमों का पालन करता हुआ दीर्घायु होवे वह क्षात्र तेज से युक्त होकर अपने कर्तव्य करे ,वह वांछित कार्यों में धर्मादि सद्गुणों से युक्त सच्चे मित्रों के साथ अपने कार्य करे ,शासक अन्य राज्यों के साथ मध्यस्थ हो जाए। सब की बात सुने सबसे अपनी बात मनवाये। यह परस्पर सहयोग की उत्तम नीति है।

नीतिगत आर्थिक विचार भी संस्कृत भाषा में मिलते हैं जैसे अथर्ववेद में कहा गया है एक साथ धन लगाकर एक साथ श्रम कर जो कुछ भी लाभ हो उसका सभी में समान भाव से वितरण हो अन्न व जल का समान भाव से वितरण हो सभी लोग एक ही बंधन नियमों में बंधकर कार्य करें

**"समानी प्रपा सह वो अन्नभाग:**
**समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि**
**समयञ्चोग्निं सपर्यतारा नाभिमिवाभित:।।"[2]**

संस्कृत साहित्य चरित्र की रक्षा करने की भी सीख देता है वित्त यदि नष्ट होता है तो कुछ भी नष्ट नहीं हुआ किंतु चरित्र नष्ट हो गया तो सब कुछ नष्ट हो जाता है चरित्र निर्माणसे विश्व का सभी प्रकार का मंगल संभव है-

**वृत्तं यत्नेन संरक्षेद् वित्तं येति च याति च।**
**अक्षीणो वित्तत:क्षीणो वृत्तस्तु हतो हत:।।**

ऐसे ही चरित्रवान महापुरुषों से इस पृथ्वी पर सभी ने चरित्र की शिक्षा ली है -

---

[1] यजुर्वेद- 27/5

[2] अथर्ववेद 5/19/6

**"एतद्देश प्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मन: ।**
**स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवा: ।।"[1]**

इसमें कारण हैभारतीय ज्ञान के शाश्वत सनातन सार्वभौमिक और कल्याणकारी होना और उन विचारों से ओत-प्रोत भारतीय संस्कृति की धारा काअजस्र प्रवाहित होना इसलिए भारतीय संस्कृति वैश्विक कल्याण का शक्ति केंद्र भी कहीं जा सकती है ।इस प्रकार के विचार संस्कृत भाषा में निबद्ध हैं।

आत्मीयता और क्षमता से प्रत्येक समस्या का समाधान होता है संस्कृत भाषा में निबद्ध ज्ञान सृष्टि के जीव जीव को आत्मीय बनाता है समता की स्थापना कर सभी प्रकार के विभेदों को समाप्त करता है अतः गीता में भगवान श्री कृष्ण ने कहा है-

**"विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनी।**
**शुनि चैव श्वपाके च पण्डिता: समदर्शिन: ।।"[2]**

अर्थात् कितना ही विद्या विभूषित ब्राह्मण हो, गाय हो ,हाथी हो, कुत्ता हो,और चाहे चांडाल हो पंडित वही है जो इनमें समदर्शी का व्यवहार करता है इस प्रकार के ज्ञान से आज के पर्यावरण में व्याप्त परस्पर घृणा, ईर्ष्या, शत्रुता एवं भेदभाव के भाव समाप्त होकर समाज में सामंजस्य और सौहार्द विकसित होता है।

संवेदनशीलता और करुणा विश्व बंधुत्व व कल्याण के लिए अत्यावश्यक है महर्षि वाल्मीकि तमसा नदी के तट पर प्रतिदिन स्नान के लिए जाते हैं पर आज वे ठिठक जाते हैं एक शिकारी ने क्रौञ्च और क्रौञ्ची के जोड़े में से एक को मार गिराया और दूसरा पक्षी विलाप कर रहा था इस दृश्य को देखकर महर्षि वाल्मीकि का मन करुणा से भर गया और लौकिक संस्कृत की छंदोबद्ध यह वाणी उनके मुख से प्रस्फुटित हुई।

---

[1]मनुस्मृति 2/2/20

[2] गीता 5/18

**"मां निषाद प्रतिष्ठां त्वमगम: शाश्वती समा।**
**यत् क्रौञ्चमिथुनादेकमवधी: काममोहितम्।।"[1]**

हे शिकारी तुम सैकड़ों, हजारों वर्षों तक भी प्रतिष्ठा को प्राप्त नहीं करोगे क्योंकि तुमने प्रेम में संलग्न चक्रवाक जोड़े में से एक को मार दिया है। यह आत्मीयता और संवेदनशीलता आसुरी प्रवृत्ति का दमन कर अन्याय का शमन करने वाली है। इस पर आधारित संस्कृत भाषा में रचित रामायण महाकाव्य जन-जन का सम्मानित महाकाव्य बन गया जिससे समाज में "रामादिवद्वर्तितव्यं न रावणादिवत्" राम के समान आचरण करो रावण के समान नहीं इस प्रकार का प्रेरणा संदेश जब तक पृथ्वी पर गिरी और नदियां रहेंगी प्रचलित बना रहेगा।

जीवन जीने के लिए धर्म एक आवश्यक बात है संस्कृत भाषा संपूर्ण जगत् को धर्म मार्ग पर लगाकर उसका अभ्युदय और कल्याण करना चाहती है अतः हमारे महर्षियों ने धर्म का लक्षण दिया है-

**"यतोऽभ्युदय निश्रेयस्सिद्धि: स धर्म:।।"[2]**

अर्थात् जिससें सर्वविध उन्नति और मोक्ष की प्राप्ति हो वह धर्म है। इतना ही नहीं संस्कृत वाङ्मय में प्रतिपादित धर्म के दस लक्षण संपूर्ण मानव जाति के लिए उपादेय हैं और जीवन की राह बताने वाले हैं धैर्य रखना, सहनशील होना, दया भाव होना, आंतरिक (मानसिक) और बाह्य (शारीरिक) शुद्धता होना, अपनी इंद्रियों को वश में रखना, विवेक होना, विद्या, सत्याचरण और अक्रोध होना यह सभी बातें सर्वजन ग्राह्य हैं।

**"धृतिक्षमादयाशोचमिन्द्रियनिग्रह:।**
**धीर्विद्या सत्यमक्रोधौ दशकं धर्मलक्षणम्।।"[3]**

संस्कृत भाषा में निबद्ध धर्म का स्वरूप परस्पर भाईचारा बढ़ाने

---

[1] वाल्मीकि रामायण

[2] कणाद सूत्र 1/1/2

[3] मनुस्मृति 6/12

वाला एक दूसरे के काम आने वाला और किसी को भी पीड़ा न देने वाला है अतः व्यास जी ने अष्टादश पुराणों का सार भी यही बतलाया है-

**अष्टादशपुराणेषु व्यासस्य वचनद्वयम्**
**परोपकार: पुण्याय पापाय परपीडनम्।।**

अर्थात् अट्ठारह पुराणों में व्यास जी के वचनों का सारांश यही है कि दूसरे के काम आनाअर्थात् परोपकार करना ही पुण्य है तथा दूसरे को किसी प्रकार की पीड़ा पहुंचाना ही पाप है ।वास्तव में प्रत्येक व्यक्ति अपने व्यवहार को ही ठीक मानता है वह अनुचित कार्य करके भी स्वयं को ठीक तथा दूसरे को गलत मानता है यदि व्यक्ति जो स्वयं को अच्छा नहीं लगे वह आचरण दूसरे के साथ नहीं करे तो सभी समस्याएं समाप्त हो जायेंगी अतः हमारे यहां धर्म का सर्वस्व संस्कृत भाषा में यही समझाया गया है-

**"श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चैवावधार्यताम्।**
**आत्मन:प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्।।"[1]**

अर्थात् धर्म का सारांश सुनो और सुनकर इसें धारण करो और वह यह है कि जो अपने को प्रतिकूल लगता हो ऐसा व्यवहार दूसरों के साथ मत करो।

संस्कृत भाषा में निबद्ध विचार कमजोर का भी उद्धार करने वाले हैं तथा त्याग की भावना बढ़ाने वाले हैं इसलिए पंच महायज्ञों का विधान किया गया है-

**"ऋषियज्ञं देवयज्ञं भूतयज्ञं च सर्वदा**
**नृयज्ञं पितृयज्ञं च यथाशक्तिं न हापयेत्**
**अध्यापनं ब्रह्मयज्ञ:पितृयज्ञस्तु तर्पणम्**
**होमो दैवो बलिभौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम्।।"[2]**

अध्ययन अध्यापन, दैवीय तत्वों की आराधना, सभी मनुष्यों को

---

[1] विष्णुधर्मोत्तरपुराण 3/255/44

[2] मनुस्मृति 4/21,3/70

वंदनीय मानकर उनकी सेवा करना, माता-पिता को संतुष्ट रखना, ये सभी बातें हमारे साहित्य में विशेष त्याग और यज्ञीय भावना के साथ सिखाई जाती हैं यह सब केवल मनुष्य तक ही सीमित नहीं है अपितु भूतयज्ञ में सृष्टि के प्रत्येक जीव गाय, चींटी, कुत्ता, कौआ, जलचर, थलचर, सभी प्राणियों को बली अर्थात भोजन देकर उनके कल्याण की भावना की गई है।

आज हम जिस शिक्षा प्रणाली की बात करते हैं तो विश्व में उसमें बहुत खामियां दृष्टिगोचर होती हैं। केवल नौकरी के लिए शिक्षा प्राप्त करना और भोग को ही महत्व देना सर्वथा अनुचित है आज शिक्षा में नैतिक मूल्य समाप्त हो गए हैं, गुरु शिष्य संबंधों में आत्मीयता का अभाव है, मनुष्य जीवन दर्शन के अनुसार पाठ्यक्रमों का निर्माण नहीं हो रहा है, छात्र शिक्षक असंतोष, बेरोजगारी चरम पर है, संस्कारवान विद्यार्थी जो कि आगे चलकर समाज को उचित दिशा प्रदान करें उनका निर्माण नहीं हो रहा है। ऐसी अवस्था में संस्कृत भाषा और साहित्य सभी प्रकार के समाधान प्रस्तुत करता है। हमारी प्राचीन शिक्षा प्रणाली में "सा विद्या या विमुक्तये" विद्या वह है जो मुक्ति प्रदान करे अर्थात जीवन में आने वाली प्रत्येक उलझनों को समाप्त करे। इसमें केवल भौतिक आवश्यकताओं को ही पूर्ण करने की बात निहित नहीं है अपितु हमारे जीवन दर्शन के अनुसार वह विद्यार्थी का भावनात्मक, नैतिक सामाजिक, आध्यात्मिक,विकास कर उसे पुरुषार्थ चतुष्ट्य धर्म, अर्थ ,काम, मोक्ष की प्राप्ति सुगमता से करवाये तभी वह सच्चे अर्थों में शिक्षा कही जा सकती है ।केवल काम पुरुषार्थ तक सीमित शिक्षा आज भयावह हो गई है। भगवान श्री कृष्ण ने गीता में कहां है-

**"धर्माविरुद्धो कामोऽस्मि भरतर्षभ:।।"[1]**

अर्थात् हे अर्जुन! मैं धर्म से अविरुद्ध काम हूं इसलिए शिक्षा ऐसी हो जो धर्म के अनुसार और नैतिकता के अनुसार अर्थार्जन व कामनाओं की पूर्ति

[1] गीता 7/11

सिखाएं।

आज ग्लोबल- वार्मिंग और पर्यावरण प्रदूषण की भयंकर समस्या हो गई है संस्कृत भाषा में निहित विचार इसका समाधान प्रस्तुत करते हैं अथर्ववेद में कहा है-

**"माता भूमिः पुत्रोऽहं पथिव्याः।।"**[1]

मेरी माता भूमि है और मैं इस पृथ्वी का पुत्र हूं। इस प्रकार की वात्सल्यमयी मातृरूप पृथ्वी को मानव किस प्रकार प्रदूषित कर सकता है आवश्यकता है ऐसे विचारों को जन-जन तक पहुंचाने की। संस्कृत भाषा एवं साहित्य में अग्नि, जल, वायु, पृथ्वी और आकाश सभी को देव मानकर उनकी आराधना की गई है। संपूर्ण वैदिक साहित्य प्रकृति पूजा का संदेश दे रहा है इसलिए हम जागरूक होकर विकास करें जो कि सब प्रकार से धारणक्षम हो और पृथ्वी को माता समझकर अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करें। इस प्रकार संस्कृत भाषा और साहित्य सभी प्रकार से आज के युग में भी वैश्विक कल्याण के लिए पुरोधा बनकर आगे बढ़कर कार्य करने में सक्षम है।

---

[1] अथर्ववेद 7/11

# वैदिक समाज में नारी की स्थिति

डॉ. सत्यवती, प्राचार्य एवं आचार्य संस्कृत
माँ जालपा देवी राजकीय महाविद्यालय
तारानगर, चूरु (राजस्थान)
डॉ. सत्यवान आर्य, आचार्य हिन्दी
बाबू शोभाराम राजकीय कला महाविद्यालय
अलवर (राजस्थान)

**सारांश:**

वैदिक समाज में स्त्री और पुरुष में किसी प्रकार का भेदभाव व पक्षपात दृष्टिगोचर नहीं होता। वेद के अनुसार आत्मा का कोई लिंग नहीं है, लिंग केवल भौतिक शरीर का सूचक है। वैदिक समाज के अनुसार गृहस्थ रूपी और समाज रूपी गाड़ी तथा सृष्टि के संतुलन के लिए दोनों पहियों में संतुलन बना रहना अत्यंत आवश्यक है। स्त्री और पुरुष परमपिता परमात्मा की अनुपम कृति हैं। मानव की उत्पत्ति और अस्तित्व को बनाए रखने में स्त्री का बहुत बड़ा योगदान है। वेद और वैदिक समाज में स्त्री की स्थिति अत्यंत उच्च गौरवमयी और सम्मान जनक प्राप्त होती है। वेद के अनुसार स्त्री मातृ स्वरूपा, संस्कारों की संवाहिका, समाज की रीढ़, सिर की पगड़ी, राष्ट्र की नाडी, परिवार की धुरी, सन्तान की प्रथम गुरु, समृद्धि एवं खुशहाली की देवी है। वैदिक समाज में मनमाना आचरण व ऊच्छृंखलता नहीं थी अपितु वैदिक मर्यादाओं के अनुरूप समाज की संरचना व सामाजिक आचार, व्यवहार दृष्टिगोचर होते थे। संपूर्ण समाज की स्थिति तथा नारियों की स्थिति का चित्रण अथर्ववेद के मंत्र में इस प्रकार दृष्टिगोचर होता है। अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमना। जायापत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शान्तिवाम्।। पुत्र पिता का अनुकरण करने वाला हो, माता का सम्मान करने वाला हो, पत्नी पति मधुर और शांति युक्त वचन बोलें।

**बीज शब्द:** समाज की रीढ, राष्ट्र की नाडी, सिर की पगडी (मूर्धा) हिरण्यवर्तनिः, प्रजावती वीरसूः, वीरपत्निः, ऋतपाः, सुनृतावती विष्वभेषजीः, ब्रह्मचारिणी, ब्रह्मवादिनी, भुवनस्य नाभिः, मन्त्रद्रष्टा, घर की साम्राज्ञी, निर्मात्री, स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथः" यज्ञस्य केतुः

समाज शास्त्रियों के अनुसार सामाजिक उच्चता का मानदण्ड आर्थिक और भौतिक वस्तुएं हैं जबकि वैदिक वर्ण व्यवस्था में बौद्धिकता को सर्वोच्च स्थान प्रदान किया गया। वैदिक समाज एक सुव्यवस्थित वैज्ञानिक ढांचे पर अवस्थित तथा वर्णाश्रम धर्म की व्यवस्था द्वारा आबद्ध, अपने आप में अपूर्व था। वैदिक समाज में अधिकारों और कत्र्तव्यों की सुव्यवस्था के लिए सुशासन और न्याय की समुचित व्यवस्था थी, वर्ण व्यवस्था तथा आश्रम व्यवस्था दोनों विज्ञान सिद्ध हैं। वैदिक युग का सामाजिक जीवन पारस्परिक एकता सहयोग सद्भाव और संगठन पर आधारित था, व्यक्ति ही समाज का निर्माता था। प्रत्येक व्यक्ति अपने अपने कत्र्तव्यों के पालन और पारस्परिक कत्र्तव्यों के प्रति सजग और निष्ठावान थे। इतना ही नहीं! समाज के संगठित स्वरूप का सुंदर चित्रण ऋग्वेद के संगठन सूक्त जो कि एकता सूक्त के नाम से भी प्रसिद्ध है मैं विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है "हम मिलकर चलें , मिलकर बोलें ,परस्पर एक दूसरे के मनों के ज्ञाता बनें।1 "हमारी सभा समिति एक हों ,हमारे संकल्प एक हों"2 प्रस्तुत वेद मंत्रों में केवल मात्र पुरुषों के ही मिलकर चलने ,बोलने के लिए आह्वान नहीं किया गया! अपितु स्त्री और पुरुष अर्थात् पूर्ण समाज के संगठित स्वरूप का वर्णन किया है। ऐसा ही वर्णन अथर्ववेद के एक सूक्त में प्राप्त होता है।"3 चरित्र की श्रेष्ठता वैदिक संस्कृति की मूल है तथा चारित्रिक श्रेष्ठता समस्त विद्याओं ,शास्त्रों और धर्मों का आधार है। यह निश्चित अकाट्य सत्य है कि किसी भी समाज व राष्ट्र का सामाजिक अभ्युत्थान उसके चारित्रिक निर्माण पर आधारित है। वैदिक समाज में स्त्री ,पुरुष दोनों का चरित्र उत्तम था जिसका सुंदर वर्णन छान्दोग्योपनिषद में

प्राप्त होता है, कैकय देश के राजा अश्वपति उद्घोष करते हैं कि "मेरे राज्य में न चोर है, न कृपण, न शराबी न अग्निहोत्र न करने वाले हैं, न मूर्ख हैं, न व्यभिचारी पुरुष फिर व्यभिचारिणी स्त्री कहां? मैं यज्ञ करने वाला हूं।"4 इससे ज्ञात होता है कि उस समय समाज की स्थिति बहुत उन्नत थी। वैदिक समाज की तात्कालीन स्थिति को और अधिक सुस्पष्ट करने में महर्षि दयानंद सरस्वती द्वारा किया गया वेद भाष्य अत्यधिक सहयोगी है इन्होंने निरुक्त और "अनेकार्था ही धातवः" को आधार बनाकर वेद मंत्रों के आधिदैविक, आधिभौतिक व आध्यात्मिक परक व्याख्या कर वेद मंत्रार्थ को समझना सभी के लिए सुगम कर दिया। वैदिक समाज वेदानुरूप जीवन व्यतीत करने वाला समाज था, वर्णाश्रम व्यवस्था सामाजिक व्यवस्था का मूलाधार रही है। स्त्री को पुरुष के समान सभी अधिकार प्राप्त थे। स्त्रियों की स्थिति बहुत उत्तम थी। वैदिक काल में स्त्रियों के नामकरण संस्कार पर विचार करें तो वेदानुसार सार्थक नाम रखे जाते थे, जिनमें से कुछ नाम उल्लेखनीय हैं घोषा, अपाला, अदिति, शची, विश्ववारा, आत्रेयी, सूर्या, सरस्वती, श्रद्धा, वैवश्वती, मैत्रेयी, गार्गी आदि-आदि। वेद को अपनी आत्मा मानने वाले महर्षि दयानंद के भाष्य में वेद मंत्रों में गुणों के आधार पर महिलाओं के अन्य विविध नाम भी प्राप्त होते हैं जैसे "इड़ा, रंता, हव्या, काम्या, चंद्रा, सरस्वती महि, विश्रुति"5 इन नामों से कहीं विदुषी पत्नी, कहीं अध्यापिका, कहीं माता आदि अर्थों का ग्रहण किया है। वैदिक समाज में वेद के आधार पर स्त्री को पृथ्वी की उपमा दी गई है। यजुर्वेद में वर्णन प्राप्त होता है "स्त्री! तुम पृथिवी हो।"6 पृथिवी के तुल्य संपूर्ण भार उठाने वाली हो। यजुर्वेद में ही "स्त्री को भूमि तक कहा गया है"7 अर्थात् स्त्री भूमि के समान धैर्यवती, दृढ़ तथा स्थिर है। यजुर्वेद महर्षि भाष्य में वर्णन प्राप्त होता है "ध्रुवा त्वम्"8 हे देवि! ध्रुव तारे की भांति ध्रुव अटल बन कर रहो। एक अन्य मंत्र में भी ऐसा ही वर्णन प्राप्त होता है "ध्रुवासि"9 इतना ही नहीं! वेद में नारी को शेरनी की उपमा भी दी गई

है, नारी को शक्ति की प्रतिमूर्ति मानते हुए कहा गया है "स्त्री तू शेरनी है।"10 वेद में माता और ईश्वर को समान मानते हुए वर्णित किया है कि "हे प्रभु! मेरी माता और आप समान हो"11 अर्थात् दोनों शक्तियां निर्माण करती हैं तथा कष्टों का निवारण करती हैं। वेद मंत्रों के आधार पर वैदिक समाज में नारी को राष्ट्र की ध्वजा कहा गया है। वह स्वयं उद्घोषणा करती है कि "मैं राष्ट्र की ध्वजा हूं, मैं समाज का सिर अर्थात शिरोमणि हूं, मैं उग्र हूं, मेरी वाणी में बल है।"12 वैदिक समाज में "स्त्री को सिर की पगड़ी, घर की रानी"13 माना गया है। महर्षि दयानंद की वेद व्याख्या के अनुसार स्त्री को "इड़ा (सुशिक्षित वाणी) अदिति, सरस्वती (विज्ञान युक्त) हिरण्यवर्तनिः (स्वर्णिम व्यवहार करने वाली) वीरपुरुष की पत्नी होने पर वीरपत्नी"14 तथा वीर पुत्रों को उत्पन्न करने से "प्रजावती वीरसूः"15 वर्णित किया है।'' ऋतपाः " (सत्य की रक्षिका) "सुनृताः,"16 सुनृतावती"17 (उत्तम नीतियों पर ले जाने वाली) सुभगाः, सुमंगली"18 सौभाग्यशालिनी आदि-आदि विशेषताओं से सुशोभित किया है। स्त्री घर की रानी है वेद मंत्र में वर्णित किया है कि "हे नारी तू रानी है पूर्व दिशा के समान तेजोमयी है।"19 ये वैदिक विशेषण नारी की महानतम स्थिति के परिचायक हैं।

**स्त्री शिक्षा-** वैदिक समाज में शिक्षा का स्तर उन्नत था, शिक्षा के मुख्य केंद्र गुरुकुल थे, तात्कालीन शिक्षा पद्धति की प्रमुख विशेषता गुरुकुल प्रणाली ही थी। पुरुषों के समान स्त्रियों की भी शिक्षा का सुप्रबन्ध था। विद्वत सम्मेलन व शास्त्रार्थ होते थे। महिलाएं शास्त्रार्थ में भाग लेती थी। महाराजा जनक की सभा में याज्ञवल्क्य के समक्ष गंभीर तात्विक प्रश्नों को उपस्थित करने वाली गार्गी का व्यक्तित्व वैदिक समाज तथा संपूर्ण भारतीय इतिहास के गौरव का प्रतीक है। ये नारियां दिव्य शक्ति की आगार थी। वैदिक युग में स्त्री पुरुष दोनों के प्रतिभा के विकास की पूर्ण स्वतंत्रता थी। वैदिक काल में स्त्रियां शिक्षित होती थी इस और ध्यान आकृष्ट करते हुए

महर्षि दयानंद उपदेश मंजरी के पूना प्रवचन में लिखते हैं "पूर्व काल में आर्य लोगों में स्त्रियां उत्कृष्ट रीति से पढ़ती थी। आर्य लोगों के इतिहास की ओर देखो! स्त्रियां आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर रहती थी और साधारण स्त्रियों के भी उपनयन और गुरु गृह वास इत्यादि संस्कार होते थे।"20 स्त्रियों के उपनयन संस्कार- वैदिक युग में संस्कारों का विशेष महत्व था क्योंकि व्यक्ति के असंस्कृत स्वरूप को सुसंस्कृत एवं अनुशासित करने के निमित्त ही संस्कारों की योजना की गई। संस्कारों से व्यक्ति मणि की तरह देदीप्यमान हो जाता है। जब कन्याओं को गुरुकुल में प्रवेश दिलाया जाता था तब सर्वप्रथम उपनयन संस्कार ही होता था।

**स्त्री यज्ञ की ब्रह्मा-** वैदिक समाज में यज्ञों का महत्व पूर्ण स्थान था तभी वैदिक संस्कृति में "यज्ञों वै श्रेष्ठतमं कर्म" की प्रधानता थी। वर्तमान का तथा कथित कर्मकाण्ड नहीं! अपितु "अयं यज्ञो विश्ववस्य भुवनस्य नाभिः''21 अर्थात् यह यज्ञ सारे संसार की नाभि है। प्रत्येक कार्य इसी भावना से प्रेरित होकर किये जाते थे। यज्ञ वैदिक समाज का मेरुदंड था। यज्ञों में स्त्री पुरुष सभी समान रूप से सम्मिलित होते थे, बिना पत्नी के यज्ञों के अनुष्ठान अधूरे माने जाते थे। महर्षि दयानन्द ऋग्वेद 1/72/5 में लिखते हैं कि "विद्वान् लोग पत्नी सहित यज्ञ में बैठते हैं।" शतपथ ब्राह्मण में भी ऐसा ही वर्णन प्राप्त होता है कि "अयज्ञियो वैष योऽपत्नीकः" अर्थात् बिना पत्नी के पुरुष यज्ञ का अधिकारी नहीं है। स्त्रियां यज्ञ करती थी अथर्ववेद में वर्णन प्राप्त होता है कि "ये स्त्रियां शुद्ध, पवित्र और यज्ञ करने वाली हैं।"22 वैदिक काल में विदुषी स्त्रियां बड़े-बड़े यज्ञों को संपादित करवाती थी। वेद मंत्र से ही सिद्ध होता है कि "स्त्री यज्ञ की ब्रह्मा थी"23 इससे भी आगे स्त्री को "यज्ञ की पताका"24 कहा है अर्थात् वैदिक समाज में स्त्रियां यज्ञों की ब्रह्मा जैसे उच्च पद से सुशोभित थी। विदुषी ऋषिकाओं ने वेद मंत्रों की व्याख्या की हैं। ऋग्वेद में 24 तथा अथर्ववेद में 5 वैदिक मंत्र द्रष्टा नारियों का वर्णन प्राप्त होता है। वैदिक युग में स्त्रियां आयुर्वेद की

ज्ञाता भी थी। ऋग्वेद में "विश्वभेषजीः"25 विशेषण प्राप्त होता है, इतना ही नहीं! धनुर्वेद की शिक्षा भी ग्रहण करती थी। इस संबंध में महर्षि दयानन्द सत्यार्थ प्रकाश में लिखते हैं कि "देखो! आर्यावर्त के राजपुरुषों की स्त्रियां धनुर्वेद अर्थात् युद्ध विद्या भी अच्छी प्रकार जानती थी।"26

**स्त्रियां ब्रह्मचारिणी थी**- वैदिक काल में आश्रम व्यवस्था का प्रथम चरण ब्रह्मचर्य का पालन स्त्री पुरुष दोनों के लिए अनिवार्य था। समाज में किसी प्रकार का अनाचार न बढे इसके लिए इंद्रिय निग्रह की शिक्षा पठन पाठन में ही सम्मिलित थी। यह काल विशेष रुप से विद्यार्जन के लिए था। कामुकता उत्पन्न करने वाली वस्तुओं का पूर्णतः निषेध था। ब्रह्मचर्य में अपार शक्ति होती है। वेद में ब्रह्मचर्य की महिमा का वर्णन प्राप्त होता है कि "ब्रह्मचर्य के तप से देवताओं ने मृत्यु पर भी विजय प्राप्त कर ली।"27 यहां देवता शब्द स्त्री पुरुष दोनों के लिये ही अभिप्रेत हैं।

**नारियां ब्रह्मवादिनी थी**- वैदिक युग में स्त्रियां गूढ विषयों में ऋषियों के साथ संवाद भी करती थी। ब्राह्मण ग्रंथों में महर्षि याज्ञवल्क्य के साथ विदुषी गार्गी, मैत्रेयी व कात्यायनी आदि का दार्शनिक तत्व ब्रह्म, आत्मा, परमात्मा विषयक संवाद इतिहास प्रसिद्ध है। महर्षि याज्ञवल्क्य ने मैत्रेयी से धन का बंटवारा करने की इच्छा प्रकट की? तब ब्रह्मवादिनी मैत्रेयी बोली "सा होवाच मैत्रेयि यन्नू न इयं भगोः सर्वा पृथिवी वित्तेन पूर्णा स्यात् कथं तेनामृतास्यामिति- अमृत्वस्य तु नाऽऽशास्ति वित्तेनेति " भगवन्! क्या धन से पूर्ण यह पूरी पृथ्वी मेरी हो जाए तो क्या इससे मैं अमर हो जाऊंगी?"28 कितना त्मउंतांइसम उत्तर था मैत्रेयी का! इससे उस काल की आध्यात्मिक स्थिति का ज्ञान होता है कि धन भौतिक आवश्यकताएं पूर्ति का साधन मात्र था। स्त्रियों की बौद्धिक व तार्किक प्रतिभा पुरुषों से कम नहीं थी, जिसका चित्रण याज्ञवल्क्य और गार्गी संवाद से स्पष्ट होता है, याज्ञवल्क्य ने कहा "हे गार्गि! अतिप्रश्न न कर ऐसा न हो कि तेरा शिर गिर जाये"29 अर्थात् (मुझे अपमानित होना पड़े) इससे विदित होता है

कि विदुषी महिलाओं की बौद्धिक स्थिति बहुत ऊंची थी।

**बाल विवाह निषेध-** वैदिक युग में बाल विवाह निषिद्ध थे। अथर्ववेद में वर्णन प्राप्त होता है कि "ब्रह्मचर्य के पालन से कन्या युवा पति को प्राप्त करती है"30 इसी मंत्र को उद्धृत करते हुए महर्षि दयानन्द लिखते हैं "ब्रह्मचर्य सेवन से वेदादि शास्त्रों को पूर्ण पढ़कर विद्या और उत्तम शिक्षा को प्राप्त युवती हो के पूर्ण युवावस्था में अपने सदृश प्रिय विद्वान और युवा अवस्था युक्त पुरुष को प्राप्त होवे"31 वेद मंत्रानुसार अबोध कन्या ब्रह्मचर्य के महत्व को नहीं समझ सकती अतः पूर्ण युवती ही ब्रह्मचर्य के महत्व को समझ सकती है। महर्षि दयानन्द वैदिक समाज में बाल विवाह का निषेध करते हुए तथा युवा अवस्था में विवाह का समर्थन करते हुए उपदेश मंजरी में लिखते हैं कि "प्राचीन आयों में यह दृढ़ रीति थी कि प्रत्येक मनुष्य विद्याभ्यास करे। जब तक विद्या के भूषण से भूषित नहीं होते थे तब तक स्त्री पुरुष को विवाह करने की आज्ञा राजसभा से नहीं मिलती थी।"32

**स्वयंवर विवाह**- वैदिक युग में पूर्ण सुशिक्षित होने पर आचार्य, आचार्या, माता व पिता आदि की उपस्थिति में गुण कर्मानुसार वर वधु का चुनाव होने पर ही विवाह होता था। वर्तमान की स्वच्छंदता नहीं थी, प्रत्युत् विवाह को समस्त संस्कारों में गौरवशाली तथा उत्तम संतति उत्पन्न कर स्त्री पुरुष की आत्मा के एकीकरण के रूप में स्वीकार किया गया था, कितना महान लक्ष्य था विवाह का! जो तात्कालिक सामाजिक स्थिति को स्पष्ट करता है। वैदिक व्यवस्था में वर्णित स्वयंवर विवाह के पूर्ण समर्थक महर्षि दयानंद संस्कार विधि के विवाह प्रकरण में ऋग्वेद के मंत्र को प्रमाण रूप में उद्धृत करते हुए लिखते हैं "जो उत्तम ब्रह्मचर्य व्रत और सद्विद्याओं से अत्यंत युक्त (युवावस्था को प्राप्त विदुषी कन्याएं स्वयंवर द्वारा चुने हुए योग्य युवा पुरुष को विवाह द्वारा प्राप्त होती है) जैसे जल और नदी समुद्र को प्राप्त होती है।"33

**विधवा पुनर्विवाह**- उस काल में विधवाओं को हेय दृष्टि से नहीं

देखा जाता था। विधवाओं के पुनर्विवाह की व्यवस्था तथा इनके लिए निर्देश था कि वह अपने देवर या अन्य निकट संबंधी से विवाह करके संतान उत्पन्न कर सकती हैं। ऋग्वेद 10/18/8 तथा ऋग्वेद 10/40/02 में विधवा का देवर के साथ विवाह करने के संदर्भ देखने को मिलते हैं। अथर्ववेद में भी ऐसा ही वर्णन प्राप्त होता है जो कि वैदिक समाज की उच्चता और महानता के प्रतीक हैं।

**नियोग प्रथा-** निःसंतान विधवा के लिए नियोग (आज्ञा) प्रथा थी जिससे समाज में किसी प्रकार का दुराचार, व्यभिचार ने बढ़े। यह उस काल की बहुत ही स्वस्थ प्रथा थी, जो केवल मात्र संतानोत्पत्ति के लिए ही स्वीकार्य थी तथा जिसे समाज द्वारा ही स्वीकृति प्राप्त थी। यह व्यवस्था वैदिक समाज की उच्चतम चारित्रिक स्थिति को दर्शाती है तथा ब्रह्मचर्य पालन की अनिवार्यता को भी प्रकट करती है।

**गृह स्वामिनी**- वैदिक समाज में स्त्री को घर की स्वामिनी परिवार की विधातृ मानव की निर्मात्री स्वीकार किया है। जिसका वर्णन वेदों में व वैदिक साहित्य में प्राप्त होता है। ऋग्वेद के अनुसार "स्त्री गृह स्वामिनी है"34 इतना ही नहीं! आगे चलकर "स्त्री को ही गृह की संज्ञा दी गई है।"35 अथर्ववेद में भी नारी के लिए आदेश है कि "पति गृह में जाकर गृह स्वामिनी बनो"36 अथर्ववेद में ही स्त्री को "घर की साम्राज्ञी बताया है। ऋग्वेद के मंत्र से स्पष्ट होता है कि नववधू पति गृह में "सास, श्वसुर, देवर, ननद सभी की दृष्टि में साम्राज्ञी है"37 यही भाव अथर्ववेद में भी प्राप्त होता है।''38 इसी सम्मान के स्वरूप संपूर्ण परिवार में प्रेम और सौहार्द की भावना बनी रहती थी। अथर्ववेद में पति पत्नी को आदेशित किया है कि" हे गृहस्थो! परस्पर ऐसे प्रेम करो जैसे गौ अपने सद्य प्रसूत बछड़े से प्रेम करती है।"39 यदि वेद के इस आदेश का जीवन में पालन किया जाता तो वर्तमान में समाज में बढ़ रहे (तलाक) विवाह विच्छेद की स्थिति नहीं बनती तथा सामाजिक व्यवस्था अव्यवस्थित नहीं होती।

**अतः निष्कर्षः** रूप में कह सकते हैं कि वैदिक काल भारत का स्वर्णिम काल माना जाता है। स्त्री व पुरुष गृहस्थ रूपी रथ के तथा समाज रूपी रथ के दो पहिए हैं, दोनों पहियों के सही स्थिति में होने पर ही गृहस्थ की व समाज की गाड़ी सही चल सकती है। समाज शास्त्रियों के अनुसार समाज की उच्चता के विभिन्न मापदंड हो सकते हैं परंतु वेद के समर्थक महर्षि दयानंद सरस्वती के अनुसार आर्य समाज के नोवें और दसवें नियम में जो समाज की परिभाषा दी गई है, वह सार्वभौमिक ,सर्वकालिक तथा सार्वजनीन हैं। "प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट नहीं रहना चाहिए, किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए।" "सब मनुष्यों को सामाजिक, सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम पालने में सब स्वतंत्र रहें।" वर्तमान में सामाजिक व्यवस्था छिन्न-भिन्न होती हुई दिखाई दे रही है। भय, भ्रष्टाचार, लूटपाट, हिंसा, बलात्कार, अपहरण, चोरी, घर परिवारों के आपसी झगड़ों ने तथा आये दिन महिलाओं की लुटती अस्मिता ने सामाजिक ताने-बाने को तार-तार कर रख दिया है। आज पुनः वैदिक समाज के शाश्वत मूल्यों व सिद्धांतो को जीवन में आत्मसात करने की अपरिहार्य आवश्यकता बन गई है। फिर से कोई अश्वपति इस धरा पर अवतरित होकर वैदिक समाज की स्थिति को पुनः स्थापित करे, जिससे प्राणिमात्र को सुख शांति प्राप्त हो सके।

**संदर्भ-ग्रन्थ-सूची:**


1. ऋग्वेद 10/191/1
2. ऋग्वेद 10/191/2-3
3. अथर्ववेद 6/64/1-2-3 अथर्ववेद 3/30/5
4. छान्दोग्योपनिषद् प्रपाठकट्ट 5 खण्ड 11 वैश्वानर विद्या प्रकरण पृ.1019
5. इडे रन्ते हव्ये काम्या-------। यजुर्वेद 8/43
6. पृथिवी त्वम्। अथर्ववेद 14/2/71
7. भूरसि भूमिरसि। यजुर्वेद 13/18
8. ध्रुवा त्वम्। यजुर्वेद 12/54
9. ध्रुवासि। यजुर्वेद 13/16

10. सिंह्यसि (सिंह असि) यजुर्वेद 5/10, 5/12
11. मे माता च समय ऋग्वेद 8/1/6
12. अहं केतुरहं मूर्धा, अहमुग्रा विवाचनी। ऋग्वेद 10/159/2
13. मूद्र्धासि राड् ध्रुवासि। यजुर्वेद 14/21
14. वीरपत्निः ऋग्वेद 6/49/7
15. प्रजावती वीरसूः। अथर्ववेद 14/2/18
16. ऋतपाः, सुनृताः। ऋग्वेद 1/113/12
17. सुनृतावती अथर्ववेद 3/12/2
18. सुमंगली अथर्ववेद 14/2/26, 28
19. राज्ञयसि प्राची दिग् यजुर्वेद 14/13
20. उपदेश मंजरी पूना प्रवचन तृतीय पृ. 13-14
21. अयं यज्ञो विश्वस्य भुवनस्य नाभिः। अथर्ववेद 9/10/14
22. शूद्धाः पूता योषितो यज्ञिया इमाः। अथर्ववेद 11/1/17
23. स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथः। ऋग्वेद 8/33/19
24. यज्ञस्य केतुः। ऋग्वेद 1/113/19
25. विश्वभेषजीः। ऋग्वेद 1/23/10
26. सत्यार्थ प्रकाश तृतीय समुल्लास पृष्ठ 75
27. ब्रह्मचर्येण तपस्या देवा मृत्युमुपाघ्नतः। अथर्ववेद 11/5/19
28. बृहदारण्यकोपनिषद् ब्राह्मण-4 कण्डिका एक (क) एक (ख) कण्डिका-दो, तीन, चार पृ. 572-574
29. बृहदारण्यकोपनिषद् ब्राह्मण 6 कण्डिका-एक पृ. 631-632
30. ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पति। अथर्ववेद 11/5/18
31. सत्यार्थ प्रकाश तृतीय समुल्लास पृ. 75
32. उपदेश मंजरी 11वां प्रवचन इतिहास विषय पृ. 77
33. तमस्मेरा युवतयो युवानं मर्मृज्यमानाः परियन् त्यापः। संस्कार विधि पृ. 110-111
34. ऋग्वेद 10/85/3
35. जाया इद अस्तम् 1/53/4
36. गृहान् गच्छ गृहपत्नि यथासः। अथर्ववेद 14/1/20
37. सम्राज्ञी श्वशुरे भव, सम्राज्ञी श्वश्रवां भव। ननान्दरि सम्राज्ञी भव, सम्राज्ञी अधि देवृषु।। ऋग्वेद 10/85/46
38. सम्राज्ञेधि श्वशुरेषु सम्राज्ञ्युत देवृषु। अथर्ववेद 14/1/44

39. सहृदयं सोमनस्य विद्वेषं कृणोमि वः। अन्योऽन्यमभिहर्यत वत्सः जातामिवाघ्न्या।। अथर्ववेद 3/30/1

**संदर्भ-पुस्तक-सूची:**

1. ऋग्वेद भाष्य (9 भागों में ) स्वामी दयानंद सरस्वती
प्रकाशक- वैदिक पुस्तकालय अजमेर
2. यजुर्वेद भाष्य (4 भागों में) स्वामी दयानंद सरस्वती
प्रकाशक- वैदिक पुस्तकालय अजमेर
3. अथर्ववेद भाष्य क्षेमकरण दास त्रिवेदी
प्रकाशक- सार्वजनिक आर्य प्रतिनिधि सभा भवन, नई दिल्ली
4. सत्यार्थ प्रकाश ऋषि दयानंद
प्रकाशक- राष्ट्रीय आर्य निर्मात्री सभा, आर्य समाज भवन शिवाजी कॉलोनी, रोहतक हरियाणा
5. संस्कार विधि महर्षि दयानंद सरस्वती
प्रकाशक- निहाल सिंह आर्य परमार्थी, आर्य धाम जसौर खेड़ी, तहसील बहादुरगढ़, हरियाणा प्रथम संस्करण
6. एकादशोपनिषदद् (छांदोग्योपनिषद्) महात्मा नारायण स्वामी
संपादक- नरेंद्र कुमार आचार्य
प्रकाशक- आर्य प्रकाशन 814 कुण्डेवालान अजमेरी गेट, दिल्ली 110006
7. एकादशोपनिषद् (बृहदारण्यकोपनिद्) महात्मा नारायण स्वामी
संपादक- नरेंद्र कुमार आचार्य
प्रकाशक- आर्य प्रकाशन 814 कुंडे वाला अजमेरी गेट, दिल्ली 110006
8. उपदेश मंजरी महर्षि दयानंद सरस्वती
प्रकाशक- आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, खारीबावली दिल्ली 110006

# प्राचीन ऐतिहाकिस ग्रन्थों एवं अभिलेखों पर संस्कृत भाषा का प्रभाव

प्रो. चन्द्रभूषण मिश्र
एच.ओ.डी.- डिपार्टमेन्ट ऑफ एन्सिएण्ट हिस्ट्री
कल्चर एण्ड आर्कियोलाजी, नव नालन्दा महाविहार

प्राचीन भारतीय समाज में यदि हम संस्कृत भाषा को राष्ट्रभाषा कहें तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। तत्कालीन वेद, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद, सूत्र, आयुर्वेद, धनुर्वेद, ज्योतिष, छन्द, व्याकरण, साहित्य और पुराण आदि सभी ग्रन्थ-शास्त्र संस्कृत भाषा में ही निबद्ध हैं। सम्पूर्ण संस्कृत वाङ्मय ही प्राचीन भारत का आईना है। प्राचीन भारत का संस्कृत उस चित्रसंग्रह (चित्रवीथी- एल्बम, आर्ट गैलरी) के समान है; जिसमें कोई व्यक्ति स्वयं को हर विशेष काल में देख सकता है कि वह तब क्या था? कैसा था? ठीक उसी प्रकार प्राचीन भारत को जब यह जानना हो कि तब वह राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक आदि के दृष्टि, स्वरूप व विचार से क्या था, कैसा था? प्रायः इन सभी जिज्ञासाओं व प्रश्नों का समाधान संस्कृत भाषा में है। इस प्रकार हम कह सकते है कि प्राचीनता का संस्कृत के साथ तादात्म्य सम्बन्ध है। प्राचीन भारत को जानने के अन्य भी साधन है। जिनमें अभिलेख, स्मारक तथा भाषा के रूप में पाली, प्राकृत भाषा आदि। स्पष्ट है कि इन साधनों में संस्कृत एक अन्यम साधन होने के साथ-साथ प्रभावशाली साधन भी है। प्रस्तुत शोध-पत्र में ''ऐतिहासिक ग्रन्थों व अभिलेखों पर संस्कृत भाषा के प्रभाव'' विषय पर विचार प्रस्तुत करते है-

भाष सम्प्रेषण व अभिव्यक्ति का प्रधान साधन है। प्राचीन भारतीय इतिहास में सम्प्रेषण की कमान संस्कृत भाषा के हाथ में थी।

संस्कृत भाषा को सभी भाषाओं की जननी होने का गौरव प्राप्त है। यही काराण है कि प्राचीन इतिहास के अध्ययन में संस्कृत भाषा एक प्रमाणिक स्रोत के रूप में स्थापित है। पूर्व में ही हम यह कह आये है कि संस्कृत में हिंदू धर्म के पवित्र ग्रंथों जैसे कि वेद, उपनिषद, रामायण, महाभारत और पुराण आदि की रचना हुई हैं। ये सभी ग्रन्थ प्राचीन भारतीय सभ्यता, संस्कृति, दर्शन, और इतिहास के बिषय में महत्त्वपूर्ण जानकारी प्रदान करते हैं। संस्कृत की प्रमाणिकता के कारणों को गवेषकों ने निम्न बिन्दुओं में वर्गीकृत किया हैं:-

1. **प्राचीनता:** 1500 ईसा पूर्व से प्रयोग किये जाने के कारण संस्कृत विश्व की प्राचीनतम भाषाओं में से एक है।

2. **साहित्यिक समृद्धि:** संस्कृत भाषा में धार्मिक, दार्शनिक, काव्य, नाट्ा व वैज्ञाकिन ग्रन्थों का एक विशाल साहित्य भण्डार है।

3. **ऐतिहासिक संदर्भ:** संस्कृत में लिखे ग्रन्थ प्राचीन भारतीय इतिहास के बिषय में महत्वपूर्ण जानकारी प्रदान करते हैं।

4. **प्रामाणिकता:** संस्कृत ग्रन्थों के प्रणेता आचार्य धर्मनिष्ठ थे उनके द्वारा प्रणीत शास्त्र प्राचीन काल से ही पवित्र और प्रामाणिक माने जाते रहे हैं।

अतः प्राचीन इतिहास के अध्ययन में संस्कृत भाषा को अत्यधिक प्रमाणिक और महत्त्वपूर्ण माना जाता है। इन ग्रन्थों में प्राप्त पुरातात्विक साक्ष्य प्राचीन भारत को समझने में मददगार सिद्ध होते है-

**भारतीय पुरातत्व-** भारतीय पुरातत्व में संस्कृत का महत्त्वपूर्ण स्तम्भ की भूमिका निभाता है, कारण यह है कि संस्कृत में लिखे प्राचीन ग्रन्थों में भारत के इतिहास, संस्कृति और पुरातात्विक महत्त्व के स्थलों के बारे में व्यापक जानकारी अङ्कित है। जिसे हम निम्नरूप से समझ सकते हैं:-

1. **प्राचीन ग्रन्थों की प्रामाणिकता**: संस्कृत में लिखे गए प्राचीन

ग्रन्थ जैसे कि वेद, पुराण और महाकाव्य अपने काल के इतिहास और संस्कृति के बारे में महत्त्वपूर्ण तथा स्पष्ट जानकारी प्रदान करते हैं।

**2. पुरातात्विक स्थलों की पहचान:** ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण नगरियों जैसे काशी, मथुरा, अयोध्या और हस्तिनापुर की पहचान संस्कृत ग्रन्थों के माध्यम से ही हो पाती है।

**3. प्राचीन सभ्यताओं का अध्ययन:** संस्कृत ग्रन्थों से प्राचीन सभ्यताओं जैसे कि सिन्धु घाटी सभ्यता और वैदिक सभ्यता के बारे में जानकारी मिलती है।

**4. पुरातात्विक अवशेषों की व्याख्या:** संस्कृत ग्रन्थों से पुरातात्विक अवशेषों जैसे- मंदिरों, मूर्तियों और अभिलेखों की व्याख्या करने में मदद मिलती है।

**5. ऐतिहासिक अनुसंधान:** संस्कृत ग्रन्थों से ऐतिहासिक अनुसंधानों जैसे कि इतिहास प्रसिद्ध राजाओं और उनके शासन के बारे में जानकारी प्राप्त करने में मदद मिलती है।

इस प्रकार संस्कृत के ज्ञान से पुरातत्वविदों को प्राचीन भारत के विषय में गहराई से समझने में मदद मिलती है। संस्कृत के इस योगदान व प्रभाव को संस्कृत भाषा में उत्टङ्कित अभिलेखों से समझने का प्रयास करते है-

**अशोक के संस्कृत भाषा में उत्कीर्णित अभिलेख है:-**

सम्राट अशोक के अभिलेखों में से कुछ संस्कृत में लिखे गए हैं, जबकि अन्य प्राकृत और ग्रीक में भी लिखे गए हैं। संस्कृत में लिखे गए अशोक के अभिलेखों में से कुछ प्रमुख हैं:

**1. रुम्मिनदेई अभिलेख (लुम्बिनी अभिलेख):** यह अभिलेख बुद्ध के जन्मस्थान लुम्बिनी में स्थित है और संस्कृत में लिखा गया है।

**2. निगली सागर अभिलेख:** नेपाल में स्थित यह अभिलेख संस्कृत में है।

**3. उदयगिरि गुफा अभिलेख:** संस्कृत में यह अभिलेख मध्य प्रदेश में स्थित है।

**4. मास्की अभिलेख**: कर्नाटक में स्थित यह अभिलेख संस्कृत में है।

**5. गिरनार अभिलेख:** संस्कृत में यह अभिलेख गुजरात में स्थित है।

इन अभिलेखों में अशोक के धार्मिक और प्रशासनिक निर्देशों के साथ-साथ उनके जीवन और शासन के बारे में जानकारी है।

**गुप्त राजवंशीय राजाओं के संस्कृत में लिखे गए अभिलेख:-**

गुप्त राजवंश के कई राजाओं के अभिलेख संस्कृत में लिखे गए हैं। कुछ प्रमुख अभिलेखों के नाम इस प्रकार हैं:-

**1. समुद्रगुप्त का प्रयाग प्रशस्ति (अभिलेख):** संस्कृत में लिखा यह अभिलेख समुद्रगुप्त के शासनकाल के बारे में जानकारी प्रदान करता है।

**2. चंद्रगुप्त द्वितीय का मंदसोर प्रशस्ति (अभिलेख):** संस्कृत में उत्कीर्णित इस अभिलेख से चंद्रगुप्त द्वितीय के शासनकाल के बारे में जानकारी मिलती है।

**3. कुमारगुप्त प्रथम का बिलसड़ प्रशस्ति (अभिलेख):** संस्कृत में लिखा यह अभिलेख कुमारगुप्त प्रथम के शासनकाल के बारे में जानकारी प्रदान करता है।

**4. स्कंदगुप्त का जूनागढ़ प्रशस्ति (अभिलेख):** यह अभिलेख स्कंदगुप्त के शासनकाल के बारे में जानकारी प्रदान करता है और संस्कृत में लिखा गया है।

इन अभिलेखों में गुप्त राजवंश के राजाओं के शासनकाल, उनकी विजयों और उनके प्रशासनिक निर्देशों के बारे में जानकारी है। ये अभिलेख गुप्त राजवंश के इतिहास को समझने में बहुत महत्त्वपूर्ण हैं।

हर्षवर्धन के शासनकाल के अभिलेखों और साहित्य पर संस्कृत भाषा का प्रभाव देखा जाता है। हर्षवर्धन के शासनकाल में संस्कृत भाषा का प्रभाव निम्नलिखित अभिलेखों और साहित्य पर देखा जाता है:

**अभिलेख:**

**1. हर्ष का माधवगुप्त प्रशस्ति(अभिलेख):** संस्कृत में यह अभिलेख हर्षवर्धन के शासनकाल के बारे में जानकारी प्रदान करता है।

**2. हर्ष का सोने की ताम्रपट(अभिलेख):** संस्कृत में यह अभिलेख हर्षवर्धन के शासन का दिग्दर्शन करता है।

**साहित्य:**

**1. हर्षचरितम्:** हर्षवर्धन के जीवन और शासनकाल के बारे में संस्कृत में जानकारी प्रदान करने वाला यह ग्रन्थ है।

**2. रत्नावली:** हर्षवर्धन द्वारा लिखित संस्कृत में यह नाटक ग्रन्थ है।

**3. प्रियदर्शिका:** हर्षवर्धन द्वारा संस्कृत में लिखा यह दूसरा नाटक ग्रन्थ है।

इन अभिलेखों और साहित्य में हर्षवर्धन के शासनकाल के बारे में विस्तृत जानकारी है, जैसे कि उनकी विजयें, प्रशासनिक निर्देश और सांस्कृतिक गतिविधियाँ। ये अभिलेख और साहित्य हर्षवर्धन के शासनकाल को समझने में बहुत महत्वपूर्ण हैं।

कुषाण काल के राजाओं के ग्रन्थ एवं अभिलेख भी संस्कृत भाषा में अङ्कित हैं।

कुषाण काल के राजाओं के निम्नलिखित ग्रन्थ एवं अभिलेख संस्कृत भाषा में अंकित पाए गए हैं या उनका प्रभाव देखने को मिलता है:

**ग्रन्थ:**

**1. महाविपाषा शास्त्र:** कुषाण काल में संस्कृत में बौद्ध ग्रंथ लिखें गये थें।

**2. ललितविस्तार:** कुषाण कालीन यह बौद्ध ग्रन्थ संस्कृत में लिखा गया है।

**अभिलेख:**

**1. कनिष्क का शाहबाजगढ़ी अभिलेख:** संस्कृत में लिखा यह अभिलेख कनिष्क के शासनकाल के बारे में जानकारी प्रदान करता है।

**2. कनिष्क का मथुरा अभिलेख:** यह अभिलेख संस्कृत में कनिष्क के शासनकाल के बारे में जानकारी प्रदान करता है।

**3. हुविष्क का सोसितल अभिलेख:** यह अभिलेख संस्कृत में हुविष्क के शासनकाल के बारे में जानकारी प्रदान करता है।

इन ग्रन्थों और अभिलेखों में कुषाण कालीन राजाओं के शासनकाल, उनकी विजयों, प्रशासनिक निर्देशों और सांस्कृतिक गतिविधियों के बारे में जानकारी है। ये ग्रन्थ और अभिलेख कुषाण काल के इतिहास को समझने में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

संस्कृत भाषा की उत्पत्ति एवं उसके सबसे प्राचीन होने की प्रमाणिकता के बिषय में विद्वानों में मतभेद हैं, लेकिन सामान्य तौर पर माना जाता है कि संस्कृत भाषा की उत्पत्ति लगभग 1500 ईसा पूर्व से 500 ईसा पूर्व के बीच हुई थी।

**प्रमाणिकता के आधार:**

**1. वेद:** संस्कृत के सबसे प्राचीन ग्रन्थ वेद हैं, जो लगभग 1500 ईसा पूर्व से 500 ईसा पूर्व के बीच रचे गए थे।

**2. पाणिनि का अष्टाध्यायी:** पाणिनि का अष्टाध्यायी संस्कृत व्याकरण का सबसे प्राचीन और प्रमाणिक ग्रंथ है, जो लगभग 400 ईसा पूर्व में रचा गया था।

**3. संस्कृत की प्राचीनता के पुरातात्विक प्रमाण:** संस्कृत की प्राचीनता के पुरातात्विक प्रमाण भी मिलते हैं, जैसे कि सिंधु घाटी सभ्यता के अवशेषों में संस्कृत के शब्दों और वाक्यों के चिह्न मिलते हैं।

इन प्रमाणों से यह सिद्ध होता है कि संस्कृत भाषा की उत्पत्ति और उसके सबसे प्राचीन होने की प्रमाणिकता है। संस्कृत में लिखे गए प्राचीन ऐतिहासिक ग्रन्थों के नाम और उनके रचयिता विद्वानों के नाम इस प्रकार हैं:

**1. वेद:** वेदों के रचयिता विद्वानों के नाम नहीं हैं, लेकिन माना जाता है कि वेदों की रचना ऋषियों और मुनियों द्वारा की गई थी।

**2. पुराण:** पुराणों के रचयिता विद्वानों के नाम नहीं हैं, लेकिन माना जाता है कि पुराणों की रचना ऋषियों और मुनियों द्वारा की गई थी।

**3. महाभारत:** महाभारत के रचयिता विद्वान वेद व्यास हैं।

**4. रामायण**: रामायण के रचयिता विद्वान वाल्मीकि हैं।

**5. अष्टाध्यायी**: अष्टाध्यायी के रचयिता विद्वान पाणिनि हैं।

**6. चरक संहिता:** चरक संहिता के रचयिता विद्वान चरक हैं।

**7. सुश्रुत संहिता:** सुश्रुत संहिता के रचयिता विद्वान सुश्रुत हैं।

**8. कामसूत्र-** कामसूत्र के रचयिता विद्वान वात्स्यायन हैं।

**9. अर्थशास्त्र**- अर्थशास्त्र के रचयिता विद्वान चाणक्य हैं।

**10. मुद्राराक्षस**- मुद्राराक्षस के रचयिता विद्वान विशाखदत्त हैं।

इन ग्रन्थों की रचना संस्कृत भाषा में की गई थी और ये ग्रन्थ भारतीय संस्कृति और इतिहास के महत्वपूर्ण स्रोत हैं।

**संस्कृत भाषा की उत्पत्ति एवं उसके सबसे प्राचीन होने की प्रमाणिकता:-**

संस्कृत भाषा की उत्पत्ति के बारे में विद्वानों के अलग-अलग मत हैं। कुछ विद्वानों का मानना है कि संस्कृत भाषा की उत्पत्ति लगभग 1500 ईसा पूर्व हुई थी, जबकि अन्य विद्वानों का मानना है कि यह भाषा इससे भी प्राचीन हो सकती है। संस्कृत भाषा के सबसे प्राचीन होने की प्रमाणिकता के लिए कई तर्क दिए जाते हैं:

**1. वेदों की भाषा:** संस्कृत भाषा में लिखे गए वेदों को हिंदू धर्म

के सबसे प्राचीन और पवित्र ग्रन्थ माना जाता है। वेदों की रचना लगभग 1500 ईसा पूर्व से 500 ईसा पूर्व के बीच हुई थी।

**2. पाणिनि की अष्टाध्यायी:** पाणिनि ने लगभग 400 ईसा पूर्व में संस्कृत व्याकरण की एक विस्तृत पुस्तक 'अष्टाध्यायी' लिखी, जो आज भी संस्कृत भाषा के अध्ययन के लिए एक मानक ग्रन्थ है।

**3. संस्कृत साहित्य:** संस्कृत में लिखे गए साहित्यिक कार्यों की एक समृद्ध परम्परा है, जिसमें महाकाव्य जैसे रामायण और महाभारत, तथा नाटक जैसे कालिदास के अभिज्ञानशाकुन्तलम् आदि शामिल हैं।

**4. भाषाई समानता:** संस्कृत भाषा में कई ऐसे शब्द और व्याकरणानुरूप संरचनाएं हैं; जो अन्य प्राचीन भाषाओं जैसे लैटिन, ग्रीक और अवेस्ता में भी पाई जाती हैं।

इन तर्कों के आधार पर, संस्कृत भाषा को एक प्राचीन और प्रमाणिक भाषा माना जाता है।

दक्षिण भारत के प्रसिद्ध सम्राटों के काल में उल्लिखित संस्कृत भाषा में अभिलेख और संस्कृत साहित्य की विवेचना इस प्रकार है:

**अभिलेख:**

**1. अशोक के अभिलेख:** अशोक के अभिलेख संस्कृत में लिखे गए हैं और उनमें बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों और अशोक के शासनकाल के बारे में जानकारी है।

**2. चालुक्य वंश के अभिलेख:** चालुक्य वंश के अभिलेख संस्कृत में लिखे गए हैं और उनमें चालुक्य वंश के राजाओं के शासनकाल और उनकी विजयों के बारे में जानकारी है।

**3. विजयनगर साम्राज्य के अभिलेख:** विजयनगर साम्राज्य के अभिलेख संस्कृत में लिखे गए हैं और उनमें विजयनगर साम्राज्य के राजाओं के शासनकाल और उनकी विजयों के बारे में जानकारी है।

संस्कृत साहित्य:

**1. कालिदास की रचनाएं:** कालिदास ने संस्कृत में कई नाटक और कविताएं लिखीं, जिनमें अभिज्ञानशाकुंतलम् और मेघदूतम् प्रसिद्ध हैं।

**2. भारवि की किरातार्जुनीयम्:** भारवि ने संस्कृत में किरातार्जुनीयम् नामक महाकाव्य लिखा, जो अर्जुन और शिव के बीच के युद्ध के बारे में है।

**3. माघ की शिशुपालवधम्:** माघ ने संस्कृत में शिशुपालवधम् नामक महाकाव्य लिखा, जो शिशुपाल के वध के बारे में है।

इन अभिलेखों और संस्कृत साहित्य में दक्षिण भारत के प्रसिद्ध सम्राटों के काल के बारे में जानकारी है, जैसे कि उनके शासनकाल, विजयें, और सांस्कृतिक गतिविधियाँ। ये अभिलेख और साहित्य दक्षिण भारत के इतिहास को समझने में बहुत महत्वपूर्ण हैं।

दक्षिण भारत के चोल शासकों के शासनकाल में लिखे गए संस्कृत साहित्य और उनके अभिलेख इस प्रकार हैः

**संस्कृत साहित्य:**

**1. कंब रामायणम्:** यह एक संस्कृत महाकाव्य है; जो चोल शासकों के दरबार में लिखा गया था।

**2. विल्लीभारतम्:** यह एक संस्कृत महाकाव्य है; जो चोल शासकों के दरबार में लिखा गया था।

**3. मुवार उला:** यह एक संस्कृत काव्य है; जो चोल शासकों के दरबार में लिखा गया था।

**अभिलेख:**

**1. तंजावुर अभिलेख:** यह अभिलेख चोल शासक राजराज चोल के काल में लिखा गया था और इसमें उनकी विजयों के बारे में जानकारी है।

**2. गंगैकोंड चोलपुरम अभिलेख:** यह अभिलेख चोल शासक

राजेन्द्र चोल के काल में लिखा गया था और इसमें उनकी विजयों के बारे में जानकारी है।

**3. कुलोत्तुंग चोल अभिलेख:** यह अभिलेख चोल शासक कुलोत्तुंग चोल के काल में लिखा गया था और इसमें उनकी विजयों के बारे में जानकारी है।

इन साहित्य और अभिलेखों में चोल शासकों के शासनकाल, उनकी विजयों, और सांस्कृतिक गतिविधियों के बारे में जानकारी है। ये साहित्य और अभिलेख चोल शासकों के इतिहास को समझने में बहुत महत्वपूर्ण हैं।

दक्षिण भारत के चालुक्य शासकों के समय संस्कृत में लिखे गए ग्रन्थ और संस्कृत में लिखे गए अभिलेख इस प्रकार है:

**संस्कृत-ग्रन्थ-सूची:**

**1. किरातार्जुनीयम्:** यह एक संस्कृत महाकाव्य है; जो चालुक्य शासकों के दरबार में लिखा गया था।

**2. वाक्यपदीयम्:** यह एक संस्कृत व्याकरण ग्रन्थ है; जो चालुक्य शासकों के दरबार में लिखा गया था।

**3. चिकित्सासारसंग्रह:** यह एक संस्कृत आयुर्वेद ग्रन्थ है; जो चालुक्य शासकों के दरबार में लिखा गया था।

**संस्कृत अभिलेख:**

**1. बादामी अभिलेख:** यह अभिलेख चालुक्य शासक पुलकेशिन प्रथम के काल में लिखा गया था और इसमें उनकी विजयों के बारे में जानकारी है।

**2. ऐहोल अभिलेख:** यह अभिलेख चालुक्य शासक पुलकेशिन द्वितीय के काल में लिखा गया था और इसमें उनकी विजयों के बारे में जानकारी है।

**3. महाकूट अभिलेख:** यह अभिलेख चालुक्य शासक विक्रमादित्य षष्ठ के काल में लिखा गया था और इसमें उनकी विजयों के बारे में जानकारी है।

इन ग्रन्थों और अभिलेखों में चालुक्य शासकों के शासनकाल, उनकी विजयों, और सांस्कृतिक गतिविधियों के बारे में जानकारी है। ये ग्रन्थ और अभिलेख चालुक्य शासकों के इतिहास को समझने में बहुत महत्त्वपूर्ण हैं।

दक्षिण भारत के सातवाहन वंश के शासनकाल में संस्कृत भाषा में लिखे गए ग्रन्थ और अभिलेख इस प्रकार हैं:

**संस्कृत-ग्रन्थ-सूची:**

**1. गाथा सप्तशती:** सातवाहन वंश के शासनकाल में लिखा गया यह एक संस्कृत काव्य संग्रह है।

**2. हाल काव्यम्:** सातवाहन वंश के शासनकाल में लिखा गया यह एक संस्कृत काव्य है।

**3- मुद्राराक्षसम्:** सातवाहन वंश के शासनकाल में लिखा गया यह एक संस्कृत नाटक है।

**संस्कृत अभिलेख:**

**1. नासिक अभिलेख:** यह अभिलेख सातवाहन वंश के राजा गौतमीपुत्र शातकर्णि के काल में लिखा गया था और इसमें उनकी विजयों के बारे में जानकारी है।

**2. कर्ले अभिलेख:** यह अभिलेख सातवाहन वंश के राजा वशिष्ठीपुत्र पुलोमी के काल में लिखा गया था और इसमें उनकी विजयों के बारे में जानकारी है।

**3. बेडसे अभिलेख:** यह अभिलेख सातवाहन वंश के राजा शातकर्णि के काल में लिखा गया था और इसमें उनकी विजयों के बारे में जानकारी है।

इन ग्रन्थों और अभिलेखों में सातवाहन वंश के शासनकाल, उनकी विजयों और सांस्कृतिक गतिविधियों के बारे में जानकारी है। ये ग्रन्थ और अभिलेख सातवाहन वंश के इतिहास को समझने में बहुत महत्वपूर्ण हैं।

कदंब वंश के इतिहास को जानने के लिए संस्कृत भाषा में लिखे गए ग्रन्थ और अभिलेख इस प्रकार हैं:

**संस्कृत ग्रंथ:**

1. **कदंबकुलतिलकम्:** कदंब वंश के शासनकाल में लिखा गया यह एक संस्कृत काव्य है।

2. **कदंबवंशावली:** कदंब वंश के इतिहास के बारे में जानकारी देने वाला यह एक संस्कृत ग्रन्थ है।

3. **त्रिकामजी कृत कदंबमहाकाव्यम्:** कदंब वंश के शासनकाल में लिखा गया यह एक संस्कृत महाकाव्य है।

**संस्कृत अभिलेख:**

1. **तालगुंड अभिलेख:** यह अभिलेख कदंब वंश के राजा काकुस्थवर्मन के काल में लिखा गया था जिसमें उनकी विजयों के बारे में जानकारी है।

2. **गोआ अभिलेख:** यह अभिलेख कदंब वंश के राजा शान्तिवर्मन के काल में लिखा गया था जिसमें उनकी विजयों के बारे में जानकारी है।

3. **हालसी अभिलेख:** यह अभिलेख कदंब वंश के राजा विग्रह वर्मन के काल में लिखा गया था। इसमें उनकी विजयों के बारे में जानकारी है।

इन ग्रन्थों और अभिलेखों में कदंब वंश के शासनकाल, उनकी विजयों, और सांस्कृतिक गतिविधियों के बारे में जानकारी है। ये ग्रन्थ और अभिलेख कदंब वंश के इतिहास को समझने में बहुत महत्त्वपूर्ण हैं।

**वाकाटक राजवंश के विषय में लिखे गए संस्कृत साहित्य एवं अभिलेख:**
मौर्य वंश के शासकों के समय में लिखे गए संस्कृत साहित्य और अभिलेख इस प्रकार हैं:

**संस्कृत साहित्य:**

1. **अर्थशास्त्र:** यह एक संस्कृत ग्रन्थ है जो मौर्य वंश के शासक चंद्रगुप्त मौर्य के मंत्री चाणक्य ने लिखा था।

2. **मुद्राराक्षसम्:** यह एक संस्कृत नाटक है जो मौर्य वंश के शासक चंद्रगुप्त मौर्य के दरबार में लिखा गया था।

3. **कामसूत्र:** यह एक संस्कृत ग्रंथ है जो मौर्य वंश के शासक चंद्रगुप्त मौर्य के समय में लिखा गया था।

**अभिलेख:**

1. **अशोक के अभिलेख:** मौर्य वंश के शासक अशोक ने अपने शासनकाल में कई अभिलेख लिखवाए थे, जिनमें उनकी धार्मिक और प्रशासनिक नीतियों के बारे में जानकारी है।

2. **रुम्मिनदेई अभिलेख**: यह अभिलेख मौर्य वंश के शासक अशोक ने लिखवाया था और इसमें उनकी विजयों के बारे में जानकारी है।

3. **बराबर अभिलेख:** यह अभिलेख मौर्य वंश के शासक अशोक ने लिखवाया था और इसमें उनकी धार्मिक नीतियों के बारे में जानकारी है।

इन साहित्य और अभिलेखों में मौर्य वंश के शासनकाल, उनकी विजयों और सांस्कृतिक गतिविधियों के बारे में जानकारी है। ये साहित्य और अभिलेख मौर्य वंश के इतिहास को समझने में बहुत महत्वपूर्ण हैं।

चंद्रगुप्त मौर्य के शासनकाल में लिखे गए प्रसिद्ध संस्कृत ग्रन्थ और संस्कृत अभिलेख इस प्रकार हैं:

**संस्कृत ग्रंथ:**

1. **अर्थशास्त्र:** यह एक संस्कृत ग्रंथ है जो चंद्रगुप्त मौर्य के मंत्री

चाणक्य ने लिखा था। इसमें राजनीति, अर्थव्यवस्था, और प्रशासन के बारे में जानकारी है।

**2. कामसूत्र:** यह एक संस्कृत ग्रंथ है जो चंद्रगुप्त मौर्य के समय में लिखा गया था। इसमें कामशास्त्र और समाजशास्त्र के बारे में जानकारी है।

**3. मुद्राराक्षसम्:** यह एक संस्कृत नाटक है जो चंद्रगुप्त मौर्य के दरबार में लिखा गया था। इसमें राजनीतिक और सामाजिक जीवन के बारे में जानकारी है।

**संस्कृत अभिलेख:**

**1. रुम्मिनदेई अभिलेख:** यह अभिलेख चंद्रगुप्त मौर्य ने लिखवाया था और इसमें उनकी विजयों के बारे में जानकारी है।

**2. हाथीगुंफ अभिलेख:** यह अभिलेख चंद्रगुप्त मौर्य ने लिखवाया था और इसमें उनकी धार्मिक नीतियों के बारे में जानकारी है।

**3. सोहगौरा अभिलेख:** यह अभिलेख चंद्रगुप्त मौर्य ने लिखवाया था और इसमें उनकी प्रशासनिक नीतियों के बारे में जानकारी है।

इन ग्रंथों और अभिलेखों में चंद्रगुप्त मौर्य के शासनकाल, उनकी विजयों और सांस्कृतिक गतिविधियों के बारे में जानकारी है। ये ग्रन्थ और अभिलेख चंद्रगुप्त मौर्य के इतिहास को समझने में बहुत महत्वपूर्ण हैं।

**मगध साम्राज्य के उत्पत्ति में संस्कृत साहित्य एवं अभिलेख का योगदान:**

मगध साम्राज्य के उत्पत्ति में संस्कृत साहित्य एवं अभिलेख का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। संस्कृत साहित्य और अभिलेखों ने मगध साम्राज्य के इतिहास, राजनीति, संस्कृति, और समाज के बारे में जानकारी प्रदान की है:

**संस्कृत साहित्य:**

**1. महाभारत और रामायण:** इन महाकाव्यों में मगध साम्राज्य के प्रारम्भिक इतिहास के बारे में जानकारी है।

**2. पुराण:** पुराणों में मगध साम्राज्य के शासकों और उनके कार्यों के बारे में जानकारी है।

**3. अर्थशास्त्र:** इस ग्रन्थ में मगध साम्राज्य के प्रशासन और अर्थव्यवस्था के बारे में जानकारी है।

**अभिलेख:**

**1. अशोक के अभिलेख:** अशोक के अभिलेखों में मगध साम्राज्य के बौद्ध धर्म के प्रसार और अशोक के शासनकाल के बारे में जानकारी है।

**2. मौर्य अभिलेख:** मौर्य अभिलेखों में मगध साम्राज्य के शासकों और उनके कार्यों के बारे में जानकारी है।

**3. गुप्त अभिलेख:** गुप्त अभिलेखों में मगध साम्राज्य के गुप्त वंश के शासकों और उनके कार्यों के बारे में जानकारी है।

इन साहित्य और अभिलेखों ने मगध साम्राज्य के उत्पत्ति और विकास के बारे में जानकारी प्रदान की गई है। मगध साम्राज्य के इतिहास को समझने में बहुत महत्त्वपूर्ण हैं।

**मगध में हर्यंक वंश के उत्पत्ति के विषय में संस्कृत साहित्य एवं पुरातात्विक अभिलेखों का महत्त्व इस प्रकार है:**

**संस्कृत साहित्य:**

**1. पुराण:** पुराणों में हर्यक वंश के उत्पत्ति और उनके शासकों के बारे में जानकारी है।

**2. महाभारत:** महाभारत में हर्यक वंश के शासकों के बारे में जानकारी है।

**3. बौद्ध ग्रंथ:** बौद्ध ग्रन्थों में हर्यक वंश के शासकों और उनके कार्यों के बारे में जानकारी है।

**पुरातात्विक अभिलेख:**

**1. सोहगौरा अभिलेख:** इस अभिलेख में हर्यक वंश के शासकों के बारे में जानकारी है।

**2. हाथीगुंफ अभिलेख:** इस अभिलेख में हर्यक वंश के शासकों के बारे में जानकारी है।

**3. बाराबर अभिलेख:** इस अभिलेख में हर्यक वंश के शासकों के बारे में जानकारी है।

इन साहित्य और अभिलेखों से हमें हर्यक वंश के उत्पत्ति, उनके शासकों और उनके कार्यों के बारे में जानकारी मिलती है। ये साहित्य और अभिलेख मगध के इतिहास को समझने में बहुत महत्त्वपूर्ण हैं।

इनसे हमें पता चलता है कि हर्यक वंश के शासकों ने मगध में एक शक्तिशाली साम्राज्य की स्थापना की थी और उन्होंने बौद्ध धर्म को प्रसारित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी।

**शैशुनाग वंश के उत्पत्ति एवं राज विस्तार में निम्नलिखित राज्यों का योगदान रहा है, जिसका वर्णन संस्कृत साहित्य एवं अभिलेख से प्राप्त होता हैः**

**1. मगध:** शैशुनाग वंश के शासकों ने मगध को अपनी राजधानी बनाई थी।

**2. कोसल:** शैशुनाग वंश के शासकों ने कोसल पर विजय प्राप्त की थी।

**3. वत्स:** शैशुनाग वंश के शासकों ने वत्स पर विजय प्राप्त की थी।

**4. अवंति:** शैशुनाग वंश के शासकों ने अवंति पर विजय प्राप्त की थी।

**5. गांधार:** शैशुनाग वंश के शासकों ने गांधार पर विजय प्राप्त की थी।

**संस्कृत साहित्य:**

**1. महाभारत:** इसमें शैशुनाग वंश के शासकों के बारे में जानकारी है।

**2. पुराण:** इसमें शैशुनाग वंश के शासकों के बारे में जानकारी है।

**3. बौद्ध ग्रंथ:** इसमें शैशुनाग वंश के शासकों के बारे में जानकारी है।

**अभिलेख:**

**1. सोहगौरा अभिलेख:** इसमें शैशुनाग वंश के शासकों की जानकारी है।

**2. हाथीगुंफ अभिलेख:** इसमें शैशुनाग वंश के शासकों की जानकारी है।

**3. बाराबर अभिलेख:** इसमें शैशुनाग वंश के शासकों के बारे में जानकारी है।

इन साहित्य और अभिलेखों से हमें शैशुनाग वंश के उत्पत्ति, उनके शासकों, और उनके कार्यों के बारे में जानकारी मिलती है।

**मगध में नन्द वंश के इतिहास की जानकारी के लिए निम्नलिखित संस्कृत साहित्य एवं अभिलेख द्वारा इनके वंश और शासन की जानकारी प्राप्त होती है:**

**संस्कृत साहित्य:**

1. महाभारत: इसमें नंद वंश के शासकों के बारे में जानकारी है।
2. पुराण: इसमें नंद वंश के शासकों के बारे में जानकारी है।
3. बौद्ध ग्रंथ: इसमें नंद वंश के शासकों के बारे में जानकारी है।
4. जैन ग्रंथ: इसमें नंद वंश के शासकों के बारे में जानकारी है।
5. कामसूत्र: इसमें नंद वंश के शासकों के बारे में जानकारी है।

**अभिलेख:**

1. सोहगौरा अभिलेख: इसमें नंद वंश के शासकों के बारे में जानकारी है।
2. हाथीगुंफ अभिलेख: इसमें नंद वंश के शासकों के बारे में जानकारी है।
3. बाराबर अभिलेख: इसमें नंद वंश के शासकों के बारे में जानकारी है।

4. गुप्त अभिलेख: इसमें नंद वंश के शासकों के बारे में जानकारी है।

इन साहित्य और अभिलेखों से हमें नंद वंश की उत्पत्ति, उनके शासकों और उनके कार्यों के बारे में जानकारी मिलती है। ये साहित्य और अभिलेख मगध के इतिहास को समझने में बहुत महत्वपूर्ण हैं।

इनसे हमें पता चलता है कि नंद वंश के शासकों ने मगध में एक शक्तिशाली साम्राज्य की स्थापना की थी। उन्होंने बौद्ध धर्म को प्रसारित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी।

**नंद वंश की समाप्ति के विषय में संस्कृत साहित्य एवं अभीलेखीय प्रमाण:**

नंद वंश का अन्त चंद्रगुप्त मौर्य द्वारा किया गया था, जैसा कि संस्कृत साहित्य एवं अभिलेखों में वर्णित है:

**संस्कृत साहित्य:**

1. **महाभारत:** इसमें लिखा है कि चंद्रगुप्त मौर्य ने नंद वंश के अन्तिम शासक धनानन्द को पराजित किया था।

2. **पुराण:** इसमें लिखा है कि चंद्रगुप्त मौर्य ने नंद वंश के शासकों को पराजित किया था और मौर्य वंश की स्थापना की थी।

3. **बौद्ध ग्रन्थ:** इसमें लिखा है कि चंद्रगुप्त मौर्य ने नंद वंश के शासकों को पराजित किया था और बौद्ध धर्म को प्रसारित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी।

**अभिलेख:**

1. **सोहगौरा अभिलेख:** इसमें लिखा है कि चंद्रगुप्त मौर्य ने नंद वंश के शासकों को पराजित किया था और मौर्य वंश की स्थापना की थी।

2. **हाथीगुंफ अभिलेख:** इसमें लिखा है कि चंद्रगुप्त मौर्य ने नंद वंश के शासकों को पराजित किया था और बौद्ध धर्म को प्रसारित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी।

**3. मेगस्थनीज का अर्थशास्त्र:** इसमें लिखा है कि चंद्रगुप्त मौर्य ने नंद वंश के शासकों को पराजित किया था और मौर्य वंश की स्थापना की थी।

इन साहित्य और अभिलेखों से हमें पता चलता है कि नंद वंश का अन्त चंद्रगुप्त मौर्य द्वारा किया गया था और मौर्य वंश की स्थापना की गई थी।

**प्राचीन भारत का इतिहास विदेशी यात्रियों के यात्रा-विवरण जो कि संस्कृत भाषा में उल्लेखित है; जिसकी चर्चा अभिलेखों में भी प्राप्त होती हैः**

**1. मेगस्थनीज (यूनानी राजदूत):** उनका यात्रा विवरण 'अर्थशास्त्र' में उल्लेखित है, जिसमें मौर्य साम्राज्य के बारे में जानकारी है।

**2. फाह्यान (चीनी यात्री):** उनका यात्रा विवरण 'फाह्यान की यात्रा' में उल्लेखित है, जिसमें गुप्त साम्राज्य के बारे में जानकारी है।

**3. हुएन त्सांग (चीनी यात्री):** उनका यात्रा विवरण 'सी यू की' में उल्लेखित है, जिसमें हर्षवर्धन के साम्राज्य के बारे में जानकारी है।

**4. युगं च्वांग (चीनी यात्री):** उनका यात्रा विवरण 'युगं च्वांग की यात्रा' में उल्लेखित है, जिसमें भारत के बौद्ध धर्म के बारे में जानकारी है।

**अभिलेख:**

**1. सोहगौरा अभिलेख:** इसमें मेगस्थनीज के यात्रा विवरण का उल्लेख है।

**2. हाथीगुंफ अभिलेख:** इसमें फाह्यान के यात्रा विवरण का उल्लेख है।

**3. सांची अभिलेख:** इसमें हुएन त्सांग के यात्रा विवरण का उल्लेख है।

**4. नालंदा अभिलेख**: इसमें युगं च्वांग के यात्रा विवरण का उल्लेख है।

इन विदेशी यात्रियों के यात्रा-विवरणों और अभिलेखों से हमें प्राचीन भारत के इतिहास के बारे में जानकारी मिलती है।

# श्रीमद्भागवत महापुराण में निहित ''योगतत्व''

शोधार्थी, गोपाल कृष्ण
संस्कृत, छत्रपति शाहू जी महाराज विश्वविद्यालय कानपुर

**वेदोपनिषदां साराज्जाता भागवती कथा।**
**अत्युत्तमा ततो भाति पृथग्भूता फलाकृतिः।।**[1]

जैसा कि उक्त श्लोक में कहा गया है कि वेद, उपनिषद आदि समस्त धर्मग्रन्थों का जो सारतत्व के रूप में मूल विषय है वही श्रीमद्भागवत का व विषय है इसीलिये ऐसा कोई विषय नहीं है जिसका उल्लेख श्रीमद्भागवत में प्राप्त न होता हो।

योग का विषय उपनिषदों में वैदिक संहिताओं में प्रचुर मात्रा में प्राप्त होता है जहां इसके आठ अंग बताये गये हैं। श्रीमद्भागवत में भी इन्हीं योग के आठो अंगों का निरूपण किया गया है। भागवत के अष्टाङ्ग योग की यह विशेषता है कि वह स्वतन्त्र साधन रूप से उपस्थित किया गया है तथा अन्य साधन मार्गों का सहायक है। यद्यपि योग का ज्ञान के साथ कर्म के साथ बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध है किन्तु भक्ति के साथ योग की युति अत्यन्त विलक्षण है।

योग के निम्न आठ अंग हैं- यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान तथा समाधि। भागवत में यम तथा नियम का वर्णन एकादश स्कन्ध में उन्नीसवें अध्याय में प्राप्त होता है। यहाँ विशेषता यह है कि जहाँ सूत्रों में यम तथा नियम के पांच भेद बताये गये हैं वहीं श्रीमद्भागवत में इसके द्वादश भेद वर्णित हैं-

**अहिंसा सत्यमस्तेयमसंगो ह्रीरसंचयः।**
**आस्तिक्यं ब्रह्मचर्यं च मौनं स्थैर्यं क्षमाभयम्।।**

---

[1] श्रीमद्भागवत महात्म्य- 2.6, गीताप्रेस गोरखपुर

**शौचं जपस्तपो होमः श्रद्धाऽऽतिथ्यं मदर्चनम्।।**
**तीर्थाटनं परार्थेहा तुष्टिरार्य सेवनम्।**
**एते यमः सनियमा उभयोर्द्वादश स्मृताः।**
**पुंसामुपासितास्तात यथाकामं दुहन्ति हि।।**[1]

**द्वादश यम-** (1) अहिंसा (2) सत्य (3) अस्तेय (4) असङ्ग (5) ह्री (6) अस´चय (7) आस्तिक्य (8) ब्रह्मचर्य (9) मौन (10) स्थैर्य (10) क्षमा (12) अभय

**द्वादश नियम-** (1) शौच-बाह्य (2) आभयन्तर (3) जप (4) तप (5) होम (6) श्रद्धा (7) आतिथ्य (8) भगवदर्चन (9) तीर्थाटन (10) परार्थचेष्टा (10) संतोष (12) आचार्य सेवन

इन यमों में अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह पातंजल्य दर्शन में भी हैं शेष सात नवीन हैं। ठीक इसी प्रकार- शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय तथा ईश्वर प्रणिधान पातंजल्य दर्शन में हैं शेष नवीन है।

यम और नियम के अभ्यासोपरान्त साधक योग के तृतीय अंग को ग्रहण करता है।

**आसन-** श्रीमद्भागवत में योग के तृतीय अंग आसन का बहुत महत्व बताया है, कि आसन कहाँ और कैसा होना चाहिए-

**गृहात् प्रव्रजितो धीरः पुण्यतीर्थ जलाप्लुतः।**
**शुचै विविक्त आसीनो विधिवत् कल्पितासने।।**[2]

अर्थात् साधक को अत्यन्त धैर्य के साथ किसी पुण्यतीर्थ का आश्रय लेना चाहिये, क्योंकि साधक के लिये स्थान की पवित्रता अत्यन्त आवश्यक है। फिर वहाँ विधिपूर्वक आसन को लगाये, क्योंकि जबतक साधक का अपने आसन पर नियंत्रण नहीं होगा तबतक वह योग के मार्ग

---

[1] श्रीमद् भा. 11-19-33,34,35 गीताप्रेस गोरखपुर

[2] श्रीमद् भा. 2-1-16 गीताप्रेस गोरखपुर

पर आगे नहीं बढ़ पायेगा।

**प्राणायाम-** अष्टाङ्ग योग के क्रम में प्राणायाम् का चतुर्थ स्थान है। आसन पर विजय प्राप्त करने के बाद साधक प्राणायाम के माध्यम से प्राणवायु पर नियंत्रण प्राप्त करता है- जितासनो जितश्वासो जितसङ्गो जितेन्द्रियः।

भगवान् कपिल ने माता देवहूति को प्राणायाम के महत्व को बताते हुए कहा है-

**प्राणस्य शोधयेन्मार्गं पूरकुम्भकरेचकैः।**
**प्रतिकूलेन वा चित्तं यथा स्थिरमच॑ंचलम्।।**
**मनोऽचिरात्स्याद्विरजं जितश्वासस्य योगिनः।**
**वाय्वग्निभ्यां यथा लोहं ध्मातं त्यजति वै मलम्।।**[1]

अर्थात् हे माता साधक को आसन पर विजय प्राप्त करने के पश्चात पूरक, कुम्भक और रेचक के क्रम से अथवा इसके विपरीत रेचक, कुम्भक और पूरक के क्रम से प्राणमार्ग का शोधन करें, क्योंकि प्राणमार्ग के शोधन से ही चित्त में स्थिरता आती है, और फिर चित्त स्थिर हो जाने पर जैसे वायु और अग्नि के संयोग से तपा हुआ सोना अपने मल को त्यागकर और शुद्धता को प्राप्त कर लेता है। ठीक उसी प्रकार जो साधक, प्राणायाम् अभ्यास के द्वारा प्राणवायु को जीत लेता है, उसका मन स्थिरता को प्राप्त करते हुए बहुत शीघ्र शुद्ध हो जाता है।

**प्रत्याहार-** प्राणायाम सिद्ध होने के पश्चात योग का पांचवां अंग प्रारम्भ होता है। इसमें साधक के द्वारा अपने मन को वश में करते हुए बुद्धि की सहायता से इन्द्रियों को विषयों से खींचकर आत्मस्वरूप में स्थिर करना होता है। प्रत्यावर्तन की यह क्रिया प्रत्याहार कहलाती है। श्रीमद्भागवत के एकादश स्कन्ध में इसका वर्णन् प्राप्त होता है-

**इन्द्रियाणिन्द्रियार्थेभ्यो मनसाऽऽकृष्य तन्मनः।**

---

[1] श्रीमद् भा. 3-28-9,10 गीताप्रेस गोरखपुर

**बुद्धया सारथिना धीरः प्रणयेन्मयि सर्वतः।।**
**तत् सर्वव्यापकं चित्तमाकृष्यैकत्र धारयेत्।**
**नान्यानि चिन्तयेद् भूयः सुस्मितं भावयेन्मुखम्।।**[1]

श्री भगवान् ने यहां पर अपने प्रिय सखा उद्धव जी को बताया है कि हे उद्धव साधक को चाहिए कि मन के द्वारा इन्द्रियों को उनके विषयों से प्रत्यावर्तित कर ले और बुद्धि की सहायता से मुझ में लगा दे। और स्थूल के माध्यम से सूक्ष्म को ग्रहण करते हुए मेरे से अतिरिक्त अन्य किसी का ध्यान न करें।

**धारणा-** यह योग का छठवाँ अंग है। इसका वर्णन भागवत के द्वितीय स्कन्ध में प्राप्त होता है, जहां धारणा को स्थूल और सूक्ष्म के भेद से दो प्रकार का बताया गया है-

**आण्डकोशे शरीरेऽस्मिन् सप्तावरणसंयुते।**
**वैराजः पुरुषो योऽसो भगवान् धारणाश्रयः।।**[2]

अर्थात् यह जो ब्रह्माण्ड शरीर है वह सात आवरणों जल, अग्नि, वायु, आकाश, अहंकार, महत्त्व और प्रकृति से घिरा हुआ है, और इसमें चैतन्य स्वरूप जो पुरुष विद्यमान है, उसी की धारणा की जाती है और वही एकमात्र धारणा के आश्रय हैं। यथा-

**पातालमेतस्य हि पादमूलं पठन्ति पाष्णिप्रपदे रसातलम्।**
**महातलं विश्वसृजोऽथ गुल्फौ तलातलं वै पुरुषस्य जङ्घे।।**[3]

पाताल लोक उस विराट् पुरुष के तलवे हैं, विराट् पुरुष की एड़ियां और पंजे रसातल हैं। दोनों गुल्फ महातल हैं, विराट के पिंड ही तलातल हैं। ऐसे ही विभिन्न लोकों की धारणा उस विराट् पुरुष के श्री अंगों में की जाती है।

---

[1] श्रीमद् भा. 11-14-42,43 गीताप्रेस गोरखपुर

[2] श्रीमद् भा. २-1-25 गीताप्रेस गोरखपुर

[3] श्रीमद् भा. २-1.26 गीताप्रेस गोरखपुर

**ध्यान-** अष्टाङ्ग, योग में सातवें क्रम पर ध्यान का स्थान आता है। ध्यान विधि का वर्णन भागवत में अनेक स्थानों पर प्रचुर मात्रा में प्राप्त होता है। भगवान् ने उद्धव जी को ध्यान के स्वरूप का निरूपण करते हुए कहा है कि हे उद्धव इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करने के बाद साधक को अपने हृदयस्थल पर कमलनालगत पतले सूत के समान ऊँकार का ध्यान करना चाहिये, फिर प्राणवायु के द्वारा उसे ऊपर ले जाये तथा उसमे घण्टानाद के समान स्वर को स्थिर करें। यह क्रम आबाध गति से चलना चाहिये ।

**हृद्याविच्छिन्नमोंकारं घण्टानादं विसोर्णवत्।**
**प्राणेनोदीर्य तत्राथ पुनः संवेशयेत् स्वरम्।।**[1]

भगवान् कपिल ने माता देवहूति को ध्यान का स्वरूप और विधि निरुपण करते हुए कहा है कि हे माता जब साधक को भलीभाँति यह विश्वास हो जाये कि अब उसका चित्त सर्वतोभावेन भगवान् के श्री विग्रह में स्थिर हो गया है तब उसे चाहिये कि सम्पूर्ण श्री विग्रह में लगे हुए अपने चित्त को भगवान के किसी एक अंग में स्थिर करें, और इस प्रकार का ध्यान करे-

**सञ्चिन्तयेद्भगवतश्चरणारविन्दं**
**वज्राङ्कुशध्वजसरोरुहलाञ्छनाढ्यम्।**
**उत्तुङ्गरक्तविलसन्नखचक्रवाल-**
**ज्योत्स्नाभिराहतमहद्धृदयान्धकारम्।।**[2]

अर्थात् सबसे पहले साधक को भगवान् के चरण कमलों का ध्यान करना चाहिये जिनमे वज्र, अंकुश, ध्वजा, कमल आदि के मंगलमय चिन्ह शोभायमान हो रहे हैं। उनके उभरे हुए लाल- लाल अत्यन्त शोभामय नखचन्द्र मण्डल की चन्द्रिका से ध्यान करने वालो के हृदय से अज्ञान रूप घोर अन्धकार को नष्ट कर देते हैं।

---

[1] श्रीमद् भा. 11-14-34 गीताप्रेस गोरखपुर

[2] श्रीमद् भा. 3 - 28-21 गीताप्रेस गोरखपुर

**समाधि-** योग की पूर्णता का नाम ही समाधि है। इसमें जीव और ब्रह्म में एकरूपता आ जाती है। ज्ञाता और ज्ञेय का भेद समाप्त हो जाता है। भागवत के तृतीय स्कन्ध में इसका वर्णन प्राप्त होता है-

**मुक्ताश्रयं यर्हि निर्विषयं विरक्तं निर्वाणमृच्छति मनः सहसा यथार्चिः।**
**आत्मानमत्र पुरुषोऽव्यवधानमेक मन्वीक्षते प्रतिनिवृत्तगुणप्रवाहः।।**[1]

अर्थात् ध्यान की परमावस्था ही समाधि है। जैसे तेल आदि के चुक जाने पर दीपक की लौ अपने कारण तेज तत्व में लीन हो जाती है, ठीक वैसे ही अपने आश्रय, विषय और राग से रहित होकर मन भगवदाकार हो जाता है, और उस अवस्था में यह जीव समस्त उपाधियों से निवृत्त हो ध्याता-ध्येय आदि विभाग से रहित होकर अखण्ड परमात्म तत्व का अनुभव करने लगता है। यही समाधि अवस्था है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि श्रीमद्भागवत में निहित योगतत्व अत्यन्त सारगर्भित है। जिसका ध्येय एकमात्र परमात्मा की प्राप्ति है।

---

[1] श्रीमद् भा. 3 - 28-35 गीताप्रेस गोरखपुर

# केरलीयचम्पूप्रबन्धानां नाट्यनिदेशनकौशलम्

Dr. Justin P G, Asst. Professor
Little Flower College, Guruvayoor
University of Calicut, Kerala India

**पदकुञ्चिका(Keywords):**
चम्पू, चम्पूप्रबन्धः, 'चाक्यार्कूत्त् कलारूपः, रङ्गमञ्चसाफल्यम्, मनोधर्माभिनयः, विदूषकः, अनूत्प्रेक्ष्यम्

## आमुखम्(Introduction):

संस्कृतभाषा भारतस्य संस्कारमुखे विलसमाना विशेषगुणशालिनी देवी भवति। भारतीयसंस्कारस्य अद्वितीयवरासनप्रतिष्ठा अनया भाषया एव सिद्धा। अत एव इतरासां भाषाणां मातृकल्पतां संस्कृते कल्पयन्ति विद्वांसः। भारतस्य सकलविधमण्डलेषु शासन-साहित्य-विनोदादिषु संस्कृतस्य योगदानमतुलमद्वितीयञ्च वर्तते। साहित्यमण्डलस्य विविधता भारतीयानां समेषामभिमानप्रदा एव। संस्कृतं द्विधा विभक्तं वैदिकं लौकिकञ्च। तत्र वैदिकं ऋग्वेदात् आवेदाङ्गं वर्तते। तत्र रामायणादारभ्य लौकिकमनुस्यूतं प्रवर्तते। लौकिकं विविधैः कृतितल्लजैः सुशोभितं दृश्यते।

## संस्कृतसाहित्यवर्धने केरलस्य योगदानम्(The contribution of Kerala to Sanskrit Literature):

संस्कृतसाहित्यस्य परिपोषणे आभारतं श्रमः विद्वद्भिः अकारि। अर्थात् प्रत्येकं प्रादेशिकभूभागः च संस्कृतभाषायां काव्यानि रचयितुं अनुकूलः आसीत्। केरलराज्यमपि असंख्याः कृतीः संस्कृतसाहित्यपोषणाय अदात्। केरलीयकवीनां नामानि साहित्यमण्डले सततं शोभन्ते। श्रीशङ्कराचार्यः, के.एन्.एषुत्तच्चन्, मेल्पुत्तूर्-नारायणभट्टपादः, शक्तिभद्रः, स्वातितिरुनाल्-प्रभृतयः प्रतिभावन्तः संस्कृतपण्डिताः केरलस्य साहित्यपरिपोषकाः आसन्। तेषां रचनाभिः केरलीयशैली अपि

संस्कृतसाहित्यस्य परिचिता अस्ति। मुक्तकानि, लघुकाव्यानि, महाकाव्यानि, खण्डकाव्यानि, स्तोत्रकाव्यानि, चम्पूकाव्यानि, गद्यकाव्यानि, रूपकाणि इत्यादिषु काव्यप्रभेदेषु च केरलीयकवीश्वराणां योगदानं वर्तत एव।

**केरलीयचम्पूप्रबन्धानां समीक्षणम्(A brief overview on Kerala Champu Prabandhas):**

संस्कृतसाहित्यस्य विविधशाखासु पश्चाद्वर्तिनी नूतनी च काव्यशाखा भवति चम्पूकाव्यशाखा। आचार्यदण्डिनः काव्यादर्शाख्ये अलङ्कारग्रन्थे गद्यपद्यमयी काचित् चम्पूरित्यभिधीयते' इति तल्लक्षणं विदत्तम्।[1] भारतस्य विभिन्नेषु प्रदेशेषु कविभिः चम्पूकाव्यानां परिपोषणम् अकारि। किन्तु चतुर्दश शतकस्य पूर्वार्धे एव केरलेषु चम्पूकाव्यानां विकासः यथेच्छं समजनि।

केरलेषु तु चम्पूकाव्यस्य स्थानं विभिन्नम् आसीत्। दृश्यकलापरम्परायाम् अतिप्रचारं प्राप्तवती काचन कला आसीत् 'चाक्यार्कूत्त् अथवा प्रबन्धंकूत्त्' इति। कूत्त् इति पदस्य नृत्तं, विनोदः, नाटकम् इत्यादि अर्थाः सन्ति। कूर्द् इति धातोः निष्पन्नं कूर्दनं इति पदम्। तस्मादेव कूत्त् इति मलयालभाषाशब्दस्य निष्पत्तिः। कूटियाट्टकलारूपे विदूषकस्य वेषं कुर्वता नटेन हास्यरसप्रधानेन संभाषणेन आस्वादकेषु धर्मबोधम् उत्पादयितुं शक्यते । विदूषकस्य हास्यरसाभिनयं सर्वे इच्छन्ति च। अत एव नायकादपि विदूषकस्य प्राधान्यं कूटियाट्टकलारूपे समापन्नम्। पश्चात् स्वतन्त्रकलारूपत्वेन परिणतं कूत्त् कलारूपं विदूषककूत्त् इति नाम्ना ख्यातिं प्राप। पौराणिकः सूतः इति सङ्कल्पे विदूषकवेषं धृत्वा नर्मपरिहासोवचोभिः चाक्यार् जनेन (नटेन) क्रियमाणं पुराणकथाकथनं भवति चाक्यार्कूत्त्। अस्य कलारूपस्य साहित्यं प्रबन्धरूपेण कथ्यते। मेल्पुत्तूर् नाराणभट्टपादः, अश्वतितिरून्नाल्, एटवट्टिक्काव् नम्पूतिरि इत्येतेषां प्रमुखानां प्रबन्धाः एव चाक्यार्जनैः कलारूपप्रकटनाय अधिकतया आश्रीताः।

---

[1] का.द./१.३१.पृ.सं.२९

प्रबन्धो नाम प्रकर्षेण बन्धः इति व्युत्पतिः। बन्ध इत्यस्य काव्यमिति कुन्तकः। राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानेन प्रकाशिते शब्दकल्पद्रुमे तृतीयकाण्डे प्रबन्धशब्दस्य व्युत्पत्तिः दत्ता। यत् प्रबध्यते इति प्रबन्धः। प्र+ बन्ध+ भावे घञ् काव्यादिग्रथनम् इति।[1] एषः काव्यविशेषः चम्पूप्रबन्धः इति सामान्येन कथ्यते। सूष्मदृष्टया चम्पूकाव्य-चम्पूप्रबन्धयोः भेदः वर्तते। चम्पूकाव्यम् केवलं वर्णनापरं काव्यं भवति । प्रबन्धस्तु अभिनयपरा वर्णना भवति।

महाभारतकथां रामायमकथां भागवतकथां च स्वांशीकृत्य भक्तिप्रधानानां अनेकानां प्रबन्धानां रचनामकरोत् भट्टपादः। नाटकेषु वेषभूषादीनां साह्येन बहुभिः नटैः नीयमानं कथावस्तु तादृशावलम्बानि विना केवलं वाचिकाभिनयेन भावहावादिभिः एकेन चाक्यार्-जनेन सहृदयानां पुरतः प्रदर्श्यते इत्यस्मात् प्रबन्धकर्ता तत्काव्यस्य प्रकटने नाटकीयतासंघटने च महान् श्रद्धावान् भवेत्। तादृशप्रबन्धकर्तृषु कविः मेल्पुत्तूर् नारायणभट्टपादः प्रथमगणनीयः आसीत्। भट्टपादः स्वनिर्मितप्रबन्धैरेव नाटकापेक्षयाऽपि प्रबन्धाः नाट्यनिदेशनकौशलप्रकाशने नितराम् अनुकूलाः भवन्तीति निश्चप्रचं प्रकटीचकार। तस्य प्रबन्धाः एव अत्र प्रमाणानि भवन्ति। चाक्यार्कूत्त् कलारूपस्य परमप्रयोजनत्वेन परमपुरुषार्थप्राप्तिं कल्पितवान् प्रबन्धकर्ता भवति मेल्पुत्तूर् नारायणभट्टपादः। कथाश्रवणम्, आस्वादनम्, सामूहिकदोषाणां विमर्शनम् इत्यादि प्रयोजनेभ्यः परमभूतं प्रयोजनं प्रबन्धद्वारा भगवत्पादविलय एवेति स्वप्रबन्धरचनया प्रतिष्ठापितवान् अयं भट्टपादः। अत एव भट्टपादप्रबन्धानां स्थानं केरलीयचम्पूसाहित्ये नितराम् अद्वितीयम् अतुलं च वर्तते।

अवस्थानुकृतिर्नाट्यम् इति दशरूपककारस्य लक्षणनिर्देशवत् प्रबन्धेष्वपि कथापात्राणामवस्थाः चतुर्विधैः अभिनयैः नटः अवतारयति। रंगमञ्चनज्ञानं विना एतेषां न्यसनमपहास्यं स्यात्। तत्र बहुवारं विजयी

---

[1] शब्दकल्पद्रुमः /पृ.सं.२७७

अभवत् भट्टपादः इत्यस्य दृष्टान्ताः भवन्ति तस्य असंख्याः प्रसिद्धाः प्रबन्धाः। कूत्त् कलारूपस्य साहित्यविभागे यदा नारायणभट्टस्य चम्पूकाव्यानि समायातानि तदा भाषाचम्पूकाव्यानि अस्तंगतानि अभवन्। नारायणभट्टस्य साहित्यलाघवं आस्वादकेषु तस्य जनकीयतां प्रसारयत्। एकविंशतिशतकेऽपि तेषां प्रबन्धानां प्रदर्शनं प्रचरणं चानुवर्तत एव।

**चम्पूप्रबन्धेषु इतिहासान्तर्गतानां कथानाम् अनूत्प्रेक्ष्यम्।(Adaptation of Epics to Prabandha Literature):**

कवयः पौराणिकग्रन्थेभ्यः इतिवृत्तं स्वीकृत्य स्वकविभावनया नूतनम् आविष्कारं कृतवन्तः सन्ति। उक्तस्य विषयस्य भिन्नप्रकारेण प्रस्तुतिः अनूत्प्रेक्ष्यम्।

**इतिवृत्तवशायातां त्यक्त्वाननुगुणस्थितिम्**
**उत्प्रेक्ष्याप्यन्तराभीष्टरसोचितकथोन्नयः।**[1]

प्रस्तुतस्य रसस्य उन्नयनाय उचितान् सन्दर्भान् उत्प्रेक्ष्य कविभिः इतिवृत्तपोषणं कर्तुं शक्यते इति ध्वन्यालोककारेण प्रोक्तमस्ति। तद्वत् प्रबन्धसाहित्येऽपि नैकाः कथाः कवयः उत्प्रेक्ष्यप्रतिभया मनोरञ्जिकाः कारयामासुः। अनूत्प्रेक्ष्यस्य उत्तमदृष्टान्ताः भवन्ति नारायणभट्टपादेन रचिताः चम्पूप्रबन्धाः।

**चम्पूप्रबन्धानां नाट्यनिदेशनकौशलम् अथवा रङ्गमञ्चसाफल्यम्(The Art of Performing Skills in Champuprabandhas of Kerala):**

प्रबन्धाः मञ्चे दर्शयितुं योग्याः भवन्ति। रङ्गक्रियासाफल्यमिति मुख्योद्देश्येन रच्यमाणे प्रबन्धे नाटकीयतायै तथा तद्गतानुभवाय च प्राधान्यं विद्यते। एते प्रबन्धाः श्रव्यकाव्ये वा दृश्यकाव्ये वा अन्तर्भवन्ति इति जिज्ञासायां दृश्यकाव्येष्वेव इति स्पष्टमुच्यते। प्रबन्धाः मञ्चे अभिनयं कर्तुं योग्याः भवन्ति। केरलेषु विशिष्य देवालयकलारूपाणां गणेषु कूत्त्,

[1] ध्वन्यालोकः

कूट्टियाट्टम् इत्यादीनि नाटककलारूपवत् प्राचाल्यमानानि कलारूपाणि आसन्। कथाकथनमेव परमं लक्ष्यम्। नटेन कथायाः सर्वाङ्गानि अभिनीय प्रदर्श्यन्ते। तद्वारा सहृदयेषु कथायाः दृश्यं निर्वर्णयितुं शक्यते। दशरूपकेषु अष्टादशोपरूपकेषु कस्मिन् प्रबन्धाभिनयमन्तर्भवतीति स्पष्टं नास्ति। भाणरूपकेण सह अस्य सादृश्यं वर्तते। अत्र नाट्यनिदेशनकौशले प्रसिद्धाः चम्पूप्रबन्धान्तर्गताः प्रयोगवैचित्र्याः स्थालीपुलाकन्यायेन विचार्यन्ते।

**दूतवाक्यप्रबन्धः**

कथापात्रस्य अवस्थानुगुणं पदविन्यासक्रमे च दत्तावधानः ग्रन्थकर्ता दूतवाक्यप्रबन्धे दूतस्य कृष्णस्यागमनमधिकृत्य दुर्योधनस्योक्तिं एवं वर्णितवान्-

**हे भूपाः! शृणुतादरादुपगतो दूतः पृथाजन्मनां**
**मायामोहितमूढलोककलितप्रौढिः स गोपालकः।**
**प्रत्युत्थास्यति योऽस्य दास्यति स मे दण्ड्यः सुवर्णं मितं**
**भारद्वादशकेन शासननिराकर्ता जगत्यामिति।।**[1]

अत्र मायामोहित....., गोपालक, पृथाजन्मनां....., इत्याद्याः शब्दाः महात्मानं कृष्णं तुच्छीकृत्य महत्त्वापसरणाय कविना दुर्योधनमुखात् प्रकटीकृतम्। अनेन पदप्रयोगेन नटः दर्योधनस्य मनोविकारं कृष्णोपरि तस्य दुश्चिन्तनं च सम्यक् निरूपयितुं शक्तः सन् सहृदयानां हृदये अत्यन्तं निपुणतया द्योतयितुं समर्थः भवतीति चक्ष्यार्कूत् दृष्ट्वा अवगम्यते।

**पाञ्चालीस्वयंवरप्रबन्धः**

महाभारते आदिपर्वणि चैत्ररथोपपर्वणि स्वयंवरोपपर्वणि च प्रबन्धस्याधाराभूता कथा व्यासेन वर्णिता अस्ति। महाभारते विस्तरेण प्रतिपादिताः कथाभागाः भट्टपादेन नाट्यविधानाय पूर्वापूर्वक्रमं विहाय सज्जीकृताः सन्ति। तत्र श्लेषप्रयोगः यथा -

**अत्यद्भुतमिदं मन्ये यदसौ मगधाधिपः।**

---

[1] दू.वा.प्र./श्लो.सं.७१

**स्त्रीहेतुं चापमाश्रित्याप्यदन्तत्वमुपेयिवान् ॥इति ॥**[1]

जरासन्धस्य धनुरारोपणमेव अत्र वर्ण्यते। अत्र श्लेषार्थेन अर्थद्वयं प्रतीयते। मगधाधिपः जरासन्धः द्रौपदीनिमित्तं धनुरासाद्य भुवि पपात। तदानीं तस्य दन्ताः गताः। अतः सः अदन्तत्वं प्राप्तवान् इति एकोऽर्थः। द्वितीयस्तु व्याकरणविषयकः। स्त्रीप्रत्ययः भवति चाप्। चापे कृते स्त्रीलिङ्गे आकारान्तः भवतीति नियमः। किन्तु अत्र ह्रस्व-अकारेण अदन्तत्वमेव अभवदिति श्लेषप्रयोगः। अत्र हास्यरसानुगुणमेव अयं प्रयोगः विहितः। अत्र मगधाधिपः इत्येव अकारान्तं पदम्। इयं वर्णना चाक्यार्जनेभ्यः कलाप्रकटनावसरे सहृदयानाम् रसोत्कर्षाय अत्युत्तमम् भवति।

**राजसूयप्रबन्धः**

राजसूयप्रबन्धस्य आधारभूता कथा महाभारते सभापर्वणि दृश्यते। श्रीकृष्णभक्तिरेव प्रधानतया कविना प्रतिपाद्यते। यज्ञमध्ये श्रीकृष्णं निन्दतः शिशुपालस्य स्तुतिपराध्यवसायाः निन्दावाचः अतीव भक्तिनिर्भरतया एव भट्टपादेन प्रत्यपादि।

**जात्या वा कर्मणा वापि च सकलगुणैर्वर्जितो मुख्यवृत्ते-**
**र्भ्रष्टो वाचापि वाच्यो न भवति सुधियां किं पुनर्लक्षणीयः।**
**निर्मर्यादं सुखं स्वं वहति परमसावप्यनेनैक्यमानी**
**नश्यत्कर्माधिकारो भवति कथमयं निर्गुणः पूजनीयः ॥**[2]

ब्राह्मणादिजातिभ्यः वर्णाश्रमादिधर्मेभ्यः सकलगुणविहीनः प्रधानकर्मभ्रष्टः कृष्णः वचोभिः वक्तुमपि योग्यः नास्ति। परं द्रष्टुं योग्यो वा नास्ति। मर्यादां विना सुखं अनुभवता तेन सह बन्धुत्वं इच्छतां कर्माधिकारः नश्यति। गुणहीनः कथं वा पूजनीयः भवति? इति शिशुपालस्य उक्तेः

---

[1] प्र.म./पा.स्व.प्र./श्लो.सं.१००./ पृ.सं.७४

[2] प्र.म/.रा.सू./श्लो.सं.९२/ पृ.सं.२०

निन्दापरः अर्थः। एभिः पदैरेव अस्मात् श्लोकात् स्तुतिपरः अर्थश्च व्यङ्ग्यते। तत्तु-अयं कृष्णः जातिकर्मगुणेभ्यः विमुक्तः। शब्दवृत्याः विलक्षणः, सुधियामपि वाच्यागोचरः मनोतीतः लक्षणगम्यः, ब्रह्मभीतः कर्मपाशविनिर्मुक्तः निर्गुणः च भवति। अतः अयं स्तुत्यो वा अर्च्यः न भवति। अयं साक्षात् ब्रह्मस्वरूपः एव इति।

इत्येवं बहुत्र श्लोकेषु ईदृशं उभयार्थत्वं दृश्यते। समे काले स्तुतिः निन्दा च एकेन पद्येन प्रतिपाद्यते। असामान्यकवनकौशलवतः एव इदं साध्यं भवतीत्यत्र सन्देहप्रतिपत्तिः नास्ति।

उक्तिप्रत्युक्तीनां निन्दावचनानां च सृष्टौ कवेः प्रतिभा द्रष्टुं शक्यते।

**धिक् पाण्डुपुत्रचरितं स्थविरप्रमाणं**
**बालप्रमाणमपि कष्टमहो विनष्टम्।**
**हे धर्मज, द्रुपदजामपि पृच्छ कार्ये**
**नारीप्रमाणमपि तेऽस्त्विह राज्यतन्त्रम्।।[1]इति।।**

श्रीकृष्णः अग्र्यपूजार्हः निश्चितः इति शिशुपालं प्रति धर्मपुत्रः उक्तवान्। तत्समये शिशुपालस्य निन्दोक्तिरेव एतत्। एवं राजसूये श्रीकृष्णस्य अग्र्यपूजासमये शिशुपाले समुद्भूतान् भावभेदान् च एवं वर्ण्यन्ते। यथा -'क्रमोत्क्षुभितरूक्षतरामर्षोत्कर्षभृशतरधर्षितात्मा हरित्राकृतविचित्रमणिप्रकाण्डैः सह प्रकामलोहिनीं प्रभां नयनाभ्यामुद्वमन् नृपकुञ्जरोन्मुक्तदानतोयैः समं समुन्मिषितघर्मजलोर्मिवर्मितमूर्तिरखिलजनहर्षोल्लासहासैः सह गम्भीराट्टहा समुद्धटयन्[2]..... इत्यारभ्यमाणा वर्णना चाक्यार्जनेभ्यः कलाप्रकटनावसरे सहृदयानाम् रसोत्कर्षाय अत्युत्तमम् भवति।

**किरातम्:**

पाण्डवानां वनवासकाले प्रवृत्तार्जुनकिरातयोः कथा एव

---

[1] प्र.म./रा.सू.प्र./श्लो.सं.९३./पृ.सं.२१

[2] रा.सू.प्र./श्लो.सं.६३

प्रबन्धस्यास्य प्रतिपाद्यम्। व्यासमुनिना उपदिष्टः अर्जुनः पाशुपतास्त्रस्य लब्धये हिमवतः समीपप्रदेशं तपः चकार।दुर्योधनस्य प्रेरणया मूकासुरः वराहरूपेण तत्रागतः। नायं वराहः कश्चनासुर एवेति विज्ञाय अर्जुनः तस्योपरि शरं प्रयुक्तवान्। समे काले किरातवेषधारी शिवश्च शरमयच्छत्। वराहस्य अधिकारविषये किरातार्जुनयोर्मध्ये विवादः प्रवृत्तः। अर्जुन! न त्वं समर्थः इत्येवं किरातेन आक्षिप्तः अर्जुनः कोपान्धेन योद्धुं आरभत। किरातः अर्जुनस्य वंशपरम्परामपि परिहसितवान्।

**मध्येराजसभं हठेन भवतामग्रे ननु प्रेयसीं**
**पत्नीं हन्तः! नमः शिवाय! रिपुभिस्तावत् तथा क्लेशिताम्।**
**नेत्राभ्यामवलोकयन् यदभवस्तूष्णीं ततो ज्ञायते**
**विक्रान्तिस्तव तादृशो यदि यशस्त्रैलोक्यमाक्रामति।।[1]इति।।**

एवम् अर्जुनस्य पराक्रमस्योपरि परिहासवर्षम् अकरोत्। तदानीं कोपान्धः अर्जुनः भगवन्तं शिवं अस्तवीत्। किरातः अर्जुनस्य क्रोधं संवर्धयितुम् शिवमपि निन्दति। यथा-

**तिष्ठत्वेतदशेषमेव बहुमन्तव्यं पुनस्तावकम्**
**वृत्तं वेद्मि विशिष्टसेव्यमुचितं बुद्धा यदासेवसे।**
**छेत्ता ब्रह्मशिरः श्मशानवसतिर्दक्षाध्वरध्वंसको**
**भूतप्रेतपतिः स पश्यतु भवान् केनापरेणार्च्यते।।[2]इति।।**

परमेश्वरनिन्दनम् असहमानः अर्जुनः घोरं युद्धम् अकरोत्। किरातार्जुनयोः परस्परयुद्धस्य भूमिकां कविः अतीव हृद्येन निदेशयति। केवलं वराहस्य स्वामित्वविषये नास्ति मतभेदः ,अपि तु तयोः वाचोवाचः कौरवस्य वंशपरम्परायाः आक्षेपकथनं यावत् चुम्बति। तत्र-

**तद्वंश्यस्य च शन्तनोर्नचरितं केनेह विज्ञायते**
**यस्तां दाशपतेरुपायत सुतां कामातुरः पुंश्चलीम्।**

---

[1] प्र.म./किरा.प्र./श्लो.सं.३२./पृ.सं.१३३

[2] प्र.म./किरा.प्र./श्लो.सं.३३./पृ.सं.१३३

**तत्पुत्रस्य सुतं च गोलकममुं जानामि पाण्डुं पुन-**
**र्युष्मान् पञ्च तदात्मजांश्च सुतरां जानामि कुण्डानिमान् ॥[1]**

अत्र पाण्डुपुत्रस्य कोपोद्दीपनाय मायाकिरातेन कथ्यमानाः आक्षेपाः वर्णिताः। पाण्डवानामस्तित्वमपि अत्र परिपृच्छ्यते परमेश्वरेण। एतादृशप्रयोगाः केवलं प्रबन्धे एव द्रष्टुं शक्यन्ते। वर्तिष्यमाणाय युद्धाय उचिता पृष्ठभूमिः आवश्यकीति नारायणभट्टपादस्य मतिः अचुम्बितकारणानां मार्गणेन एतादृशवाक्युद्धम् तयोः मध्ये संकलितवती। चाक्यारोक्त्या आस्वादकेषु तद्भावं प्रकटयितुम् अवसरः जायते। विशेषपदप्रयोगाः अपि सन्दर्भेऽस्मिन् कविना प्रयुक्ताः सन्ति।

**शूर्पणखाप्रलापः**

शूर्पणखायाः नासिकाविच्छेदात् पश्चात् सा रावणं रामलक्ष्मणवृत्तान्तं श्रावयति। तत्र नासिकारहितया शूर्पणखया अनुनासिकवर्णान् निवार्य कथ्यमाना उक्तिः एव प्रबन्धस्य प्रतिपाद्यः। प्रबन्धः एवं आरभ्यते।

**आक्रन्दकम्पितसभं पतिता प्रसर्पद्रक्तानतिस्फुटविकृत्तकरालगात्री।**
**साभ्रान्तयातुगणमध्यगमग्रजं सा नासाक्षयान्निरनुनासिकमेवमूचे'।।**

कालिदासभासादीनां रूपकेषु यथा सूत्रधारः कथासम्दर्भ संसूच्य कथामुखं प्रति सहृदयान् आक्षिपति तथा अत्र कथायाः पृष्ठभूमिः एकेन श्लेकेन सूच्यते। परं शूर्पणखा किं किं करोति अथवा शूर्पणखायाः वेषं कुर्वता नटेन किमभिनेयमिति निर्देशः अत्र क्रियते। आक्रन्दति, सभायां पतति, प्रसर्पति इत्यादि आङ्गिकाभिनेयांशाः रक्तानतिस्फुटविकृत्तकरालगात्रमित्यादि निर्देशेन आहार्यादि अभिनेयांशाः, निरनुनासिकमूचे इत्यनेन वाचिकाभिनेयांशाः, सा अग्रजमूचे इत्यादिना सन्दर्भः च कविना विवक्षिताः । नाटकेषु गद्यांशेन संसूच्यमानाः सङ्केताः श्लोकरूपेण सुस्पष्टमतिसरलं निर्दिष्टत्वादेव कवेः रचनापाटवमवगन्तुं

[1] प्र.म /किरा.प्र /श्लो.सं ३०/ पृ.सं.१३३

शक्यते। अस्मात् श्लोकादेव चम्पूप्रबन्धानां नाट्यनिदेशनसामर्थ्य तथा कथायाः रंगमञ्चीकरणे कवेः अवधानं च स्पष्टं भवति । अत्र शूर्पणखायाःउक्ति एवं वर्णितवान्-

**'हा हा! राक्षसराज! दुष्परिभवग्रस्तस्य धिक् ते भुजा**
**विद्युज्जिह्वविपत्तिरेव सुकरा क्षुद्रप्रताप! त्वया।**
**ध्वस्तापत्रप! पश्य पश्य सकलैश्चक्षुभिरेतादृशी**
**जाता कस्यचिदेव तापसशिशोः शस्त्रात् तवैव स्वसा।।**

अत्र एकोऽपि अनुनासिकः वर्णः नास्ति । नासिकायाः नाशात् तद्गतान् वर्णान् उच्चारयितुं असमर्थायै शूर्पणखायै तदनुगुणं वर्णविन्यासः भट्टपादेन कृतः।

एवं समेषु केरलीयप्रवन्धेषु नाट्यनिदेशान् प्रदाय एव कथाप्रस्तुतीकरणं क्रयते। एवं एतादृशाः प्रबन्धान्तर्गताः वर्णनाः चाक्यार् जनेभ्यः कलाप्रकटनावसरे सहृदयान् रसोत्कर्षाय अत्युत्तमं भवति। अत्यद्भुतं उत्कृष्टं च साहित्यरसानुभवं प्रदाय जनान् काव्यकलां प्रति आकर्षयति कूत्त् कलारूपम्। प्रबन्धाः एव कूत्त् कलारूपस्य प्राणभूताः। एवं प्रबन्धैः कलारूपमिदं विकासं सारस्यं च प्राप्य परमं पदं चम्बयन् रराजुः। केरलीयचम्पूप्रबन्धानां नाट्यनिदेशनकौशलमिति लघुप्रबन्धः अत्र सुसम्पन्नः समभवत्। गुणदोषविवेकविचाराय विदुषां समक्षं समर्प्यते।

## सहायकग्रन्था( References):-


१. केरलसाहित्यचरित्रम्, उल्लूर्, एस्, परम्श्वरय्यर्, केरलसर्वकलाशाला, तिरुवनन्तपुरम्, १९९०
२. केरलीयसंस्कृतसाहित्यचरित्रम्, वटक्कुम्कूर् राजराजवर्मा, केरलसाहित्यअक्कादमी, तृश्शूर्, १९९०
३. काव्यादर्शः, दण्डी, विद्याभवन् संस्कृत सीरीस्, वाराणसी, १९७२
४. प्रबन्धमञ्जरी, डा. एन् पी उण्णी, राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्, नवदिल्ली, १९९८
५. शब्दकल्पद्रुमः, राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्, नवदिल्ली, १९८८
६. Contribution of Kerala to Sanskrit Literature, Kunjunni Raja, Madras University Sanskrit Series, 1958

७. Melpattur Narayana Bhatta's Contribution to Sanskrit Literature, C.Muraleedharan & Dharmaraj, Adat, New Bharateeya Book Corporation, Delhi, 2012
८. Studies in Champu Literature, Bharateeya Vidya Prakasan, Delhi,1992

# विश्वबन्धुत्व का सोपानः संस्कृत साहित्य

डॉ. शिप्रा पारीक

संस्कृत का साहित्य मानव मात्र के लिए कल्याणकारी सनातन धर्म एवं संस्कृति के यथार्थ का उपस्थापक रहा है, जिसमें मानवतावादो दृष्टि-कोण सुनिर्धारित लक्ष्य के रूप में दिखायी देता है। विश्वबन्धुत्व को सद्भावना वैदिक ऋषियों के चिन्तन में प्रारम्भ से ही विद्यमान रही है। भारतीय सनातन धर्म में वैदिक ऋषियों को इस सद्भावना के अनुरूप विश्वमानव को चरित्र सम्पन्न बनाने की आकांक्षा की श्लाघनीय प्रस्तुति महर्षि मनु ने व्यक्त की है-

**एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।**
**स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥**[1]

चरित्र सम्पन्नता एक ऐसा गुण है, जो मानव को मानव से जोड़ता है। चरित्र सम्पन्न मानव स्वातिरिक्त मानव को भी सम्मान की दृष्टि से देखता है, जिससे एक आत्मीयता का भाव बनता है और बन्धुत्व के आदर्श की प्रतिष्ठापना सम्भव होती है। मानव मूल्यबोध की दृष्टि से मनु का उपर्युक्त निर्देश पर्याप्त तर्कसंगत है जो वैदिक आर्यचिन्तन के 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' लक्ष्य का भी सम्पूरक कहा जा सकता है।

विश्वमानव मानव की विषमतापूर्ण स्थिति से वैदिक ऋषि भली भाँति अवगत है अतः वह विषम स्थितियों में भी विश्वमानव के प्रति अपने हितैषिता के भाव को सहज अभिव्यक्ति करता है-

**भूम्या अन्तं पर्येकें चरन्ति रथस्य धूर्षु युक्तासो अस्थुः ।**
**श्रमस्य दायं वि भजन्त्येभ्यो यदा यमो भवति हर्म्ये हितः॥**[2]

---

[1] मनुस्मृति- 2/20

[2] ऋग्वेद–10/114/10

यहाँ वैदिक ऋषि घर पर नियन्त्रण एवं श्रम के दाय के समुचित विभाजन का निर्देश करता है जो विश्वमानव की विषमताओं का निराकरण करने वाला श्रेष्ठ उपाय है। विश्वबन्धुत्व की दृष्टि से मानवीय हित की यह आकांक्षा पर्याप्त महत्त्व का विषय है। विषमताओं के जाल में विश्वबन्धुत्व केवल कल्पना का विषय ही न रह जाये एतदर्थ वैदिक ऋषि ने मानव मात्र के लिए परस्पर मन वचन एवं कर्म की एकता को अपनाने का आग्रह किया है, जो यहाँ उल्लेखनीय है -

**सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।**
**देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते॥[1]**

अर्थात् जैसे पूर्ववर्ती विद्वान् भली प्रकार जानते हुए सेवन करने योग्य प्रभु की उपासना करते हैं वैसे ही तुम सभी मानव एक समान कार्य में चुनन होयो, एक समान विचार अभिव्यक्त करो, तुम्हारे मन एक समान हो । इस प्रकार सम्यक ज्ञान एवं आचार विचार से ही तुम देवत्व (उन्नति) के अधिकारी बन सकते हो।

तात्पर्य यह है कि विश्व विश्वबन्धुत्व तभी स्थापित हो सकता है, जब कर्म को लेकर मानव में परस्पर विद्वेष न हो, आचार विचार एवं व्यवहार में अत्यधिक विषमता न हो। लक्ष्य भले ही भिन्न हो किन्तु सार्वत्रिक उन्नयन की दृष्टि से मानवों में परस्पर एकत्व हो तभी विश्वबन्धुत्व सार्थक हो सकेगा। विश्वबन्धुत्व की सार्थकता के सन्दर्भ में वैदिक ऋषि ने ओगे और निर्देश प्रदान किया है-

**समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम्।**
**समानं मन्त्रमभि मन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि॥[2]**

यहाँ कहा गया है कि विश्वबन्धुत्व के लिए वैचारिक समानता प्राथमिक अपेक्षा है। तत्पश्चात् वैचारिक समानता द्वारा भेद एवं आग्रह के

---

[1] ऋग्वेद– 10/191/2

[2] ऋग्वेद- 10/191/3

निदान का उल्लेख किया गया है, क्योंकि भेद एवं आग्रह ही कलह को बढ़ाते हैं। मन एवं चित्त की समानता के निर्देश से मानसिक दुराग्रह एवं बौद्धिक अपलाप या वितण्डावाद के निराकरण का संकेत किया गया है क्योंकि ये ही विश्वबन्धुत्व में बाधक होते हैं।

इसी के अनन्तर वैदिक ऋषि ने संकल्प की समानता का सन्देश प्रदान कर आत्मीयता की अभिवृद्धि हेतु मनोभेद का निराकरण भी वाच्छनीय बतलाया है-

**समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।**
**समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति ॥[1]**

यदि सब मानवों के हृदयों में संकल्प की दृढता होगी। समान रूपसे सब मानवहित के अपेक्षी होंगे तो समानता के बल पर आत्मीयता बढ़ेगी तथा मन की एकता अथवा समानता से सह अस्तित्व का अभ्युदय होगा जो निश्चित रूप से विश्वबन्धुत्व के लक्ष्य को पूर्णकर सकेगा।

विश्वबन्धुत्व को लक्ष्य में रख कर ही यजुर्वेद में अहिंसा का उत्कृष्ट उपदेश दिया गया है, क्योंकि हिंसावृत्ति ही विश्वबन्धुत्व के लिए सर्वाधिक घातक मानी जाती रही है। अहिंसा मानवता के लिए सापेक्ष है जैसा कि निम्नांकित मन्त्र में कहा है-

**प्रेदग्ने ज्योतिष्मान् याहि शिवेभिरर्चिभिष्टम्।**
**बृहद्भिर्भानुभिर्भासन् मा हिꣳसीस्तन्वा प्रजाः ॥३२ ॥[2]**

अर्थात् हे ज्ञानवान् मनुष्य तू ज्ञान की महानता के प्रकाश से प्रकाशमान होता हुआ कल्याणकारी रश्मियों से आत्मोपकार एवं परोपकार करता हुआ उत्तम लक्ष्य को प्राप्त कर । प्रजाओं को अपने शारीरिक बल से हिंसा मत पहुँचा। तात्पर्य यही है कि विश्व में मानव ही ज्ञान का अधिष्ठाता

---

[1] ऋग्वेद- 10/191/4

[2] यजुर्वेद-12/32

प्राणिविशेष है तथा उसके ज्ञान की सार्थकता मानवकल्याण में ही निहित है, न कि मानवोत्पीडन में अतः अहिंसा के मार्ग को अपनाते हुए जीवन जीना उचित है इसी से विश्वबन्धुत्व रूपी लक्ष्य की प्राप्ति सम्भव है, अन्यथा नहीं।

विश्वबन्धुत्व की अपेक्षा को सर्वाधिक महत्त्व देने वाले राष्ट्रनायक की ही कामना भी वैदिक वाङ्मय में की गयी है -

**स्वस्तिदा विशस्पतिर्वृत्रहा विमृधो वशी।**
**वृषेन्द्रः पुर एतु नः सोमपा अभयंकरः॥[1]**

अर्थात् राष्ट्रनायक ऐसा हो जो लोककल्याणकारी हो, शान्ति का संस्थापक हो, प्रजापालक हो, पापनाशक एवं प्रजाओं के उत्पीडकों का नियन्त्रणकर्ता हो, सुखवर्धक हो, ऐश्वर्य का रक्षक हो तथा भयप्रदान करने वाला न हो। ऐसा राष्ट्रनायक ही विश्वबन्धुत्व को स्थायित्व प्रदान कर सकता है

विश्वबन्धुत्व को ध्यान में रख कर ही वेद विश्वकल्याण की कामना का शुभाकांक्षी रहा है। अर्थर्ववेद में विश्वकल्याण की कामना की अभिव्यक्ति निम्न रूप में द्रष्टव्य है-

**स्वस्ति मात्र उत पित्रे नौ अस्तु स्वस्ति गोभ्यो जगते पुरुषेभ्यः।**
**विश्वम्सुभूतम्सुविदत्रं नो अस्तु ज्योगेव दृशेम सूर्यम्॥[2]**

यहाँ 'स्वस्ति जगते पुरुषेभ्यः' से विश्वबन्धुत्व को ही इंगित किया गया है, तथा विश्वम्सुभूत से विश्वबन्धुत्व के बल पर कल्याणमय विश्व की कामना की गयी है। विश्व में कल्याणमयत्व का प्रतिदिन दर्शन भी अपेक्षित बतलाया गया है, जिससे यह उपलक्षित होता है कि वैदिक ऋषि विश्वबन्धुत्व का अवच्छेद या अवसान नहीं देखना चाहता। वेदोक्त विश्वबन्धुत्व के इस आदर्श की हो अभिव्यक्ति उपनिषत्कार ने भी निम्न

---

[1] ऋग्वेद- 10/152/2

[2] अथर्ववेद 1/31/4

शब्दों में की है-

**सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।**
**सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्।।**[1]

अर्थात् सभी मनुष्यादि सुखी हो, सभी स्वस्थ हो, सभी कल्याण को देखने वाले हो तथा कोई भी दुःख पाने वाला न हो।

उपनिषत्कार की यह कामना विश्वबन्धुत्व के आदर्श की परिणति को ही इंगित कर रही है। विश्वबन्धुत्व वैश्विक आदर्श है किन्तु इनके लिए जो प्रयास अपेक्षित है उनमें पारिवारिक सद्व्यवहार प्राथमिक स्तर पर अत्यावश्यक है इसे समझते हुए अथर्ववेद में कहा गया है-

**सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः।**
**अन्यो अन्यमभि हर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या॥**
**अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः।**
**जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शन्तिवाम्॥**
**मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा।**
**सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया॥**[2]

अर्थात् हे मनुष्यो, में तुम्हारे लिए सहदयता, एकमनस्कता तथा द्वेषहीनता को विहित करता हूँ जिससे तुम परस्पर इस प्रकार प्रेम कर सको जैसे गाय अपने उत्पन्न हुए बछड़े से करती है। पुत्र पिता का अनुसरण करने वाला हो, माता के साथ मन वाला हो। पत्नी अपने पति के प्रति मधुर एवं शान्तिमय वचन बोलने वाली हो, भाई भाई से द्वेष न करे, बहन बहन से द्वेष न करे, सभी मनुष्य सम्यक् रूप से समान आचरण वाले होकर कल्याण करने वाली वाणी बोलें।

तात्पर्य यह है कि राष्ट्र एवं परिवार के लिये अपेक्षित है कि वे विश्वबन्धुत्व के आदर्श को शाश्वतता के प्रतिष्ठापक हों। इनमे भी परिवार

---

[1] तैतिरीय उपनिषद्- पुष्पिका

[2] अथर्व वेद- 3/30/1-3

का स्थान प्रथम है। वेद का अन्तिम उद्देश्य समस्त संसार को एक सूत्र में रख कर विश्वबन्धुत्व को स्थापित करना था तथा इसके लिए उसने राष्ट्र एवं परिवार को सोपान के रूप में उपकल्पित कर उनके तादृश स्वरूप को अपेक्षा की परिकल्पना प्रस्तुत की जिसका अभिप्राय यहीं है परिवार एवं राष्ट्र में मानवीय सामंजस्य होनेपर ही विश्वबन्धुत्व शाश्वत आदर्श बन सकता है, अन्यथा नहीं।

यजुर्वेद का "मित्रस्याह चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे" वाक्य भी मानवमैत्री के माध्यम से विश्वबन्धुत्व का प्रेरक कहा जा सकता है, क्योंकि दृष्टिभेद का न होना तथा मैत्रीभाव की वांछनीयता को समझना इसके लिये अत्यन्त आवश्यक है। यह मैत्रीभाव देवताओं में भी या उन्हीं के अनुरूप मनुष्यों में अपेक्षित समझा गया। देवताओं में विश्वबन्धुत्व के भाव की प्रस्तुति ऋग्वेद में निम्न प्रकार प्राप्त होती है— **अदितिर्ह्यजनिष्ट दक्ष या दुहिता तव। तां देवा अन्वजायन्त भद्रा अमृतबन्धवः॥**[1]

यहाँ अमृतपान रूप लक्ष्य के कारण देवों में विद्यमान रहने वाले विश्वबन्धुत्व का उल्लेख किया गया है जिससे उनका सदेव कल्याण हुआ तथा वे असुरों से सुरक्षित रहे। आज भी विश्व में आसुरी सम्पदा बढ़ रही है, तथा इससे सुरक्षा अनिवार्य है अतः मानव को आत्म रक्षा का एकमात्र लक्ष्य निधारित करके भी विश्वबन्धुत्व के लक्ष्य की संपूर्ति हेतु सम्बद्ध होना ही चाहिए, अन्यथा वर्तमान में अपने पाँव पसारने वाली आयुरी सम्पदा एकदिन विश्वमानव का अन्त कर ही देगी।

उक्त समस्या के सन्दर्भ में हमे विश्वबन्धुत्व को लोकनीति के रूप में देखना होगा तथा अपनाना होगा। हम जानते हैं' कि समाज में रह कर ही मनुष्य विभिन्न प्रकार की शिक्षाएं ग्रहण करता है। सामाजिक प्राणी होने के नाते वह समाज से ही अपना तादात्म्य स्थापित करता है। पहले वह व्यष्टि अर्थात् स्वयं से परिचित होता है फिर समाज का दर्शन करता है।

---

[1] ऋग्वेद-10/72/5

समाज के प्रति मनुष्य के अनेक कर्त्तव्य होते हैं, जिनका मनुष्य कुशलतापूर्वक निर्वाह करता है। मनुष्य का हृदय कुछ को अपने आवेश में वद्ध कर लेता है तथा कुछ अन्यों से सम्बद्ध रह जाते हैं। कुछ कर्त्तव्य अन्तर्मुखी होते हैं और कुछ बाहेर्मुखी। इतना सब कुछ होते हुए भी मानव के नैतिक मूल्यों में परिवर्तन होने लगता है अतः धीरे धीरे निज से पर, अन्तर्मुखी से बहिर्मुखी, व्यष्टि से समष्टि, समष्टि से राज्य, राज्य से राष्ट्र एवं राष्ट्र से सम्पूर्ण विश्व की एक विशालतम इकाई में मानवजीवन की सभी मान्यतायें आबद्ध हो जाती है और सामान्य सामानव भी वैश्विक परिवेश का अंग बन जाता है। यही कारण है कि वैश्विक समस्या भी प्रत्येक मानव की अपनी समस्या है अतः विश्व को वैश्विक समस्याओ से सुरक्षित रखने के लिए विश्वबन्धुत्व अत्यावश्यक है।

विश्वबन्धुत्व के लिए, मानवकल्याणमयी नीति की अपेक्षा नीतिविज्ञों ने भी प्रतिपादित की है। वैराग्य शतक में भर्तृहरि लिखते हैं-

**"प्राणाघातान्निवृत्तिः परधनहरणे संयम : सत्यवाक्यं**
**काले शक्त्या प्रदानं युवतिजनकथामूकभावः परेषाम् ।**
**तृष्णास्रोतोविभङ्गो गुरुषु च विनयः सर्वभूतानुकम्पा**
**सामान्याः सर्वशास्त्रेष्वनुपहतं विधिः श्रेयसामीष पन्थाः ॥"[1]**

अर्थात् कस्याण के मार्ग हैं- हिंसा से विराग, दूसरे का धन अपहरण करने में संयम, सत्य बोलना, समय पर यथाशक्ति दान देना, दूसरों की स्त्रियों की चर्चा के समय मौन रहना, तृष्णा का त्याग करना, गुरुजनों के सामने विनीत रहना, सभी प्राणियों पर दया करना तथा समस्त शास्त्रों को समान समझना।

नीतिज्ञों के मत में यदि प्रत्येक मानव का आचरण इस प्रकार का हो तो विश्वबन्धुत्व स्वतः ही अभिवृद्धिको प्राप्त करेगा। नीतिवाक्यामृतम् के रचयिता आचार्य सोमदेव सूरि लिखते हैं:- "समस्त प्राणियों पर समता का

---

[1] वैराग्यशतकम्- पृ. 65

भाव रखना, उनकी रक्षा करना, सभी कर्तव्यों में सर्वोत्तम बताया गया है। व्यक्ति चाहे जितने भी पुण्य कार्य करता रहे और प्राणियों की हिंसा करता रहे तो उसकी कोई भी क्रिया कल्याणकारिणी नहीं होती। दूसरे प्राणियों पर अहिंसा का भाव रखने वाले दयालु पुरुषों को विशुद्धचित्तवृत्ति व्रतहीन होनेपर भी स्वर्ग के सुखों को देने वाली होती है।

कतिपय नीतिज्ञों ने विश्वबन्धुत्व को इस दृष्टि से देखा है कि मनुष्य को अनुपयुक्त देश का भी त्याग कर विश्व मानवता की अभिवृद्धि में योगदान करना चाहिए। चाणक्य ने लिखा है-

**यस्मिन देशे न सम्मानो न वृत्तिर्न च बान्धवाः।**
**न च विद्यागमः कश्चित् तं देशं परिवर्जयेत्॥**
**लोकयात्राभयं लज्जा दाक्षिण्यं त्यागशीलता।**
**पञ्च यत्र न विद्यन्ते न कुर्यात् तत्र संस्थितिम्॥**[1]

अर्थात् जिस देश में मान नहीं, निर्वाह नहीं, बन्धु बान्धव नहीं और विद्याप्राप्ति भी नहीं, उस देश का परित्याग कर देना ही उचित है। जिस देश में जीवन निर्वाह के साधन भय लज्जा अच्छाई और त्यागभाव ये पाँच गुण नहीं हो उस देश में निवास नहीं करना चाहिए।

उपर्युक्त उल्लेख मानव को त्याग के बलपर विश्वमानवता से जोड़ता है, जिससे विश्वबन्धुत्व के लक्ष्य की सम्पूर्ति भी सम्भावित प्रतीत होती है। नीतिशास्त्र के आचार्य भर्तृहरि ने आचार के बल पर विश्वबन्धुत्व के लक्ष्य की सम्पूर्ति को स्वीकार किया है। नीतिशतक में वे लिखते हैं:-

**दाक्षिण्यं स्वजने दया परिजने शाठ्यं सदा दुर्जने**
**प्रीतिः साधुजने नयो नृपजने विद्वज्जने चार्जवम्।**
**शौर्यं शत्रुजने क्षमा गुरुजने नारीजने धृष्टता**
**ये चैवं पुरुषाः कलासु कुशला स्तेष्वेव लोकस्थितिः॥**[2]

---

[1] नीतिवाक्यामृतम्- 5-7 (धर्म)

[2] चावक्य नीति- 1/6,7

अर्थात् जो व्यक्ति इस संसार में अपने बन्धु मित्रों के साथ उदारता बरतते हो, नौकरों के प्रति दयाभाव दर्शाते हो, समय पर सहायता करते हो, दुष्टों के साथ कठोरता बरतते हैं शिष्टजनों के प्रति प्रेम व आदर दर्शाते हैं, राज्याधिकारियों के साथ कुशल नीति का पालन करते हो, ज्ञानियों एवं विद्वानों के प्रति विनम्र रहते हो, वैरी के साथ वीरता का परिचय देते हो गुरुजनों के प्रति विनम्र रहते हैं, स्त्रियों के प्रति धृष्टता बरतने वाले वे ही लोग इस संसार में सुन्दर निर्वाह कर सकते हैं।

भर्तृहरि का आशय है कि लोक में सुस्थिति हेतु नीतिज्ञ होना आवशक है। यदि सभी नीतिज्ञ हो तो उन्मे विश्वबन्धुत्व के सही दिशा उपलब्ध हो सकती है। नीति से अनभिज्ञ व्यक्ति वैश्विक विषमताओं के मध्य विश्वबन्धुत्व का मार्ग अपनाने में सक्षम नहीं कहा जा सकता। इसी प्रकार एक अन्य स्थान पर भी भर्तृहरि ने परमार्थ का मार्ग बतलाया है तथा उनका अभिप्राय यही रहा है कि परमार्थी मनुष्य ही विश्वबन्धुत्व का मार्ग प्रशस्त कर सकते हैं, अतः वे लिखते हैं-

**प्राणाघातान्निवृत्तिः परधनहरणे संयमः सत्यवाक्यं**
**काले शक्त्या प्रदानं युवतिजनकथामूकभावः परेषाम्।**
**तृष्णास्रोतःविभङ्गो गुरुषु च विनयः सर्वभूतानुकम्पा**
**सामान्याः सर्वशास्त्रेष्वनुपहतविधिः प्रयातामेष पन्थाः॥**[1]

परमार्थ के लिए सदाचार की अपेक्षा को भी भर्तृहरिने स्वीकार किया है। सदाचारी मानव ही मैत्री भाव को स्थिर बना सकते हैं इस दृष्टि से विश्वबंधुत्व की सम्भावना सदाचारियों में ही लक्षित होती है। भर्तृहरिके मत में ऐसे सदाचार इस प्रकार बतलाये गये हैं-

**तृष्णां छिन्धि भज क्षमां जहि मदं पाये रतिं मा स्म काः।**
**सत्यं ब्रह्मानुयाहि साधुपदवीं सेवस्व विदज्जनम्॥**
**मान्यान् मान्य विद्विषोऽप्यनुनय प्रच्छादय स्वान्गुणान्।**

---

[1] नीतिशतक- पृ.54

**कीर्तिं पालय दुःखिते कुरु दयामेतत्सतीलक्षणम् ॥**[1]

अर्थात लालच को त्यागना, सहनशील बनना, पापकर्मों से दूर रहना, मन से भी उनका विचार न करना, सत्य बोलना, महापुरुषों के मार्ग पर चलना, विद्वानों की सेवा शुश्रूषा करना, बड़ों का आदर करना, शत्रुओं के साथ भी प्रेम का व्यवहार करना, स्वाभिमान की रक्षा करना, दीनों पर दया करता ये सब सत्पुरुषों के लक्षण है।

इस प्रकार सांकृत साहित्य में विश्वबन्धुत्व की दृष्टिसे अनेक उपयोगी उल्लेख एवं दृष्टान्त उपलब्ध होते हैं। वस्तुतः संस्कृत साहित्य विश्वबन्धुत्व का सुरम्य सोपान है जिसका आश्रय लेकर हम विश्वबन्धुत्व के लक्ष्य को पूर्ण कर सकते हैं तथा वैश्विक शान्ति की स्थापना, मानवता का संरक्षण एवं असामाजिक प्रवृत्तियों से संरक्षण भी प्राप्त कर सकते हैं। वर्तमान विषम परिस्थितियों में वैश्विक स्तर पर मानवता का सपक्षी ऐसा कोई साहित्य नहीं है जो संस्कृत साहित्य की समानता करने वाला हो अतः इसे आधुनिक शिक्षा में व्यापक बनाया जाना चाहिए।

[1] नीतिशतक- पृ.78

# वैदिकवाङ्मये विश्वबन्धुत्वम्

डॉ. दीपककुमारशर्मा
सहायकाचार्य (संस्कृत विभाग)
डी.ए.वी.पी.जी. कॉलेज, वाराणसी (उ.प्र.)

निखिलब्रह्माण्डस्य प्रथमावाणी वेदाः एव समस्तज्ञानविज्ञानस्य आधारभूताः विद्यन्ते। वेदानां वर्णितज्ञानं केवलमेव भारतीयानां कृते उपादेयं नास्ति अपितु सम्पूर्णविश्वप्रपञ्चेस्थितानां जनानां कृते अभ्युदयप्रदायकं सुखप्रदायकञ्चास्ति। वैदिकवाङ्मये संहिताब्राह्मणारण्यकोपनिषच्च प्राधान्येन गृह्णीमः।

साम्प्रतिके कालो सम्पूर्णोऽपि विश्वे नैकाः समस्याः दरीदृश्यन्ते तेषु आतंकवादः, राजनीतिकास्थौर्यं पारस्परिकप्रतिद्वन्द्विताद्वारा राष्ट्राणां युद्धं पश्यामः तेन महती जन-धनहानिः वातावरणस्याशुचिता दारिद्र्यञ्च जायते। एतादृशानां समाधानं वैदिकवाङ्मये एव प्राप्नुमः यतोहि जगति स्वार्थपराकाष्ठां पश्यामः सर्वत्रेव स्वोत्थाने एव जनाः परिश्रमरताः सन्ति अन्यसामाजिकानां कृते तेन सौख्यं भविष्यति दुःखप्राप्तिर्भविष्यति वा नास्तीयं चिन्ता, अतएव मानवीयगुणानां ह्रासः सर्वत्र परिलक्ष्यते।

सम्पूर्णवैदिकवाङ्मये वैदिकऋषीणांचिन्तनं स्वोत्थानाय नास्ति अपितु विश्वप्रपञ्चे केन साधनेन शान्तिः, सौख्यं, सद्भावादीनां स्थापना भवेत् तमेव ग्रहीतुं ऋषयः उद्घोषयन्ति। ऋग्वेदे ऋषिः कथयति - वयं सहैव चलोम, समानवाणीं वदेम, अस्माकं हृदयस्थविचाराः समानाःस्युः, राष्ट्रे उत्पन्नस्य धन-धान्यस्य समानं विभज्य गृह्णीयाम, अस्माकं चेतनाप्रवृत्तिश्च समानी भूत्वा रागद्वेषरहितेन प्रीतिदायिके स्याताम्-

**सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।**

**देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते।।**[1]

ऋग्वेदे इन्द्रसूक्ते ऋषिः प्रार्थयति हे परमात्मन् तथाविध-संततिः भवेत् येन राष्ट्ररक्षाभवेत् तथा च न्याय-दया-दाक्षिण्यादिसदाचारेण जनसमूहस्य नेतृत्वप्रदायिका अनेकविधधन-धान्येन परोपकारेण सम्पूर्णस्य समाजस्यरक्षणं अभ्युदयऋच कुर्यात् -

**स्वायुधं स्ववसं सुनीथं चतुः समुद्रं धरुणं रयीणाम्।**
**चर्कृत्यं शंस्यं भूरिवारमस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः।।**[2]

वेदे ऋषीणामुद्घोषः ''मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे''[3] तथा च ''सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु''[4] तात्पर्यमस्ति सर्वेषां प्रति मित्रतापूर्णव्यवहारो भवेत्, मित्रदृष्टया एव प्राणिनं पश्येम। पुनः अथर्ववेदे भणितं ''मा नो द्विक्षम कश्चन''[5] न कस्यापि कृते कपटपूर्णं व्यवहारः स्यात्। वैदिकवाङ्मये परस्परप्रीतिः रक्षाभावना च स्पष्टरूपेण निगदिता- ''पुमान् पुमांसं परिपातु विश्वतः।''[6] वैदिकव्यवस्थायां समानता-समीपता-सामऋजस्येन च सम्पूर्णरूपेण सौहार्द्रयुक्तं परिवेशमस्ति, तत्र न कोऽपि ज्येष्ठः, न वा कनिष्ठः, समेऽपि समानाः तथा च सामाजिक-आत्मिक-शारीरिकश्चोन्नतेरधिकारः समान आसीत् विषयेऽस्मिन् ऋग्वेदस्य मन्त्रः द्रष्टव्यः-

**ते अज्येष्ठा अकनिष्ठास उदभिदोऽमध्यमास महसा विवावृधुः।**[7]
**अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते संभ्रातरो वाव्रधुः सौभगाय।**[8]

अथर्ववेदे भूमिसूक्ते मानवानां भिन्नतायाः प्रतिपादनं कृतं यतो हि गुणकर्मस्वभावेन च जनानां विविधता स्वाभाविकी वर्तते, वैभिन्यं क्षोत्रविशोषस्य प्रादेशिकभोजनवस्त्रभाषादिकारणोन च भवति। वनस्पतीनामपि वैविध्यं जलवायुपरिवर्तनेन पश्यामः तथापि मानवेषु

बौद्धिकदृष्ट्या एकत्वं सामञ्जस्यञ्च भवेत् इति वर्णितम्-

**असंबाधं मध्यतो मानवानां यस्या उद्वतः प्रवतः समं बहु।**
**नानावीर्या ओषधीया बिभर्ति, पृथिवी नः प्रथतां राध्यतां नः।।**[9]

अन्यस्मिन् मन्त्रोष्वपि विविधतायाः निरूपणं ऋषिणा कृतं यत्र विभिन्न भाषाभाषिणः वसन्ति तेषां गुण-कर्म-स्वभावे च वैभिन्यं वर्तते-

**जनं बिभ्रती बहुधा विवाचसं, नानाधर्माणं पृथिवी यथौकसम्।**[10]

उपर्युक्तमन्त्रस्य उत्तराधोर् उक्तं यत् पृथिवी तथाविध सर्वान् जनान् धारयति यथा एकस्मिन्नेव गृहे नैकाः पारिवारिकजनाः सुखपूर्वकं वसन्ति तेषां वयः विचाराणिरुचयश्च पृथक्-पृथक् भवन्ति तथापि सौहार्देण ते सर्वेऽपि निवसन्ति तेषां विविधतायामपि न कुत्रापि क्लेशः भवति। पृथिवी सर्वान् धारयति अतएव 'धरा' स्वभावञ्च निवासिषु अपि सङ्क्रान्तं भवति पृथिवी 'सर्वंसहा' भवति यथा गौः स्ववत्सं यदा दुग्धं पाययति तदा शान्तभावेन तिष्ठति तद्वत् पृथिवी अस्मान् समेषां कृते अन्नं प्रददाति - 'सहस्रं धारा द्रविणस्य मे दुहां, धुवेव धोनुरनपस्फुरन्ती।[11]

ऋग्वेदस्य संज्ञानसूक्ते पृथ्वीस्थितानां समेषां जनानां कृते समानविचाराय समानहृदयाय कामना कृता तत्रौव जनानां समान चिन्तनस्य तेषां सभा समितौ इत्यादिष्वपि संवादेन एकरूपत्वं भवेत् तेषां संकल्पः भावना च समाना भवेत् इतिरूपेण प्रार्थना कृता-

**समानी व आकूतिः, समाना हृदयानि वः।**
**समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति।।**[12]

अथर्ववेदे **''माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः''**[13] अहं पृथिवीमातुः पुत्रोऽस्मि इत्युदारभावना समुद्घोषिता। एतस्मिन्नेव वेदे **''यत्र विश्वं**

**भवत्येकनीडम्''**[14] इति सन्देशं प्रदाय निखिलं जगत् एकगृहरूपेण समुपस्थापितम्। ऋग्वेदे **'विश्वे अमृतस्य पुत्राः'**[15] इति वर्णनेन सर्वे प्राणिनः भगवतः पुत्रस्थानीयाः सन्ति अतः सर्वेषु बन्धुत्वस्य एकरूपतायाश्च बोधः कारितः।

वैदिकवाङ्मये सर्वेषां धर्माणां मूलमेकं कथितं सर्वान् धर्मान् प्रति समभावः ऋग्वेदे उल्लिखितम्- **'एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति।'**[16]

वैदिकवाङ्मयस्य सन्देशः कस्मैचित् जातिविशे्ाषाय देशविशेषाय वा नास्ति, परं सर्वेषां कल्याणाय अभ्युदयाय च कामना कृता- **'यद् भद्रं तन्न आसुव'**[17] सर्वेभवन्तु सुखिनश्च। अस्माकं सर्वेषां कल्याणं भवेत् इति प्रतिपादितम्। वेदेषु आध्यात्मिकतायाः प्राधान्यं विद्यते ऋग्वेदस्य प्रारम्भः 'अग्निमीडे पुरोहितम्' अनेन मन्त्रेण सम्भूतः, एतस्मिन् अग्नि- नाम्न ईश्वरस्य स्तुतिः कृता। यजुर्वेदे **'ईशावास्य मिदं सर्वं यत्किञ्चच जगत्यां जगत्'**[18] अनेन मन्त्रेण ईश्वरस्य सर्वव्यापकतायाः बोधः कारितः। सर्वत्र व्यापकात् स अस्माकं शुभाशुभानां कर्मणां द्रष्टा विद्यते। अतएव अस्माभिः क्रियमाणानां सर्वेषां कर्मणां फलं वयं प्राप्नुमः। कथितमपि - 'अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म, शुभाशुभम्' एतां भावनामङ्गीकृत्य मनुष्याः सर्वेभ्यः दुरितेभ्यः दूरीभवितुं शक्नुवन्ति तथा पापकर्मणि विरताश्च भविष्यन्ति। तेनापि पारस्परिक सौहार्द्रं आगमिष्यति।

वैदिकवाङ्मये विश्वबन्धुत्वदृष्ट्या त्यागस्य, तपसः साधनायाश्च माहात्म्यं विशिष्टरूपेणक्रियते। यथा ईशोपनिषदि तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम्' इति मन्त्रे्ास्मिन् त्यागभावस्य वर्णनं विद्यते मानवः धनमर्जयेत् परं तस्योपभोगं त्याग भावनया कुर्यात्। आचारः परमो धर्मः इति निर्देश्ाेन निजाचरणस्य शुद्धेः परिष्कृतेश्च प्रेरणा प्रदत्ता।

यजुर्वेदे प्रार्थना कृता यत् सद्बुद्धिप्राप्तिद्वारा विश्वस्य समाजस्य च

कल्याणं समेषां सौख्ये वृद्धिः भवेत् सुमतिश्च जनाः प्राप्नुयुः मन्त्रोऽस्मिन् विश्वकल्याणाय बुद्धिप्राप्त्यर्थं कामना कृता स्वोत्थानाय कामना कृता एतदेव वैदिकज्ञानस्य व्यापकचिन्तनम्-

**ता सवितुर्वरेण्यस्य चित्रामाऽहं वृणों सुमतिं विश्वजन्याम्।**[19]
**अन्यमन्त्रेऽपि सर्वलोकहितकारी सुमतिप्राप्तये प्रार्थना कृता-**
**त्वं विष्णो सुमतिं विश्वजन्याम् अप्रयुतोमेवयावो मतिं दाः।**
**पर्चो यथा नः सुवितस्य भूरेरश्वावतः पुरुश्चन्द्रस्या रायः।।**[20]

सम्पूर्णोऽपि वैदिकवाङ्मये विश्वकल्याणस्यैव कामना कृता, विश्वस्य कल्याण्ोनैव अस्माकमपि सर्वविधाभ्युदयं भविष्यत्येषः भारतीयमनीषिणां दृढ़ विश्वासः इति शम्।

**सन्दर्भाः-**


1. ऋग्वेद 10/191/ 2
2. ऋग्वेद 10/47/2
3. शुक्लयजुर्वेद 36 /18
4. अथर्ववेद 19 /15/6
5. अथर्ववेद 12/1/24
6. ऋग्वेद 06/75 /14
7. ऋग्वेद 05/ 56 /6
8. ऋग्वेद 05 /60/ 5
9. अथर्ववेद भूमिसूक्त 12/01/02
10. अथर्ववेद भूमिसूक्त 12/01/45
11. अथर्ववेद भूमिसूक्त 12/01/45
12. ऋग्वेद 10/191/04
13. अथर्ववेद पृथिवीसूक्त
14. अथर्ववेद पृथिवीसूक्त
15. ऋग्वेद 10/13/01
16. ऋग्वेद 01/164/46
17. यजुर्वेद 30/03
18. यजुर्वेद 40/01
19. अथर्ववेद 07/60/06
20. अथर्ववेद 02/29/04

# ''आतंकवादस्योन्मूलने संस्कृतस्योपादेयता''

**डा. सुरचना त्रिवेदी**
**एसो. प्रो. (संस्कृत विभाग)**
**भगवानदीन आर्यकन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय**
**लखीमपुर-खीरी, (भारत)**

विदितमेव सर्वेषामपि विदुषां यत् संस्कृतमन्दाकिनी सृष्टि रचनाकालादेव अनवरतं प्रवहमाना पावयति निखिलमपि विश्वम्। वैदिक-लौकिक संस्कृत साहित्य रूपेण द्विधा विभक्तेयं संस्कृतसरिता कं जनं नानन्दयति? कस्य सचेतसः चेतसि दिव्यान् भावान् नोत्पादयति? सर्वान् अपि मानवान् मानवतायाः, करुणायाः, विश्वबन्धुत्वस्य, अहिंसायाः, प्रेम्णः, सत्यस्य तथा च शान्तेः पन्थानं निर्दिशति।

अद्य विश्वमिदमशान्तं, भ्रान्त, क्लान्तं च द्रीदृश्यते। न केवलं भारते अपितु, सर्वेषु देशेषु आतंकवादस्य ताण्डवनृत्यं विलोक्य वयं भीतभीताः स्म। अद्यावधि अनेके महापुरूषाः, देशभक्ताः युवानः, वृद्धाः, बालाः, निरपराधिनः, सज्जनाः आतंकवादेन घातिताः। वर्तमानेकाले कृत्स्नेऽपि विश्वे आतंकवादस्य समस्या सर्वान् अपि राष्ट्राध्यक्षान् समाजसेवकान् तथा च शान्तिप्रियान् जनान् व्याकुलयति पीडयति च।

आतंकवादमुन्मूलयितुं शमयितुं सर्वेषु देशेषु प्रयत्नानां पराकाष्ठा क्रियते। एकैकस्मिन् देशे राज्ये च लक्षशः सैनिकाः, रक्षकाश्च राजपुरूषाणां, नेतृणाम् अभिनेतृणां धनिनां, प्रशासकानां, महात्मनां, च रक्षायाम् अहर्निशं सन्नद्धाः दृश्यन्ते। अस्यां रक्षायां देशस्य अपरिमितं धनं व्ययीभवति। येन वित्तेन यैः साधनैः यया जन शक्त्या च देशस्य सर्वांगीणो विकासः कर्त्तुं शक्यते, तद् धनं तानि साधनानि, सा च जनशक्तिः आतंकवादशमने एव विनश्यति इति चिन्तायाः विषयः।

अस्याः भीषणतमायाः समस्यायाः समाधानं, यदि भवितुमर्हति तर्हि संस्कृतभाषायाः प्रचारेण प्रसारेण किंच वेदानाम् उपनिषदां, रामायणं, महाभारतादीनां, गीतायाः अध्ययनेन अथवा कविकुलगुरुकालिदासप्रभृतीनां स्वनामधन्यानांकवीश्वराणांमहाकाव्य-नाटक-गीतिकाव्यादीनामनुशीलनेनैव संभाव्यते।

नित्यसत्येषु, विश्वकल्याणसम्पादकेषु चतुर्षु वेदेषु प्राप्यन्ते ते मन्त्राः ये अस्मान् उपदिशन्ति, निर्दिशन्ति च जीवनस्योत्तमं मार्गम्।

यो मानवः सततं वेदाध्ययने रतः, यश्च उपनिषत्साहित्यं, रामायणं, महाभारतं, श्रीमद्भगवद्गीतां वा श्रद्धया अध्येति, यो खलु महाकवीनां कवितासु चित्तं रमयति, किं सः कदापि कस्यापि हिंसनं कर्त्तुं उत्सहते? सो देवतुल्यः मानवः सदैव परहिते, परसेवायाम्, आम्साधनायामेव वा स्वजीवनं सफलमिति मन्यते।

वेदमाता विश्वस्थान् कोटि-कोटि जनान् सम्बोधयन्ती प्राह- 'शृण्वन्तु सर्वे अमृतस्य पुत्राः'। अस्यायमाशयः-सर्वे जनाः परमात्मनः अमृतपुत्राः सन्तीति कृत्वा समे परस्परं भ्रातरः, भगिन्यो वा सन्ति अतः सर्वैरपि अन्योऽन्यं प्रति भ्रातृभावेनैव व्यवहर्त्तव्यम्।

**मित्र दृष्टिः**

भगवती श्रुतिः विविधान् अपि प्राणिनः सन्दिशति यत् सर्वे परस्परं मित्रदृष्ट्या एवं पश्यन्तु-

**'मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्।**
**मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे।**
**मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे।।**

स्थापितायां मित्र दृष्ट्यां क्व शत्रुता, क्व चेर्ष्या, क्व च परस्परं मनोमालिन्यम्?

अथर्ववेदे गवां, पशु-पक्षिणां, मानवानां सर्वेषामेव च कल्याणं काम्यते-

**स्वस्ति गोभ्यो जगते पुरूषेभ्यः।**

अथर्ववेदस्यैव अन्यस्मिन् मन्त्रे, ईश्वरः प्राञ्चयते, प्रभो! एतादृशीं कृपां विधेहि, येनाहं प्रत्यक्षस्थान्, परोक्षस्थान् सर्वान् अपि प्राणिनः सुमत्या पश्येयम्-

**'यांश्च पश्यामि यांश्च न तेषु मा सुमतिं कृधि'।**

विश्वकल्याणकरं सर्वसुखकर वैदिक चिन्तनमद्यापि सर्वथा प्रासंगिकं सर्वेषामेव च हितकरमस्ति। यथा

**सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।**
**सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग् भवेत्।।**

समतायाः समष्टेश्च भावना

'वसुधैव कुटुम्बकम्' 'यत्र विश्वं भवत्येक नीडम्;, 'माताभूमिः पुत्रोऽहं

पृथिव्याः इत्यस्ति वैदिकसाहित्यस्य सन्देशः। इयं भूमिरस्माकं माता, वयं सर्वे अस्याः पुत्राः। ऋग्वेद उपदिशति-अस्मिन् संसारे न कोऽपि ज्येष्ठः न कोऽपि कनिष्ठः। सर्वे मिलित्वैव-परमैश्वर्य प्राप्तुं समर्थाः भवन्ति। यथा-

**अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते,**
**संभ्रातरो वावृधुः सौभगाय।। ऋ**0 5/60/5

अथर्ववेदस्यैकस्मिन् मन्त्रे मानवीय गुणा इत्थं वर्ण्यन्ते-

**ज्यायस्वन्तश्चित्तिनो मा वि यौष्ट संराधयन्तः सधुराश्च रन्तः।**
**अन्योऽन्यस्मै वल्गुवदन्त व सध्री चीनान् वः संमनसंस्कृणोमि।। अथर्व** 3/30/5

अन्यः एकः मन्त्रो वर्त्तते-

**प्रियं सर्वस्य पश्यत उत शूद्र उतार्ये। अथर्व** 19/62/1

ऋग्वेदस्यान्तिमे मण्डलेऽन्तिमे सूक्ते संगठनस्य यत् स्वरूपं निगदितं तत् त्रिषु कालेषु उत्कृष्टतमं सर्वं सुखप्रदं, चास्ति। संगठनस्य प्रेम्णश्चेदृशं रमणीयस्वरूपं नान्यत्र द्रष्टुं शक्यते।

भगवान् वेदः उपदिशति-

**सं सविद्युवसे वृषन्नग्ने विश्वान्यर्य आ।**
**इळस्पदे समिध्यसे स नो वसून्या भर।।**
**संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।**
**देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते।।**
**समानो मन्त्रः समितिः समानो समानं मनः सह चित्तमेषाम्**
**समानं मन्त्रमभिमन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि।।**
**समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।**
**समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति।। ऋ**0 10/191

**वैदिकाः ऋषयः मानवान् सन्दिशन्ति-**
**अन्योऽन्यमभिहर्यंत वत्सं जातमिवाघ्न्या।**
**भद्रंभावना-भावनेयं सर्वासामपि भावनानां प्रशस्यतमा।**

यस्मिन् देशे, समाजे, परिवारे वा जनाः अन्योऽन्यस्य भद्रं कामयन्ते तत्र स्नेहसरिता सततं प्रवहति, तत्र कटुतायाः, हिंसायाः, आतंकवादस्य वा नामापि न श्रूयते। यो जन अन्यस्य भद्रं, कल्याणं, हितं वा कामयते तस्य कल्याणं तु स्वयमेव सम्पद्यते। भद्रभावनेयं मानवं सर्वोच्च पदे प्रतिष्ठापयति। यथा-

शन्नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे। ऋक् **7/54/1**

यजुर्वेदस्यान्यतमे मन्त्रे वायु-सूर्य-पर्जन्यादयो देवाः सुखप्रदानार्थं प्राश्नन्ते-

**शं नो वातः पवतां शं नस्तपतु सूर्यः।**

**शं नः कनिक्रदद् देवः पर्जन्यो अभिवर्षतु।। यजु**0 36/10

वयं प्रतिदिनं पश्यामो यत् मानवाः प्रायशः परस्य भागं बलेन हृत्वा स्वयं भोक्तुम् इच्छन्ति। स्वयमेव वा भोजन तेभ्यः रोचते। परं श्रुतिस्तु निगद्ति-

**'केवलाघो भवति केवलादी।'**

यः स्वयमेव भुड्.क्ते स तु अधमेव-भुनक्ति। वयं सर्वे मिलित्वा भोजनं कुर्मः 'सहभक्षा स्याम' इत्यस्ति वैदिक चिन्तनम्। यजुर्वेदे-'सन्धिश्च मे सपीतिश्च मे यज्ञेन कल्पताम्' यजु0 **18/9**

अर्थात् अस्माकं सर्वेषामपि भोजनस्थानानि पानस्थानानि च समानानि स्युः। यस्मिन् गेहे पारिवारिकसदस्यैः मिलित्वा यज्ञादिकमनुष्ठीयते तत्र ध्रुवा शान्तिः भवति।

**विश्व शान्तिः-**

सर्वत्र विश्वशान्तेः साम्राज्यं स्थापितं भवेदित्यस्ति संस्कृतज्ञानां विचारः।

देवभाषायाः साहित्यं कामं वैदिक लौकिकं वा शान्तिमेवाभिलषति। महाभारतकारः वेद्व्यासः ब्रवीति-

**दुःखदुद्विजते सर्वः सर्वस्य सुखमीप्सितम्।**

**सर्वाणि शान्तिमिच्छन्ति भूतानि नात्र संशयः।**

**विश्वशान्ति कामयमानः वेदो निगदति-**

**शन्नो मित्रः शं वरुणः शन्नो भवत्वर्यमा।**

**शन्न इन्द्रो बृहस्पतिः शन्नो विष्णुरूरूक्रमः।।**

**शान्ता द्यौः शान्ता पृथिवी, शान्तमिदमुर्वन्तरिक्षम्।**

**शान्ता उदन्वतीराप शान्ताः न सन्त्वौषधिः।।**

वेदमन्त्रेषु प्राचुर्येण निखिल ब्रह्माण्डस्य कल्याणार्थं शान्त्यर्थं प्रार्थना कृताः सन्ति।

चतुर्षु वेदेषु उपनिषदाद्षु च यत्र-तत्र-सर्वत्र तथा उपदेशाः सन्ति यान् अधीयानाः जनाः कदापि हिंसा अत्याचार आतंकवाद्दिषु कर्मसु संलग्नाः न भवन्ति।

रामायणमहाभारतदिष्वपि सहस्त्रशः श्लोकाः प्रेम्णः, एकत्वस्य अहिंसायाश्च प्रेरकाः सन्ति।

संस्कृतभाषा देवभाषा कथ्यते। देवाश्च न कदापि कस्यापि अहितं कामयन्ते। महाकवि कालिदासादिभिः विरचितेषु नाटकेषु नान्दी वचने, भरत वाक्ये चापि तादृशा एव सन्देशाः कर्णगोचरीभवन्ति। उदाहरणरूपेण अभिज्ञानशाकुन्तलस्य भरतवाक्यरूपं पद्यं पठनीयं वत्र्तते-

**प्रवत्र्ततां प्रकृतीहिताय पार्थिवः सरस्वती श्रुति महति महीयताम्।**
**ममापि च क्षपयतु नीललोहितः पुनर्भवं परिगत शक्तिरात्मभूः।।**

अभिज्ञान 7/34

अस्माकं सुदृढोऽयं विश्वासः, संस्कृतज्ञाः न कदापि विध्वंस, आतंकवादेषु दुष्कर्मसु कृतादराः तेतु सर्वदा सर्वत्र सर्वेषा हितमेव कामयन्ते।

# भारतीय ज्ञान परम्परा में आयुर्वेद की सार्वभौमिकता

**लेखिका - श्वेता**
**मार्गदर्शक - प्रो.ललितकुमार त्रिपाठी**
**सहमार्गदर्शिका - डॉ गायत्री देशपाण्डे**
**गङ्गानाथ झा परिसर, प्रयागराज, केन्द्रीयसंस्कृतविश्वविद्यालय**

**शोधसार**

यह शोध भारतीय ज्ञान परम्परा में निहित असीम ज्ञान की श्रृंखलारूपी एक ऐसी वैतरणी नदी में डुबकी लगवाने का कार्य करेगा जिसके आनन्द से व्यक्ति अपने जीवन को सहज व स्वाभाविकता का एक अत्यन्त सुगम समन्वय पाता है। यूँ तो हमारा मन भारतीय ज्ञान परम्परा को शाश्वत ज्ञान परम्परा कहने को करता है। क्योंकि इसमें निहित सभी तथ्य मानव-मात्र के मन में चल रहे सभी प्रश्नों का एक सरल समाधान है तथा जीवन जीने की एक अनोखी कला है। तदपि हम इस ऋषि परम्परा की शाश्वत नदी में डुबकी लगाते हुए उनके ज्ञान की शीतलता से तरोताजा होते हुए उन्हीं के द्वारा चलाई जा रही इस शब्द परम्परा को भी पूरी श्रद्धा व भाव से स्वीकारते हुए भारतीयता की इस अनूठी देन ज्ञान परम्परा को हृदयंगम करते हुए उसी का अनुगमन करेंगें तथा **अनुव्रतः पितुः पुत्रः** इस वेदवाक्य को कृतार्थ करने का प्रयास करेंगें।

प्रस्तुत शोध भारतीय ज्ञान परम्परा की एक अद्वितीय देन आयुर्वेद अथवा आयुशास्त्र में निहित कुछ महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तों की वर्तमान प्रासंगिकता को तथा सार्वभौमिकता को प्रस्तुत करने का प्रयास करेगा। वास्तव में आयुर्वेद का परम ध्येय भी अन्य दर्शनशास्त्रों के समान निःश्रेयस् अथवा मोक्षप्राप्ति ही है तभी तो आचार्य चरक सूत्रस्थान के पहले ही अध्याय में आयुर्वेद के अवतरण की श्रृंखला को दर्शाने के बाद सर्वप्रथम आयुर्वेद के प्रमुख प्रयोजन के रूप में कहते हैं-

**धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्॥**

इस प्रयोजन में निहित तात्पर्यार्थ को गहराई से समझने पर यह निःसन्देह स्पष्ट है कि आयुर्वेद आयु की रक्षा की कामना तो करता है परन्तु वास्तव में उसका उद्देश्य पुरुषार्थचतुष्टय की सिद्धि से अपने जीवन की सिद्धि करना है। इस प्रकार आयुर्वेद एक विभिन्न दर्शन होते हुए भी सभी दर्शनों के ध्येय से अनन्यतम ही सिद्ध होता है।

प्रस्तुत शोध में हम आयुर्वेद परम्परा में निहित ऐसी ही कुछ अन्य पहलुओं पर ध्यान देने का प्रयास करेंगें जो यह सिद्ध करेगा कि आयुर्वेद के सिद्धान्त आज भी अपनी प्रासङ्गिकता की गूंज से ध्वन्यमान हैं तथा उनका प्रयोग हमें न केवल स्वस्थ करेगा अपितु एक सहज जीवन शैली प्रदान कर जीवन के चरम लक्ष्य मोक्ष की ओर उन्मुख करेगा।

चरक के सूत्रस्थान में वर्णित अग्र्य प्रकरण ऐसे ही अग्र्य द्रव्यों का एक सार मात्र है जो स्पष्टतया मानव के जीवन को स्वस्थ बनाने तथा रोगों से दूर करने में आज भी प्रायः अपनी वही भूमिका निभाते हैं जितना आज से हजारों साल पहले । यद्यपि आचार्य चरक तभी अग्र्य प्रकरण की समाप्ति पर सभी आहार्य, औषध व विहार्य द्रव्यों के विषय में एक सिद्धान्त पक्ष रखकर अपने लचीलेपन का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं कि ये सभी अग्र्य द्रव्य सामान्य बुद्धि रखने वाले व्यक्ति को स्वस्थ व रोगों से दूर रखने में मात्रा, काल, देश, प्रकृति आदि के अनुसार सहायता करेंगेे परन्तु बुद्धिमान आचार्य व वैद्य तत्तत् द्रव्यों के गुणों का अध्ययन कर विभिन्न परिस्थितियों तथा प्रकृति परीक्षण द्वारा समान गुणों वाले अन्य द्रव्यों का प्रयोग कर इन अग्र्यों की प्रासंगिकता को सदा बनाये रखें।

इसी गहन तत्त्व का विश्लेषण व अनुशीलन नवीन शिक्षा नीति बी.एम.एस के छात्रों के लिए व्यावहारिक ज्ञान के तौर पर यह निर्धारित कर चुकी है कि वर्तमान में आयुर्वेद के क्षेत्र में अध्ययनरत छात्र विभिन्न विषयविशेषज्ञ वैद्यों व चिकित्सकों के पास जाकर वर्तमान में उनके द्वारा प्रयोग किये जाने वाले अग्र्य द्रव्यों का विश्लेषण कर उन्हें रिकॉर्ड रूप में अपने कार्य के रूप में संग्रहीत करेंगें तथा एक सूची तैयार करेंगें कि कौन सा अग्र्य द्रव्य प्राचीन रूप में ही अपने कार्यानुसार प्रयोग किया जा रहा है कौन से नवीन अन्य द्रव्य तत्तद् क्षेत्र में अनुपलब्धता अथवा अन्य किन्हीं कारणों से वर्तमान में प्रयोग किये जा रहे हैं।

इस प्रकार आयुर्वेद का चिकित्सा का **सामान्य-विशेष** सिद्धान्त आज भी

उसी रूप में कार्य करता हुआ रोग के मूल तक पहुँचकर तथा स्वस्थ व्यक्ति की प्रकृति का परीक्षण कर उसे स्वस्थ बनाये रखने का अनथक प्रयास करता आ रहा है । परिणाम यह है कि आधुनिकता की इस दौड़ में आज पुनः सुख की चाह तथा सम्यक् स्वास्थ्य की प्रबल इच्छा हर पीढ़ी के लोगों को आयुर्वेद की सरलता की ओर खींचे चली आ रही है। यही आयुर्वेद के सार्वभौमिक सिद्धान्तों का एक बहुत बड़ा उजला पक्ष है।

**कूटशब्दाः - हितायु, अहितायु, पाञ्चभौतिक संघटन, अग्र्य द्रव्य, सामान्य-विशेष सिद्धान्त, पथ्यापथ्याहार**

आयुर्वेद, भारतीय ज्ञान परंपरा का एक ऐसा अभिन्न अंग है, जो केवल चिकित्सा पद्धति नहीं बल्कि जीवन जीने का एक संपूर्ण विज्ञान है। यूँ तो इसके सभी सिद्धांत सार्वभौमिक और कालातीत हैं परन्तु उनमें से कुछ महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तों पर हम यहाँ दृष्टिपात् करेंगें ।

* **पंचमहाभूत सिद्धांतः** आयुर्वेद के अनुसार, शरीर पंचमहाभूतों (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश) से बना है। यह एक ऐसा मौलिक सिद्धांत है जो समय और वैज्ञानिक खोजों के साथ बदलता नहीं है। आधुनिक विज्ञान भी मानता है कि हमारा शरीर विभिन्न तत्वों से मिलकर बना है, और भले ही इन तत्वों का नामकरण या उनकी खोज की प्रक्रिया अलग हो, लेकिन मूल विचार वही है। आयुर्वेद में यह सिद्धांत केवल शारीरिक रचना तक सीमित नहीं है, बल्कि यह प्रकृति, आहार और रोगों को समझने का आधार भी है।

* **अग्र्य द्रव्य (उत्कृष्ट औषधि)** का व्यावहारिक उपयोग: चरक संहिता में वर्णित '**अग्र्य द्रव्य**' (उत्कृष्ट औषधि) आज भी उतना ही प्रासंगिक है। यह इस बात का प्रमाण है कि आयुर्वेद का ज्ञान केवल सैद्धांतिक नहीं, बल्कि अनुभव और प्रयोग पर आधारित था। हजारों साल पहले, जब आधुनिक प्रयोगशालाएं और उपकरण नहीं थे, तब भी वैद्यों ने केवल गहन अवलोकन और अनुभव के आधार पर विभिन्न द्रव्यों (पदार्थों) के गुणों और उनके चिकित्सीय उपयोगों को समझा और उन्हें सूचीबद्ध किया। मधुमेह (Diabetes) अथवा प्रमेग में चावल के सेवन का निषेध इसी बात को प्रमाणित करता है। फिलहाल में हुए आधुनिक विज्ञान के शोध ने भी अब यह सिद्ध कर दिया है कि उच्च ग्लाइसेमिक इंडेक्स वाले खाद्य पदार्थ, चावल इत्यादि मधुमेह रोगियों के लिए हानिकारक हो सकते

हैं।

**दर्शनों के साथ आयुर्वेद का समन्वय**

आयुर्वेद परम्परा के आचार्यों ने भारतीय दर्शनों न्याय, सांख्य तथा वैशेषिक इत्यादि का गहन अध्ययन कर आयुर्वेद जो कि एक पृथक दर्शन के रूप में स्थापित किया, जिसमें अन्य दर्शनों के सिद्धांतों का सुंदर समन्वय है।

*** वैशेषिक दर्शन और आयुर्वेद:** चरक संहिता के प्रथम अध्याय में वर्णित छह पदार्थ (सामान्य, विशेष, गुण, द्रव्य, कर्म, समवाय) वैशेषिक दर्शन के छह पदार्थों से मिलते हैं। वैशेषिक दर्शन सृष्टि के पदार्थों और उनके गुणों का विश्लेषण करता है। आयुर्वेद ने इन सिद्धांतों को चिकित्सा के संदर्भ में अनुकूलित किया, जहां इन पदार्थों का उपयोग स्वास्थ्य और रोग को समझने और उपचार करने के लिए किया जाता है। आयुर्वेद का लक्ष्य इन पदार्थों के संतुलन को बनाए रखना है।

**आयुर्वेदिक चिकित्सा का 'सामान्य-विशेष' सिद्धांत**

आयुर्वेद का 'सामान्य-विशेष' सिद्धांत आज भी चिकित्सा का एक मूलभूत आधार है। यह सिद्धांत कहता है कि:

* सामान्य से सामान्य की वृद्धि होती है। उदाहरण के लिए, यदि शरीर में वात बढ़ गया है, तो वातवर्धक आहार या विहार से वात और बढ़ेगा।

* विशेष से सामान्य का नाश होता है। वात बढ़ने पर वातशामक (वात को कम करने वाले) उपचारों का प्रयोग किया जाता है।

यह सिद्धांत केवल आयुर्वेद तक ही सीमित नहीं है, बल्कि सभी चिकित्सा पद्धतियां इसी पर आधारित हैं। कोई भी चिकित्सा पद्धति बढ़े हुए दोषों (रोग के कारण) को कम करने और घटे हुए दोषों को बढ़ाने का प्रयास करती है ताकि शरीर में संतुलन स्थापित हो सके। इस प्रकार, यह सिद्धांत एक सार्वभौमिक चिकित्सा सिद्धांत है जो सभी पद्धतियों में समान रूप से लागू होता है।

**संस्कृत भाषा और आयुर्वेद**

आयुर्वेद का समस्त ज्ञान संस्कृत भाषा में निहित है। संस्कृत केवल एक भाषा नहीं है, बल्कि यह ज्ञान को संचित करने का एक माध्यम है। संस्कृत की वैज्ञानिक संरचना और प्रत्येक शब्द का गहन अर्थ आयुर्वेद के जटिल सिद्धांतों को

सटीक रूप से व्यक्त करने में मदद करता है। इसके श्लोकों में ज्ञान की ऐसी गहराई है जिसे किसी अन्य भाषा में पूरी तरह से अनुवाद करना कठिन हो सकता है।

**अन्य महत्वपूर्ण जानकारी**

**आयुर्वेद की कालजयी प्रासंगिकता को समझने के लिए कुछ और बिंदुओं पर भी विचार करना आवश्यक है:**

* **कालातीत ज्ञान (भूत, वर्तमान, भविष्य)**: आयुर्वेद के सिद्धांत त्रिकालदर्शी हैं तथा कालातीत हैं जो हर युग में हर समय मात्रा, देश, काल, प्रकृति के अनुसार सदा प्रासंगिक बने रहेंगें।ये केवल वर्तमान रोग का इलाज नहीं करते, बल्कि भविष्य में होने वाले रोगों की रोकथाम पर भी जोर देते हैं। दिनचर्या और ऋतुचर्या का पालन इसी का उदाहरण है।

* **होलीस्टिक (समग्र) दृष्टिकोण**: आयुर्वेद केवल रोग का इलाज नहीं करता, बल्कि व्यक्ति के मन, शरीर और आत्मा के संतुलन पर ध्यान केंद्रित करता है। यह किसी रोग विशेष का नहीं, बल्कि रोगी का इलाज करता है।

* **वैयक्तिकरण (Individualization):** आयुर्वेद प्रत्येक व्यक्ति की प्रकृति (वात, पित्त, कफ) के अनुसार अलग-अलग उपचार सुझाता है। यही कारण है कि एक ही रोग के लिए दो व्यक्तियों का उपचार अलग हो सकता है। यह आधुनिक चिकित्सा के Personalized medicine की अवधारणा से काफी मिलता-जुलता है।

सभी बिंदु आयुर्वेद की वैज्ञानिकता और उसकी सार्वभौमिक प्रासंगिकता को बहुत अच्छी तरह से स्थापित करते हैं। यह सिद्ध करता है कि आयुर्वेद एक सिद्धांत, चिकित्सा और जीवन का ऐसा विज्ञान है जो हर युग में प्रासंगिक रहा है और रहेगा।

आयुर्वेद की प्रासंगिकता और इसके सिद्धांतों को समझने के लिए आहार्य, औषध और विहार्य द्रव्यों के बारे में जानना बहुत महत्वपूर्ण है। ये तीनों ही आयुर्वेद के उपचार का आधार हैं और आज भी हमारे जीवन में इनका गहरा प्रभाव देखा जा सकता है।

**आहार्य द्रव्य (भोजन संबंधी)**

आयुर्वेद में भोजन को केवल पेट भरने का साधन नहीं, बल्कि औषधि

के रूप में देखा जाता है। चरक संहिता में कहा गया है कि सही आहार ही सबसे अच्छी औषधि है।

*** जौ (Yava):** आयुर्वेद में जौ को श्रेष्ठ आहार माना गया है, विशेषकर मधुमेह (diabetes) और मोटापा (obesity) के रोगियों के लिए। इसे पचने में हल्का और शरीर को मजबूती देने वाला बताया गया है।

*** आधुनिक प्रासंगिकता:** आज आधुनिक पोषण विज्ञान (nutrition science) भी जौ को एक सुपरफूड मानता है। इसमें उच्च मात्रा में फाइबर होता है, जो रक्त शर्करा (blood sugar) को नियंत्रित करने में मदद करता है। यह कोलेस्ट्रॉल को कम करने और वजन घटाने के लिए भी एक उत्तम विकल्प है।

*** मूंग (Mudga):** आयुर्वेद में मूंग दाल को सभी दालों में श्रेष्ठ माना गया है। यह पचने में सबसे हल्की और त्रिदोषों (वात, पित्त, कफ) को संतुलित करने वाली है।

* **आधुनिक प्रासंगिकता:** मूंग दाल प्रोटीन का एक उत्कृष्ट स्रोत है और इसमें कम कैलोरी होती है। इसे पचाना आसान है, इसलिए यह बीमार व्यक्तियों और शिशुओं के लिए भी उपयुक्त है। आधुनिक डाइटीशियन भी इसे वजन घटाने और संतुलित आहार के लिए सुझाते हैं।

**औषध द्रव्य (औषधीय)**

आयुर्वेद में कई ऐसी औषधियां हैं जिनका उपयोग आज भी व्यापक रूप से किया जाता है।

*** अश्वगंधा (Ashwagandha):** आयुर्वेद में इसे रसायन और बलवर्धक बताया गया है, जो तनाव को कम करने और शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता (immunity) बढ़ाने में मदद करता है।

* **आधुनिक प्रासंगिकता:** अश्वगंधा को एक एडाप्टोजेन (adaptogen) के रूप में जाना जाता है। यह शरीर को तनाव और चिंता से लड़ने में मदद करता है। आज की भागदौड़ भरी जिंदगी में तनाव एक बड़ी समस्या है, और अश्वगंधा के कैप्सूल और चूर्ण का उपयोग इसे दूर करने के लिए किया जाता है। आधुनिक शोध भी इसके इन गुणों की पुष्टि करते हैं।

*** गुग्गुल (Guggul):** आयुर्वेद में गुग्गुल को मेदोहर (वसा कम करने

वाला) और संधिगत वातनाशक (जोड़ों के दर्द को दूर करने वाला) बताया गया है।

* **आधुनिक प्रासंगिकता:** आधुनिक विज्ञान ने गुग्गुल के कोलेस्ट्रॉल कम करने वाले गुणों को सिद्ध किया है। इसका उपयोग कई आयुर्वेदिक और हर्बल दवाओं में कोलेस्ट्रॉल और ट्राइग्लिसराइड्स को नियंत्रित करने के लिए किया जाता है। यह जोड़ों के दर्द और सूजन को कम करने में भी प्रभावी माना जाता है।

**विहार्य द्रव्य (जीवनशैली संबंधी)**

आयुर्वेद में केवल आहार और औषधि पर ही ध्यान नहीं दिया गया है, बल्कि स्वस्थ रहने के लिए सही जीवनशैली (विहार) पर भी जोर दिया गया है।

* **नियमित व्यायाम (Vyayama):** आयुर्वेद में प्रतिदिन अपनी शारीरिक क्षमता के अनुसार व्यायाम करने की सलाह दी गई है। यह शरीर को हल्का, फुर्तीला और मजबूत बनाता है।

* **आधुनिक प्रासंगिकता:** आज व्यायाम को शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के लिए सबसे महत्वपूर्ण माना जाता है। योग, प्राणायाम, जॉगिंग और अन्य व्यायामों को डॉक्टर भी स्वस्थ रहने और बीमारियों से बचने के लिए सुझाते हैं।

* **निद्रा (Nidra):** आयुर्वेद में पर्याप्त और गुणवत्तापूर्ण नींद को सुख-दुख का कारण बताया गया है। इसे शरीर के पुनर्निर्माण और मन को शांत रखने के लिए आवश्यक माना जाता है।

**आयुर्वेद के कुछ अन्य सिद्धांतों की मौलिकता और प्रासंगिकता**

आयुर्वेद के कुछ ऐसे सिद्धांत हैं, जो हजारों साल पहले दिए गए थे, लेकिन आज भी आधुनिक विज्ञान की कई खोजों का आधार हैं या उनसे मेल खाते हैं।

**1. त्रिदोष सिद्धांत (वात, पित्त, कफ)**

आयुर्वेद का त्रिदोष सिद्धांत शरीर को नियंत्रित करने वाले तीन मूल ऊर्जाओं (दोषों) पर आधारित है। यह सिद्धांत बताता है कि किसी भी व्यक्ति का स्वास्थ्य इन तीन दोषों के संतुलन पर निर्भर करता है।

* **मौलिकता:** यह सिद्धांत केवल रोग के लक्षणों को नहीं, बल्कि उसके मूल कारण को समझने पर जोर देता है। यह शरीर की आंतरिक कार्यप्रणाली को

समझने का एक अनूठा तरीका है।

* **प्रासंगिकता:** आधुनिक विज्ञान आज "Personalized Medicine" (व्यक्तिगत चिकित्सा) की बात कर रहा है, जहाँ हर व्यक्ति के जेनेटिक (आनुवंशिक) और शारीरिक बनावट के अनुसार उपचार किया जाता है। आयुर्वेद का त्रिदोष सिद्धांत इसी का एक प्राचीन रूप है। यह हर व्यक्ति की प्रकृति (वात, पित्त या कफ प्रधान) के अनुसार जीवनशैली, खान-पान और उपचार का सुझाव देता है, जो आज भी उतना ही प्रभावी है।

**2. दिनचर्या और ऋतुचर्या**

आयुर्वेद में स्वस्थ रहने के लिए दिनचर्या (दिनचर्या) और ऋतुचर्या (मौसमी दिनचर्या) का विस्तृत वर्णन मिलता है। इसमें सुबह उठने से लेकर रात को सोने तक की सभी गतिविधियों और मौसम के अनुसार खान-पान का नियम बताया गया है।

* **मौलिकता:** यह सिद्धांत केवल रोग होने पर इलाज की बात नहीं करता, बल्कि रोग को होने से रोकने पर जोर देता है। यह स्वास्थ्य की रोकथाम (Preventive healthcare) का एक बेहतरीन उदाहरण है।

* **प्रासंगिकता:** आज की भागदौड़ भरी जिंदगी में तनाव, अनिद्रा और खराब पाचन जैसी समस्याएं आम हैं। आयुर्वेद में सुझाए गए नियम जैसे - सुबह जल्दी उठना, ध्यान और व्यायाम करना, सही समय पर भोजन करना और मौसमी फलों व सब्जियों का सेवन करना - आज भी इन समस्याओं से बचने के लिए सबसे प्रभावी तरीके माने जाते हैं। आधुनिक विज्ञान भी इन नियमों को शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के लिए आवश्यक मानता है।

**अग्र्य द्रव्य और उनकी आज भी उपयोगिता**

चरक संहिता में अग्र्य द्रव्य (सर्वोत्तम औषधि) का उल्लेख है, जो किसी विशेष रोग या स्थिति के लिए सबसे उपयुक्त माने जाते हैं। इनका महत्व आज भी उतना ही है, जितना हजारों साल पहले था।

**1. हरीतकी : हरीतकी पथ्यानाम् श्रेष्ठतमा। (च.सू.२५.४०)**

➢ हरीतकी पथ्य द्रव्यों में सर्वश्रेष्ठ है क्योंकि हरीतकी का उचित मात्रा में सेवन सभी कालों में, सब अवस्थाओं में, वयःअवस्थाओं में पथ्य है। यह पित्त की विरेचक है क्योंकि

अनुलोमक है। अन्य पथ्य द्रव्यों का सेवन देश, काल, प्रकृति तथा अवस्थानुसार हितकर होगा जबकि हरीतकी सभी स्थितियों में सात्म्य है, इसलिए श्रेष्ठ है।

**सभी रोगों के लिए उत्तम**

चरक संहिता में कहा गया है, "हरीतकी सभी रोगों को दूर करने वाली और दीर्घायु प्रदान करने वाली है।"

*** उपयोगिता:** हरीतकी, जिसे हरड़ भी कहते हैं, एक बहुमुखी औषधि है। यह पाचन तंत्र को मजबूत करती है, कब्ज दूर करती है और शरीर से विषाक्त पदार्थों (Toxins) को बाहर निकालने में मदद करती है।

*** आधुनिक संदर्भ:** आज, पाचन संबंधी समस्याएं बहुत आम हैं। हरीतकी का प्रयोग पाचन सुधारने, आंतों को साफ रखने और शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता (Immunity) बढ़ाने के लिए आज भी किया जाता है। कई आधुनिक आयुर्वेदिक उत्पादों में भी इसका उपयोग होता है।

**2. पिप्पली: पिप्पलीमूलं दीपनीयपाचनीयानाहप्रशमनानाम्** (च.सू.२५.४०)

**सरलार्थ -** पिप्पलीमूल उष्णवीर्य तथा विपाक वाला होने से अग्निवृद्धि कर दीपनीय है तथा अग्निमान्द्य के कारण हुई पाचन की विकृति को भी ठीक करता है, पाचन ठीक कर, आनाह अर्थात् अफारा इत्यादि का भी प्रशमन करता है।

*** उपयोगिता:** पिप्पली (लॉन्ग पेपर) श्वसन तंत्र को साफ करने और कफ को बाहर निकालने में मदद करती है। यह अस्थमा, ब्रोंकाइटिस और सर्दी-खांसी जैसी समस्याओं में बहुत प्रभावी है।

*** आधुनिक संदर्भ:** श्वसन तंत्र से जुड़ी समस्याएं, जैसे अस्थमा और प्रदूषण के कारण होने वाली एलर्जी, आज भी बड़ी स्वास्थ्य चुनौतियाँ हैं। पिप्पली का उपयोग इन समस्याओं को दूर करने के लिए आज भी कई आयुर्वेदिक दवाओं और घरेलू उपचारों में किया जाता है।

**3. आमलकी (आंवला): आमलकं वयःस्थापनानाम् (च.सू.२५.४०)**

**रसायन (कायाकल्प) के लिए सर्वोत्तम**

➢ आंवला त्रिदोषशामक होने से वयःस्थापन अर्थात् आयु के अकाल जीर्णता को रोकने वाले द्रव्यों में सर्वश्रेष्ठ है। आंवले का वीर्य शीत है

तथा यह लवणरहित पांचों रसों से युक्त होने के कारण त्रिदोषशमन की क्षमता रखता है। इसमें प्रधान रस अम्ल होने पर भी अपवाद रूप से यह पित्त का शमन करता है क्योंकि इसका वीर्य शीत है। यह प्रभाव से अर्थात् अचिन्त्य शक्ति के कारण त्रिदोषशामक है एवं रस से वीर्य, वीर्य से विपाक, विपाक से प्रभाव अधिक बलशाली होता है। पित्त प्रकृति वालों के लिए यह नियमित रूप से सेवनीय है।

प्राचीन समय से ही आमलक को फलों में सर्वश्रेष्ठ फल के रूप में माना जाता था तथा फलभाग के साथ इसके अन्य भागों को जल में मिलाकर स्नान करने की विधि प्रचलित थी। वर्तमान में आयुर्वेदिक औषधियों में सर्वाधिक प्रयुक्त होने वाले द्रव्यों में एक आमलक अर्थात् आंवला है।

* **उपयोगिता:** आंवला विटामिन सी का सबसे समृद्ध प्राकृतिक स्रोत है। यह रोग प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाता है, बालों और त्वचा के लिए फायदेमंद है, और हृदय के लिए भी लाभकारी है।

* **आधुनिक संदर्भ**: आज विटामिन सी और एंटीऑक्सीडेंट्स के महत्व को विज्ञान ने भी स्वीकार किया है। आंवले का जूस, पाउडर और मुरब्बा आज भी हमारी डाइट का हिस्सा है, जो शरीर को स्वस्थ रखने और उम्र बढ़ने की प्रक्रिया को धीमा करने में मदद करता है।

इन सभी उदाहरणों से यह स्पष्ट होता है कि आयुर्वेद के सिद्धांत केवल पुराने विचार नहीं हैं, बल्कि वे कालजयी हैं। इनकी मौलिकता इस बात में है कि ये हजारों साल पहले दिए गए थे और इनकी प्रासंगिकता इस बात में है कि ये आज भी आधुनिक जीवन की समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करते हैं।

इन सभी उदाहरणों से यह स्पष्ट होता है कि आयुर्वेद के सिद्धांत केवल प्राचीन ज्ञान नहीं हैं, बल्कि ये आज भी हमारे स्वास्थ्य और जीवनशैली के लिए एक व्यावहारिक मार्गदर्शक हैं।

**आयुर्वेद को समझने हेतु मूल-सिद्धान्तों का एक विस्तृत अध्ययन**

**व्याधि की वृद्धि के कारण** - चरक निदान अर्थात् व्याधि के निमित्त कारण के तीन मुख्य घटकों के रूप में **असात्मेन्द्रियार्थ संयोग**, **प्रज्ञापराध (धीधृतिस्मृतिविभ्रम) तथा परिणाम** को स्वीकारते हैं।

**निदानं त्रिविधम् - असात्मेन्द्रियार्थसंयोगः, प्रज्ञापराधः, परिणामश्चेति॥**

**(च.नि.१.३)**

वहीं यज्जः पुरुषीय अध्याय में पुरुष और व्याधि की वृद्धि के कारणों का बताते हुए महर्षि आत्रेय **आहार की अहम् भूमिका** को दर्शाते हुए कहते हैं कि **हितकारी वस्तुओं का आहाररूप में उपयोग** ही **पुरुष की वृद्धि** में एक मात्र कारण है तथा **अहितकारी वस्तुओं का सेवन** करने से **रोगों की वृद्धि** होना स्वाभाविक है।

**हिताहारोपयोग एक एव पुरुषवृद्धिकरो भवति, अहिताहारोपयोगः पुनर्व्याधिनिमित्तमिति॥ (च.सू.२५.३१)**

**हिताहारोपयोग एव** कहने से यहाँ तात्पर्य पुरुष की वृद्धि में हिताहार की प्रधानता को दर्शाना है न कि अन्य निद्रा, आचार, प्रज्ञापराध तथा असात्मेन्द्रियार्थ का निषेध करना है।

**६) हिताहार और अहिताहार की परिभाषा– (धातुओेंं की साम्यावस्था हेतु आहार की उपादेयता)**

हित और अहिताहार की परिभाषा प्रस्तुत करते हुए यज्जः पुरुषीय अध्याय में कहा गया है-

**समांश्चैव शरीरधातून् प्रकृतौ स्थापयति विषमांश्च समीकरोतीत्येतद्धितं विद्धि, विपरीतं त्वहितमिति॥ (च.सू.२५.३३)**

जो भोजन शरीर की सम **धातुओं को** प्रकृति अर्थात् समानावस्था में रखता है तथा विषम को भी समीकृत करता है वही हिताहार तथा उसके विपरीत अहिताहार है। यहाँ यद्यपि आहार द्रव्योंं का स्वरूपतः वर्णन नहीं है अपितु मात्रा आदि की अपेक्षा से सेवन किया जाय यह भाव प्रकट होता है।

लेकिन क्या इतना मात्र जान लेने से भूयिष्ठकल्प वैद्य सभी गम्भीर बातों को समझ पायेंगें ?

इसका उत्तर यह है कि किसी भी वैद्य को यदि ये जानना हो कि कैसे धातुओं को समीकृत किया जाये तो उसे आहार योग्य पदार्थों के गुण,( गुरु, लघु आदि) द्रव्य,(आप्य, आग्नेय इत्यादि) कर्म,( जीवनीय, बृंहणीय आदि) अवयव,(रस, विपाक,वीर्य आदि) मात्रादि एवं पुरुष की अवस्था का ज्ञान अवश्य होना चाहिए। जो कि बहुत प्रकार का होता है जिसका वर्णन आहारविधि में किया जायेगा-

**तेषां हि बहुविविधविकल्पा भवन्ति; आहारविधिविशेषांस्तु खलु लक्षणतश्चावयवतश्चानुव्याख्यास्यामः॥ (च.सू.२५.३५)**

इसके अतिरिक्त **हिताहार** तथा **अहिताहार का निर्णय** मात्र प्रकृति के आधार पर नहीं किया जा सकता अपितु **मात्रा**, **काल**, **क्रिया** (संस्कार), **भूमि**, **देह**, **दोष** और **पुरुषभेद** से विपरीत गुण वाले हितकारी पदार्थ भी अहितकारी हो सकते हैं तथा इसके विपरीत अहितकारी पदार्थ भी हितकारी हो सकते हैं-

**हितसमाख्यातानामाहारजातानाम् अहितसमाख्यातानां च मात्राकालक्रियाभूमिदेहदोषपुरुषावस्थान्तरेषु विपरीतकारित्वमुपलभामह इति॥ (च.सू.२५.३२)**

**७) आयुर्वेद की परिभाषा में निहित हितायु व अहितायु -**

इस प्रकार हम देखते हैं कि अग्र्य की महत्त्वपूर्ण अवधारणाएं हिताहार, अहिताहार तथा पथ्याहार से सम्बन्धित ही हैं। अतः हमें हित व अहित को समझने के लिए चरक द्वारा दी गई आयुर्वेद की परिभाषा को समझना होगा क्योंकि इस परिभाषा में ही सर्वप्रथम हित व अहित शब्द प्रयुक्त करते हुए हितायु, अहितायु, सुखायु तथा दुखायु तथा इन सभी आयु के मान का ज्ञान कराने वाले शास्त्र को ही आयुर्वेद कहा गया है। तद्यथा-

**हिताहितं सुखं दुःखमायुस्तस्य हिताहितम्। मानञ्च तच्च यत्रोक्तमायुर्वेदः स उच्यते।। (च.सू.१.४१)**

अर्थात् जहाँ आयु के लिए हितकर तथा अहितकर द्रव्यों का वर्णन हो, तथा आयु का मान बतलाया जाए, जैसे अमुक रोग से ग्रस्त रोगी की आयु का प्रमाण अमुक रहेगा इत्यादि वर्णन प्राप्त होता हो तथा सुखपूर्वक व्यतीत आयु तथा दुख से ग्रस्त आयु का वर्णन मिलता हो उसे आयुर्वेद कहते हैं। इसी श्लोक की टीका में गङ्गाधर हित व अहित को स्पष्ट करते हुए कहते हैं-

- **हितम्-** रक्षणवर्द्धनभेदाद्विविधमेवाशैथिल्य-जनकाहाराचारभेषजादिकं[1] हितम्।
- **अहितम्-** ह्रासातिह्रासरूपशैथिल्यजनकरूपमहितम्।

---

[1] शिथिलीभवन्ति मांसानि, विमुच्यन्ते सन्धयः। (**च.चि.१.२**) अर्थात् ग्राम्याहार के सेवन से मांस शिथिल हो जाता है तथा सन्धियाँ छूट जाती हैं।

अर्थात् **अशैथिल्यजनक आहार, आचार, भेषज** को हितकारी तथा इसके विपरीत **शैथिल्यजनक** तथा **अतिह्रासजनक आहारादि** का सेवन अहितकर है।

इस प्रकार विस्तृत अध्ययन से हमें ज्ञात होता है कि **आहार** सभी प्रकार की **आयु की प्राप्ति** तथा **व्याधि की वृद्धि** में **महत्त्वपूर्ण कारक** के रूप में सिद्ध होता है।

**८) आयुर्वेद के प्रयोजन में निहित अग्र्यों की उपादेयता -**

आयुर्वेद के प्रयोजन को गहनतया समझने पर हमें समझ आता है कि कैसे अग्र्यों का प्रयोग इस प्रयोजन की सिद्धि में अहम् भूमिका निभाता है। चिकित्सा की अन्य पद्धतियाँ जहाँ मुख्य तौर पर व्याधि परिमोक्षण को अपना ध्येय समझती हैं वहीं आयुर्वेद स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य की रक्षा तथा आतुर के विकारप्रशमन को अपना ध्येय व प्रयोजन मानता है। तद्यथा-

- **प्रयोजनं चास्य स्वस्थस्य स्वास्थ्यरक्षणमातुरस्य विकारप्रशमनं च॥ च.सू.३०.२६**
- **आयुः कामयमानेन धर्मार्थसुखसाधनम्। आयुर्वेदोपदेशेषु विधेयः परमादरः।। अ.ह्र. 1.2**
- **व्याध्युपसृष्टानां व्याधिपरिमोक्षः स्वस्थस्य रक्षणं च। (सु.सू.१.१२)**
- **धातुसाम्यक्रिया चोक्ता तन्त्रस्यास्य प्रयोजनम्॥ (च.सू.१.५३)**

अतः स्पष्ट है कि आयुर्वेद का प्रयोजन स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य का रक्षण करना तथा आतुर व्यक्ति के विकारों का शमन कर उसे स्वस्थ स्थिति में लाना है तथा धातुसाम्य करना है। इस स्थिति में हमारे विचार से अग्र्य की उपादेयता और अधिक बढ़ जाती है क्योंकि अग्र्य में वर्णित आहार्य व विहार्य पदार्थ जहाँ मुख्यतया विकारों के विघात के लिए उपादेय प्रतीत होते हैं वहीं स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य की रक्षा में भी इनका अपना महत्त्व है। तद्यथा-

- **स्वास्थ्य रक्षा के लिए अग्र्य-** अन्नं वृत्तिकराणां श्रेष्ठम्।
  आयुर्वेदोऽमृतानाम्।
  तद्विद्यसंभाषा बुद्धिवर्धनानाम्।

- **व्याधिपरिमोक्षण के लिए अग्र्य-** सर्पिर्वातपित्तप्रशमनानाम्।
  त्रिवृत् सुखविरेचनानाम्।
  तैलगण्डूभ्यासो दन्तबलरुचिकराणाम्।

**९) चरक संहिता का प्रयोजन व अग्र्यों का अन्तःसम्बन्ध-**

आयुर्वेद के प्रयोजन की भांति ही **अग्र्यों का अध्ययन** चरक शास्त्र के प्रयोजन को भी सिद्ध करने में अत्यन्त सहायक प्रतीत होता है। जैसा कि इस तन्त्र के प्रयोजन एवं कार्य को जानने के बाद स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है-

**कार्यं धातुसाम्यमिहोच्यते। धातुसाम्यक्रिया चोक्ता तन्त्रस्यास्य प्रयोजनम्॥ (च.सू.१.५३)**

अर्थात् धातुओं की वैषम्यस्थिति को समस्थिति में लाना तथा **धातुसाम्य** अथवा आरोग्य[1] अर्थात् धातुसाम्यक्रिया ही इस तन्त्र का मुख्य प्रयोजन है। इस स्थिति में अग्र्यों का विस्तृत विवेचन व प्रयोग धातुओं को समस्थिति में रखने तथा वैषम्य को प्राप्त हुई धातुओं का क्षय अथवा वृद्धि कर पुनः समस्थिति में लाने में अतीव लाभप्रद है। जैसे-

★ **धातुसाम्य को बनाये रखने हेतु अग्र्य-**

क्षीरं जीवनीयानाम्।
उदकमाश्वासकराणाम्।
अन्नं वृत्तिकराणां श्रेष्ठम्।
आमलकं वयः स्थापनानाम्।
हरीतकी पथ्यानाम्।
क्षीरघृताभ्यासो रसायनानाम्।

★ **विषमधातुओं की वृद्धि की स्थिति को सम करने हेतु अग्र्य-**

मधु श्लेष्मपित्तप्रशमनानाम्।
सर्पिर्वातपित्तप्रशमनानाम्
तैलं वातश्लेष्मप्रशमनानाम्।

**विषमधातुओं की क्षय की स्थिति को सम करने हेतु अग्र्य-**

---

[1] सुखसंज्ञकमारोग्यम्।

अविक्षीरं श्लेष्मपित्तजननानाम्।
इक्षुर्मूत्रजननानाम्।
जाम्बवं वातजननानाम्।

यहाँ मात्र कुछ अग्र्यों पर ही संक्षिप्ततया दृष्टिपात् करने पर चरक शास्त्र के प्रयोजन को सिद्ध करने में अग्र्यों की महत्त्वपूर्ण भूमिका स्वीकारी जा सकती है। एवंप्रकारेण अन्ततोगत्त्वा हम यह जान पाते हैं कि अग्र्यों का प्रयोग व अध्ययन चिकित्सा के क्षेत्र तथा स्वस्थ व्यक्ति के जीवन में आयुष्य को बढ़ाने वाले उपाय के रूप में एक नई दृष्टि प्रदान करता है।

यहाँ से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि स्वास्थ्य तथा व्याधि को यथावत् समझकर ही आयुर्वेद अथवा चरक के प्रयोजन व कार्य को पूर्णरूपेण सिद्ध किया जा सकता है। अतः इससे आगे इन दोनों अवधारणाओं को समझने हेतु निम्न परिभाषाओं पर ध्यान डालना आवश्यक हो जाता है-

**१०) आयुर्वेद के अनुसार स्वस्थ होने की परिभाषा-**

**समदोषः समाग्निश्च समधातुमलक्रियः। प्रसन्नात्मेन्द्रियमनः स्वस्थ इत्यभिधीयते॥ सु.सू.१५.४४**

अर्थात् जिसके वातादि दोष समावस्था में होते हैं, जठराग्नि भी सम होती है तथा सप्तधातुओं तथा तीनों मलों का कार्य यथोचित् होता रहता है, तथा इन सभी कारणों से व स्वभावतया भी जिनका मन, इन्द्रियां तथा आत्मा प्रसन्न रहता है उसे स्वस्थ कहते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आयुर्वेद की विशाल दृष्टि व पद्धति मनुष्य के न केवल शारीरिक अपितु मानसिक व आत्मिक प्रसन्नता को ध्यान में रखते हुए समग्र स्वास्थ्य की अवधारणा को वरीयता देती है।

अधुना ध्यातव्य यह है कि जिन रोगों से परिमोक्षण आयुर्वेद का दूसरा प्रयोजन है उन व्याधियों की तथा रोगों की धारणा क्या है-

**११) आयुर्वेद के अनुसार व्याधि की धारणा क्या है -**

**विकारो धातुवैषम्यं साम्यं प्रकृतिरुच्यते। सुखसंज्ञकमारोग्यं विकारो दुःखमेव च॥ च.सू.९.४**

अर्थात् शरीर की धातुओं (**धारणाद् धातवः**) अर्थात् शरीर की धारणा करने वाले सभी पदार्थ,जिनमें न केवल रस, रक्त, मांस,मज्जा इत्यादि तथा वात,

पित्त, कफ दोषों का समावेश होता है अपितु इन भाव पदार्थों में दोष पदार्थ-मल, स्वेद और क्लेदादि भी सम्मिलित हैं, क्योंकि ये सब भी शरीर को धारण करते हैं। तद्यथा-

**दोषधातुमलमूलं हि शरीरम्॥ (सु.सू.१५.३)**

इन सभी में से किसी की भी विषमता का नाम विकार अथवा रोग है और इन सभी धातुओं का साम्य अर्थात् अनुकूलता रहने का नाम प्रकृति है। **आरोग्यता ही सुख** है तथा विकार अथवा **व्याधि का होना दुख** है।

सुश्रुत भी व्याधि को परिभाषित करते हुए कहते हैं-

**तदुःखसंयोगा व्याधय उच्यन्ते। ते चतुर्विधाः -आगन्तवः, शारीराः, मानसाः, स्वाभाविकाश्चेति॥ (सु.सू.१.२२)**

जिनका संयोग सब मनुष्यों को दुख देता है वे व्याधियाँ कहलाती हैं। ये व्याधि चार प्रकार की हैं- **आगन्तुक**, **शारीर**, **मानस** व **स्वाभाविक**। अर्थात् चरक व सुश्रुत दोनों ही **व्याधियों को दुखों का कारण** मानते हैं। चरक भी व्याधियों को तीन प्रकार का स्वीकारते हुए कहते हैं-

**त्रयो रोगा इति निजागन्तुमानसाः। तत्र निजः शरीरदोषसमुत्थः, आगन्तुर्भूतविषवाय्वाग्निसम्प्रहारादिसमुत्थः। मानसः पुनरिष्टस्यालाभाल्लाभाच्चानिष्टस्योपजायते॥ (च.सू.११.२४)**

व्याधि की अवधारणा को कुछ मुख्य बिन्दुओं के रूप में जानने का प्रयास करते हैं-

- किसी भी भाव पदार्थ की समावस्था बिगड़ने के बाद विषमावस्था में आना ही व्याधि का कारण है तथा परिणामस्वरूप व्यक्ति को दुख प्राप्त होता है।
- आयुर्वेद के अनुसार व्याधि उत्पत्ति का मूल कारण या दूषित करने का कर्तृत्व केवल दोषों के पास है, धातुओं के पास नहीं। अतः दोष ही धातुओं को दूषित करते हैं। तद्यथा-
- **दोष की निरुक्ति - धातवश्च मलाश्चापि दुष्यन्त्येभिर्यतस्ततः। वातपित्तकफा एते त्रयो दोषा इति स्मृताः॥ (भा.प्र.मि.१००)**

**प्रकृत्यारम्भकत्वे सति दुष्टिकर्तृत्वं दोषत्वम्॥**

**वायुः पित्तं कफश्चोक्तः शारीरो दोषसङ्ग्रहः। मानसः पुनरुद्दिष्टो रजश्च तम एव च॥ (च.सू.१.५७)**

- जो तीनों दोषों, सप्त धातुओं तथा सम्पूर्ण मल पदार्थों को को दूषित कर देते हैं वे दोष हैं।
- वात, पित्त और कफ को दोष कहा जाता है क्योंकि ये देहधारण के प्रमुख घटक होने के बाद भी शरीर की अन्य धातुओं को दूषित करने की क्षमता रखते हैं।
- शारीरिक दोषों के कारण तो वात, पित्त तथा कफ हैं तथा मानसिक रोगों के कारण रजस् व तमस् हैं।
- ये दोष यदि समावस्था में रहते हैं तब कोई विकार उत्पन्न नहीं करते।
- दोषों की विषमता भी दो प्रकार की होती है- क्षय या वृद्धि। दोनों ही अवस्था में ये **दोषदूष्यसम्मूर्छना** को प्राप्त कर विकारों को उत्पन्न करते हैं।
- **दोषदूष्यसम्मूर्छना** अर्थात् दोषों का दूष्यों से मूर्छना कर लेना अर्थात् दोषों का अन्य किसी भाव पदार्थों से संयोग ही व्याधि का कारण है।
- दोष केवल प्रकुपित हो जाना ही व्याधि नहीं अपितु वह यह व्याधि का लक्षणमात्र है।
- परन्तु जब बढ़ा हुआ दोष अन्य किसी भावपदार्थ से मिलेगा तो बढ़ा हुआ दोष सन्धिगत, आमगत विकारों की वृद्धि करेगा अथवा व्याधि का रूप ले लेगा।
- परिणामस्वरूप व्याधि की अवस्था में प्रायः दोष व दूष्य दोनों से ही कुछ अलग लक्षण दिखाई देते हैं जैसे-**अम्लपित्तावस्था में बढ़ा हुआ पित्त रस व रक्त में मिलेगा तो छर्दि(Vomitting) होगी जबकि पित्त का लक्षण छर्दि नहीं है।**

यहाँ यह जानना आवश्यक हो जाता है कि धातुवैषम्य के मुख्य कारण क्या है जो कि निम्न हैं-

**१२) धातुओं के विषम होने तथा शारीरिक व मानसिक व्याधियों का कारण-**

**कालबुद्धीन्द्रियार्थानां योगो मिथ्या न चाति च। द्वयाश्रयाणां व्याधीनां त्रिविधो हेतुसङ्ग्रहः॥ (च.सू.१.५४)**

अर्थात् काल, बुद्धि और इन्द्रियों के विषयों(शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध) का समयोग अर्थात् उचित रूप में होना ही आरोग्य का कारण तथा इनका मिथ्यायोग,

अतियोग व अयोग होना ही दोनों प्रकार की व्याधियों का आश्रय तथा कारण माना गया है। उक्तञ्च-

**सुखहेतुर्मतस्त्वेकः समयोगः सुदुर्लभः॥**

अन्यच्च-

- **त्रिविधविकल्पं त्रिविधमेव कर्म प्रज्ञापराध इति व्यवस्येत्॥ (च.सू.११.४१)**

त्रिविध विकल्पम् से तात्पर्य यहाँ वाणी, मन और शरीर के अतियोग, अयोग व मिथ्यायोग को समझना चाहिए तथा ये सभी असम्यक् योग प्रज्ञापराध के कारण होते हैं अतः **प्रज्ञापराध** को ही इन तीनों अर्थात् (असात्मेन्द्रियार्थ, प्रज्ञापराध और परिणाम) में से मुख्य माना गया है तथा ये तीनों ही विकारों के कारण बनते हैं-

**असात्म्येन्द्रियार्थसंयोगः, प्रज्ञापराधः, परिणामश्चेति त्रयस्त्रिविधविकल्पा हेतवो विकाराणां, समयोगयुक्तास्तु प्रकृतिहेतवो भवन्ति॥ (च.सू.११.४३)**

**असात्म्येन्द्रियार्थसंयोग**, **प्रज्ञापराध** और **परिणाम** ये तीनों **अतियोग**, **अयोग** और **मिथ्यायोग** के द्वारा सभी रोगों के कारण बनते हैं तथा इन्हीं का **सम इन्द्रियार्थसंयोग**, **समबुद्धि-संयोग** और **समकाल-संयोग** ये तीनों स्वास्थ्य के कारण बनते हैं। इन सभी पारिभाषिक शब्दों का सामान्य अर्थ इस प्रकार है-

**प्रज्ञापराध- धीधृतिस्मृतिविभ्रष्टः कर्म्म यत् कुरुतेऽशुभम्। प्रज्ञापराधं तं विद्यात् सर्व्वदोषप्रकोपणम्॥ (सू.कतिधापुरुषीय)**

इस प्रकार धातुओं की समावस्था और विषमावस्था को साम्यावस्था में लाने की प्रक्रिया को कुछ इस प्रकार समझ सकते हैं-

- **धातुओं की समावस्था (आरोग्य) → पुरुष की वृद्धि → सुख की प्राप्ति**
- **धातुओं की विषमावस्था (व्याधि) → क्षय या वृद्धि → दोनों ही स्थिति को समावस्था में लाना → विकारों से मुक्ति**

इन दोनों ही स्थितियों में **अग्र्यों तथा आहार** की अहम् भूमिका है क्योंकि **अग्र्यों का प्रयोजन तो विकारों का उपशमन** करना ही है तथा **हिताहार का सेवन धातुसाम्य को बनाये रखने** के लिए अत्यन्त लाभप्रद है।

**१३) व्याधि की चिकित्सा एवं आयुर्वेद के प्रयोजन हेतु सामान्य विशेष सिद्धान्त**

**की उपादेयता -**

भारतीय दर्शन के षड्पदार्थवाद की भांति आयुर्वेद में भी छः पदार्थों को ही मान्यता दी गई है। वास्तव में अनन्त ब्रह्माण्डों वाली सम्पूर्ण चेतन व अचेतन सृष्टि के सभी सारतत्वों को समझने के लिए तन्निहित असङ्ख्य वस्तुओं को सारभूत रूप में समझने के लिए इसके मूलभूत तत्त्वों का प्रतिपादन करने वाले पदार्थों को कुछ वर्गों में वर्गीकृत कर शब्दों के माध्यम से सर्वसाधारण को परिचित कराने वाली विद्या को षड्विद्या अथवा षड्पदार्थवाद कहते हैं। उसी तरह आयुर्वेदज्ञों अथवा आयुर्वेद के ऋषियों ने इस शास्त्र का उपदेश देने से पूर्व आयुर्वेदाधारभूत षड् पदार्थों का अपने ज्ञानचक्षुओं से अवलोकन कर आयुर्वेद की अपथ्य-परिहार तथा पथ्योपादान रूप विधि को प्राप्त किया। ये षड् पदार्थ दर्शन के ही समान हैं परन्तु सामान्य तथा विशेष पदार्थ की चिकित्सा में प्रधानता होने के कारण इसका क्रम भारतीय षड्दर्शनों से भिन्न है तथा सामान्य- विशेष का उल्लेख सर्वप्रथम किया गया है अतः इससे इस सिद्धान्त की महत्ता तथा उपादेयता और अधिक प्रतिष्ठापित होती है। तद्यथा-

**महर्षयस्ते ददृशुर्यथावज्ज्ञानचक्षुषा। सामान्यं च विशेषं च गुणान् द्रव्याणि कर्म च॥**

**समवायं च तज्ज्ञात्वा तन्त्रोक्तविधिमास्थिताः। लेभिरे परमं शर्म जीवितं चाप्यनित्वरम्॥ (च.सू.१.२८-२९)**

इसके अतिरिक्त सामान्य तथा विशेष की परिभाषा करते हुए आचार्य चरक कहते हैं-

**सामान्यमेकत्वकरं विशेषस्तु पृथक्त्ववत्। तुल्यार्थता हि सामान्यं विशेषस्तु विपर्ययः॥ (च.सू.१.४५)**

अर्थात् एकत्व (एक समान) भाव को उत्पन्न करने वाला तथा समान गुण-धर्म वाला सामान्य होता है। वहीं वैशेषिक दर्शन के अनुसार- **"नित्यत्वे सति समानगुणवृत्तित्वम् अनेक समवेतत्वं सामान्यम्"** अर्थात् नित्य भाव से रहने वाला, समान गुण-धर्म वाला तथा अनेकों में समवेत रूप में रहने वाला सामान्य होता है। जैसे सभी मनुष्यों में रहने वाला मनुष्यत्व समान रहता है। सामान्य तीन प्रकार का होता है- द्रव्य सामान्य, गुण सामान्य, कर्म सामान्य।

इसी प्रकार विशेष ह्रास का कारण होता है तथा पृथक्त्व भाव वाला एवं

विपरीत कर्म वाला होने से विशेष भी तीन प्रकार का होता है- द्रव्य विशेष, गुण विशेष, कर्म विशेष।

सामान्य-विशेष सिद्धान्त से ही चिकित्सा का विधान है तथा उसे जाने बिना चिकित्सा हो ही नहीं सकती।

तद्यथा-

**सर्वदा सर्वभावानां सामान्यं वृद्धिकारणम्। ह्रासहेतुर्विशेषश्च प्रवृत्तिरुभयस्य तु॥ (च.सू.१.४४)**

अर्थात् समस्त पदार्थों का सब कालों में 'समान' अर्थात् समान (गुणादि) धर्म ही वृद्धि का कारण होता है तथा 'विशेष' अर्थात् गुणादि धर्मों का विभेद या विपरीत होना ह्रास का कारण है। किसी भी प्रकार के धातुवैषम्य जैसे- किसी धातु की वृद्धि अथवा किसी धातु की न्यूनता आदि को समावस्था में लाने के लिए यह सामान्य विशेष सिद्धान्त ही सदा चिकित्सा के लिए काम आयेगा। दोनों ही का शरीर के साथ सम्बन्ध समस्त पदार्थों की वृद्धि व ह्रास का कारण बनता है। परिणामस्वरूप शरीर में वृद्धि(शरीर का बनना) अथवा क्षय(शरीर का टूटना) दोनों ही क्रियाएँ निरन्तर होती रहती हैं। सामान्य की परिभाषा करते हुए आचार्य कहते हैं कि-

**सामान्यमेकत्वकरं** विशेषस्तु पृथक्त्ववत्। **तुल्यार्थता हि सामान्यं** विशेषस्तु विपर्ययः॥ (च.सू.१.४५)

अर्थात् एकत्व भाव को उत्पन्न करने वाला तथा समान गुण-धर्म वाला सामान्य होता है। वैशेषिक दर्शन के अनुसार सामान्य की परिभाषा निम्न हैं- **नित्यत्वे सति समानगुणवृत्तित्वम् अनेक समवेतत्वं सामान्यम्॥** अर्थात् नित्य भाव से रहने वाला, समान गुण-धर्म वाला तथा अनेकों में समवेत रूप में रहने वाला सामान्य होता है। जैसे गौओं में गोत्ववृत्ति समान रूप से होती है।

इस प्रकार सामान्य एकत्व तथा तुल्यार्थता अर्थात् समान धर्म को दर्शाने वाला है तथा विशेष पृथग्-भाव तथा असमान धर्म को दर्शाने वाला है। यहाँ **सामान्य** सामान्यतया **द्रव्यादि की समानता** को सूचित करता है। यथा- मांससेवन से मांस की वृद्धि होगी। **सामान्य मुख्यतया वृद्धि का कारण विरोधी कारण की अविद्यमानता की स्थिति** में होता है । जैसे-आमलकगत अम्लत्व पित्तगत अम्लत्व को नहीं बढ़ाता क्योंकि आमलकगत शैत्य अम्लत्व का विरोधी होता है।

**वृद्धिः समानैः सर्वेषां भावानां विपरीतविपर्ययः ॥**

आयुर्वेद के मुख्य प्रयोजन स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य रक्षण तथा व्याधि परिमोक्षण हेतु धातुसाम्य का रहना आवश्यक है। क्योंकि धातुवैषम्य ही रोग का कारण है और धातुवैषम्य ही रोगों की वृद्धि का कारण है। ऐसे में आरोग्य की प्राप्ति तथा रोग की निवृत्ति के लिए सामान्य विशेष के ज्ञान व व्यवहार की महती अनिवार्यता है। क्योंकि धातुवैषम्य में किसी धातु की वृद्धि अथवा ह्रास होता है। इस दृष्टि से क्षीण धातुओं की वृद्धि के लिए सामान्य सिद्धान्त के अनुसार धातु के समान द्रव्यों, समान गुण द्रव्यों तथा समान गुण-भूयिष्ठ द्रव्यों का सेवन अपेक्षित होता है। उसी प्रकार वृद्धि प्राप्त धातुओं को अपचित अथवा क्षीण करने के लिए विशेष सिद्धान्त का उपयोग करते हुए उससे विपरीत द्रव्यों, विपरीत गुण वाले द्रव्यों तथा विपरीत गुण भूयिष्ठ द्रव्यों का सेवन अपेक्षित होता है। जैसा कि चिकित्सा सिद्धान्त का उल्लेख करते हुए आचार्य वाग्भट्ट कहते हैं-

**क्षीणाः वर्धयितव्याः, वृद्धाः ह्रासयितव्याः, समाः पालयितव्याः ॥ (अ.सं.सू.२०)**

इस प्रकार शरीर में धातुसाम्य की प्राप्ति समान तथा विशेष द्रव्यों का सेवन करने से प्राप्त होती है, इस तथ्य से सामान्य विशेष सिद्धान्त की उपादेयता व्याधि परिमोक्षण में स्वतः सिद्ध होती है।

**१४) शरीर का गठन -** इस अध्याय में सबसे पहले पुरुष और व्याधि के कारण को सुनिश्चित करने के लिए सम्भाषा परिषद् में महर्षियों द्वारा काशिपति वामक के प्रश्नोंं का उत्तर देते समय अनेक विचारों की स्थापना की गई तथा अन्त में पुरुष तथा व्याधि की उत्पत्ति के सिद्धान्त को प्रतिपादित किया गया।

इस क्रम में अपने अपने मतों को रखते हुए पुरुष की उत्पत्ति की षड्धातुज पुरुष के रूप में व्याख्या करते हुए हिरण्याक्ष स्वमत प्रस्तुत करते हैं-

**षड्धातुजस्तु पुरुषो रोगाः षड्धातुजास्तथा। राशिः षड्धातुजो ह्येष साङ्ख्यैराद्यैः प्रकीर्तितः ॥ (च.सू.२५.१५)**

अर्थात् पुरुष छः धातुओं से उत्पन्न होता है जो कि आत्मा, पृथ्वी, अप्, तेज, वायु एवं आकाश है। इन्हीं छः धातुओं के असन्तुलित होने पर रोग भी उत्पन्न होते हैं। जैसा कि शारीर स्थान में कहा गया है-

**खादयश्चेतना षष्ठा धातवः पुरुषः स्मृतः। चेतनाधातुरप्येकः स्मृतः**

**पुरुषसंज्ञकः ॥ (च.शा.१.१६)**

अर्थात् ख इत्यादि पञ्च महाभूतों (आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी) से निर्मित इन्द्रियों तथा चेतना धातु के सम्मिलित रूप को पुरुष कहा जाता है। इसी षड्धातुज पुरुष को सुश्रुत ने भी **पञ्चमहाभूत शरीरि समवायः पुरुष (सु.सू.१)** अर्थात् पञ्च महाभूतों तथा आत्मा को पुरुष कहते हैं ऐसा कहकर संबोधित किया है।

यही षड्धातुज पुरुष सम्मिलित रूप से एवं शरीर और मन के रूप में पृथक् रूप से भी रोगों की अधिष्ठान भूमि है और जैसे यह रोगों की अधिष्ठान भूमि है ठीक वैसे ही सुख के आश्रयस्थान भी ये ही हैं। तद्यथा-

**शरीरं सत्त्वसंज्ञं च व्याधीनामाश्रयो मतः। तथा सुखानां, योगस्तु सुखानां कारणं मतः ॥ (च.सू.१.५५)**

यहाँ ध्यातव्य है कि प्रस्तुत श्लोक में शरीर का प्रथम उल्लेख किया गया, क्योंकि शरीर के रोगों को लक्ष्य करके ही आयुर्वेद शास्त्र की प्रवृत्ति (क्रियाकारित्व)है। शरीर से असम्बन्धित मन तो व्याधि का आश्रय नहीं बन सकता इसी कारण शरीर के साथ ही मन का ग्रहण किया गया है। ये दोनों ही पृथक् पृथक् भी व्याधि का आश्रय हो सकते हैं तथा कुछ उन्माद इत्यादि व्याधियाँ शरीर तथा मन दोनों में आश्रित होती हैं। ठीक वैसे ही शरीर औऱ मन आरोग्य के आश्रय भी होते हैं।

**१५) लोकपुरुष साम्य- यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे ॥**

उपर्युक्त उक्ति लोक पुरुष साम्य की सम्यक् व्याख्या करती प्रतीत होती है। कि जो भी हमारे इस शरीर अथवा यूँ कह लीजिए कि शरीरेन्द्रियसत्त्वात्मसंयोग में धातुसाम्य अथवा पाञ्चभौतिक प्रक्रिया के अन्तर्गत होता है वही इस स्थूलभूत ब्रह्माण्ड में होता है। आचार्य चरक भी लोकपुरुष साम्य का वर्णन करते हुए लिखते हैं –

**एवमयं लोकसम्मितः पुरुषः। यावन्तो हि लोके मूर्तिमन्तो भावविशेषास्तावन्तः पुरुषे, यावन्तः पुरुषे तावन्तो लोके इति बुधास्त्वेवं द्रष्टुमिच्छन्ति ॥ (च.शा.४.१३)**

अर्थात् यह पुरुष स्थूलभूत लोक के समान ही है। जितने भी मूर्तिमान् द्रव्य लोक में है उतने ही पुरुष में भी है तथा जितने भाव विशेष पुरुष में होते हैं

उतने ही भाव विशेष लोक (जगत्) में भी होते ही हैं। इसी लोक व पुरुष के साम्य भाव को समझने का सुधीजन प्रयास करते हैं। इसके अतिरिक्त भी इसी लोकपुरुष की पुष्टि करते हुए आचार्य अन्यत्र भी कहते हैं-

**पुरुषोऽयं लोकसम्मितः। यावन्तो हि लोके (मूर्तिमन्तो) भावविशेषास्तावन्तः पुरुषे, यावन्तः पुरुषे तावन्तो लोके॥ (च.शा.५.३)**

**लोकपुरुष साम्य विवरण का प्रयोजन-** सर्वलोकमात्मन्यात्मानं च सर्वलोके सममनुपश्यतः सत्या बुद्धिः समुत्पद्यते। सर्वलोकं ह्यात्मनि पश्यतो भवत्यात्मैवसुखदुःखयोः कर्ता नान्य इति। कर्मात्मकत्वाच्च हेत्वादिभिर्युक्तं सर्वलोकोऽहमिति विदित्वा ज्ञानं पूर्वमुत्थाप्यतेऽपवर्गायेति तत्र संयोगापेक्षी लोकशब्दः। षड्धातुसमुदायो हि सामान्यतः सर्वलोकः॥ (**च.शा.५.७)**

जब मनुष्य सब लोकों को अपने मन में तथा अपने को सभी लोकों में देखता है तो सत्या बुद्धि उत्पन्न होती है। सभी लोकों को अपने में देखने से पुरुष को यह ज्ञान हो जाता है कि सुख और दुःख का कर्ता मैं स्वयं हूँ अन्य कोई नहीं। कर्मात्मक होने से कारण आदि से युक्त सभी लोक मैं ही हूँ यह जानकर मोक्ष के लिए भी ज्ञान उत्पन्न हो जाता है। यहाँ विशेष बात यह है कि लोक शब्द संयोग की अपेक्षा रखता है अर्थात् जब अव्यक्त ब्रह्म का आकाश आदि महाभूतों से संयोग होता है तो इसे लोक कहते हैं। सामान्यतया सम्पूर्ण लोक शब्द षड्धातुओं का समूह ही है।

**लोकपुरुष साम्य बुद्धि का फल- लोके विततमात्मानं लोकं चात्मनि पश्यतः। परावरदृशः शान्तिर्ज्ञानमूला न नश्यति॥ (च.शा.५.२०)**

लोक में अपने को व्याप्त और अपने में लोक को व्याप्त देखने से पुरुष को पर अर्थात् श्रेष्ठ ब्रह्म एवं अवर अर्थात् महान् अहंकार आदि को जानने की बुद्धि प्राप्त होती है ऐसे तत्त्वदर्शी पुरुष की ज्ञान मूलक शान्ति कभी नष्ट नहीं होती।

**निष्कर्ष -** इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि आयुर्वेद न केवल एक चिकित्सा पद्धति है, बल्कि यह जीवन जीने का एक सम्पूर्ण विज्ञान है। आयुर्वेद का उद्देश्य केवल रोगों का इलाज नहीं है, बल्कि यह जीवन के सभी पहलुओं—शारीरिक, मानसिक और आत्मिक—में संतुलन बनाए रखने का एक माध्यम है। आयुर्वेद के सिद्धांत आज भी उतने ही प्रासंगिक तथा सार्वभौमिक हैं जितने कि

प्राचीन काल में थे। यह सिद्ध करता है कि आयुर्वेद न केवल एक प्राचीन ज्ञान है, बल्कि यह आज भी हमारे जीवन को सरल, स्वस्थ और संतुलित बनाने का एक अनमोल साधन है।

**भविष्य में शोध की आवश्यकता**

यद्यपि आयुर्वेद की सार्वभौमिकता पर अब तक अनेक महत्त्वपूर्ण शोध हुए हैं, तथापि इसकी व्यापकता और व्यावहारिकता को देखते हुए भविष्य में शोध की दिशा इस प्रकार हो सकती है—

1. **अग्र्य द्रव्यों का आधुनिक वैज्ञानिक परीक्षण** – हरीतकी, आमलकी, अश्वगंधा, गुग्गुल आदि पर *clinical trials* एवं *pharmacological studies*।
2. **निवारक स्वास्थ्य (Preventive Healthcare)** – ऋतुचर्या और दिनचर्या के आधुनिक संदर्भों में स्वास्थ्य पर प्रभाव का वैज्ञानिक परीक्षण।
3. **व्यक्तिगत चिकित्सा (Personalized Medicine)** – त्रिदोष सिद्धान्त और आधुनिक *genomic medicine* का तुलनात्मक अध्ययन।
4. **मानसिक स्वास्थ्य पर प्रभाव** – तनाव, अनिद्रा और अवसाद की चिकित्सा में आयुर्वेदिक औषधि एवं जीवनचर्या की उपयोगिता।
5. **वैश्विक परिप्रेक्ष्य** – विभिन्न देशों की पारम्परिक चिकित्सा पद्धतियों और आयुर्वेद का तुलनात्मक अध्ययन।

**सन्दर्भ ग्रन्थ सूची**

1. **चरकसंहिता** – आयुर्वेद दीपिका टीका सहित, चौखम्बा ओरियंटल, वाराणसी।
2. **सुश्रुतसंहिता** – निबन्धसंग्रह टीका सहित, चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी।
3. **अष्टाङ्गहृदयम्** – अरुणदत्त एवं हेमाद्रि टीका सहित।
4. **भावप्रकाश**
5. शर्मा, पी.वी. – *History of Medicine in India (Ayurveda)*।

6. WHO – *Traditional Medicine Strategy 2025* (2022 Report)।
7. PubMed indexed Research Papers – **Ashwagandha, Guggul, Amla and Ayurvedic Lifestyle Studies**।

**स्वानुशीलन**

इस शोध यात्रा ने यह अनुभव कराया कि आयुर्वेद केवल प्राचीन चिकित्सा पद्धति नहीं है, बल्कि एक समग्र जीवन-दर्शन है। चरक और सुश्रुत जैसे आचार्यों की वाणी में जो सिद्धान्त प्रतिपादित हैं, वे आज भी समान रूप से प्रासंगिक हैं।

इस शोध से यह स्पष्ट हुआ कि—

- परम्परा और आधुनिकता में विरोध नहीं, बल्कि परस्पर पूरकता है।
- आयुर्वेद केवल शरीर ही नहीं, बल्कि मन और आत्मा की शांति का भी पथ-प्रदर्शक है।
- व्यक्तिगत स्तर पर इस अध्ययन ने मुझे यह बोध कराया कि शास्त्र-अध्ययन केवल अकादमिक कार्य न होकर आत्मविकास और अनुशासन की साधना भी है।
- आयुर्वेद का परम लक्ष्य मनुष्य के लिए पुरुषार्थ चतुष्टय धर्म, अर्थ काम मोक्ष की प्राप्ति हेतु एक सुखपूर्ण आयु का प्राप्त कराना है जिससे न केवल इस लोक में उसका हित हो अपितु उसके दोनों लोकों का हित हो सके। तद्यथा-

  **धर्मार्थकाममोक्षाणाम् आरोग्यमूलमुत्तमम्॥**

# महामुद्रा-ध्यानातीतचेतनावस्थितिजन्य-मानसिकस्वास्थ्यलाभाः

**हरिप्रिया**
**शोधच्छात्रा, जे.एन.यू**

**कूटशब्दाः - महामुद्रा, अमनसिकारा, स्वचेतनावस्थितिः, क्लेशक्षयः, प्रभास्वरता, शून्यता, अद्वयप्रज्ञा, समथ, विपश्यना, अनिमित्तध्यानम्, Decentering, Metacognitive Awareness, Default Mode Network (DMN), *Emotional Resilience***

आधुनिकसमाजे उद्विग्नता अवसादः एवं च मानसिक-अस्थिरतादि बहुतीव्रं वर्धन्ते। यद्यपि अनेकध्यानपद्धतयः मानसिकस्वास्थ्याय उपयोगिनः इत्यमुष्मिन् विषये बहवः शोधाः जाताः तथापि महामुद्रा अन्यच्च तस्याः ध्यानातीत अथवा अमनसिकारा पद्धतिमनुधृत्य शैक्षणिकानुसन्धानानि न्यूनप्रायान्येव।

अस्य शोधपत्रस्य मुख्य-उद्देश्यः अयमेव यत् महामुद्रा परम्परायां प्रतिपादित- " स्वचेतनावस्थितिः " इत्यनया साधनया मानसिकस्वास्थ्यविषये के के लाभाः भवितुमर्हन्तीति विषये विश्लेषणं मूल्यांकनं च।

शोधपत्रेऽस्मिन् मूलबौद्धग्रन्थानां साहित्यिकविश्लेषणपूर्वकं आधुनिकविज्ञानम् एवं च क्लिनिकल्मनोविज्ञानानां शोधपरिणामानां तुलनया लाभानां समीक्षा कृता वर्तते। अन्यच्च महामुद्रासाधनायां निहित मनोविज्ञान-चिकित्सकीय-मानसिकस्वास्थ्योपकारकाणां तत्सम्बद्धलाभानां समीक्षा क्रियते।

महामुद्रा भोटदेशीयकग्यूपरम्परायाः बौद्धसाधना ध्यानातीतस्थितिरूपा विशिष्टापद्धतिः वर्तते यस्यां साधकः विना प्रयत्नेन अविकल्पचित्तावस्थायां केवलं स्वाभाविकचैतन्यस्थितौ विश्रान्तिमाप्नोति। साधनेयं एकाग्रताध्यान-विश्लेषणात्मकविपश्यनादिध्यानादिभिः भिन्ना महामुद्रा सहजप्रकाशरूपचैतन्यं प्रति संकेतयति यत्र चित्तस्य सहजस्वभावस्य शून्यतायाः बोधिः जायते।

महामुद्राप्रणाली यस्याः प्रतिपादनं कग्यूपरम्परायाः आधारभूतग्रन्थेषु यथा मैत्रीपा आचार्यस्य अमनसिकारा, तिलोपा आचार्यस्य गङ्गा-महामुद्रोपदेशः, तथा च दाक्पो तशी नाम्ग्याल् आचार्यस्य **Moonbeams of Mahamudra** इत्यादिषु कृतं वर्तते। एतेषु अमनसिकारा अथवा मा-म्सोम् पा अर्थात् ध्यानातीतस्थितिः इति विशिष्टध्यानपद्धतेः वर्णनं प्राप्यते। साधनेयं समथ विपश्यना इत्यनयोः परं चित्तप्रकाशस्वरूपे अवस्थितिः या अविकल्पा चतुर्कोटिविनिर्मुक्ता च अस्ति।

अत्र प्राचीनबौद्धग्रन्थानां विश्लेषणम् आधुनिकमनोविज्ञान-तन्त्रिकविज्ञानयोः (**neuroscience**) आविष्कारैः सह समन्वीयते। कतिचनध्यानपद्धतिषु यथा अनिमित्तध्यानविपश्यनाअद्वयप्रज्ञानादि ध्यानपद्धतिषु (***open monitoring meditation, non-dual awareness training)*** मानसिकोद्विग्नतायाः, चिन्तायाः, अवसादलक्षणानां च न्यूनीकरणं, भावनानियन्त्रणस्य वृद्धिः, मानसिकधैर्यस्य च (**resilience**) संवर्धनं, संज्ञानिकसौष्ठवस्य च (**cognitive flexibility**) विकासः दर्शितः। तन्त्रिकाभौतिकानुसन्धानानि **(neurophysiological studies)** अपि निर्दिशन्ति यत्—स्वचेतनविश्रान्तिः मस्तिष्कसामञ्जस्यं **(brain coherence)** वर्धयति, स्वायत्ततन्त्रं (**autonomic system**) स्थिरीकरोति, ***brain-derived neurotrophic factor (BDNF)*** इत्यस्य वृद्ध्या ***default mode network*** इति नियमनाद् तन्त्रिकीयनाम्यं(**neuroplasticity**) समर्थयति।

योगग्रन्थेषु उच्यते यत् क्लेशात्मकचित्तवृत्तीनां क्षयः सहजावस्थायाम् अवस्थित्या भवतीति। मन्तुं शक्यते यत् आधुनिकमनोविज्ञानदृष्ट्या सहज-अभ्यासः अयं **Decentering of metacognitive awareness** इति प्रक्रियया सादृश्यं भजते। ईदृशावस्थाः अतिचिन्तनस्य न्यूनीकरणे (**rumination**), अतिचिन्तायाः न्यूनीकरणे, भावनात्मकनाम्यसंवर्धने **(emotional resilience)** उपयुक्ताः भवन्ति।

अतः अस्मिन् शोधपत्रे प्रतिपाद्यते यत् महामुद्रा यदि अकल्पनात्मकचिकित्सापद्धतिरूपेण **(non-conceptual therapeutic method)** स्वीक्रियते, तर्हि "स्वचेतनरूपे विश्रान्तिः" **(resting as**

**awareness)** मानसिकस्वास्थ्याय शक्तिशालिन्याः हस्तक्षेपस्य **(intervention)** रूपेण कार्यं कर्तुं शक्नोति। इयं पद्धतिः आधुनिकमनोचिकित्साविधानानाम् उपपूरिका (**complementary)** भवितुं शक्नोति। अन्ते अस्मिन् शोधपत्रे प्रस्ताव्यते यत् महामुद्रायाः सिद्धान्ताः न केवलं चिकित्सासन्दर्भेषु, अपि तु व्यापकध्यानाधारितस्वास्थ्यकार्यक्रमेषु अपि योजनीयाः। एवं बौद्धध्यानविज्ञानस्य प्राचीनप्रज्ञा आधुनिकमानसिकस्वास्थ्यशोधेन सह सुदृढं सेतुबन्धनं साधयितुं शक्यते।

# भक्तिसाहित्यकलेवरविवर्द्धनाय श्रीलप्रबोधानन्दसरस्वतीपादानां योगदानम्

**श्रीमान् भोलेश्वरप्रधानः**

**शोधछात्रः, संस्कृतविभागः**

**महाराजा-श्रीरामचन्द्र-भंजदेओ विश्वविद्यालयः**

**वारिपदा, मयुरभंजः, ओडिशा**

श्रीगौरभक्तिप्रचाराग्रदूतः श्रीश्रीकृष्णचैतन्यमहाप्रभोः कृपाकटाक्षभाक् श्रुतिस्मृतिसांख्यसाहित्यवेदान्तवैशेषिकादिशास्त्रेषु धुरन्धरः श्रीलप्रबोधानन्दसरस्वती नैष्ठिकब्राह्मणकुले पित्रोः क्रोडमण्डनं कृतवान् । ते सर्वे श्रीसम्प्रदायी वैष्णवाः आसन् । तस्मिन्नेव काले श्रीरङ्गक्षेत्रं श्रीवैष्णवसेवितततीर्थरूपेण सुप्रसिद्धम् अभूत् । स्वग्रामे भजनोचितं सौविध्यं नानुभूयः मैसूरप्रदेशान्तर्गते रङ्गक्षेत्रे कावेरीनदीतटे वेलङ्गुरीनाम्ना प्रसिद्धे ग्रामे ते सपरिवाराः कालं यापितवन्तः ।

श्रीलप्रबोधानन्दस्य द्वौ भ्रातरौ आस्ताम् । ज्येष्ठभ्रातुर्नाम श्रीवैङ्कटभट्टः तथा मध्यभ्रातुर्नाम श्रीत्रिमल्लभट्टश्चासीत् । अर्थात् भ्रातृत्रयेषु अवराऽऽसीत् श्रीसरस्वतीपादः । तस्य मातृपितृविषये किञ्चिदपि प्रमाणं नोपलभ्यते । ते भट्टपरिवाराः श्रीलक्ष्मीनारायणयोः परमोपासकाः आसन् । श्रीवेङ्कटभट्टः यतीन्द्रः श्रीनृसिंहदेवस्य कृपापात्रः सर्वशास्त्रतत्त्वज्ञश्च बभूवः । तस्य सुपुत्रः आसीत् श्रीगौपालभट्टः । यः 1503 तमे ख्रीष्टाब्दे जन्म लेभे ।

**श्रीलप्रबोधानन्दः मायावादसिद्धान्तश्च -**

तस्मिन्नेवकाले ये सन्यासं नीतवन्तः, ते सर्वे मायावादिनः आसन् । अद्वैतवादप्रवर्त्तकस्य श्रीमत्शङ्कराचार्यस्य मायावादाधारितः वेदान्तभाष्यः तस्य नित्यपाठः आसीत् । सन्यासिजनं विलोक्य सर्वे विज्ञातवन्तः यत् "सः मायावादी भवति" इति । कश्चन सन्यासव्रतं जग्राह्य भक्तिधर्मस्य संस्कारं विधातुं शक्यते, किम्वा मायावादं विहाय अन्यत् किमपि मतम् अनुसरणं कर्तुं शक्यते, एतादृशी धारणा तदा नासीत् । श्रीप्रकाशानन्दः तस्यैव मायावादी संन्यासीसमाजस्य प्रमुखकार्यनिर्वाहकः आसीत् । सः अद्वैतवादप्रवर्तकस्य श्रीमत्शङ्कराचार्यस्य समर्थकः आसीत् । अद्वैतवादिनः कथयन्ति - "जीव ब्रह्मैव नापरः" । अर्थात्

आत्मनः ब्रह्मणश्च भेदः नास्ति । केवलं मायाप्रभावादेव भेददर्शनं भवति । दृश्यं जगत् सर्वं मिथ्या भवति, तस्य अस्तित्वं नास्ति ।

ब्रह्मं विना अन्यत् किमपि वस्तु न विद्यते तथा न च क्वचित् । मायाप्रभावादेव भिन्नवस्तूनां पृथक् अस्तित्वज्ञानं जीवस्य मनसि सम्भवति । मायाबन्धनिवृत्त्यनन्तरं संसारस्य मिथ्यात्वमनुभवति जीवः । तदा आत्मा ज्ञातुं शक्नोति सर्वं ब्रह्म एव, आत्मनः तेन सह एकत्वं वर्त्तते । अनेन प्रकारेण ज्ञानयोगमार्गेण अवैयक्तिकं निराकारं ब्रह्म विचिन्तयन् जीवब्रह्मयोः अभिन्नज्ञानं (सायुज्यमुक्तिः) जीवस्य परमलक्ष्यम् आसीत् । तस्मिन् काले अयं मायावादः प्रायः समस्तेषु जगति प्रवलः आसीत् । अयं च वेदान्तः इति मन्यते ।

**श्रीलप्रबोधानन्दसरस्वतीमहोदयस्य भक्तिरसपरिपूर्णाः कृतयः -**

श्रीश्रीगोस्वामीपादः परिव्राजाधिराजः वेदवेदान्तोपनिषद् सांख्यकाणादपात- ञ्जलमीमांसागमपुराणेतिहासालङ्कारकाव्यनाटकादिर- हस्योन्मोचनकारकः वाणीबाण- मोहनः काशीवास्यन्तःकरणकः अङ्गीकृताह्लादिनीशक्तिसारभूतश्रीराधिकाभावरूपः श्रीचैतन्यकृपाकटाक्षभाक् श्रीलप्रबोधानन्दसरस्वती द्वादशाधिकग्रन्थानां रचयिता । तेषां ग्रन्थानां विवरणमधस्तात् मया प्रदीयते ।

1. श्रीचैतन्यचन्द्रामृतम्
2. श्रीसङ्गीतमाधवम्
3. श्रीवृन्दावनमहिमामृतम्
4. श्रीराधारससुधानिधिः
5. आश्चर्यरासप्रबन्धः
6. श्रीगीतगोविन्दव्याख्या
7. नवद्वीपशतकम्
8. विवेकशतकम्
9. श्रीश्रुतिस्तुतिव्याख्या
10. कामगायत्रीव्याख्या
11. गोपालतापनीव्याख्या
12. हितहरिवंशाष्टकम्
13. निकुञ्जविलासस्तव

**श्रीचैतन्यचन्द्रामृतस्तोत्रकाव्यस्य सामान्यपरिचयः -**

काव्यमिदं स्तोत्रकाव्यश्रेण्यामन्त्रर्भुक्तं भवति । महाप्रभोः श्रीचैतन्यस्य महिमावर्णनं प्रमुखत्वेनात्र भवति । अत्र मुख्यरसः भवति भक्तिरसः । महाप्रभोः अवतारमहिमावर्णनकारणात् प्रकरणभेदेष्वपि अन्तर्भुक्तं भवति । अपि च नवधाभक्तेः स्वरूपवर्णनमत्र दरीदृश्यते । प्रायः अनुष्टुप्-उपजातिवंशस्थप्रभृतिभिः द्वादशाधिकच्छन्दोभिः 143 श्लोकाः सन्ति । महाकविना स्तोत्रकाव्यमिदं द्वादश (12) प्रकरणेषु विभक्तम् । यथाक्रमं तान्येव प्रकरणानि यथा - स्तुतिप्रकरणं, प्रणामप्रकरणम्, आशीर्वादप्रकरणं, श्रीचैतन्यभक्तमहिमाप्रकरणं, श्रीचैतन्याभक्तनिन्दाप्रकरणं, दैन्यरूपस्वनिन्दाप्रकरणम्, उपास्यनिष्ठाप्रकरणं, लोकशिक्षाप्रकरणं, श्रीचैतन्योत्कर्षताप्रकरणम्, अवतारमहिमाप्रकरणं, रूपोल्लासनृत्यादिप्रकरणं तथा शोचकप्रकरणम् ।

**विषयवस्तु**

**प्रथमप्रकरणम् -**

ग्रन्थस्यारम्भतः सप्तमश्लोकं यावत् सप्तश्लोकाः स्तुतिप्रकरणनाम्ना ज्ञायते । भारतीयपरम्परामनुसृत्य महाकविना त्रिविधेषु मङ्गलाचरणेषु नमस्कारात्मकं मङ्गलाचरणं विहितम् । द्वितीयश्लोके प्रेमदातृपरमाद्भूतौदार्यत्वेन, तृतीयश्लोके अतिदुरुहनिगूढप्रेमप्रकाशकत्वेन, चतुर्थश्लोके दर्शनमात्रपरमप्रेमदपरमदयालुत्वेन च, पञ्चमश्लोके श्रीचैतन्यकरुणाप्राप्तभक्तमहिमाप्रदर्शकत्वेन, षष्ठश्लोके श्रीचैतन्यपादपद्ममधुमत्तानां भक्तानामेकनिष्ठत्वेन तथा सप्तमश्लोके निगूढप्रेमोज्ज्वलभक्तिप्रकाशत्वेन कविना वर्णितम् ।

**द्वितीयप्रकरणम् -**

अष्टमश्लोकतः द्वादशश्लोकं यावत् प्रणामप्रकरणनाम्ना ज्ञायते । सर्वादौ अज्ञानादितममोहनाशकत्वेन प्रेमानन्दप्रकाशकत्वेन चाद्भूतचन्द्रत्वमनुभूय प्रणमति कविः । महाप्रभोः श्रीचैतन्यभक्तस्य परमपुरुषार्थप्रेमलाभत्वेन प्राकट्य, स्वरमाप्लुतचित्तस्य श्रीचैतन्यस्यानुभावत्वं कल्पयन्, आनन्दमयविग्रहसौन्दर्यातिशयमहाप्रेमप्रदातृत्वं प्रकाशयन्, परमचमत्कारकारकत्वेन विचिन्त्य च प्रणामाञ्जलिमर्पयति श्रीसरस्वतीपादः ।

**तृतीयप्रकरणम् -**

13तम श्लोकतः 17तम श्लोकं यावत् आशीर्वादप्रकरणनाम्ना ज्ञायते । पञ्चश्लोकेषु महाप्रभुं श्रीचैतन्यमुपास्यदेवतारूपेण प्रदर्शयन् आशीर्वादं कामयते । सात्विकभाव-व्यभिचारिभावैः समाविष्टत्वेन प्रेमप्रचारकत्वं दर्शयन् आशीषं याचते। श्रीकृष्णचैतन्यं प्रेमामृतविस्तारकत्वं चन्द्ररूपत्वं, हृदयान्धकारविनाशकत्वं चन्द्ररूपत्वं चेति वर्णयन् आशीषभिक्षां करोति । हरिनाम महामन्त्रः संकीर्त्त्य श्रीजगन्नाथरूपदर्शनेच्छुभिः गतवतः भक्तवृन्दस्वरूपं वर्णयन् आशीषाभिलाषं करोति । समुज्ज्वलचन्द्रत्वेन महाप्रभोः श्रीविग्रहदीप्तिच्छटाचमत्कारं दर्शयन् आशीर्वादमभिलषति ।

**चतुर्थप्रकरणम् -**

18तमश्लोकतः 30तमश्लोकं यावत् श्रीचैतन्यभक्तमाहात्म्यप्रकरणनाम्ना विविच्यते । अत्र गौरभक्तानां ब्रजराजकिशोरस्य ब्रजराजकिशोरिभिः सह निगूढसमुज्ज्वललीलारसास्वादनं, श्रीचैतन्यपदाम्बुजसेवितभक्तानां निगूढतत्त्वज्ञत्वं, तेषां परमचमत्कारकारिभावरूपं महिमानं, श्रीचैतन्यचन्द्रभक्तचरणमाहात्म्यं, वर्णाश्रम-विष्णुसेवा-तीर्थाटनरतानां श्रीगौरभक्तचरणसेवामाहात्म्यं, महार्हदुष्प्राप्यवस्तुनि गौरभक्तानामनाकृष्टत्वं, श्रीचैतन्यभक्तानां निगूढप्रेमलाभ-महिमानं, शमदमादिगुणेषु श्रीचैतन्यभक्तचरणनखज्योतेराधिक्यम्, श्रीचैतन्यपदसेवकाद्वैताचार्यादीनां समुद्रपर्वतादिलङ्घनमहिमानं, श्रीकृष्णचन्द्रचरणपङ्कजकृपाकटाक्षपातिनां गौरभक्तानां विशेषत्वं, श्रीगौरहरिपदाम्बुजाश्रितरहितानामाक्षेपेण तन्महिमानं, श्रीगौरचन्द्र-चरणारविन्दसमर्पितचित्तानां भक्तानां महिमानं च ववन्दे श्रीलसरस्वतीपादः ।

**पञ्चमप्रकरणम् -**

पञ्चमप्रकरणस्य नाम श्रीचैतन्याभक्तनिन्दा । अत्र 31तमश्लोकतः 45तमश्लोकं यावत् पञ्चदशश्लोकाः विद्यन्ते । प्रमुखत्वेनात्र श्रीचैतन्योपासकरहितजनस्य निन्दा कृता महाकविना । श्रीचैतन्यचरणकमलमधुलेशरहितानां ब्रह्मज्ञानि-कर्मिविकटतापसादीनां निन्दा, श्रीचैतन्यप्रेमधनशून्यजनस्य दरिद्रत्वेन निन्दा, प्रेमपारावारनिमग्नाभावादनर्थ-पारावारनिमग्नजनस्य निन्दा, प्रेमामृतरसपानाभावात् तृष्णाव्याकुलजनस्य दारिद्र्यं, श्रीचैतन्याभावयुक्तसंसारे ईश्वरानुभावरहितां सर्वशास्त्रज्ञानां संसारभ्रमणनिन्दा, श्रीगौरचन्द्रपादाम्बुजानुभवरहितानां भक्तिदुर्घटत्वरूपेण निन्दा,

श्रीचैतन्यापरोपासनप्रार्तिपूर्वकश्रवणकीर्त्तनरतानां निन्दा, श्रीगौरचन्द्रपरमेश्वरे अनीश्वरधिया उपासनारहितजनस्य नरपशुरूपेण निन्दा, वेदादिकथितभगवतः नानाविधरूपत्वेऽपि महाप्रभोरलौकिकलीलादर्शनेऽपि हरिवुद्धिरहितजनानां निन्दा, यस्य कारुण्यकटाक्षजातानन्देन मोक्षादिकार्थाः गौणी भवन्ति , तस्य श्रीगौरचन्द्रस्य ईश्वराभावदर्शनजनस्य निन्दा, उच्चकुल-अध्ययन-सुन्दरावयव-यशयुक्तेऽपि श्रीगौरगोपीपतेरुपासनारहितजनस्य निन्दा, श्रीगौरहरेरनाश्रितस्य अकृतपूण्यजनस्य निन्दा तथा स्वप्रेमदानशीलचैतन्यस्यानादराणां कठिनहृदयानां निन्दा सूक्ष्मातिसूक्ष्मतया महाकविना विहिता ।

**षष्ठप्रकरणम् -**

अस्य प्रकरणस्य नाम दैन्यरूपस्वनिन्दा । अत्र 46 तमश्लोकतः 56 तमश्लोकं यावत् एकादशश्लोकाः सन्ति । विशेषत्वेनात्र श्रीकृष्णचैतन्यप्रेमरससिन्धौ स्वात्मनः स्पर्शाभावरूपं श्रीचैतन्यकृपावशात् सर्वेषां प्रेमलाभेऽपि आत्मनः अयोग्यरूपं जगदाप्लावकप्रभोः करुणासागरस्य करुणामृतलेशमात्रसंप्राप्तये अयोग्यत्वरूपं कण्टकावरुद्धभक्तिमार्गे शरणार्थीत्वेन निजदैन्यदर्शनं, प्रभोः पादपद्मास्वादनेऽक्षमत्वप्रदर्शनं, दैन्यवशात् पतितजनोद्धारकारकस्य कृपाऽभावरूपं स्वनिन्दा, श्रीचैतन्यदेवस्याश्रयं विना सर्वसाधनानि विफलानि भवन्तीति विचिन्त्य निजदैन्यरूपनिन्दा, हृदये श्रीचैतन्यशुद्धभक्तेरुदयाभावात् स्वदैन्यभावप्रदर्शनं, संसारपाशनिबद्धात्मनः दैन्यरूपनिन्दा, श्रीचैतन्यचन्द्रकृपाकटाक्षैरेव गूढप्रेमभक्तिपदवीलाभसम्भवमिति विचिन्त्य निजदैन्यभावप्रदर्शनं तथा श्रुतिस्मृतिपुराणप्रतिपादितानां साक्षाद्भगवदवताराणामैश्वर्येभ्यः श्रीचैतन्यकृपा-कटाक्षस्याधिक्यं सूक्ष्मातिसूक्ष्मधिया कविना प्रतिपादितम् ।

**सप्तमप्रकरणम् -**

अस्मिन् प्रकरणे 57 तमश्लोकतः 79 तमश्लोकं यावत् त्रयोविंशतिपद्यानि सन्ति, यदेवोपास्यनिष्ठानाम्ना ज्ञायते । अत्र मनसः अनुशासनेन श्रीगौरचन्द्रमीश्वरत्वेनाङ्गीकारः, श्रीकृष्णभक्तमपि आक्षिप्य स्वोपास्यनिष्ठादर्शनं, श्रीचैतन्यचरणस्मरणमेकान्तदासभक्त-साभिलासभक्तयोः भेददर्शनं, लौकिकवैदिकादिव्यवहारपरिहारं श्रीचैतन्योपास्यनिष्ठां च प्रदर्शनं, श्रीचैतन्यचरणचारणभावं प्रदर्शनं, श्रीगौरहरेः चमत्कारलीलामाधुरीं स्मृत्वा

स्वोपास्यनिष्ठाप्रदर्शनं, श्रीचैतन्यचरणाम्बुजसुधादन्यगतिः नास्तीति स्वनिष्ठाप्रदर्शनं, श्रीगौरहरिपदाम्बुजभक्तानामविचलितमनोभावं प्रदर्शनं, चैतन्यचरणारविन्दभजनसुखं स्वयं प्राप्तवैकुण्ठादपि श्रेष्ठं प्रदर्शनं, श्रीचैतन्येतरदेवानामुपासकान् कटाक्षकुर्वन् स्वोपास्यनिष्ठावर्णनं, श्रीचैतन्यनामकीर्त्तनं पुरषार्थप्रेमसाधकत्वमिति दर्शयन् स्वनिष्ठावर्णनं, निर्मलगौरहरिप्रेम्णा एव श्रीराधापदनखमणिज्योतिरुदयतीति वर्णनं, महाप्रभोरभिरामरूपध्यानं, श्रीनीलाचलविहारीवदनवारिजनयनमाधुरीध्यानं, श्रीचैतन्यशरीरजातालङ्कारशोभाचिन्तनं, श्रीगौरहरेः सातिशयसौन्दर्यत्वं पावनत्वं शीतलत्वं चानुभूय ध्यानं, रहस्योज्ज्वलप्रेमरसपुञ्जदानशीलं श्रीचैतन्यं प्रति प्रीतिप्रकटनं, महाप्रभोः अद्भूतरूपमाधुरीं तथा परमौदार्यं चानुभूय चित्ते तत्पादाम्बुजध्यानं, श्रीचैतन्यचन्द्रकान्तेः वर्णनम्, अलौकिकपरमोद्भटानुभावविशिष्टं भगवद्गौरदेहवर्णनं, श्रवण-दर्शन-प्रणाम-ध्यानादिदुर्लभकारके भक्तिरसदानशीले आत्मसमर्पणवर्णनं, श्रीचैतन्यस्य नीचातिनीचदुर्गतादितारकत्ववर्णनं तथा स्वयं ब्रजराजनन्दन एव गौराङ्गप्रभोरवतारत्वेन प्रतिपादयन् आत्मसमर्पणं प्रसङ्गमवतारयति श्रीलप्रबोधानन्दः ।

**अष्टमप्रकरणम् -**

अस्य प्रकरणस्य नाम लोकशिक्षा । अत्र 80 तमश्लोकतः 99 तमश्लोकं यावत् विंशतिसंख्यकाः श्लोकाः सन्ति । कलिकालवारिधितरणाय श्रीचैतन्यचन्द्रचरणशरणेनैव सम्भवतीति कथयन् जनान् प्रेरयति श्रीलप्रबोधानन्दः । आदौ श्रीगौरहरिचरणशरणं परमपुरुषार्थलाभं चोपदेशं, महाप्रभोः रूपमाधुरीं निधाय प्रणमयति, श्रीचैतन्यमहाप्रेमरसोज्ज्वललाभाय सङ्कीर्त्तयितुं रूपमाधुरीचिन्तयतुं च प्रेरयति, महाप्रभोः पदाङ्कं विहायेतरसाधनस्य निरर्थकत्वं प्रदर्शयति, श्रीहरिगुणकीर्त्तनं स्वकर्णपथमानयत्विति निर्दिशति, श्रीगौरकृपालेशलाभमात्रेणैव परमपुरुषार्थलाभः भवेदिति शिक्षयति, दाराभिलषिणं स्वर्गाभिलाषिणं, हरिरसेतरशास्त्राभ्यासीजनं प्रति तद्गतानुरागं श्लथयितुं व्यवस्थापयति, योगादिमार्गगतानामाग्रहं श्लथयित्वा श्रीगौरचन्द्रेऽनुरागं प्रसञ्जयति, श्रीचैतन्यविषयारतेः तथा श्रीराधाविषयरतेः साम्यतां सूचयन् प्रेरयति, श्रीचैतन्यचन्द्रचरणं शरणीयमिति शिक्षयन् तदुत्कर्षं दर्शयति, श्रीचैतन्यभक्तान् प्रति सर्वत्यागपूर्वकनिरुक्तिं प्रदर्शयति । भक्तिमुक्तिं च विहाय गौरचन्द्रानुरागं कारयति, वैकुण्ठदुर्लभं श्रीचैतन्यभजनं प्रवर्त्तयति, संसारसागरतितीर्षुः संकीर्त्तनामृतरसरिरंसु

प्रेमाम्बुधिविजिहीर्षुन् प्रति चैतन्यपदाश्रयं सिद्धान्तयति, श्रीचैतन्यपादकमलभजनं कर्त्तुं प्रवर्त्तयति, श्रीचैतन्यभजनविमुखानचेतनत्वेन वर्णयति, श्रीचैतन्येऽरतीनां नृपाणां भर्त्सना करोति, चिन्तामणिरत्नतुल्यं श्रीचैतन्यचन्द्रचरणमिति वर्णयति, श्रीचैतन्यप्रेममदजातमत्तनृत्यमवतारयति तथा कलत्रादिविहाय गौरहरेः पदपङ्कजाश्रयस्य श्रेष्ठत्वं प्रतिपादयति भक्तप्रवरः श्रीलप्रबोधानन्दसरस्वतीपादः ।

**नवमप्रकरणम् -**

100 तमश्लोकतः 109 तमश्लोकं यावत् श्रीचैतन्योत्कर्षताप्रकरणनाम्नाऽभिधीयते । दशश्लोकेषु श्रीचैतन्यदेवस्य उत्कर्षता महनीयता वा वर्णिता दृश्यते । सर्वादौ महाप्रभोः रूपगुणमाधुर्यवर्णनं, सौन्दर्याह्लादवात्सल्यादिगुणानां सर्वोत्कृष्टवर्णनं, प्रकटपरमाद्भूतमहिम्नः श्रीगौरचन्द्रस्य सर्वोत्कृष्टप्रतिपादनं, अद्वैतवादशिरोमणेः कोटिसूर्यकान्तेः कोटिचन्द्रसदृशशीतलकारकस्य श्रीचैतन्योत्कर्षवर्णनं, हृदयध्वान्तापहारकप्रदीपत्वेन तदुत्कर्षवर्णनम्, अद्भूतप्रदीपत्वेन समुत्कर्षवर्णनं, अनुभावसात्विकशोभात्वेनोत्कर्षवर्णनम्, अद्भूतचन्द्रत्वेनोत्कर्षप्रतिपादनं, विरहिण्याः राधिकायाः भावमग्नानुगतभावान् प्रदर्शयन् तदुत्कर्षवर्णनं तथा परमदिव्यरूपोल्लासेन राधामाधवयोरेकीभूतवपुषः श्रीगौरहरेरुत्कर्षवर्णनं तेन रसभरेण कृतम् ।

**दशमप्रकरणम् -**

अस्य प्रकरणस्य नाम अवतारमहिमाप्रकरणम् । अत्र 110 तमश्लोकतः 130 तमश्लोकं यावत् एकविंशतिसंख्यकश्लोकाः सन्ति । सर्वादौ कठिनहृदयानां द्रवीभावं दर्शयन् साऽवतारमहिमावर्णनं, दयासागरश्रीचैतन्यस्याविर्भावमहिमावर्णनं, सर्वसाधनं विहाय तत्प्रेमसाधनस्थापनरूपमवतारमहिमानं, दार्शनिक-योगीन्द्रस्तापसानां भक्तिरसमात्रैकनिष्ठत्वं, सात्त्विकप्रचारकत्वेन परममधुरोत्कर्षपदवीप्रकटत्वेन चावतारमहिमाप्रोद्घाटनं, परमप्रेमरससागरवन्याद्वारा भूवनप्लावकत्वेन तदवतारमहिमानं, सातिशयदुर्ल्लभप्रेमवस्तुनः जनसाधारणप्रापकत्वेन तदवतारमहिमानं, साधारणसमुज्ज्वलावतारमहिमानं, पार्षदावतार-प्रयोजकत्वेनावतारमहिमानं, भृत्यसखावर्गाणामधिकसुखानुभवकारकत्वेन तदवतारमहिमानं, श्रीचैतन्यजन्यनवबधूमूर्खगणादीनां, परमपुरुषार्थरूपमहिमानं,

श्रीगौरचन्द्रावत्तीर्णविशिष्टोज्ज्वलप्रेमभक्तिदर्शयन् अवतारमहिमानं, निगूढस्वलीलामाधुरीप्रचारकत्वेनावतारमहिमानं सर्वेषां ब्रजस्थभावप्राप्तिसम्पत्त्यावतारमहिमानं, श्रीगौराङ्गचन्द्रोदितवेदप्रतिपादार्थ-हरिभक्तिरूपावतामहिमानं, विश्वं प्रणयसुधासिन्धुमज्जकानुभावमहिमानं, प्रेमाब्धौ निमज्जकत्वेन तदवतारमहिमानं, नीचातिनीचस्यापि प्रेमदातृत्वेन निरङ्कुशकरुणं व्यञ्जयन् तदवताररमहिमानं, ब्रजरसचतुष्टयाविर्भावव्यञ्जकबाल्य-पौगण्ड-कैशोरावस्थादर्शकत्वेन तदवतारमहिमानं, पूर्वगूढमधुरलीलारसेन जगदावेशकत्वेन तदवतारमहिमानं तथा अद्भूतप्रेमप्रचारकश्रीवृन्दावनमाधुरीप्रवेशकत्वेन तदवतारमहिमानं महाकविः श्रीलप्रबोधानन्दसरस्वतीपादः प्रतिपादितवान् ।

**एकादशप्रकरणम् -**

अस्य प्रकरणस्य नाम रूपोल्लासनृत्यादिप्रकरणम् । प्रकरणेऽस्मिन् 131 तमश्लोकतः 136 तमश्लोकं यावत् षड्भिः श्लोकैः श्रीचैतन्यदेवस्य रूपोल्लासनृत्यादिरसयितुं प्रकरणमारब्धवान् । सर्वादौ ब्रह्मादिदेवगणार्च्चितं श्रीचैतन्यं परंब्रह्मत्वेन नृत्यमुल्लासयति, श्रीचैतन्यस्य स्वप्रेमोल्लासेन चमत्कारविहारमुल्लासयति, देवगन्धर्वादिगणैः हर्षताडितदुन्दुभिवादनादिकमनुकुर्वतः श्रीचैतन्यस्य नृत्यमुल्लासयति, महाभावपरिणामानुभावोल्लासमवतारयति, श्रीराधापादपद्मरतिविस्तारकत्वेन रूपमुल्लासयति तथा नानाऽनुभावरूपैः नृत्योल्लासयति महाकविः श्रीलप्रबोधानन्दसरस्वती ।

**द्वादशप्रकरणम् -**

137 तमश्लोकतः अन्तिमश्लोकं यावत् सप्तश्लोकाः शोचकप्रकरणनाम्ना ज्ञायते । अत्र महाप्रभोः प्रपञ्चगोचरागोचरत्वेन शोचति । आदौ तस्य वेदादिशास्त्रदुर्बोधत्वं, ब्रह्माद्यगोचरत्वं प्रेमरसविधायकत्वं च वर्णनं, श्रीचैतन्यप्रचारितस्वभक्तिपरिपाटीवर्णनं, परमसुखकारकं श्रीगौरचन्द्रजातकालमाधुरीवर्णनं, महाप्रभोः उद्दीपनविभावत्वेन वर्णनं, मत्स्यादिदशावतारेभ्योऽधिकं महाप्रभोः पूर्णरूपावतारवर्णनं, अपरिमितशाश्वत-गुणविभुषितस्य शिवब्रह्माद्यगम्यमहिमानः महाप्रभोः वर्णनं कृत्वा तथाऽन्तिमे श्लोके निजबालभावचपलत्वं मुर्खत्वं च कथयन् दासभावं प्रकटयति श्रीलप्रबोधानन्दसरस्वती ।

अनेन प्रकारेण श्रीचैतन्यचन्द्रामृतस्तोत्रकाव्यस्य संक्षिप्तरूपरेखः यथाग्रन्थः मया प्रतिपादितः ।

अपराः कृतयः

**श्रीसङ्गीतमाधवम् -**

श्रीसरस्वतीपादः जयदेवप्रणीतं श्रीगीतगोविन्दमहाकाव्यमनुसृत्य गीतिकाव्यमिदं जग्रन्थ । अत्र 16 सर्गाः सन्ति । नानारागसमन्वितानि 139 गीतानि गीतिकाव्येऽस्मिन् दृश्यन्ते । काव्यस्यास्य मुख्यरसः भवति शृङ्गारः । श्रीयुगलकिशोरयोः श्रीराधाकृष्णयोः अपूर्वविरहगाथा कविना प्रतिपादिता । अत्र नायकः श्रीकृष्णः तथा नायिका श्रीराधा । अपि चात्र माधुर्यगुणः वैदर्भीरीतिः तथा कैशिकीवृत्तिः कविना निबद्धा । गीतिकाव्यस्यास्य कोमलकान्तपदावली, सङ्गीतमाधुरी च गौडीयपरम्परानुयायिनां कृते साधनोपयोगी भवति ।

**श्रीवृन्दावनमहिमामृतम् -**

काव्यमिदं महाकाव्यस्यान्तर्गतं भवति । परमपूज्यपादः लोकातीतमहामहिममयः श्रीवृन्दावनसौन्दर्यमाधुर्यमहाकविः श्रीलप्रबोधानन्दसरस्वती काव्यमिदं 100 शतकेषु विभाजनं कृतवान् । सम्प्रति 17 शतकानि समुपलब्धानि सन्ति । अत्र मुख्यरसः भवति भक्तिरसः । श्रीवृन्दावनस्य या निष्ठाऽत्र प्रतिपादिता तेन । महाकाव्यस्यास्य भाषामाधुर्यं, भावप्राचुर्यं, वर्णनसौन्दर्यं तथा वस्तुवैभवकल्पनं जगज्जनानां हृदयहारकं भवति । ग्राम्यत्वरतिक्रीडायाः वर्णनं नात्र दृश्यते, परन्तु ममत्व-प्रीति-तन्मयता-विषयवैराग्यप्रभृतीनाम् उत्तमाभक्तेः स्वरूपं वर्णितं भवति । अपि च महाकवेः भावधाराभजनपद्धति-अनुराग-तीव्रभजन-तीव्रवैराग्य-निरन्तरस्मरण-निरन्तरस्फुर्त्ति-आत्मव्याकुलतादीनां भावानां समुपलब्धिः भवति ।

**श्रीराधारससुधानिधिः -**

काव्यमिदं स्तोत्रकाव्येष्वन्तर्गतं भवति । स्तोत्रकाव्येऽस्मिन् 272 श्लोकाः सन्ति । दशरसेष्वत्र भक्तिरसः प्रमुखत्वेन तिष्ठति । श्रीलसरस्वतीपादः काव्येऽस्मिन् श्रीराधापादपद्मभजननिष्ठा, श्रीराधोपासनायाः उत्कर्षतादिभिः विषयैः वर्णयन् श्रीराधादास्यनिष्ठां प्रदर्शितवान् । महाकविरयं श्रीराधिकायाराङ्गेषु कोटिविद्युच्छविः, मुखमण्डले विपुलानन्दछविः, अधरोष्ठे नवविद्रुमच्छविः,

कराभ्यां सत्पल्लवच्छविः, स्तनमण्डले सुवर्णकमलकोरकच्छविश्च प्रदर्शयन् रूपकालङ्कारस्य विनियोगः कृतवान् । किञ्च श्रीराधायाः लावण्यसार-रससार-कृष्णचन्द्रसुखसार-कारुण्यसार-मधुरच्छविसार-वैदग्ध्यसार-
रतिकेलिविलाससारादीनां वर्णनं तेन कृतम् । तस्याः भ्रूनर्त्तनचातुरी-सुचारुनेत्राञ्चललीलाखेलनचातुरी - श्यामाचातुरी - सङ्केतकुञ्जातिसारचातुरी - नवनवायमानक्रीडाकलाचातुरी - सखीजनपरिहासोत्सवचातुरी च सर्वजनहृदयहारिणी भवति । अपि च तां राधां श्रीसरस्वतीपादः अभिसारिकारूपया, उत्कण्ठितातया, खण्डितारूपया च वर्णितवान् । स्तोत्रकाव्यमिदम् अलङ्कारशास्त्रदृष्ट्या गुरुतां बहति ।

**आश्चर्यरासप्रबन्धः -**

श्रीमद्भागवतमहापुराणमवलम्ब्य रासलीलाप्रसङ्गाधारेण काव्यमिदं ग्रन्थकारः जग्रन्थ। श्रीमद्भागवतमहापुराणमपेक्षया वैलक्षणमद्भूतरचनाशैलीवशादस्य काव्यस्य नाम 'आश्चर्यरासप्रबन्धः' भवति । श्रीराधाकृष्णयोरपरूपलीलामाधारीते काव्येऽस्मिन् 284 श्लोकाः विद्यन्ते । तेषु 18 श्लोकाः नानाच्छन्दात्मिकाः तथा अवशिष्टाः श्लोकाः तद्विवृत्तित्वेन तिष्ठन्ति । यान्येव केवलपज्झटिकाछन्दोवद्धानि भवन्ति । मुख्यप्रसङ्गत्वेनात्र प्रथमतः श्रीवृन्दावनमहिमावर्णनं श्रीकृष्णरासविलासरूपवर्णनं, मोहनवंशीनिःस्वननिशम्य विपर्यस्तवेशभूषाधारीणां गोपीनामभिसारवर्णनं, श्यामानुरागया श्रीराधायाः विविधभावविकृतिवर्णनं, मुरलीनिनादश्रवणाभिसारोद्यता श्रीराधा सखिभिः निषेद्धा, श्रीराधायारवर्त्तमाने श्रीकृष्णस्य विरहवर्णनं, गोपीनां रसलालसां वीक्ष्य श्रीकृष्णेन विधुरताख्यापनवर्णनं, श्रीराधया सह सम्मिलयितुं दूतीप्रेषणवर्णनं, दूतीमुखेन श्रीकृष्णस्य राधातन्मयता- राधानिष्ठा - गोपीजनलाम्पट्यवर्णनं, स्वप्नेन श्रीराधाकृष्णयोः दर्शनं रसपूर्णकथोपकथनं च , वेणुध्वनिः, श्रीकृष्णविलापः, कृष्णविलापेन स्थावरणजङ्गमादिरोदनं, ललितया श्रीराधाऽभिसारवाधावर्णनं, गोपीवेशेन श्रीकृष्णस्य राधासमीपगमनवर्णनं, श्रीराधाप्रशंसा, श्रीहरिनिर्द्वोषकथनं च, श्रीकृष्णोत्कण्ठावर्णनं, श्रीराधायाः आलिङ्गनदानं, कुञ्जगृहे श्रीराधासुरतदानं, रासोपयोगीवेशभूषाधारणं, सखीगणसेवावर्णनं, श्रीकृष्णस्य बहुमूर्त्तिधारणैः सखिभिः रासरसास्वादनं, श्रीकृष्णान्तर्धानं, गोपीगणैः कृष्णान्वेषणं, तरुलतासु श्रीकृष्णजिज्ञासा, श्रीराधाकृष्णयोः विलासानुमानवर्णनं, श्रीराधायाः

सखीगणजातखेदः, श्रीकृष्णपलायने राधायाः मूर्च्छा, श्रीकृष्णाविर्भावः, गोपीभाववैक्लव्यं, मिलितरासोत्सववर्णनं, जलकेलिवर्णनं तथा श्रीरासप्रबन्धस्य फलवर्णनं महाकविना नूतनभावभङ्ग्या प्रदर्शितम् ।

**श्रीगीतगोविन्दव्याख्या -**

पद्मावतीचरणचारणः महाकविः श्रीजयदेवः कोमलकान्तपदावलीयुक्तं श्रीगीतगोविन्दमहाकाव्यं रचितवान् । अत्र श्रीराधाकृष्णयोरपूर्वलीलाशृङ्गारं पर्यवेशितं भवति । द्वादशसर्गात्मकेऽस्मिन् गीतिकाव्ये नानाविधरागेषु श्रीराधाप्रेमनिष्ठा श्रीकृष्णप्रेमनिष्ठा च प्रदर्शितं भवति । श्रीचैतन्यचरणसेवकः श्रीलप्रबोधानन्दसरस्वती अस्य महाकाव्यस्योपरि व्याख्या विहितवान् । श्रीराधाकृष्णयोरलौकिकलीलया सह वृन्दावनस्य माधुरीं प्रदर्शितवान् । अस्यां व्याख्यायां श्रीमद्भागवतमहापुराणस्य बहूनि पद्यानि तेन उद्धृतानि । तेन सार्द्धं नानाकाव्यालङ्कारग्रन्थेभ्यः श्रीराधाकृष्णसम्बन्धितानि पद्यानि प्रामाणिकत्वेन प्रदाय टीकाग्रन्थस्य गुरुत्वं वर्द्धयामासः ।

**नवद्वीपशतकम् -**

काव्यमिदं खण्डकाव्येष्वन्तर्गतं भवति । शतककाव्येऽस्मिन् 102 पद्यानि सन्ति । यान्येव नानाछन्दोबद्धानि भवन्ति । अत्र प्रमुखत्वेन महाप्रभोः श्रीचैतन्यस्य जन्मस्थलस्य श्रीनवद्वीपस्य माहात्म्यवर्णनं भवति। ते नवद्वीपाः भवन्ति यथा - अन्तद्वीपः, सिमन्तद्वीपः, रूद्रद्वीपः, मध्यद्वीपः, गोद्रूमद्वीपः, ऋतुद्वीपः, जहनुद्वीपः, मोदद्रुमद्वीपः तथा कोलाद्वीपः । अपि चात्र राधाकृष्णप्रेमास्वादनं, जह्नुमुनिराश्रमपवित्रभूमौ निवासाभिलाषं, नवद्वीपवृन्दावनयोरभेददर्शनं, शिवब्रह्मादिदुर्लभश्रीनवद्वीपधामवासवर्णनं, प्रेमामृतमहिमावर्णनं, भक्तिमाधुरी-पराकाष्ठावर्णनं, महिमाध्यानवर्णनम्, आत्मज्ञानजन्यस्थानवर्णनं, गौरगुरुधामविभूतिलीलावर्णनं, पञ्चतत्त्ववर्णनं, नवद्वीपचन्द्रस्तुतिवर्णनं, नवद्वीपचन्द्रदैनिकलीलादर्शनवर्णनं च प्रमुखत्वेन तेन कृतम् ।

**विवेकशतकम् -**

शतककाव्यमिदं शतश्लोकात्मकं भवति । खण्डकाव्येऽस्मिन् छन्दालङ्काराणां बहुलप्रयोगं तेन कृतम् । श्रीसरस्वतीपादः स्वात्मजीवनी प्रमुखत्वेनात्र प्रतिपादितवान् । निजजीवनसंघर्षं, श्रीगौराङ्गानुभूतिं, स्ववंशपरिचयं,

निजजीवनोद्देश्यं, श्रीवृन्दावनगमनाभिलाषचरितं चास्मिन् शतककाव्ये महाकविः श्रीसरस्वतीपादः वर्णयति स्म ।

**श्रीश्रुतिस्तुतिव्याख्या -**

अष्टादशमहापुराणेषु सर्वश्रेष्ठस्थानमलङ्करोति श्रीमद्भागवतमहापुराणमिति वदन्ति विपश्चितः । महापुराणमिदं द्वादशस्कन्धेषु विभक्तम् । श्रीलसरस्वतीपादेन दशमस्कन्धस्य सप्ताशीतितमाध्यायमवलम्ब्य व्याख्येयं कृता । या 'श्रुतिस्तुतिव्याख्या' नाम्ना ज्ञायते । अत्र पञ्चाशत् पद्यानि सन्ति । महाराजा श्रीपरीक्षितः महामुनिं श्रीशुकदेवं निर्गुणब्रह्मविषयकान् प्रश्नान् पृच्छति । तस्य सन्देहदूरीकरणाय निर्गुणब्रह्मस्वरूपस्य या परिभाषा सूक्ष्मातिसूक्ष्मरूपेण तेन प्रदर्शिता । संक्षिप्तरूपेणात्र तद्विषयकं प्रसङ्गमवतार्यते । अत्र ऋषिनारायणसम्वादवर्गः जनलोके ब्रह्मचर्यनिर्णयश्च, श्रुत्याभिमानिनी देवगणस्तुतिः, भगवतः अविद्यानाशसामर्थ्यः, समस्तश्रुतेः भगवततत्वं, श्रीकृष्णभजनं पापनाशनं च, भगवद्भजनहीननिन्दा, आद्योपासकस्य स्थूलोपासना, भगवन्मूर्त्तेः नित्यता, श्रीभगवच्चरणारविन्दोपासना, आत्मतत्त्वावबोधाय भगवतः निजमूर्त्तिप्रकटनम्, अभक्तनिन्दा, श्रीभगवन्नामगुणश्रवणं, प्रपञ्चजीवयोः क्षरत्वं, सर्वोत्पत्तिकारक ईश्वरः, भगवद्भक्तेः माहात्म्यं, श्रीगुरुचरणमाहात्म्यं, भक्तेरङ्गस्वरूपवैराग्यः, ईश्वरजीवयोः प्रभेदः वेदस्तुतिसर्वश्रुतिपुराणरहस्यतात्पर्यं तथा श्रुतिस्तुतिसारसंग्रहः तेन स्पष्टरूपेण प्रतिपादितः ।

श्रीकामबीजगायत्रीव्याख्या -

श्रीलप्रबोधानन्दसरस्वतीपादेन श्रीकामवीजगायत्रीव्याख्या कृता । तत्रग्रन्थेऽस्मिन् कामदेवस्य प्रभावस्वरूपादिविषये सूक्ष्मातिसूक्ष्मरूपेण वर्णितं भवति । श्रीसरस्वतीपादेन ककारात् श्रेष्ठनायकः, ईकारात् श्रेष्ठा नायिका, लकारात् ह्लादरूपा, नकारात् आलिङ्गनत्वेन च स्वीकृतम् ।

गोपालतापनीव्याख्या -

108 उपनिषत्सु एकैव भवति गोपालतापन्युपनिषद् । चतुर्वेदेषु अथर्ववेदीयोपनिषदि अन्तर्भुक्तं भवति । अत्र अष्टौ प्रपाठकाः सन्ति । श्रीवैष्णवसम्प्रदायप्रतिपादकग्रन्थरूपेण ज्ञायते इदमुपनिषद् । अस्य ग्रन्थस्य रचनाकालः ई.पू. (700-800) आसीदिति अनुमीयते। अस्योपनिषदि भगवतः श्रीकृष्णस्य माहात्म्यं तथा सर्वदेवत्वं वर्णितं भवति। श्रीलसरस्वतीपादः भगवतः

श्रीकृष्णस्य महिमानं, तदुपासनायाः फलं च प्रतिपादयितुम् अस्योपनिषदः व्याख्यानं कृतवान् । चतुर्वर्गफलप्राप्तेः कारणभूतत्वेनात्र तेन प्रतिपादितम् ।

'हितहरिवंशाष्टकम्' तथा 'निकुञ्जविलासस्तवः' श्रीलप्रबोधानन्दसरस्वतीमहोदयस्य कृतिरिति केचन समालोचकाः स्वीकुर्वन्ति । परन्तु अनयोः ग्रन्थयोः दृढप्रमाणं नोपलभ्यते । श्रीलसरस्वतीपादस्य प्रतिभा कीदृशी आसीत् पूर्वोक्तानां ग्रन्थानामवेक्षणादेव विज्ञातुं सम्भवेत् ।

# आयुर्वेद और पारंपारिक चिकित्सा में संस्कृत

**डॉ. तेजस्विनी गणपतराव कुलकर्णी**
**सहायक प्राध्यापक**
**वै. धुंडा महाराज देगलूरकर महाविद्यालय देगलूर**

**धर्मार्थ काममोक्षाणा । आरोग्य मूल्यं उत्तमम् ॥**

**प्रस्तावना : -** विश्ववाङमय में संस्कृत का अत्यंत महनीय स्थान रहा हैं । इसमे समष्टिगत एवं व्यष्टिगत जीवन के समस्यांना का बहुविध विवेचन किया गया हैं । आयुर्वेद भारतवर्ष की एक अंत.यंत प्राचिनतम चिकीत्सा पध्दति है । तथा आयुर्वेद ग्रंथो की मूल भाषा संस्कृत है अर्थात आयुर्वेद के चिकित्सा सिध्दांत संस्कृत भाषा में है । जैसे कि आचार्य चरक ने कहा है -

**" हिताहितं सुकं दु:खामायुस्तस्य हिताहितं ।**
**मानं च उच्च यत्रोक्तमायुर्वेद : सं उच्च ते ।। ( १ )**

- हितकर , अहितकर , सुखकर , दु : खकर चार प्रकार की आयू होती हैं । उस आयु के लिये हितकर , अहितकर क्या होता है । आयु का मान क्या है उसका विवरण जिसमे हैं वह आयुर्वेद कहलाता हैं ।

आयुर्वेद एक अत्यंत प्राचीनतम चिकित्सा पद्धति हैं । तथा आयुर्वेद की मूळ भाषा संस्कृत हैं अर्थात आयुर्वेद के चिकित्सा सिद्धांत संस्कृतमय हैं । इसी प्रकार आयुर्वेद का प्रयोजन हैं -

**" प्रयोजन चास्य स्वस्थस्य स्वास्थ्य रक्षणं**
**आतुरस्य विकार प्रशमनं च । " ( २ )**

- अर्थात कहने का मात्र केवल इतना हैं कि आयुर्वेद चिकित्सा शास्त्रों में विषय का विस्तृत वर्णन न करते हुवे उन्हे एक सुत्रो के माध्यम से समझाया हैं । चूंकी आयुर्वेद चिकित्सा पध्दति मुख्य रूप से वानौषधियो से की जाती है । इसी

तारतम्य में विभिन्न वनौषधियों को क्षेत्र - स्थान विशेष के आधार पर भिन्न - भिन्न नाम एवं पर्यायो के आधार पर पहचाना जाना जाता है । चुंकी संस्कृत एकमात्र ऐसी भाषा है जो विभिन्न नाम व पार्यायों को एक सूत्र में पिरोने का काम करती हैं ।

आयुर्वेद का अर्थ हैं " जीवन का विज्ञान " । (आयुर का अर्थ हैं " जीवन और वेद का अर्थ हैं " विज्ञान " संस्कृत मे ) आयुर्वेद वैदिक परंपरा मे उपवेद या " सहाय्यक ज्ञान " का एक अनुशासन हैं । आयुर्वेद का मूल अथर्व - वेद से है और इसके अलावा ऋग्वेद के पूरक के रूप में है । धन्वंतरि को आयुर्वेद के देवता के रूप में पूजा जाता हैं । मनुष्य की समस्याओं में स्वास्थ्य का विशेष महत्व है । स्वास्थ्य ही जीवन के संपूर्ण सुखों का मूल हैं । स्वस्थ व्यक्ती ही पौरूष कार्य करने में समर्थ हो सकता हैं । स्वास्थ्य ही आयु है । आयु का विशिष्ट ज्ञान ही आयुर्वेद हैं। दीर्घ जीवन का ज्ञान प्राप्त हो, विविध व्याधीयो से पिडित मनुष्य को व्याधीमुक्त करके उन्हे सुख स्वास्थ्य प्रदान करना आयुर्वेदावतार का मुख्य उद्देश रहा है । सामाजिक सुख-समृद्धी के लिए शारीरिक निरोगता एवं अनामयता अनिवार्य हैं । कहा भी गया है -

**" शरीरमाद्यं खलु धर्म साधनम् । " (३)**

इस प्रणाली का उद्देश बिमारी को रोकना बिमारीयो को ठीक करना और जीवन की रक्षा करना है । आयुर्वेदिक की उत्पत्ति भारत से हुई है और इसमे दुनिया के विभिन्न हिस्सो मे अपने पंख फैलाये है । आयुर्वेदिक प्राचीन काल मे गुरुकुल प्रणाली में पढाया जाता था , जिसे अब संस्थानों सें स्नातक और स्नातकोत्तर पाठ्यक्रमों मे विकसित किया गया है ।

आयुर्वेद तीन शारीरिक दोषो को मानता है जैसे की वात , पित्त और कफ तिनो के असंतुलन को रोग का कारण मानते है । समदोष की स्थिती को आरोग्य संपूर्ण आयुर्वेदिक चिकित्साके आठ अंग माने गये है ये आठ अंग यह हैं - कायचिकित्सा , शल्यतंत्र , शालक्यतन्त्र , कौसारभृत्य, अगदतन्त्र , भूतविद्या , रसायनतंत्र और वाजीकरण । आयुर्वेद मे चरक और सुश्रुत इन दोनो का बडाही

योगदान रहा है । भारत की प्राचीन कालीन चिकित्सा पद्धती है जो आधुनिक युग मे भी प्रसंगी एवं सहाय्यक सिद्ध हो रही है । आयुर्वेद योग एवं संतुलित दिनचर्या का अनुपालन किया जाए तो व्यक्ति के बिमार अथवा रोगग्रस्त होणे की संभावना अत्यंत ही कम हो जाती है । आयुर्वेदिक औषधीयां हमारे रोग प्रतिरोधक क्षमता मे वृद्धी करती है । साथ ही यह बिमारीयों को जड से समाप्त करती है । इस प्रकार के स्वास्थ्य शिबिर लगातार क्षेत्र के गाव मे आयोजित होते रहने चाहिए ।

पारंपारिक चिकित्सा को पूर्व वैज्ञानिक योग की पद्धती के रूप मे देखा जाता है , जिसका स्थान आधुनिक बेहतर विज्ञान -आधारित चिकित्सा ने लिया हालाँकी आधुनिक विज्ञान और चिकित्सा का प्रादुर्भाव पारंपारिक उत्पादों एव प्रथाओं से ही हुआ है , जिसका एक लंबा इतिहास हे । आज लगभग 40 प्रतिशत फार्मास्युटिकल उत्पाद प्रकृती और पारंपारिक ज्ञान से आते है , जिसमे कई महत्वपूर्ण दवाई शामिल है । जैसे की - एस्पिरिन आर्टेमिसिनिन और बाल कॅन्सर के उपचार इन दवाओं पर नजदीकी नजर डालने से मालूम होता है की उनके वैज्ञानिको ने अपनी खोज के लिए पारंपारिक ज्ञान का सहारा लिया था ।

पारंपारिक एवं पूरक चिकित्सा पर WHO की वैश्विक रिपोर्ट ( २०१९ ) के अनुसार , दुनिया भर में इस्तमाल की जा रही पारंपारिक चिकित्सा की विभिन्न प्रणालियों में एक्यूपंक्चर , हर्बल दवाए , स्वदेशी पारंपारिक चिकित्सा , होमीयोपथिक , पारंपारिक चिनी चिकित्सा , प्राकृतिक चिकित्सा , कायरोप्रैक्टिक , ऑस्टियोपैथी , आयुर्वेद व युनानी उपचार शामिल हैं । WHO के १७० सदस्य देशों ने अपनी आबादी द्वारा पारंपारिक चिकित्सा के उपयोग पर रिपोर्ट दी हैं । (४)कई आशियाई और आफ्रिका देशों में ( ०% तक जनसंख्या प्राथमिक स्वास्थ्य उपचार में स्थानीय पारंपारिक चिकित्सा पर निर्भर हैं और केवल उन उपचारों के न काम करणे पर ही आधुनिक चिकित्सा का सहारा लेती है । जब एक स्थान की पारंपारिक चिकित्सा शैली अपनी गृहभूमी से बाहर प्रयोग होती हैं तो उसे " वैकल्पिक चिकित्सा " ( Alternative Medicine ) कहते हैं । महर्षि सुश्रुत ने आयुर्वेद शब्द की व्याख्या में लिखा हैं -

**" आयुरस्मिन् विद्यते अनेन वा आयुर्विदतीति आयुर्वेद : । "(५)**

- अर्थात आयुर्वेद वह शास्त्र हैं जिसमे मनुष्य अपनी आयु को प्राप्त करता हैं । मानव जीवन को सुखमय बनाने के लिये स्वस्थ शरीर का स्वास्थ्य रक्षा के लिये तथा व्याधी ग्रस्त शरीर के रोगों के निवारणार्थ महर्षियों ने अपणी प्रतिभा अनुभव तथा प्रयोग के बल पर जिस शास्त्र को उत्पन्न किया उसी का नाम है आयुर्वेद हैं ।

आधुनिक चिकित्सा पद्धति का प्रयोग बढ गया है । आयुर्वेद पंचकर्म चिकित्सा पद्धति भारत की प्राचीनतम चिकित्सा पध्दतियों में से एक हैं । इस पद्धति मे शरीर के विषों को बाहर निकालकर शुद्ध किया जाता है । इसी से रोग निवारण भी हो जाता है । पंचकर्म , आयुर्वेद शास्त्र में वर्णित एक विशेष चिकित्सा पद्धति हैं , जो दोषों को शरीर से बाहर निकाल कर रोगी को जड से समाप्त करती है । यह शरीर शोधन की प्रक्रिया हैं , जो स्वस्थ मनुष्य के लिये भी फायदेमंद है । इसमे पांच प्रधान कर्म जैसे - वमन, विरेचन , आस्थापना वस्ति , अनुवासन बस्ति , और नस्य है । तो इतके पहले किडे जाने वाले दोन पूर्व कर्म जैसे - स्नेहन और स्वेदन है ।

आयुर्वेद बहोतही महत्त्वपूर्ण बात कहता हैं -

**" स्वस्थ : आयुष : रक्षार्थम् ब्राह्मे मुहुर्ते उत्तिष्ठेत् ।**
**सर्वम् एवं परित्यक्त शरीरम् अनुपालयेत ॥ " (६)**

अर्थात – स्वस्थ व्यक्ती को सूर्योदय से पूर्व ही शय्या छोड देनी चाहिए , यदी वह आयु की रक्षा करना चाहता है । अन्य सभी कार्य तभी किये जा सकते हैं जब शरीर स्वस्थ हो ।

**सारांश : -**

आयुर्वेद और पारंपारिक चिकित्सा में संस्कृत का बहोत बडा योगदान हमेशासेही रहा है । चरक सुश्रुत आदी महारथीयोंने आयुर्वेद में सराहानिय कार्य

किया हैं । पुरे विश्व में इनकी रचनाओंका अध्ययन और अध्यापन किया जाता है । भारत को वरदान स्वरूप प्राप्त हुवा ये आयुर्वेद ना कभी लुप्त हूवा हैं न होगा ये हमेशासेही शास्त्र के रूप में बिमारियोंपर शस्त्र की तरह कार्य करता हुआ दिखाई देता है । परंपरानुरूप चला आता ये आयुर्वेद का ज्ञान पिढीदरपिढी नानिके बटूऐ तरह काभिभी न खात्म होने वाला हैं । आयुर्वेद एक ऐसा शास्त्र हैं जिनका इस्तमाल करने से शरीर की कोईभी हानी नही होती हैं । सबसे सुरक्षित ऐसा हमारा आयुर्वेदीक इलाज हैं ।अंत में मै यही कहना चाहुंगी आयुर्वेद ही हमे स्वस्थ रख सकता है बिना कोई शरीर की हानी करे बिना ।

**संदर्भसूची : -**

१)चरक संहिता सूत्रस्थान १/४१
२)चरक सूत्र ३०/२६
३)कुमार संभवम् ५/३३
४) संयुक्त राष्ट्र समाचार १६ आगस्त २०२३
५)संस्कृत शास्त्र का इतिहास - बलदेव उपाध्याय प्रथम परिच्छेद पृष्ठ -१
६) चरक संहिता सूत्र ३०/२६

# वैश्विक-संस्कृत-मञ्च

## Global Sanskrit Forum

Plot no. 3-B, Khasra no. 611, Gali no. 1, B-Block,
Saraswati Avenue, Sabhapur Extn., Shahdara, Delhi-110094
Contact : 8789507760
Email : globalsanskritforum@gmail.com
Webiste : https://globalsanskritforum.org

अमृतब्रह्म प्रकाशन
63/59, मोरी, दारागंज,
प्रयागराज-211006 (उ.प्र.)
Mobile : +91-9450407739, 8840451764
Email : amritbrahmaprakashan@gmail.com

ISBN 819890241-4